मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख

श्रीराम गोयल
एम०ए०, पी-एच० डी०
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
इतिहास विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

1987
कुसुमाञ्जलि प्रकाशन
मेरठ-250 001

मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख

ग्रन्थ-परिचय

मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग (लगभग 550–750 ई०) भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण युग है। इस युग में 'क्लासिकल' संस्कृति अपना रूप परिवर्तित कर शनैः शनैः पूर्व-मध्यकालीन संस्कृति बनी। इसलिए मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग की लगभग दो शताब्दियाँ देहली-दीपक-न्यायवत् 'क्लासिकल' तथा पूर्व-मध्यकाल इन दोनों युगों को आलोकित करती हैं। इनके अध्ययन में अभिलेखों से सर्वाधिक सहायता मिलती है। परन्तु अभी तक हिन्दी में क्या अंग्रेजी में भी ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसमें इस युग के सभी महत्त्वपूर्ण अभिलेख एकत्र संगृहीत हों। प्रस्तुत ग्रन्थ इस कमी को पूरा करने की ओर एक श्लाघ्य प्रयास है। इसमें इस युग के सभी भारतीय राजवंशों के महत्त्वपूर्ण अभिलेख प्रकाशित किये जा रहे हैं। मौखरि, पुष्यभूति, परवर्ती-गुप्त आदि कुछ राजवंशों के तो सभी अभिलेख इसमें दे दिये गये हैं। वैशाली तथा नालन्दा से प्राप्त मुहर-लेखों को भी इसमें स्थान दिया गया है और उन पर विस्तार से विचार किया गया है। अधिकांश महत्त्वपूर्ण अभिलेखों को सम्पादित करते समय उनका पूर्ण परिचय (लिपि, भाषा, तिथि, प्राप्तिस्थल, लेखक, आदि), उन पर लिखित सन्दर्भ-ग्रन्थों और निबन्धों की सूची, मूलपाठ, पाठ-टिप्पणियाँ, कठिन शब्दों के अर्थ, अनुवाद, महत्त्वपूर्ण वाक्यांशों और पदों पर विस्तृत टिप्पणियाँ तथा लेख का महत्त्व—इन सभी पक्षों को समाविष्ट किया गया है। शेष अभिलेखों का परिचय, सार, महत्त्व, मूलपाठ तथा सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची आदि दिये गये हैं। हमारा विश्वास है कि इसके लेखक प्रोफेसर श्रीराम गोयल के द्वारा भारतीय अभिलेखों पर प्रकाशित अन्य दो ग्रन्थों (**प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह—प्राक्-गुप्तयुगीन** तथा **गुप्तकालीन अभिलेख**) की भाँति यह ग्रन्थ भी प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्येताओं द्वारा अनुशंसित होगा और उपादेय माना जायेगा।

मूल्य : रु० 250

कुसुमाञ्जलि प्रकाशन
...० एल० शर्मा रोड, बेगम ब्रिज
...ठ–250 001

प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह

मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख

लेखक-परिचय

डॉ० श्रीराम गोयल (ज० १९३२) जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान) में इतिहास विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हैं। आपने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक (१९५३) तथा स्नातकोत्तर (१९५५) डिग्रियाँ प्राप्त कीं। एम० ए० में आपने प्राचीन इतिहास में 'प्रथम श्रेणी के साथ प्रथम स्थान' प्राप्त किया। पहिले आप इलाहाबाद विश्वविद्यालय (सी० एम० पी० कॉलिज) में रहे (१९५५-५८) और फिर गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग में (१९५८-७०)। १९७० में आप जोधपुर विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग में रीडर पद पर नियुक्त हुए और इस समय भी वहीं प्रोफेसर एवं अध्यक्ष के रूप में सेवारत हैं।

प्रोफेसर गोयल ने एक दर्जन से अधिक उच्चस्तरीय ग्रन्थों का प्रणयन किया है और ६५ से अधिक शोध-निबन्ध लिखे हैं। इनमें **प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ** (१९६१), **विश्व की प्राचीन सभ्यताएं** (१९६३), **ए हिस्ट्री ऑव दि इम्पीरियल गुप्तज़** (१९६७), **गुप्त एवं समकालीन राजवंश** (१९६९), **प्राचीन नेपाल का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास** (१९७४), **प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह—प्राक्-गुप्तयुगीन** (१९८२), **गुप्तकालीन अभिलेख** (१९८४), **मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख** (१९८७), **ए रिलीजस हिस्ट्री ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया**, दो भागों में (१९८४, १९८६), **कौटिल्य एण्ड मेगास्थेनिज़** (१९८५), **हर्ष एण्ड बुद्धिज़्म** (१९८६) तथा **हर्ष शीलादित्य** (१९८७) सम्मिलित हैं। इन सभी ग्रन्थों की भारतीय इतिहास-जगत् में भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है। आपके शोध-प्रबन्ध **ए हिस्ट्री ऑव दि इम्पीरियल गुप्तज़** को ऑस्ट्रेलिया के नेशनल प्रोफेसर श्री ए० एल० बैशम ने 'दि बेस्ट एनेलिसिस ऑव दि गुप्त पीरियड' बताया है तथा प्रोफेसर एलिनोर जेलिओट (मिनेसोटा, अमेरिका) ने 'इमेजिनेटिव', 'वेल-रिटिन' तथा 'ए मॉडल ऑव हिस्टोरियोग्रेफी' कह कर सराहा है। इस ग्रन्थ में प्रतिपादित मतों और सुझावों को, जो पिछले दो दशकों से स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों और ग्रन्थों में विचार का विषय रहे हैं और जिन पर दर्जनों शोध-निबन्ध लिखे जा चुके हैं, प्रोफेसर आर० सी० मजूमदार ने भी 'अत्यन्त सावधानीपूर्वक अध्ययन करने योग्य' माना है। गुप्त इतिहास के पुनर्निर्माण में इन सुझावों का योगदान अब प्रायः स्वीकृत किया जाता है। प्रोफेसर गोयल के अभिलेखों पर लिखित ग्रन्थों की प्रशंसा प्रोफेसर दि० च० सरकार जैसे अभिलेख-शास्त्री ने भी की है।

प्रोफेसर गोयल के इस मत पर कि ब्राह्मी लिपि का आविष्कार प्रारम्भिक मौर्य युग में हुआ था, भारत के लब्ध-प्रतिष्ठ पुरालिपिशास्त्रियों की टिप्पणियों और प्रतिक्रियाओं को एकत्र संगृहीत एवं सम्पादित करके 'इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर सोसायटी' ने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है (**दि ओरिजिन ऑव ब्राह्मी स्क्रिप्ट**, नई दिल्ली, १९७९)। प्रोफेसर गोयल के एक सुझाव पर इस प्रकार 'पत्राचार-सेमीनार' का आयोजन और प्रकाशन (जो स्वयं एक विरल बात है) तथा कुछ लिपिशास्त्रियों द्वारा उनके इस सुझाव को 'सर्वाधिक स्वीकार्य' बताया जाना तथा अन्य अनेक इतिहासज्ञों द्वारा इसको कुछ संशोधन के साथ स्वीकृत किया जाना भारतीय इतिहास-जगत् में डॉ० गोयल के विशिष्ट स्थान तथा उनकी विद्वता के सामान्य स्वीकरण का प्रमाण हैं।

प्रोफेसर गोयल 'भारतीय इतिहास एवं संस्कृति ग्रन्थमाला' के प्रधान सम्पादक हैं। इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत ३२ ग्रन्थ प्रकाशित होंगे। इनमें छः तैयार हो गये हैं और दो (**मागध साम्राज्य का उदय** तथा **मुग़ल साम्राज्य का प्रारम्भिक इतिहास**) प्रकाशित हो चुके हैं। अध्यापकों तथा स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिये आयोजित इस ग्रन्थ-माला के लेखन में डॉ० गोयल को देश के अनेक विश्वविद्यालयों के वरिष्ठ तथा मान्य विद्वान् सहायता दे रहे हैं।

प्रोफेसर गोयल दर्शन-शास्त्र के जिज्ञासु विद्यार्थी रहे हैं—विशेषतः इतिहास-दर्शन के। आपने इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में बी० ए० में (१९५३) दर्शन शास्त्र में प्रथम स्थान प्राप्त करके मणीन्द्रनाथ नन्दी सुवर्ण पदक अर्जित किया था। लेकिन एक सच्चे इतिहासकार की तरह आपकी रुचि मूल स्रोतों के अध्ययन में विशेष रही है। आपने भारतीय साहित्य की विभिन्न शाखाओं का गहन अध्ययन किया है। आपके सद्य-प्रकाशित ग्रन्थ **ए रिलीजस हिस्ट्री ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया** (दो भागों में) धार्मिक साहित्य में आपकी गति व रुचि का प्रमाण हैं। मुद्राशास्त्र पर आपका एक ग्रन्थ **दि क्वायनेज ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया** (दो खण्डों में) शीघ्र प्रकाश्य है तथा अभिलेखों पर उपर्युक्त **प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह** (तीन खण्डों में) छापा जा ही चुका है। इस तरह डॉ० गोयल के व्यक्तित्व में साहित्य, दर्शन-शास्त्र और इतिहास का विरल तथा अद्भुत समन्वय मिलता है।

मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख

(Inscriptions of the Maukhari-Pushyabhūti-Chālukya Age)

मूलपाठ, शब्दार्थ, अनुवाद तथा महत्त्व सहित

डॉ० श्रीराम गोयल
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय
जोधपुर

कुसुमाञ्जलि प्रकाशन
मेरठ

प्रथम सस्करण, १९८७

कुसुमाञ्जलि प्रकाशन
रञ्जन बिल्डिग, पी० एल० शर्मा रोड, बेगम ब्रिज, मेरठ–२५०००१

शंकर गोयल द्वारा कुसुमाञ्जलि प्रकाशन, मेरठ के लिए प्रकाशित
इण्डियन प्रेस, १७६, राजेन्द्र नगर, मेरठ द्वारा मुद्रित

Maukhari-Pushyabhuti-Chalukya Yugina Abhilekha — Dr. S. R. Goyal
KUSUMANJALI PRAKASHAN, Ranjan Building, P. L. Sharma Road, Meerut.

अपने प्रिय अनुज

राजे (श्री राजेन्द्र प्रकाश गोयल, एम० ए०) को

हार्दिक स्नेह, प्रेम एवं शुभकामनाओं सहित

लेखक की प्रमुख रचनाएं

प्रमुख प्रकाशित ग्रन्थ

प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ
विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ
ए हिस्ट्री ऑव दि इम्पीरियल गुप्तज़ (सुविख्यात शोध-प्रबन्ध)
गुप्त एवं समकालीन राजवंश
प्राचीन नेपाल का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास (अभिलेखों के आधार पर)
प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह (प्राक्-गुप्तयुगीन)
गुप्तकालीन अभिलेख
मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख
मागध साम्राज्य का उदय (डॉ० एस० के० गुप्त के साथ सम्पादित)
मुग़ल साम्राज्य का प्रारम्भिक इतिहास (डॉ० एस० के० गुप्त के साथ सम्पादित)
ए रिलीजस हिस्ट्री ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया (दो भागों में)
युद्धकला (अनूदित)
कौटिल्य एण्ड मेगास्थेनिज़
हर्ष एण्ड बुद्धिज़्म
हर्ष शीलादित्य

प्रकाशनाधीन ग्रन्थ

समुद्रगुप्त पराक्रमांङ्क
दि क्वायनेज ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया (दो भागों में)
एन इकोनोमिक हिस्ट्री ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया
प्राचीन भारत का इतिहास (तीन खण्डों में)

प्रकाशकीय भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ भारत के सुप्रतिथ **इतिहासकार डॉ० श्रीराम गोयल,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर, के द्वारा रचित **प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह** नामक ग्रन्थमाला का तीसरा खण्ड है। इस ग्रन्थमाला के प्रथम खण्ड में प्रोफेसर श्रीराम गोयल ने **प्राक्-गुप्तयुगीन अभिलेख** प्रस्तुत किये थे। उस ग्रन्थ को १९८२ में राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ने प्रकाशित किया था। इस कड़ी का दूसरा खण्ड **गुप्तकालीन अभिलेख** था जो १९८४ में हमने प्रकाशित किया था। **मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख** नाम का यह ग्रन्थ, जिसमें लगभग ७५० ई० तक के ७१ गुप्तोत्तर युगीन अभिलेख संगृहीत हैं, इस कड़ी का १९८७ ई० में प्रकाशित होने वाला तीसरा खण्ड है। इस प्रकार प्रोफेसर गोयल ने लगभग दो-दो वर्ष के अन्तराल से प्राचीन भारत के ७५० ई० तक के लगभग सभी महत्त्वपूर्ण अभिलेख संकलित, अनूदित तथा विस्तार से सम्पादित कर दिये हैं। कुल मिला कर तीनों ग्रन्थों में लगभग ३०० अभिलेख संगृहीत हैं। हमारा विश्वास है कि पिछले दो खण्डों के समान यह ग्रन्थ भी, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों एवं शोधकर्त्ताओं के लिये, उपादेय सिद्ध होगा।

प्रोफेसर गोयल के पिछले दो ग्रन्थों (**प्राक्-गुप्तयुगीन अभिलेख** एवं **गुप्तकालीन अभिलेख**) पर हम पुरालेख-शास्त्रियों की सम्मतियां नीचे उद्धृत कर रहे हैं जिनसे इस विषय पर डॉ० गोयल के अधिकार एवं प्रस्तुत ग्रन्थ के उच्च स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है।

"Since the importance of the study of epigraphy as the best source of ancient Indian history is now generally accepted, several people published their own compilation of inscriptions during the past few decades. I am glad, however, to note that Dr. Goyal's volumes (*Prachina Bharatiya Abihlekha Samgraha* and *Guptakalina Abhilekha*) are much better produced than most such works and are expected to be of greater benefit to the generality of our students and research workers. The publication of such works being a difficult job now-a-days, I express my congratulations to the author and the publishers of the volumes."

Dr. D. C. Sircar, formerly Carmichael Professor of Ancient Indian History and Culture, Calcutta University, and Government Epigraphist for India.

"It is a fine piece of work and will be useful to all students of Gupta history."

Professor G. S. Gai, Retd. Chief Epigraphist, Govt. of India.

"...a most outstanding work on the source material of the Gupta history. You have very well edited the inscriptions and your commentary in most cases is brilliant. I congratulate you for bringing out such an excellent publication in Hindi and I sincerely believe that this notable work will be highly useful to all researchers on Gupta history, particularly those belonging to Hindi speaking areas."

Shri M. C. Joshi, Director (Explorations), Archaeological Survey of India, New Delhi.

"*Guptakalina Abhilekha* contains a complete study of important inscriptions with adequate notes and translations which will be certainly useful to the readers be they scholar[illegible] researchers or students. The photographs at the end will also enable them to lea[illegible] difficult job of decipherment. I wish that every student gets this book [illegible] master the subject."

Dr. K. G. Krishnan, Retd. Chief Epigraphist, Archae[illegible]cal Su[illegible]

"The author of this book Dr. S. R. Goyal is already known t[illegible] gists through a number of his earlier publications. He has already d[illegible] the origin and palaeographical development of the Brahmi script [illegible]

in this field are to be well-taken while others of a speculative nature deserve serious consideration. The present work is in Hindi, a point which should be appreciated. All the earlier corpuses of the Gupta inscriptions contain critical comments and notes in English while Dr. Goyal's volume will help a bigger circle of historical researchers to get closely acquainted with the epigraphs and history of the Guptas. While making his critical observations on these inscriptions, Dr. Goyal has broken much new ground....He has not spared any pains in highlighting all the aspects of Gupta epigraphy and the presentation of his observations under suitable sub-titles is systematically done . . . the present publication is a great boon to the students of Indian Epigraphy who would like to get more closely acquainted with Gupta epigraphs. The book has been well produced. While eagerly recommending the book for the consideration of the scholarly world, the reviewer would like to congratulate Dr. S. R. Goyal for a work well done."

Dr. K. V. Ramesh, in the *Journal of the Epigraphical Society of India*, **XI, p. 123 f.**

"डॉ० श्रीराम गोयल ने इस ग्रन्थ में प्राक्-गुप्तयुगीन भारत के विशिष्ट अभिलेखों को सम्यक् हिन्दी अनुवाद, परिचयात्मक टीका तथा विस्तृत समीक्षात्मक टिप्पणियों सहित सुलभ करके एक बहुत बड़ी आवश्यकता पूरी की है। उनका यह ग्रन्थ प्राचीन भारत के प्रत्येक विद्यार्थी के, जो हिन्दी पढ़ सकता है, हाथ में होना चाहिए क्योंकि इससे उसे मालूम होगा कि इस स्रोत से भारत के अतीत की कथा का पुनर्निर्माण कैसे किया जाता है और इससे वह सीखेगा कि किस प्रकार ऐसे अन्य साक्ष्य का उपयोग किया जाना चाहिए। मैं इस ग्रन्थ को भारतीय इतिहास के सभी अध्यापकों और विद्यार्थियों के लिए और अन्य उन सभी व्यक्तियों के लिए अभिस्तावित करता हूँ जो भारत के अतीत को और अधिक गम्भीरता से जानना चाहते हैं।"

ए० एल० बैशम, नेशनल प्रोफेसर, आस्ट्रेलिया।

"प्रोफेसर श्रीराम गोयल भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों एवं विद्वानों के लिए अपरिचित नाम नहीं है। उनकी लगभग एक दर्जन पुस्तकें एवं पचासों शोध-निबन्ध उन्हें एक इतिहासकार के रूप में स्थापित कर चुके हैं। उनका शोध-ग्रन्थ 'ए हिस्ट्री ऑव दि इम्पीरियल गुप्तज' देश एवं विदेश में सर्वत्र प्रशंसित हो चुका है। इसका कारण प्रोफेसर गोयल का इतिहास के मूल स्रोतों पर अधिकार है। मुद्राशास्त्र एवं अभिलेखकी उनके प्रिय विषय रहे हैं। इधर उन्होंने अभिलेखों पर विशेष अध्ययन प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। दो वर्ष पूर्व उन्होंने **'प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह' (प्राक्-गुप्तयुगीन)** प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने पूर्वगुप्तकालीन अभिलेखों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया था। प्रस्तुत पुस्तक (**गुप्तकालीन अभिलेख**) इसी अध्ययन की अगली कड़ी है।

प्रोफेसर गोयल ने इस पुस्तक में गुप्त सम्राटों के ५९ अभिलेख प्रकाशित किये हैं। इन अभिलेखों को एक स्थान पर एकत्र करके उनका सम्पादन एवं विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। लेखक ने प्रत्येक अभिलेख का अध्ययन तीन भागों में किया है। प्रथम भाग में लेख का विस्तृत परिचय, प्राप्ति-स्थल, भाषा, लिपि, वर्तनी, तिथि, लेखक, उद्देश्य, अध्ययन का इतिहास, सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची आदि सहित दिया गया है। ...ग में लेख का मूलपाठ, पाठ-टिप्पणियाँ, कठिन शब्दों के अर्थ, अनुवाद तथा व्याख्यात्मक टिप्पणियाँ हैं। तीसरे ... महत्त्व राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, प्रशासकीय आदि दृष्टियों से बताया गया ... नहीं कि ... प्रकार का अध्ययन सभी के लिए, विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए, बहुत ... होगा। ... तक अधिकांश लेखों के अनुवाद ही प्रकाशित होते रहे हैं तथा कुछ के महत्त्व ... । किन्तु अपने प्रयास में प्रोफेसर गोयल ने कठिन शब्दों एवं वाक्यांशों के अर्थ भी दिये

हैं तथा पहले के विद्वानों ने उनका क्या अर्थ किया है तथा वे स्वयं उसे कैसा समझते हैं यह भी तर्क सहित बताया है। अनेक विषयों एवं मुद्दों पर उनकी अपनी पैठ एवं राय है और लेखक ने उनकी अभिव्यक्ति में संकोच नहीं किया है।

लेखों को सम्पादित करने के पहले पूर्वपीठिका के दोनों खण्डों में लेखक ने गुप्त सम्वत् तथा गुप्त इतिहास, राजक्रम तथा तिथिक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा दी है। गुप्त लेखों के अन्त में बंगाल से उपलब्ध दानपत्रों से ज्ञात प्रशासकीय व भूमि-व्यवस्था पर परिशिष्ट भी है।

इसके अतिरिक्त लेखक ने 'गुप्तकाल के अन्य महत्त्वपूर्ण अभिलेख' के अन्तर्गत आटविक प्रदेश : उच्चकल्प तथा परिव्राजक वंश के २, दशपुर प्रदेश : गुप्तों के सामन्तों के लेख के अन्तर्गत ५, हूणों के अभिलेख के अन्तर्गत ४, दशपुर प्रदेश के औलिकर वंश के ४, वाकाटकों के ३ एवं २ प्रकीण लेख भी सम्मिलित किये हैं। इनका चयन गुप्त-काल के इतिहास की पूर्णता को ध्यान में रखकर किया गया है। लेकिन इनका केवल मूल पाठ ही दिया गया है, कोई अनुवाद अथवा पाठ-टिप्पणी आदि नहीं दी गयी है। लेकिन इससे पुस्तक की महत्ता कम नहीं होती।

ऊपर हम कह चुके हैं कि अनेक विषयों पर प्रोफेसर गोयल के अपने विचार हैं तथा उन्होंने उनको स्थापित करने के लिए तर्क प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिए प्रसिद्ध मेहरौली लेख को समुद्रगुप्त का मानते हुए वे 'चन्द्र' एवं समुद्रगुप्त को अभिन्न मानते हैं। यहाँ हम तर्कों के विस्तार में न जाकर केवल यह इंगित करना चाहते हैं कि हम इस मत से सहमत न होते हुए भी उनके तर्कों की सबलता को स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार प्रोफेसर गोयल द्वारा प्रस्तुत की गयी यह पुस्तक हिन्दी में इस विषय पर लिखी गयी अब तक की सबसे महत्त्वपूर्ण एवं परिपूर्ण पुस्तक है जिसके लिए लेखक बधाई के पात्र हैं।"

Dr. T.P. Verma, *Bharatiya Itihasa Samkalana Samiti Patrika*, III, 1985, Varanasi, p. 262.

"Extremely useful for researchers and post-graduate students."

Dr. K. D. Bajpai, Retired Tagore Professor and Head, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, University of Sagar, Sagar.

"Indispensable for all students and researchers."

Dr. Lallanji Gopal, Professor and Head, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Banaras Hindu University, Varanasi.

"डॉ० श्रीराम गोयल की महत्त्वपूर्ण कृति 'गुप्तकालीन अभिलेख' में गुप्तवंश के सभी महत्त्वपूर्ण लेखों का संकलन, क्रमानुसार नियोजन, प्रत्येक लेख का परिचय, उससे सम्बन्धित संदर्भ-ग्रन्थों और लेखों का विस्तृत विवरण, मूल लेख का पाठ, अनुवाद और व्याख्या और लेख के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। प्रारम्भ में 'पूर्वपीठिका' के रूप में 'गुप्त संवत्' और 'गुप्त इतिहास, राजक्रम और तिथिक्रम की संक्षिप्त रूपरेखा' में उपर्युक्त विषयों का विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन किया गया है। सन्दर्भ-ग्रन्थों और लेखों में अद्यतन प्रकाशित सामग्री देने का भरसक प्रयास किया गया है। एक परिशिष्ट में नालन्दा और गया दानपत्रों के कूट होने के पक्ष एवं विपक्ष में दिये गये विद्वानों के तर्कों की गहन समीक्षा की गयी है और दूसरे परिशिष्ट में बंगाल के दानपत्रों से ज्ञात प्रशासकीय एवं भूमि-व्यवस्था का सारगर्भित विवेचन है। प्रत्येक राजा के राजत्वकाल के लेखों के अलग-अलग विवेचन से पूर्व उसके काल के सभी लेखों की संक्षिप्त भूमिका उनकी एक साथ जानकारी के लिए सुविधाजनक है। अनेक महत्त्वपूर्ण लेखों के चित्र भी प्रस्तुत किये गये हैं, जो काफी स्पष्ट हैं। गुप्तवंश के उनसठ लेखों के साथ इस वंश के समकालीन राजवंशों और गुप्त सामन्तों के बीस लेखों को स्थान देने से ग्रन्थ की उपादेयता में वृद्धि हुई है। लेखक ने यथास्थान गुप्तों से पूर्व और पश्चात् काल की लेख सामग्री से इस ग्रन्थ में प्रतिपादित लेखों की तुलना की है। साथ ही अभिलेखीय सामग्री के समर्थन (अथवा अन्यथा) में साहित्यिक एवं मौद्रिक साक्ष्य का भी यत्र-तत्र उल्लेख किया है। विषय-सामग्री के प्रतिपादन में यथासम्भव पुनरावृत्ति से बचने की चेष्टा की गयी है।

इतिहास की विभिन्न समस्याओं के समाधान और ग्रन्थियों के सुलझाने का यथासम्भव प्रयास किया गया है और विभिन्न संदर्भों में विभिन्न विद्वानों के मतों की समीक्षा के साथ ही अनेक विचारणीय और श्लाघनीय मौलिक सुझाव भी प्रस्तुत किये गये हैं। लेखक के मौलिक सुझावों में अधिकांश ऐसे हैं जिनका प्रतिपादन उन्होंने स्वयं अपने प्रकाशित ग्रन्थों और लेखों में किया है और जिनमें से कई को अन्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है और सराहा है। ऐसा तो नहीं है कि पाठक लेखक के सभी मतों से सहमत हों, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्वमतप्रतिपादन हेतु उनके तर्कों से वह निश्चित रूप से प्रभावित होता है और उस पर नये सिरे से विचार करने को प्रेरित होता है।

डॉ० गोयल की यह कृति इस बात का प्रमाण है कि गुप्त वंश जैसे बहुचर्चित विषय पर भी गम्भीर चिन्तन और तर्कपूर्ण विवेचन से कई नये तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं। डॉ० गोयल का यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ निश्चय ही अध्यापकों तथा छात्रों के लिए उपादेय है।"

Dr. Kiran Kumar Thaplyal, Department of Ancient Indian History and Archaeology, Lucknow University, Lucknow.

"This work of Dr. Goyal, like his other works, is marked by thoroughness and meticulousness and is bound to be found immensely useful by both post-graduate students and researchers of early Indian history. The word-meanings, translations and detailed comments and observations relating to inscriptions make the work of great value and enhance its usefulness."

Professor Ajay Mitra Shastri, Head, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Nagpur University, Nagpur.

"Your book on Gupta inscriptions is very comprehensive and your objective study of materials is really wonderful. Your presentation is lucid and analytical."

Dr. S. K. Maity, Department of History, Jadavpur University, Calcutta.

"*Guptakalina Abhilekha* is the first book of its kind in Hindi in which all the inscriptions of the Gupta period together with the inscriptions of the contemporary dynasties have been critically edited by Dr. S. R. Goyal. The detailed notes and critical interpretations as well as textual comments make it extremely useful as a reference work for post-graduate students and researchers. Such a scholarly work in Hindi was long awaited. Dr. Goyal deserves our best compliments for this very illuminating contribution to epigraphical studies."

Professor Upendra Thakur, Head, Ancient Indian and Asian Studies, Magadh University, Bodh Gaya.

"*Guptakalina Abhilekha* (in Hindi) will be useful not only to the students of epigrapy but also to those of ancient history. The Gupta period has been the author's special field of study and the book bears the stamp of his critical acumen. An important feature of this work is that the author has given meanings of important words in each epigraph; they will enable the student to understand the original record itself."

Professor M. K. Dhavalikar, Director, Deccan College Post-Graduate and Research Institute, Pune.

"*Guptakalina Abhilekha* (Inscriptions of the Gupta age) by Professor Shri Ram Goyal compliments the earlier work of the author, *Prachina Bharatiya Abhilekha Samgraha*, which covered the pre-Gupta inscriptions. Inscriptions are an invaluable source for re-constructing political and cultural history of any society with a long history, but their importance is much more in the Indian context because of the paucity of literary sources for the early

history of our country. In the present work Professor Goyal has assembled seventy-nine of the most important inscriptions of the Gupta age. For every inscription he has provided a short introduction to the circumstances and history of its discovery, the original reading, commentary and meanings of difficult words, translation, and has also discussed the historical importance. The estampages of many inscriptions have been reproduced in good quality photographs so that the reader can examine for himself the author's reading and interpretation. He has put the study into a proper perpective by providing a short but scholarly introduction to Gupta era, history, genealogy and chronology.

The book is a testimony of Professor Goyal's erudition and high standard of research. In will be an invaluable source of reference for all students of Indian History for years to come."

Professor V. N. Misra, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Deccan College Post-Graduate and Research Institute, Pune.

"It is really good reference work for M. A. students and research scholars."

Dr. Shobhana Gokhale, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Deccan College Post-Graduate and Research Institute, Pune.

"... besides its usefulness your forthright and clear cut opinions stated in such a straightforward manner are not only praiseworthy but worth emulating by other writers. The Hindi world will always be grateful to you for placing such an eminent and scholarly work in its hands."

Dr. (Mrs.) Devahuti, Professor of History, University of Delhi, Delhi.

". . . is sure to attract the youth and keep in them interest in history of our country."

Porfessor G. M. Moraes, Director, Institute of Historical Research, Bombay.

" . . . the method followed by the author deserves to be emulated."

Dr. R. N. Mehta, Former Professor and Head, Department of Ancient Indian History, M. S. University, Baroda.

"*Guptakalina Abhilekha* and *Prachina Bharatiya Abhiekha Samgraha* illustrate the high standard of scholarship exhibited by Dr. S. R. Goyal...These two monumental works, I believe, are the first attempt made by an Indian scholar to make a comprehensive study of ancient Indian inscriptions and make them available in Hindi."

Professor B. N. Puri, Retd., Professor and Head, Department of Ancient Indian History and Archaeology, Lucknow University, Lucknow.

" I certainly find it very copious, informative and useful for not only serious students but for teachers also as a ready reference book for their day-to-day use. From many angles it has improved upon the earlier collections of inscriptions prepared by earlier scholars."

Dr. Vishuddhanand Pathak, Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology, Banaras Hindu University, Varanasi.

"No book of this kind is available in Hindi. You have shown great originality in it."

Dr. K. C. Jain, Professor and Head, Department of Ancient History and Culture, Vikram University, Ujjain.

विषय-सूची

जे०पी०ए०एस०बी०	जर्नल एण्ड प्रोसीडिंग्स् ऑव दि एशियाटिक सोसायटी ऑव बेंगाल
जे०बी०आर०एस०	जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसायटी, पटना
जे०बी०ओ०आर०ए०एस०	जर्नल ऑव बिहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसायटी, पटना
जे०बी०बी०आर०एस०	जर्नल ऑव दि बॉम्बे ब्राञ्च ऑव दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई
जे०यू०पी०एच०एस०	जर्नल ऑव दि यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, लखनऊ
ट्रैवेल्स	ट्रैवल्स ऑव युआन-च्वांग, ले०, टी० वाटर्स
डे०कि०म०	डेक्लाइन ऑव दि किंग्डम ऑव मगध, ले०, बी० पी० सिनहा
पी०आई०एच०सी०	प्रोसीडिंग्स् ऑव दि इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस
पी०आर०एच०सी०	प्रोसीडिंग्स् ऑव दि राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस
पी०ओ०सी०	प्रोसीडिंग्स् ऑव ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेन्स
पो०हि०ए०इं०	पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया, ले०, हेमचन्द्र रायचौधुरी, कलकत्ता, १९५३
वि०सं०	विक्रम संवत्
रिकार्ड्स	रिकार्ड्स ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, ले०, एस० बील
वा०गु०ए०	वाकाटक-गुप्त एज, सं०, मजूमदार तथा अल्तेकर, लाहौर, १९४६
स०इं०	सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स् बीयरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलिजेशन, वॉल्यूम १, ले०, दि० च० सरकार, कलकत्ता, १९६५
स०हि०आ०इं०बं०	सम हिस्टोरिकल आस्पेक्ट्स् ऑव दि इन्स्क्रिप्शन्स् ऑव बेंगाल, ले०, बी० सी० सेन, कलकत्ता, १९४२
सलेक्शन्स्	सलेक्शन्स् फ्रॉम संस्कृत इन्स्क्रिप्शन्स्, ले०, डी० बी० दिस्कलकर, नई दिल्ली, १९७७
हि०नॉ०ई०इं०	ए हिस्ट्री ऑव नॉर्थ-ईस्टर्न इण्डिया, ले०, आर० जी० बसाक
हि०लि०इं०	हिस्टोरिकल एण्ड लिटरेरी इन्स्क्रिप्शन्स्, ले०, रा० ब० पाण्डेय, वाराणसी
हि०क०	ए हिस्ट्री ऑव कन्नौज, ले०, र० शं० त्रिपाठी

पूर्वपीठिका (अ)

राजनीतिक पृष्ठभूमि

मौखरि वंश

गुप्त साम्राज्य की अवनति और पतन के उपरान्त भारत में पश्चिमी उत्तर प्रदेश का कान्यकुब्ज नगर साम्राज्यिक केन्द्र बना। इसे राजधानी बनाकर एक-एक करके कई राजवंशों ने शासन किया जिनमें मौखरि वंश प्रथम था। उसके बाद क्रमशः पुष्यभूति वंश ने इसे अपनी राजधानी बनाया और उसके बाद यशोवर्मा के वंश ने। इसलिये लगभग ५५० से ७५० ई० तक का समय, जिसके अभिलेख इस ग्रन्थ में संगृहीत हैं, उत्तर भारत में कन्नौज के प्रारम्भिक साम्राज्यों का युग कहा जा सकता है।

मौखरि कुल की प्राचीनता

गुप्तों के बाद उत्तर भारत में एक श्रद्धेय साम्राज्य की स्थापना मौखरियों ने की।[1] पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' पर रचित 'काशिकावृत्ति' नामक टीका (ई-चिंग के भारत-आगमन के पूर्व रचित) एवं पतञ्जलि के 'महाभाष्य' पर कैयट (१२ वीं शती ई०)[2] की टीका में आये 'मौखर्या' शब्द के प्रयोग से यह सम्भावना पैदा होती है कि स्वयं पाणिनि और पतञ्जलि मुखर नाम से परिचित थे। र० श० त्रिपाठी के अनुसार 'महाभाष्य' में 'मुखर' शब्द प्रयुक्त है।[3] कनिंघम को गया से प्राप्त एक मृत्तिका-मुहर पर मौर्यकालीन ब्राह्मी लिपि में लिखे 'मोखलिनम' लेख से[4] भी मौखरियों की प्राचीनता सिद्ध है। अल्तेकर को कोटा के समीप बड़वा (राजस्थान) से २९५ कृत संवत् (=२३८ ई०) के तीन लेख मिले थे जिनमें बल नामक व्यक्ति के तीन पुत्रों की चर्चा है जो मौखरि कहे गये हैं।[5] दक्षिणी भारत में 'मोकरी' जाति का उल्लेख कदम्बराज मयूरशर्मा (चतुर्थ शती ई०) के चन्द्रवल्ली-लेख में मिलता है।[6] इन तथ्यों से मौखरियों की प्राचीनता भी सिद्ध होती है और उसका भारत के विभिन्न भागों में फैला होना भी।

मौखरियों की उत्पत्ति

मौखरि वंश की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यन्त विवादग्रस्त है। अभिलेखों और साहित्य में 'मौखरि' और 'मुखर' शब्दों को एकार्थक मानकर इस वंश को कहीं मौखरि वंश कहा गया है (यथा 'सकल भुवन नमस्कृतो मौखरिवंशः'—'हर्षचरित'; 'मौखरिणां कुलम्'—अनन्तवर्मा का बराबर-अभिलेख) और कहीं मुखर वंश (यथा 'सोमसूर्यवंशाविव पुष्यभूतिमुखरवंशौ'—'हर्षचरित'; 'मुखराः क्षितीशाः'—हड़हा-अभिलेख)। कनिंघम[7] का विचार था कि मौखरियों का सम्बन्ध मौर्यों से था और मोरिय (=मौर्य) नाम मौखरीय नाम का प्राकृत रूप है। आर० एस० त्रिपाठी आदि ने

१. विस्तृत अध्ययन के लिए दे०, गोयल, श्रीराम, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, मेरठ, १९६९, पृ० १७-६२।

२. कीथ, ए० बी०, ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४२९।

३. त्रिपाठी, र० श०, हिस्ट्री ऑव कन्नौज, पृ० २९, टि० २।

४. फ्लीट, कॉर्पस, ३, भू०, पृ० १४।

५. गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह, जयपुर, १९८२, पृ० २८४-५।

६. सरकार, सलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० ४७३।

७. ए० एस० आई० आर०, १५, पृ० १६६।

इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया है।[१] हमारा भी यही मत है कि मौखरियों का मौर्यों से कोई सम्बन्ध नहीं था। परन्तु हमारा यह भी विचार है कि कभी-कभी प्राचीन लेखक मौखरियों को मौर्य मानने की गलती कर देते थे— शायद इसलिये क्योंकि 'मौखरीय' का प्राकृत रूप 'मोहरीय' मोरिय (=मौर्य) से मिलता-जुलता था। उदाहरणार्थ, शुआन-च्वांग ने ६३७ ई० के कुछ पहिले मगध पर शासन करने वाले पूर्णवर्मा नामक राजा को अशोक मौर्य का वंशज बताया है।[२] परन्तु पूर्णवर्मा के मौर्य होने की सम्भावना तो नहीं के बराबर लगती है जबकि उसके वर्मान्त नामधारी होने एवं उसके ठीक पहिले मगध पर मौखरियों के सुदीर्घ शासन से उसके मौखरि होने की सम्भावना सबल है।[३] यह सर्वथा सम्भव है कि शुआन-च्वांग को बताया गया हो कि पूर्णवर्मा मोहरीय (मौखरि) था परन्तु वह भूल से इस नाम को मोरिय (मौर्य) समझ बैठा हो। ऐसे ही एक और भ्रम का उदाहरण 'बप्पभट्टिसूरिचरित' और 'प्रभावकचरित' जैसे जैन ग्रन्थों से मिलता है जिनमें कहा गया है कि कन्नौज का राजा यशोवर्मा मौर्य वंश में उत्पन्न हुआ था (वर्य मौर्य महागोत्र सम्भूतस्य महाश्रुतेः श्री चन्द्रगुप्त भूपाल वंश मुक्तामणि श्रियः कान्यकुब्ज यशोवर्मभूपतेः)।[४] अब, यह तो असम्भव-सा ही है कि यशोवर्मा मौर्य वंशीय रहा हो, परन्तु उसका मौखरि होना कदापि अकल्पनीय नहीं है (दे०, आगे)। जायसवाल का मत था कि मौखरि राजा वैश्यजातीय थे।[५] परन्तु गुप्तकाल में मौखरि वंश को क्षत्रिय ही माना जाता था। बराबर-गुहालेख में अनन्तवर्मा को 'दीपः क्षत्रकुलस्य' कहा गया है[६] और नागार्जुनी-गुहालेख में उसके पितामह यज्ञवर्मा को 'क्षत्रस्य धाम्नः पदम्' बताया गया है।[७] इ० ए० पायर्स की मान्यता थी कि मौखरि चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे।[८] हमारे विचार से उनका निष्कर्ष सही होते हुए भी (दे०, आगे) उनका तर्क गलत है। उनके अनुसार बाण के कथन 'सोमसूर्यवंशाविव पुष्यभूति मुखर वंशौ' से संकेत मिलता है कि पुष्यभूति और मौखरि दोनों वंश क्षत्रिय थे और क्योंकि पायर्स के मतानुसार पुष्यभूति सूर्यवंशी क्षत्रिय थे इसलिये मौखरि चन्द्रवंशी रहे होंगे। लेकिन 'आर्यमञ्जु-श्रीमूलकल्प' तथा शुआन-च्वांग दोनों के साक्ष्य से स्पष्ट है कि पुष्यभूति वंश वैश्यजातीय था। अतः यह मानना अनिवार्य है कि उपर्युक्त पद में बाण ने पुष्यभूति और मुखर वंशों की सूर्य और चन्द्र वंशों से तुलना मात्र की है।

मौखरि मालवों की शाखा व चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे

मौखरियों की सही सामाजिक उत्पत्ति का ज्ञान हड़हा-लेख से होता है। इसके विश्लेषण से यह प्रश्नातीत रूप से सिद्ध किया जा सकता है कि मौखरि जन मालवों की एक शाखा थे जो स्वयं वैदिक मद्र जाति से उत्पन्न हुई थी।[९] इस लेख में बताया गया कि कन्नौज के मौखरि अश्वपति नामक राजा के उन सौ पुत्रों के वंशज थे जो अश्वपति को वैवस्वत के वरदान स्वरूप मिले थे। अब ठीक यही बात 'महाभारत' के सावित्र्युपाख्यान में मद्र-नरेश अश्वपति के लिये कही गई है। इसमें सावित्री यम को प्रसन्न करके उससे अन्य वरदानों के साथ वह वरदान भी प्राप्त करती है जिसके अनुसार उसके पिता अश्वपति को अपनी रानी मालवी के गर्भ से मालव नाम से विख्यात होने वाले सौ पुत्र प्राप्त हुए।[१०] इससे स्पष्ट है कि मालव और मौखरि दोनों ही मद्र जाति की शाखा थे। मद्रों, मालवों और मौखरियों का सम्बन्ध अन्य अनेक तथ्यों से संकेतित है। एक, सम्भवतः वैदिक मद्र जाति की शाखा होने के कारण मालव तथा मौखरि समान रूप से वैदिक यज्ञ धर्म में आस्था रखते थे। मालवों की यज्ञ धर्म में रुचि उनके नान्दसा एवं मन्दसौर आदि लेखों से

---

१. त्रिपाठी, आर० एस०, हिस्ट्री ऑव कन्नौज, पृ० २७-८।

२. बील, रिकार्ड्स्, २, पृ० २१८।

३. दे०, गोयल, एस० आर०, पी० आर० एच० सी०, ५, पृ० १६।

४. वही।

५. वही। इस मत के लिये कि मौखरियों के वंशज गया की मोहरी जाति के रूप में अभी तक मिलते हैं, दे०, अर्वामूथन, दि कावेरी, दि मौखरिज़ एण्ड दि संगम एज, पृ० ८०।

६. फ्लीट, कॉर्पस, ३, पृ० २२३।

७. वही, पृ० २२७।

८. पायर्स, दि मौखरिज़, पृ० ११-२।

९. विस्तृत विवेचन के लिए दे०, गोयल, पी० आर० एच० सी०, ५, पृ० १८ अ०।

१०. गोयल, वही।

प्रमाणित है तथा मौखरियों की बड़वा तथा हड़हा आदि लेखों से। दूसरे, मौखरियों द्वारा कृत-मालव संवत् का तीसरी शती ई० के पूर्वार्द्ध से ही प्रयोग किया जाना उनका मालवों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध का एक अतिरिक्त यद्यपि सूक्ष्म-सा संकेत है।

मौखरि राजा मद्र-नरेश अश्वपति को वैवस्वत[1] के वरदान से मिले सौ पुत्रों की सन्तान थे, इससे हरप्रसाद शास्त्री ने निष्कर्ष निकाला है कि मौखरि सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। परन्तु यह निष्कर्ष गलत है। सावित्री का पिता मद्रराज अश्वपति चन्द्रवंशी क्षत्रिय था, इसलिये मौखरि चन्द्रवंशी क्षत्रिय माने जाएंगे। अगर बिल्हण ने अपने 'विक्रमांकदेवचरित' में लिखा है कि प्रथम सोमेश्वर को शिव के वरदान से पुत्र प्राप्त हुए थे तो इससे वे पुत्र शिव के वंशज नहीं मान लिए जाएंगे। अतः मौखरियों को चन्द्रवंशी क्षत्रिय ही माना जा सकता है, सूर्यवंशी नहीं।

मगध के मौखरि

गुप्तों के ह्रासकाल में गंगा की घाटी में कन्नौज के अतिरिक्त मगध में भी मौखरियों की एक शाखा आविर्भूत हुई थी। इसका ज्ञान हमें बराबर और नागार्जुनी की पहाड़ियों से प्राप्त तीन तिथिविहीन अभिलेखों से होता है जिनमें यज्ञवर्मा, शार्दूलवर्मा और अनन्तवर्मा नामक राजाओं का उल्लेख है। अधिकांश विद्वान् इन लेखों को पाँचवीं-छठी ई० में रखते हैं। अगर यह मत सही है तो ये मौखरि राजा निश्चय ही गुप्त सम्राटों के अधीन रहे होंगे। लेकिन उनका कन्नौज के मौखरियों से क्या सम्बन्ध था, कहना असम्भव है। एन० आर० राय का मत है कि वे मगध में कन्नौज के मौखरियों के वायसराय थे और वहाँ उनकी नियुक्ति दामोदरगुप्त की पराजय के उपरान्त की गई थी।[2] त्रिपाठी ने कल्पना की है कि कन्नौज के मौखरि वस्तुतः मगध के मौखरियों की ही एक शाखा थे जो हरिवर्मा के नेतृत्व में पश्चिम की ओर बढ़ कर कन्नौज में बस गई थी।[3] परन्तु ये सुझाव पूर्णतः अनुमानाश्रित हैं।

उत्तर प्रदेश के मौखरि

मौखरियों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शाखा वह थी जिसका क्रीड़ास्थल उत्तर प्रदेश था और राजधानी कान्यकुब्ज। इसके शिलापट्ट लेख जौनपुर और हड़हा (या हराहा) से मिले हैं, मुहरें नालन्दा, सोहनाग तथा असीरगढ़ से और सिक्के भिटौरा (जिला फैजाबाद), रामनगर तथा अयोध्या आदि स्थलों से। कुछ समसामयिक राजवंशों के अभिलेखों में भी इन मौखरियों की चर्चा है। साहित्यिक साक्ष्य में बाण का 'हर्षचरित' तथा 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' नामक बौद्ध ग्रन्थ उपयोगी हैं। इस वंश की स्थापना हरिवर्मा नामक व्यक्ति ने की थी। उसके वे उत्तराधिकारी जिन्होंने छठी शती ई० में क्रमशः शासन किया आदित्यवर्मा, ईश्वरवर्मा, ईशानवर्मा, शर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा थे। अवन्तिवर्मा के दो पुत्र थे—'हर्षचरित' में उल्लिखित ग्रहवर्मा (जो हर्षवर्द्धन का बहनोई था) और एक नालन्दा-मुहर में उल्लिखित पुत्र (जिसका पूरा नाम अपठ्य हो गया है, केवल नाम का प्रथमाक्षर 'सु' शेष है)। इन राजाओं में निश्चित तिथि केवल ईशानवर्मा की ज्ञात है: हड़हा-अभिलेख के अनुसार वह ५५४ ई० में शासन कर रहा था। क्योंकि इस वंश के सभी महत्त्वपूर्ण अभिलेख (कुछ लघु मुहर-लेखों को छोड़कर जो नालन्दा और असीरगढ़ से मिली हैं) उत्तर प्रदेश से मिले हैं और सिक्के इस प्रदेश के भिटौरा (फैजाबाद), अयोध्या और रामनगर आदि स्थलों से, इससे यह सबल संकेत मिलता है कि मौखरियों का क्रीड़ास्थल आधुनिक उत्तर प्रदेश ही था। यह तथ्य कि उनकी राजधानी कान्यकुब्ज थी बाण के 'हर्षचरित' से ज्ञात होता है। बाण ने 'हर्षचरित' में एक स्थल पर राज्यश्री के दूत संवादक के मुख से कहलाया है ठीक जिस दिन प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु की अफवाह फैली, दुष्ट मालवराज ने ग्रहवर्मा को मार डाला और राज्यश्री को पकड़कर कान्यकुब्ज की जेल में डाल दिया। जैसा कि त्रिपाठी ने साग्रह कहा है अगर कान्यकुब्ज

---

१. हीरानन्द शास्त्री (इ० आई०, १४, पृ० १११) ने इस वैवस्वत को वैवस्वत मनु माना था। सेन (स० हि० आ० इ० ब०, पृ० २४७) के अनुसार मगध के मौखरि कन्नौज के मौखरियों के सामन्त थे।

२. त्रिपाठी द्वारा हि० क० के पृ० ३२ पर उद्धृत।

३. त्रिपाठी, वही।

ग्रहवर्मा के शत्रु की राजधानी होता तो इस स्थल पर बाण उसे दुष्ट 'मालवराज' न कहकर दुष्ट 'कान्यकुब्जाधीश्वर' कहता। दूसरे, 'हर्षचरित' में ही आगे कहा गया है कि कन्नौज को गुप्त नामक व्यक्ति ने 'अधिकृत' कर लिया था। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक कान्यकुब्ज पर किसी अन्य शक्ति का अधिकार था और वह शक्ति स्पष्टत: मौखरि ही हो सकते थे। तीसरे, शुआन-च्वांग के साक्ष्य से स्पष्ट है कि हर्ष द्वारा खोजी जाने के बाद राज्यश्री कन्नौज लौटी थी और वहाँ के मन्त्रियों ने हर्ष को राजा बनने के लिये आमन्त्रित किया था। अगर कन्नौज ग्रहवर्मा की राजधानी न रहा होता तो ये दोनों बातें असम्भव थीं।

हरिवर्मा

मौखरी वंश का संस्थापक हरिवर्मा नाम का व्यक्ति था। क्योंकि इस वंश के चौथे नरेश ईशानवर्मा की ज्ञात तिथि ५५४ ई० है, इसलिये यह अनुमान किया जा सकता है कि हरिवर्मा ने लगभग ५०० ई० में या इसके कुछ पहिले शासन किया होगा। परवर्ती-गुप्त वंश में उसका समकालीन नरेश कृष्णगुप्त था। त्रिपाठी का विचार है कि हरिवर्मा मगध के मौखरि वंश से सम्बद्ध रहा होगा। परन्तु दो मौखरि वंशों को बिना किसी निश्चायक प्रमाण के परस्पर सम्बन्धित मान लेना उचित नहीं होगा। हरिवर्मा को हड़हा-अभिलेख में 'ज्वालामुख' कहा गया है और शर्ववर्मा के असीरगढ़ मुहर-लेख में उसे 'महाराज' उपाधि दी गई है। असीरगढ़ मुहर-लेख में यह भी कहा गया है कि वह वर्णाश्रम व्यवस्था को बनाए रखने में चक्रधर के समान प्रवृत्त रहता था, उसका यश चारों समुद्रों के पार तक फैला हुआ था और उसने अनेक राजाओं को अपने शौर्य एवं अपने प्रति प्रेम से वशीभूत किया हुआ था। लेकिन किसी विशिष्ट तथ्य के अनुल्लिखित होने के कारण इस सामान्य प्रशंसा के आधार पर उसकी महत्ता के विषय में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। हाल ही में गुप्त सम्राट् बुधगुप्त के शासनकाल का गु० सं० १६७ (=४८६ ई०) का एक अभिलेख प्रकाश में आया है।[1] इसमें एक महाराज हरिवर्मा का उल्लेख हुआ है। उसका वंश बघेल-खण्ड प्रदेश पर पाँचवीं शती में शासन कर रहा था और गुप्त सम्राटों के आधिपत्य को मानता था। इस वंश का संस्थापक महाराज श्री सालण था। उसके वंश में महाराज गीतवर्मा हुआ जिसका उत्तराधिकारी महाराज विजयवर्मा था। विजयवर्मा की महादेवी शर्वस्वामिनी के गर्भ से महाराज हरिवर्मा उत्पन्न हुआ जिसने ४८६ ई० में यह दानपत्र जारी किया। बालचन्द्र जैन[2] ने इस सम्भावना पर बहुत बल दिया है कि यह हरिवर्मा हड़हा तथा जौनपुर लेखों तथा असीरगढ़ मुहर-लेख आदि से ज्ञात कन्नौज के मौखरि वंश का प्रथम नरेश हरिवर्मा था। क्योंकि मौखरि वंश के चौथे राजा ईशानवर्मा की ज्ञात तिथि ५५४ ई० है, इसलिये हरिवर्मा का समय पाँचवीं शती का अन्तिम चरण हो सकता है और अगर हरिवर्मा मौखरि को प्रस्तुत अभिलेख का हरिवर्मा मान लिया जाये तो कन्नौज के मौखरि वंश का इतिहास पाँचवीं शती के मध्य तक चला जाएगा। उस समय यह वंश गुप्तों के अधीन बघेलखण्ड पर शासन कर रहा होगा। बालचन्द्र जैन का सुझाव है कि महाराज गीतवर्मा स्कन्दगुप्त का समकालीन रहा होगा। लेकिन हमें इस लेख के हरिवर्मा को मौखरि हरिवर्मा मानने का कोई कारण नहीं लगता। इन दोनों व्यक्तियों में नाम के अति-रिक्त और कोई समानता नहीं है। उल्टे, इस लेख का हरिवर्मा बघेलखण्ड प्रदेश में कहीं शासन करता था जबकि इन मौखरियों का उदय कन्नौज प्रदेश में हुआ था। मौखरि लेखों में हरिवर्मा के पूर्वजों का अनुल्लेख भी संकेत देता है कि हरिवर्मा मौखरि के पूर्वज सामान्य व्यक्ति रहें होंगे जबकि प्रस्तुत लेख के हरिवर्मा के कम से कम तीन पूर्वजों ने 'महाराज' उपाधि धारण की थी। हमारे विचार से प्रस्तुत लेख के हरिवर्मा के वंश का उदय समुद्रगुप्त के काल में—शायद उसके द्वारा बघेलखण्ड-बुन्देलखण्ड का राजनीतिक पुनर्गठन किये जाने के समय—हुआ। हरिवर्मा की इस लेख में प्रदत्त तिथि (=४८६ ई०) को अगर उसके शासन की मध्यवर्ती तिथि माना जाए तो एक पीढ़ी का औसत शासन बीस वर्ष

---

१. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, १९८४, पृ० २९२-५।

२. जैन, बा० च०, जर्नल ऑव एपिग्रेफिकल सोसायटी, ४, पृ० ६२-४।

मानने पर गीतवर्मा का राज्यारोहण ४३५ ई० के लगभग पड़ेगा। उसके और उसके पूर्वज महाराज सालण के बीच पिता-पुत्र सम्बन्ध नहीं बताया गया है, इसलिये उनके मध्य एक-दो पीढ़ी का अन्तर जरूर रहा होगा। अतः सालण का समय चौथी शती के उत्तरार्द्ध के पूर्व नहीं पड़ेगा। दूसरी तरफ उसे समुद्रगुप्त के पूर्व भी रखना कठिन है क्योंकि समुद्रगुप्त के काल से ही अधीन राजाओं द्वारा 'महाराज' उपाधि धारण किये जाने का चलन प्रारम्भ हुआ। इसलिए सालण को ३५० और ४०० ई० के मध्य रखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त के द्वारा बुन्देलखण्ड-बघेलखण्ड के राजनीतिक पुनर्गठन के दौरान लघु आटविक राज्यों का अन्त होने पर जब समुद्रगुप्त की कृपा से उच्चकल्प, परिव्राजक और पाण्डव वंश अस्तित्व में आये, तभी महाराज सालण का यह वंश भी अस्तित्व में आया था। इस वंश का मौखरियों से सम्बन्ध मानना न सम्भव है और न उचित।

आदित्यवर्मा

हरिवर्मा का उत्तराधिकारी उसकी रानी भट्टारिका देवी जयस्वामिनी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र आदित्यवर्मा था। उसने ५२० ई के लगभग शासन किया होगा। हड़हा-अभिलेख में उसके द्वारा सम्पन्न किये गए यज्ञों का प्रशंसात्मक रूप से वर्णन किया गया है, इसलिए खण्डित जौनपुर-अभिलेख में जिस मौखरि नृपति को (जिसका नाम प्राप्तांश में अनुपलब्ध है) यज्ञ करके पुण्यलाभ करने का श्रेय दिया गया है, उसकी पहिचान आदित्यवर्मा से की जा सकती है। उसकी रानी का नाम हर्षगुप्ता था। उसे परवर्ती-गुप्त नरेश हर्षगुप्त की बहिन माना जाता है। स्पष्टतः आदित्यवर्मा के समय तक परवर्ती-गुप्त और मौखरि वंशों में अच्छे सम्बन्ध थे।

ईश्वरवर्मा

आदित्यवर्मा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र ईश्वरवर्मा था। वह भी अपने पिता के समान यज्ञधर्म में रुचि रखता था। सम्भवः जौनपुर-अभिलेख में उसकी ही उपलब्धियों का वर्णन है। अभाग्यवश इस लेख का काफी बड़ा अंश खण्डित हो गया है इसलिए इसमें चौथी पंक्ति के उपरान्त, जिसमें ईश्वरवर्मा की सामान्य प्रशंसा है, जिन उपलब्धियों का वर्णन है वे ईश्वरवर्मा द्वारा ही प्राप्त की गई थीं यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन हो जाता है। फ्लीट का कहना है कि ये सफलताएँ या तो ईश्वरवर्मा ने अर्जित की थीं अथवा उसके किसी उत्तराधिकारी ने। लेकिन त्रिपाठी ने इन सफलताओं को ईश्वरवर्मा पर ही आरोपित किया है[1] और हमें उनका यह विश्वास सही प्रतीत होता है। जौनपुर-अभिलेख में प्रदत्त तथ्यों के विश्लेषण से इस मत की सत्यता स्पष्ट हो उठती है।[2] जौनपुर-अभिलेख की पाँचवीं पंक्ति के अनुसार उस राजा ने क्रूरजनों के आगमन के कारण लोकानन्द में पहुँची बाधा को कृपा और अनुरागवश दूर किया (कृपानुरागशमितक्रूरागमोपद्रवैर्लोकानन्दकरैर्गुणैः) और छठी पंक्ति में धारा की ओर से आने वाली चिंगारी (धारामार्ग्गविनिर्गताग्निकणिका) का उल्लेख है।[3] सातवीं पंक्ति में कहा गया है कि उसके भय से आन्ध्रपति विन्ध्याचल के रन्ध्र-प्रतिरन्ध्र में घूमने के लिये विवश हुआ (विन्ध्याद्रेः प्रतिरन्ध्रमन्ध्रपतिना शंकापरेणासितम्)। इन पंक्ति में ही आए वाक्यांश 'रैवतक पर्वत चला गया' (यातो रैवतकाचलम्) का सम्बन्ध भी आन्ध्रपति से ही होना चाहिये क्योंकि ८वीं पंक्ति में पुनः आन्ध्रसेना का वर्णन मिलता है (वारणानां घटासु व्याप्तेपूत्खातखद्युतिखड्ग चित भुजेष्वन्ध्रसेनाभटेषु)। नवीं और दसवीं पंक्तियों में किसी पर्वतीय

१. त्रिपाठी, हि० क०, पृ० ३७ अ०।

२. गोयल, एस० आर०, 'जौनपुर इन्स्क्रिप्शन ऑव ईश्वरवर्मा', जर्नल ऑव एपिग्रेफिकल सोसायटी, ५, पृ० ८९-९२।

३. बसाक ने यहाँ 'धारा' शब्द को 'तलवार की धार' के अर्थ में लिया है (हि० नॉ० ई० इ०, पृ० १०९), फ्लीट ने धारा नगर के अर्थ में (कॉर्पस, ३, पृ० २३०), विमलचन्द्र पाण्डेय ने (पी० आई० एच० सी०, १९७३, भाग १, पृ० ३३९) 'घोड़ों की टाप से निकली चिंगारी' के अर्थ में तथा आर० सी० मजूमदार ने (कॉ० हि० इ०, ३, पृ० १८२, टि० १३) 'रथ के पहियों (धारा) से निकली चिंगारी' के अर्थ में।

अभियान का उल्लेख है क्योंकि उसके प्रसंग में गिरिसरिताओं, 'शीतपयस' और हिमालय (प्रालेयाद्रि) की चर्चा हुई है। क्योंकि यह वर्णन निश्चयत: छठी शती ई० के पूर्वार्द्ध में लड़े गये युद्धों का है, इसलिये इसमें उल्लिखित क्रूरजनों की पहिचान अनायास हूणों से की जा सकती है। और क्योंकि उत्तर भारत पर यह विपत्ति ५३२ ई० (यशोधर्मा के मन्दसौर-अभिलेख की तिथि) से पहले आई थी इसलिये ये युद्ध ईशानवर्मा (ज्ञात तिथि ५५४ ई०) के शासनकाल में नहीं उसके पिता ईश्वरवर्मा के काल में लड़े गए होंगे। इस निष्कर्ष का समर्थन ईशानवर्मा के हड़हा-अभिलेख से भी होता है जिसमें कहा गया है कि ईशानवर्मा ने अपने राज्यारोहण के पूर्व अर्थात् ईश्वरवर्मा के जीवनकाल में आन्ध्र-नरेश को पराजित किया था। जहाँ तक ईश्वरवर्मा के उन शत्रुओं का सम्बन्ध है जो हिमालय प्रदेश में निवास करते थे, उनकी पहिचान हमने प्रथम जीवितगुप्त के शासनकाल के प्रसंग में नेपाल के नृपतियों के साथ की है। इन सब शत्रुओं के विरुद्ध ईश्वरवर्मा और प्रथम जीवितगुप्त ने यशोधर्मा के नेतृत्व में संघर्ष किया होगा (दे०, आगे)। असीरगढ़-मुहर में आदित्यवर्मा के समान ईश्वरवर्मा को भी 'महाराज' कहा गया है। मुकर्जी का विश्वास है कि ईश्वरवर्मा अपने वंश का प्रथम नरेश था जिसने साम्राज्यिक प्रतिष्ठा का उपभोग किया।[१] उनका यह विश्वास इस पूर्व-धारणा पर आधृत है कि ईश्वरवर्मा ने विन्ध्य, धारा और रैवतक तक विजय प्राप्त की थी। परन्तु ईश्वरवर्मा के काल में लड़ा गया आन्ध्र-युद्ध रक्षात्मक था, आक्रमक नहीं।[२] आन्ध्रों से उसका युद्ध विन्ध्य के पास होने से स्पष्ट है कि आन्ध्रसेना विन्ध्य क्षेत्र तक आ गई थी। इसलिये यह मान्यता कि इसके कारण मौखरियों का प्रभाव विन्ध्य तक विस्तृत हो गया था, सम्भवत: सत्य नहीं है।

ईशानवर्मा

ईश्वरवर्मा का उत्तराधिकारी उसकी रानी भट्टारिका देवी उपगुप्ता के गर्भ से उत्पन्न पुत्र ईशानवर्मा (ज्ञात तिथि ५५४ ई०) था। उपगुप्ता के नाम से स्पष्ट है कि वह कोई गुप्तवंशोदिता राजकुमारी थी। हो सकता है वह गुप्त सम्राट् विष्णुगुप्त की, जिसे 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' में उकार (=उपेन्द्र=विष्णु) कहा गया है, बहिन रही हो। लेकिन यह भी सम्भव है कि वह परवर्ती-गुप्त वंश में उत्पन्न हुई हो। ईशानवर्मा अपने वंश का एक प्रतापी नरेश था। हड़हा-अभिलेख के अनुसार उसने कलिरूपी मारुत के थपेड़ों के परिणामस्वरूप रसातल की ओर जा रही पृथिवी रूपी नौका को अपने सैकड़ों गुणों के बन्धन द्वारा सब ओर से बाँध कर बलपूर्वक रोक दिया था। त्रिपाठी के अनुसार इस श्लोक से स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त की तरह ईशानवर्मा ने भी अपने वंश की प्रतिष्ठा को पुन: प्रतिष्ठापित किया था। इस अभिलेख में उसके आन्ध्र, शूलिक और गौड आदि उन शत्रुओं का भी उल्लेख है जिनको उसने पराजित किया था। अब, आन्ध्रों की मौखरियों द्वारा पराजय का उल्लेख ईश्वरवर्मा के जौनपुर-अभिलेख में भी हुआ है। त्रिपाठी का कहना है कि ईशानवर्मा का आन्ध्र-शत्रु वही रहा होगा जिसे ईश्वरवर्मा ने पराजित किया था।[३] उनका यह विचार सही है, परन्तु इसके साथ ही हमारा यह भी सुझाव है कि आन्ध्रों के विरुद्ध लड़ा गया वह युद्ध जिसकी चर्चा जौनपुर-अभिलेख में हुई है उस युद्ध से अभिन्न था जिसका उल्लेख हड़हा-अभिलेख में हुआ है। इस तथ्य की ओर विद्वानों का ध्यान अभी तक भली-भाँति नहीं गया है कि हड़हा-अभिलेख के अनुसार वह जयशील अर्थात् ईशान-वर्मा आन्ध्रपति को जीतकर (जित्वा), शूलिकों को 'परास्त करके' (भङ्क्त्वा) तथा गौडों को समुद्राश्रयी रहने को बाध्य 'करके' (कृत्वा) 'सिंहासन पर बैठा' (सिंहासनं यो जिती)।[४] अर्थात् उसने ये युद्ध अपने पिता ईश्वरवर्मा के जीवनकाल में युवराज के रूप में लड़े थे। इससे यह तथ्य स्वयं उद्भासित हो उठता है कि जौनपुर-अभिलेख में आन्ध्र-विजय का श्रेय ईश्वरवर्मा को उसके उस समय शासन करने के कारण दे दिया गया है और हड़हा-अभिलेख में ईशानवर्मा को उसके द्वारा युवराज रूप में यह युद्ध लड़े जाने के कारण। ईशानवर्मा द्वारा पराजित आन्ध्र-नरेश की पहिचान प्राय:

१. मुकर्जी, हर्ष, पृ० ५४।
२. यही मत त्रिपाठी का है (हि० क०, पृ० ३८)।
३. त्रिपाठी, हि० क०, पृ० ३९।

३. त्रिपाठी, वही, पृ० ४१।
४. मजूमदार (कॉ० हि० इ०, ३, पृ० १८४, टि० २१) इससे असहमत हैं।

विष्णुकुण्डी नरेश माधववर्मा जनाश्रय से की जाती है[1] जिसने 'पूर्वी प्रदेशों को जीतने की लालसा से गोदावरी नदी पार की थी'।[2] परन्तु अब यह मत गलत सिद्ध हो गया है क्योंकि दो दशक पूर्व उपलब्ध इन्द्रपालनगर (प्रथम)-दानपत्र से यह स्पष्ट हो गया है कि माधववर्मा जनाश्रय की मृत्यु ५१८ ई० के आस-पास ही हो चुकी थी।[3] शूलिकों का अभिज्ञान इससे कहीं अधिक विवादपूर्ण विषय है। अर्वामूथन ने उनको आर्यावर्त के उत्तर-पश्चिम में रहने वाले मूलक माना है, हेरास ने चोल, एस० के० शास्त्री ने आन्ध्रों का पड़ोसी, हीरानन्द शास्त्री ने कलिंग, विदर्भ और चेदि के समीप दक्षिण-पूर्वी भारत का निवासी, रायचौधुरी ने चालुक्य और बी० सी० मजूमदार ने दण्डभुक्ति प्रदेश का निवासी[4]। वी० एस० पाठक उन्हें उड़ीसा के शुल्कि मानते हैं। वस्तुतः, जैसा कि र० च० मजूमदार ने कहा है, ज्ञान की वर्तमान अवस्था में शूलिकों की पहिचान असम्भव सी है[5]। जहाँ तक गौडों का प्रश्न है उनका अभिज्ञान भी सुनिश्चित नहीं है। परन्तु यह सर्वथा सम्भव है कि ईशानवर्मा द्वारा पराजित गौड-नरेश उस गोपचन्द्र से अभिन्न रहा हो जिसने छठी शती ई० के प्रारम्भिक दशकों में किसी समय वंग-समतट-दण्डभुक्ति प्रदेश में एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। जैसा कि हम पीछे कह आये हैं, युवराज ईशानवर्मा ने गौडों के विरुद्ध संघर्ष सम्भवतः प्रथम जीवितगुप्त के साथ मिलकर किया था। लेकिन प्रथम जीवितगुप्त और ईश्वरवर्मा के युवराज ईशानवर्मा ने ये युद्ध स्वतन्त्र रूप से नहीं लड़े थे। स्मरणीय है कि प्रथम जीवितगुप्त और ईश्वरवर्मा दोनों का समय ५२०-४० ई० के मध्य पड़ेगा। ठीक यही समय मालवा के औलिकर सम्राट् यशोधर्मा (ज्ञात तिथि ५३२ ई०) का है जिसे उत्तर में तुहिन शिखर (=हिमालय) ...कर लौहित्य नदी (ब्रह्मपुत्र, कामरूप) और 'ताल वनों से कारण अभेद्य हुई उपत्यका वाले महेन्द्र पर्वत तक' ... प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है। स्पष्टतः उसने बंगाल पर भी विजय प्राप्त की होगी। इस तथ्य से स्पष्ट है कि ५२०-४० के मध्य प्रथम जीवितगुप्त, मौखरि युवराज ईशानवर्मा और पश्चिमी मालवा का सम्राट् यशोधर्मा— ये तीनों हिमालय प्रदेश व बंगाल तक विजय प्राप्त करने का दावा करते हैं। इनमें ईशानवर्मा और प्रथम जीवितगुप्त स्वतन्त्र तक नहीं थे जबकि यशोधर्मा 'सम्राट्' और 'राजाधिराज' था। इसलिए यह मानना कदापि अनुचित नहीं कहा जा सकता कि प्रथम जीवितगुप्त व मौखरि ईशानवर्मा ने गौड और हिमालय-प्रदेश पर विजयें स्वतन्त्र रूप से प्राप्त नहीं की थीं; वे वहाँ यशोधर्मा के विजय-अभियान के समय उसके अधीन सहायक राजाओं के रूप में गए थे।

औलिकर साम्राज्य का अन्त भी ईशानवर्मा के शासन-काल में हुआ। औलिकारों की अवनति का लाभ उठाकर मौखरियों ने साम्राज्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयास किया और ईशानवर्मा ने ५५४ ई० के आसपास कभी 'महाराजाधिराज' उपाधि धारण कर ली। ५५४ ई० के हड़हा-लेख में इस उपाधि का अनुल्लेख शायद इस अभिलेख के पद्यमय होने के कारण है। सम्भवतः प्रथम जीवितगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त ने इस संघर्ष में अपने स्वामी औलिकर सम्राट् का साथ दिया। बाद में आदित्यसेन के अफसड़-लेख के रचयिता ने इसका वर्णन इस प्रकार किया मानो यह युद्ध कुमारगुप्त ने अपने आप स्वतन्त्र रूप से लड़ा था। इस लेख में कहा गया है कि कुमारगुप्त ने ईशानवर्मा की, जो राजाओं में चन्द्रमा के समान था, महान् सैन्य को, जो लक्ष्मी (विजयलक्ष्मी) सम्प्राप्ति का हेतु थी, मथ डाला

१. रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० ६०२; सिनहा, पूर्वो०, पृ० १६४। त्रिपाठी (हि० क०, पृ० ४०) इस मत से सहमत प्रतीत होते हैं।

२. दुब्रील, ए० हि० ड०, पृ० ९२।

३. दे०, गोयल, गुप्त एवं समकालीन राजवंश, अध्याय १९।

४. अर्वामूथन, पूर्वो०, पृ० ९८; हेरास, जे० ए० एच० आर० एस०, १, पृ० १३०-३; शास्त्री, एस० के०, जे० ए० एच० आर० एस०, २, पृ० १८०; शास्त्री, हीरानन्द, इ० आई०, १४, पृ० ११० अ०; रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० ६०२-३; मजूमदार, बी० सी०, उड़ीसा इन दि मेकिंग, पृ० १०५।

५. वा० गु० ए०, पृ० २०।

था। इस वर्णन के आधार पर मजूमदार, त्रिपाठी तथा सिनहा प्रभृति विद्वानों का विश्वास है कि इस युद्ध में कुमारगुप्त विजयी हुआ था।[१] परन्तु हमारे विचार से मुकर्जी और राय का यह मत अधिक सही है कि इस संघर्ष में विजयश्री मौखरियों को उपलब्ध हुई थी।[२] छठी शती ई० के मध्य पश्चिमी मालवा के औलिकर साम्राज्य का अन्त हो जाने से यह बात अतिरिक्त रूप से प्रमाणित होती है। इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि अफसड़-अभिलेख में इस युद्ध का वर्णन करते समय कुमारगुप्त के व्यक्तिगत शौर्य से भी अधिक बल ईशानवर्मा की प्रतिष्ठा और मौखरि सेना की शक्ति पर दिया गया है। इतना ही नहीं इस सेना को लक्ष्मी अर्थात् विजयलक्ष्मी का हेतु भी कहा गया है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि इस युद्ध में विजय ईशानवर्मा को मिली थी, कुमारगुप्त के पक्ष को नहीं। यह तर्क कि अगर इस युद्ध में कुमारगुप्त के पक्ष की पराजय हुई होती तो इसकी चर्चा स्वयं परवर्ती-गुप्त लेख में नहीं होती, सही नहीं है। प्राचीन काल में कभी-कभी पराजित पक्ष भी अपने अभिलेखों में अपनी असफलता का उल्लेख कर देता था। उदाहरणार्थ, कामरूप-नरेश भास्करवर्मा के दूबी-दानशासन में कहा गया है कि किसी गौड नरेश (सम्भवतः शशांक) ने उसे और उसके भाई सुप्रतिष्ठितवर्मा को युद्ध में परास्त करके बन्दी बना लिया था।[३] यह भी तर्क रखा गया है कि किसी भी मौखरि अभिलेख में ईशानवर्मा द्वारा कुमारगुप्त को पराजित करने का उल्लेख नहीं हुआ है। परन्तु ऐसा कोई मौखरि अभिलेख उपलब्ध ही नहीं है जिसमें ईशानवर्मा की विजय का उल्लेख अपेक्षित माना जा सके। यह युद्ध सभी विद्वानों के अनुसार हड़हा-अभिलेख (५५४ ई०) के उपरान्त लड़ा गया था। अब, हड़हा-अभिलेख के बाद में लिखे गए मौखरि अभिलेखों के रूप में हमारे पास केवल असीरगढ़, नालन्दा आदि से प्राप्त कुछ मुहरें हैं। लेकिन ऐसे मुहर-अभिलेखों में केवल वंशावली दी जाती थी, उनमें उल्लिखित राजाओं की सामारिक सफलताएँ नहीं गिनाई जाती थीं। फिर भी परोक्ष रूप से ये लेख हमारी मान्यता का समर्थन करते हैं। ध्यान देने की बात है इन अभिलेखों में ईशानवर्मा और उसके सब उत्तराधिकारियों को 'महाराजाधिराज' कहा गया है जबकि यह साम्राज्यिक उपाधि परवर्ती-गुप्त अभिलेखों में सर्वप्रथम आदित्यसेन के लिए प्रयुक्त हुई है। सिनहा ने एक स्थल पर कुमारगुप्त के लिए साम्राज्यिक उपाधि का अप्रयुक्त होना या न होना महत्त्वहीन बात मानी है[४] परन्तु अन्यत्र उन्होंने अपनी मान्यता का स्वयं ही खण्डन कर दिया है।[५]

शर्ववर्मा

ईशानवर्मा के बाद उसका पुत्र शर्ववर्मा मौखरि साम्राज्य का अधिपति बना। कुछ इतिहासकारों ने ईशानवर्मा के बाद शर्ववर्मा और सूर्यवर्मा में उत्तराधिकार-संघर्ष की सम्भावना व्यक्त की है। सूर्यवर्मा का उल्लेख हड़हा-अभिलेख में ईशानवर्मा के पुत्र के रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त दक्षिण-कोसल के पाण्डुवंशी राजा महाशिवगुप्त (बालार्जुन) के सिरपुर (रामपुर जिला, मध्यप्रदेश) अभिलेख में 'श्री सूर्यवर्मा नृप' का उल्लेख आया है। उसे उस 'वर्मा' कुल में उत्पन्न बताया गया है जिसका आधिपत्य मगध पर था (निष्पंके मगधाधिपत्यमहतां जातः कुले वर्मणाम्—श्लोक १६)। सिरपुर-लेख के इस सूर्यवर्मा की पुत्री वासटा का विवाह हर्षगुप्त से हुआ था (श्लोक १५) जो सिरपुर-लेख के महाशिवगुप्त (बालार्जुन) का पिता था। इस सूर्यवर्मा की पहिचान हड़हा-अभिलेख के सूर्यवर्मा से प्रायः की जाती है। सूर्यवर्मा के अपने स्वतन्त्र अभिलेखों और सिक्कों की अनुपलब्धि एवं मौखरि वंशावली में उसके नाम की अप्राप्ति इस बात का प्रमाण हैं कि उसने स्वतन्त्र शासक के रूप में राज्य नहीं किया। सम्भव है कि अपने पिता ईशानवर्मा

---

१. मजूमदार, क्ला० ए०, पृ० ७२; त्रिपाठी, हि० क०, पृ० ४३; सिनहा, डे० कि० म०, पृ० १६८–६९।

२. मुकर्जी, हर्ष, पृ० ५४–५; राय (डे० कि० म० के पृ० १६८ पर उद्धृत)।

३. इ० आई०, ३०, पृ० २८८ अ०।

४. सिनहा, पूर्वो०, पृ० १६९।

५. वही, पृ० १५२।

एवं भाई शर्ववर्मा के राजत्व काल में वह मगध और आस-पास के क्षेत्र का प्रान्तीय शासक रहा हो। काँगड़ा जिले के कुल्लू क्षेत्र के निर्मण्ड गाँव से सातवीं शताब्दी की लिपि में एक दानपत्र मिला है[1] जिसे महासामन्त महाराज समुद्रसेन ने जारी किया था। इस अभिलेख का उद्देश्य कपालेश्वर (शिव) मन्दिर को दान दिए जाने का उल्लेख करना है। दान दी गई भूमि में उस क्षेत्र के भी शामिल किये जाने की चर्चा है जिसे कपालेश्वर मन्दिर के मूल निर्माता महाराज शर्ववर्मा ने दान दिया था (कपालेश्वरदेवस्य पूर्व्वप्रतिष्ठायां महाराज शर्व्ववर्म्मेण (शर्व्ववर्म्मणा) भूमि दत्ता...)। इस शर्ववर्मा की पहिचान मौखरि शर्ववर्मा से अनायास की जा सकती है। यह सही है कि शर्ववर्मा मौखरि को नालन्दा-मुहर में 'महाराजाधिराज' बताया गया है जबकि इस लेख का शर्ववर्मा मात्र 'महाराज' कहा गया है। परन्तु महाराज समुद्रसेन मौखरि शासक नहीं था और यह लेख भी मौखरियों का राजकीय लेख नहीं है। अतः इसमें ऐसी भूल सम्भावित है। दूसरे, शर्ववर्मा की एक मुहर चमोली से मिलने से उसका इस दिशा में अधिकार सिद्ध-सा लगता है। तीसरे, कई बार सार्वभौम उपाधि धारण करने वाले राजाओं के लिए 'महाराज' उपाधि का प्रयोग मिलता है, जैसे वैन्यगुप्त के लिए गुणैघर-दानपत्र में। इस शर्ववर्मा की पहिचान में एक आपत्ति यह भी उठाई जाती है कि काँगड़ा और कान्यकुब्ज के [illegible] थानेसर का पुष्यभूति राज्य था जिसे पार किये बिना शर्ववर्मा के लिए समुद्रसेन के पूर्वजों पर अधिकार करना स[illegible]ीं था। परन्तु हमारे विचार से प्रभाकरवर्द्धन के पूर्वज, और कुछ समय के लिए स्वयं प्रभाकरवर्द्धन, मौखरियों के अधीन थे। बाण द्वारा इसका अनुल्लेख उचित ही था क्योंकि एक तो उस समय दोनों वंश विवाह-सूत्र में बँधे रहे थे और दूसरे वह प्रभाकरवर्द्धन से पूर्व का इतिहास लिख भी नहीं रहा था। परवर्ती-गुप्त नरेश आदित्यसेन के अफसड़-लेख में उसके पूर्वज दामोदर की किसी 'मौखरि' से संघर्ष की चर्चा आई है। उसकी पहिचान भी प्रायः शर्ववर्मा से की ज[illegible]। यह तर्क रखा जाता है कि क्योंकि दामोदरगुप्त कुमारगुप्त का पुत्र था जिसे मौखरि ईशानवर्मा ने परास[illegible] था इसलिये शर्ववर्मा, जो ईशानवर्मा का पुत्र था, अफसड़-अभिलेख का 'मौखरि' हो सकता है। यह भी कहा जाता है कि शर्ववर्मा की असीरगढ़-मुहर में उसका नाम 'शर्ववर्मा मौखरि' है और वह अकेला राजा है जिसके नाम के साथ अभिलेखों में 'मौखरि' शब्द जुड़ा है। लेकिन चट्टोपाध्याय ने इस 'मौखरि' की पहिचान अवन्तिवर्मा से की है,[2] सालेटोर ने ईशानवर्मा के पुत्र सूर्यवर्मा से[3] और सिनहा तथा अर्वामूथन ने ईशानवर्मा के पुत्र और उत्तराधिकारी शर्ववर्मा से।[4] हमारे विचार से ये तीनों ही मत गलत हैं। अवन्तिवर्मा दामोदरगुप्त का नहीं महासेनगुप्त का समकालीन था। उसने सातवीं शती के प्रारम्भ तक शासन किया, इसलिये उसे छठी शती के तृतीय पाद में नहीं रखा जा सकता। सूर्यवर्मा कभी मौखरि सिंहासन पर बैठा था, यही अप्रमाणित है। अर्वामूथन का यह तर्क भी कि असीरग[illegible] में 'मौखरि' उपाधि केवल शर्ववर्मा के साथ संयुक्त है,[5] निस्सार है क्योंकि अब यह स्पष्ट हो गया है कि मौ[illegible]हरों में 'मौखरि' शब्द हर मुहर में उल्लिखित अन्तिम राजा के नाम के साथ प्रयुक्त हुआ है। हमारे विचार से दामोदरगुप्त का 'मौखरि' शत्रु स्वयं ईशानवर्मा था। स्मरणीय है कि अफसड़-लेख के लेखक ने ईशानवर्मा और कुमारगुप्त के संघर्ष (श्लोक ७) का वर्णन करने के बाद दामोदरगुप्त का वर्णन किया है। इसलिये यह सर्वथा सम्भव है कि दामोदरगुप्त का शत्रु स्वयं ईशानवर्मा रहा हो और इसलिये लेख के रचयिता ने उसका पुनः उल्लेख न करके उसे मात्र 'मौखरि' कह दिया हो—उसी प्रकार जैसे हम लोग हिन्दी व अंग्रेजी में किसी सम्राट् का प्रथम वाक्य में नाम देने के बाद अगले वाक्य में उसका उल्लेख केवल उसके वंशनाम से कर देते हैं। और अगर यह सुझाव सही है तो इससे एक और रोचक सम्भावना उत्पन्न होती है और वह यह कि दामोदरगुप्त उसी युद्ध में मारा गया था जिसमें कुमारगुप्त परास्त हुआ था। यह सत्य है कि इस लेख में दामोदरगुप्त का 'नृप' उपाधि से उल्लेख है और उसके द्वारा अग्रहार दान दिये जाने का वर्णन है। परन्तु जैसाकि सिनहा ने एक अन्य सन्दर्भ में कहा है कि उस युग में

---

१. फ्लीट, कॉर्पस, ३।
२. पूर्वो०।
३. लाइफ इन दि गुप्त एज, पृ० ५३।
४. सिनहा, डे० कि० म०, पृ० १७३-७४; अर्वामूथन, पूर्वो०, पृ० ९२।
५. अर्वामूथन, पूर्वो०।

'नृप' उपाधि बड़ी मामूली बात थी। अफसड़-लेख में परवर्ती-गुप्त वंशीय कृष्णगुप्त तथा सिरपुर-प्रशस्ति में ईशानवर्मा का पुत्र राजकुमार सूर्यवर्मा 'नृप' कहे गये हैं। इसी प्रकार तत्कालीन सामन्ती व्यवस्था में अग्रहार देने का गौरव राजकुमार और सामन्त लोग भी पाते थे। इसलिए वस्तुतः अफसड़-लेख में दामोदरगुप्त के विषय में ऐसी कोई बात नहीं कही गई है जिससे यह प्रश्नातीत रूप से प्रमाणित हो कि उसने कुमारगुप्त के उपरान्त शासन किया ही था। उल्टे यह मानने पर कि दामोदरगुप्त की मृत्यु ईशानवर्मा-कुमारगुप्त वाले संघर्ष में ही हो गई थी, कुमारगुप्त का पुत्रवध-शोक में प्रयाग में आत्मदाह करना व्याख्येय हो जाता है। उपर्युक्त विवेचन के प्रकाश में परवर्ती-गुप्तों और मौखरियों में 'सुदीर्घकाल' तक चलने वाले संघर्ष की अवधारणा धराशायी हो जाती है क्योंकि कुमारगुप्त ने मौखरियों से युद्ध सम्भवतः अपने स्वामी औलिकर सम्राट् के अधीन राजा के रूप से लड़ा था स्वतन्त्र रूप से नहीं, और दामोदरगुप्त भी उसी युद्ध में मारा गया था अलग से नहीं। हमारे विचार से वस्तुतः छठी शती में परवर्ती-गुप्त राजा मौखरियों के न समकक्ष थे और न प्रतिस्पर्द्धी।

शर्ववर्मा का मगध पर आधिपत्य उसकी नालन्दा-मुहर और परवर्ती-गुप्त नरेश द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क-अभिलेख से भी सिद्ध है। इस लेख में उस वारुणिका (आधुनिक देवबरनार्क) नामक ग्राम के दान का अनुमोदन किया गया है जिसे उसके पूर्व परमेश्वर शर्ववर्मा और परमेश्वर अवन्तिवर्मा ने दिया था। 'परमेश्वर' उपाधियुक्त ये शर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा निश्चय ही इस नामों के मौखरि सम्राट् थे। मध्य प्रदेश में शर्ववर्मा का प्रभाव मात्र उसकी असीरगढ़ (निमाड़ जिला) मुहर के आधार पर स्वीकार करना कठिन है। लेकिन इस सम्भावना को विस्मृत भी नहीं किया जा सकता। कालञ्जर (बुन्देलखण्ड) क्षेत्र पर उसके प्रत्यक्ष अधिकार या प्रभुत्व का प्रमाण भोजदेव का विक्रम संवत् ८९३ का बाड़ा-दानपत्र है,[1] जिसमें परमेश्वर श्री शर्ववर्मा द्वारा दिये गये दान की चर्चा है।

शर्ववर्मा के सिक्के भी उपलब्ध हैं, परन्तु उनकी तिथियाँ विवादग्रस्त हैं।

अवन्तिवर्मा, ग्रहवर्मा और सुव्र

पुरानी पीढ़ी के कुछ इतिहासकारों ने प्रतिपादित किया था कि शर्ववर्मा का उत्तराधिकारी सुस्थितवर्मा था जिसका उल्लेख परिवर्ती-गुप्त राजा आदित्यसेन के अफसड़-अभिलेख में आया है। प्रमाणों के अभाव में और किंचित् भ्रमवश कुछ पुराने इतिहासकारों ने इस सुस्थितवर्मा को मौखरि वंश का मानकर परवर्ती-गुप्त और मौखरि वंशों में तीन पीढ़ी तक चलने वाले युद्ध की अवधारणा रखी थी। परन्तु अब यह निश्चित हो गया है कि महासेनगुप्त द्वारा पराजित सुस्थितवर्मा मौखरि नहीं था। अफसड़-अभिलेख में उसके ऊपर प्राप्त विजय का यशगान लौहित्य (असम की ब्रह्मपुत्र नदी) के तट पर सिद्ध-मिथुनों द्वारा किये जाने का उल्लेख है और मौखरियों का राज्य-विस्तार कभी भी असम तक नहीं रहा। वस्तुतः सुस्थितवर्मा हर्ष के समकालीन नरेश भास्करवर्मा का पिता था। मौखरि वंश में शर्ववर्मा के बाद उसका पुत्र अवन्तिवर्मा कन्नौज साम्राज्य का अधिपति बना। 'हर्षचरित' में मौखरि वंश की प्रशंसा 'सकलभुवननमस्कृतो मौखरि वंशः' कहकर की गई है और अवन्तिवर्मा को इस वंश का तिलक बताया गया है। अवन्तिवर्मा ने मगध क्षेत्र में पिता द्वारा दिये गये ग्रामदान को स्थिर रखा, इसकी चर्चा द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क-अभिलेख में मिलती है। इससे प्रतीत होता है कि उसके समय में पैतृक साम्राज्य यथावत् रहा। एक पाण्डुवंशी-अभिलेख से पता चलता है कि अवन्तिवर्मा का चाचा सूर्यवर्मा मगध के प्रशासन से सम्बन्धित था और उसकी उपाधि 'नृप' थी। परन्तु सूर्यवर्मा के पुत्र भास्करवर्मा को कोई उपाधि नहीं दी गई है और वह अपने माँ-बाप की पुण्याभिवृद्धि के लिये अपनी

१. इ० आई०, १९, पृ० १५ आगे।

बहिन के लड़के पाण्डुवंशी शिवगुप्त बालार्जुन से एक ग्रामदान की अनुमति प्राप्त करता है।[१] हो सकता है अवन्तिवर्मा ने मगध का प्रशासन अपने चचेरे भाई के हाथ से लेकर अपने दूसरे पुत्र को दे दिया हो जिसका अधूरा नाम 'सु' एक नालन्दा-मुहर से प्राप्त होता है।[२] 'मुद्राराक्षस' नाटक की कुछ पाण्डुलिपियों के भरतवाक्य में अवन्तिवर्मा का नाम आता है जिसमें उसे 'म्लेच्छैः उद्वेज्यमाना' कहा गया है। जिन म्लेच्छों से उसने पृथ्वी की रक्षा की वे हूण रहे हो सकते हैं।[३] उसके कुछ सिक्के भी उपलब्ध हैं।

अवन्तिवर्मा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र ग्रहवर्मा था। वह अपने पिता से कम गुण वाला नहीं था (पितुरन्यूनोगुणैः)। प्रभाकरवर्द्धन की पुत्री राज्यश्री से उसके विवाह का समय लगभग ६०४ ई० है। इस विवाह के समय अवन्तिवर्मा सम्भवतः जीवित नहीं था क्योंकि 'हर्षचरित' में राज्यश्री से विवाह का प्रस्ताव ग्रहवर्मा भिजवाता है और बारात की अगवानी के वर्णन में भी केवल ग्रहवर्मा का उल्लेख है। इस तथ्य की ओर सर्वप्रथम हमने ही ध्यान दिलाया है कि आयु की दृष्टि से यह विवाह निश्चयतः बेमेल था। 'हर्षचरित' से स्पष्ट है कि उस समय राज्यश्री लगभग चौदह वर्ष की थी। इसके विपरीत ग्रहवर्मा को बाण ने बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र का बालसखा बताया है[४] और दिवाकरमित्र को अधेड़ावस्था का।[५] लेकिन पुष्यभूतियों ने यह विवाह-सम्बन्ध इसलिये स्वीकार कर लिया होगा क्योंकि मौखरि नरेश उनके स्वामी रहे थे। इस विवाह का कूटनीतिक महत्त्व भी था। उत्तर भारत में मौखरि और पुष्यभूति ये दो शक्तियाँ सर्वाधिक प्रबल थीं। ये अब विवाह-सन्धि से बन्ध गईं। ग्रहवर्मा की मृत्यु मालवा के देवगुप्त के (जो सम्भवतः कोई परवर्ती-गुप्त राजकुमार था और इस वैवाहिक सम्बन्ध से क्षुब्ध था) हाथों हुई जिसने गौड के शासक शशांक के साथ मिलकर मौखरियों पर आक्रमण करके ग्रहवर्मा को मार डाला। राज्यवर्द्धन ने इसका प्रतिरोध किया, परन्तु वह भी शत्रुओं की चाल से मारा गया। इसके उपरान्त हर्षवर्द्धन ने थानेसर के साथ कान्यकुब्ज का शासन भी सम्भाल लिया। ग्रहवर्मा का अपना कोई लेख अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। अवन्तिवर्मा के एक अन्य पुत्र की मुहर नालन्दा से प्राप्त हुई है जिसमें अन्तिम राजा के नाम का केवल प्रथम अक्षर 'सु' स्पष्ट है। दूसरा अक्षर 'व' या 'च' पढ़ा जा सकता है जिसके आधार पर उसका नाम 'सुव्र' (अथवा सुचन्द्रवर्मा) निर्धारित किया जाता है। 'आर्यमंजुश्रीमूलकल्प' में ग्रह (वर्मा) के बाद सुव्र के उल्लेख से सुव्र नाम सही जान पड़ता है। क्योंकि सुव्र अपने को अवन्तिवर्मा का पुत्र कहता है और ग्रहवर्मा अवन्तिवर्मा का ज्येष्ठ पुत्र था इसलिये सुव्र को ग्रहवर्मा का अनुज मानना होगा। सुव्र ने शायद ग्रहवर्मा के बाद अपने को मौखरि साम्राज्य का अधिकारी घोषित किया परन्तु हर्ष की दिग्विजय के दौरान कभी उसका अन्त हो गया है।[६]

ग्रहवर्मा और सुव्र के उपरान्त : भोगवर्मा और मनोरथवर्मा

ग्रहवर्मा और सुव्र के उपरान्त मौखरियों का एक साम्राज्यिक शक्ति के रूप में फिलहाल अन्त हो गया। लेकिन यह सर्वथा सम्भव है कि हर्ष की मृत्यु (६४६ ई०) के बाद कान्यकुब्ज पुनः मौखरियों के अधिकार में चला गया हो। नेपाली नरेश अंशुवर्मा ने, जो हर्ष का समकालीन था, अपनी पुत्री का विवाह एक मौखरि-नरेश से किया था जिसका पुत्र भोगवर्मा था। इस भोगवर्मा के साथ परवर्ती-गुप्त नरेश आदित्यसेन ने अपनी पुत्री का विवाह किया था। स्वयं भोगवर्मा ने अपनी पुत्री का विवाह (जो उसकी परवर्ती-गुप्त वंशीय रानी से उत्पन्न हुई थी), नेपाल-नरेश द्वितीय

---

१. इ० आई०, ३३, पृ० १२१।

२. इ० आई०, २४, पृ० २८४।

३. लेकिन इस ग्रन्थ में अवन्तिवर्मा की चर्चा ही थी यह निश्चित नहीं है। बहुत से विद्वान् यहाँ गुप्त सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त का उल्लेख मानते हैं।

४. हर्षचरित, कॉवेल और टॉमस का अनुवाद, पृ० २५८।

५. मध्यमे वयसि।

६. देवहूति का विचार है कि 'सु' ने ग्रहवर्मा के विरुद्ध विद्रोह किया था और उसकी मृत्यु ग्रहवर्मा के पहले ही हो गई थी।

शिवदेव से किया। इन विवाह सम्बन्धों से भोगवर्मा की प्रतिष्ठा का संकेत मिलता है। वाराणसी जिले की चकिया तहसील से प्राप्त एक लेख[१] में उल्लिखित मनोरथवर्मा उसका सम्बन्धी हो सकता है।

यशोवर्मा

आठवीं शती ई० के प्रारम्भ में कान्यकुब्ज पर यशोवर्मा नामक महान् नृपति ने शासन किया। उसकी उपलब्धियों का वर्णन वाक्पति ने अपने ग्रन्थ 'गौडवहो' में किया है और कल्हण की 'राजतरंगिणी' में उसके और ललितादित्य मुक्तापीड़ के मध्य हुए संघर्ष का वर्णन है। उसका एक अभिलेख भी नालन्दा से उपलब्ध है। वाक्पति ने उसे चन्द्रवंशी बताया है। हमारा विचार है कि वह मौखरि वंश में उत्पन्न हुआ था जो, जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, चन्द्रवंश की एक शाखा था। इस समस्या पर विस्तृत विचार अन्यत्र किया गया है।[२] यशोवर्मा ने भारत के दूरस्थ प्रदेशों पर विजय प्राप्त की और गौडराज का वध किया जिसकी पहिचान प्रायः परवर्ती-गुप्त नरेश द्वितीय जीवितगुप्त से की जाती है। परन्तु बाद में वह कश्मीर-नरेश ललितादित्य के द्वारा निर्णायक रूप से परास्त कर दिया गया।[३]

परवर्ती-गुप्त वंश

मौखरि वंश की तुलना में परवर्ती-गुप्त वंश के महत्त्व की न्यूनता

छठी शती ई० के प्रारम्भ में उत्तर भारत में जिन शक्तियों का उदय हुआ उनमें परवर्ती-गुप्त वंश का स्थान बड़ा आदरणीय माना जाता है।[४] विश्वास किया है कि इस वंश के राजाओं ने साम्राज्यिक गुप्तों के बाद उत्तर भारत में साम्राज्य-स्थापन का प्रयास किया और इसके लिये उनकी मौखरियों से कई पीढ़ियों तक प्रतिद्वन्द्विता चली। बहुत से विद्वान् तो इस प्रतिद्वन्द्विता में परवर्ती-गुप्तों को कुछ समय के लिये सफल भी हुआ मानते हैं। आजकल उनके ऊपर अपनी लेखनी उठाने वाले अनेक विद्वान् उनको बिना किसी संकोच के 'सम्राट्' उपाधि तक से अभिहित कर देते हैं।[५] परन्तु हमारे विचार से परवर्ती-गुप्तों का छठी शती ई० में इतना अधिक महत्त्व नहीं था। यह सही है कि इस वंश के शासकों ने हर्षोत्तर-काल में मगध पर शासन करते हुए 'महाराजाधिराज' उपाधि धारण की थी, परन्तु यह बात सातवीं शती की है। छठी शती में परवर्ती-गुप्त एक स्थानीय और मामूली सी शक्ति थे जिसने न तो स्वतन्त्रता का उपभोग किया और न ही मौखरियों के साथ प्रतिद्वन्द्विता का स्वप्न देखा। मौखरियों के साथ उनकी प्रतिद्वन्द्विता की अवधारणा मात्र आदित्यसेन के अफसड़-अभिलेख पर आधृत है जिसमें इस वंश के चौथे राजा कुमारगुप्त का मौखरि वंश के चौथे राजा ईशानवर्मा से युद्ध होना उल्लिखित है और पाँचवें राजा दामोदरगुप्त को किसी मौखरि से युद्ध करते हुए दिवंगत हुआ बताया गया है। लेकिन इन तथ्यों से यह प्रमाणित नहीं होता कि परवर्ती-गुप्तों की मौखरियों से एक या अधिक पीढ़ी तक प्रतिद्वन्द्विता चली थी क्योंकि, जैसा कि हम देख चुके हैं, कुमारगुप्त ने ईशानवर्मा से युद्ध स्वतन्त्र राजा के रूप में नहीं सम्भवतः पश्चिमी मालवा के औलिकर सम्राट् के सामन्त के रूप में लड़ा था। जहाँ तक दामोदरगुप्त की बात है उसने तो शायद मौखरियों से पृथक्तः कोई युद्ध ही नहीं लड़ा था—सम्भवतः उसकी मृत्यु उसी युद्ध में हुई जिसमें कुमारगुप्त अपने स्वामी औलिकर सम्राट् के साथ परास्त हुआ था। इसीलिये अफसड़-लेख में दामोदरगुप्त के शत्रु मौखरि राजा का नाम न देकर उसे केवल 'मौखरि' कह दिया गया है, उसी तरह जैसे हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में हम आज भी पहिले वाक्य में किसी राजा का नाम देने के बाद दूसरे वाक्य में केवल उसका वंश-नाम दे देते हैं।

---

१. इ० आई०, ३४, पृ० २४६-७।

२. दे०, पीछे; मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, यशोवर्मा विषयक अध्याय।

३. क्ला० ए०, पृ० १२८-३१; गौडवहो, भू०, पृ० १६७ अ०, २२५। यशोवर्मा के विस्तृत अध्ययन के लिये द्र०, मिश्र, श्याम मनोहर, यशोवर्मा ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९७७।

४. परवर्ती-गुप्त वंश के विस्तृत अध्ययन के लिये दे०, गोयल, श्रीराम, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, मेरठ, १९८६, अध्याय ४।

५. उदाहरणार्थ दे०, राय, उ० ना०, गुप्त सम्राट् और उनका काल, पृ० ३९२।

वास्तव में परवर्ती-गुप्त वंश की छठी शती ई० के इतिहास में सम्पूर्ण महत्ता मात्र अफसड़-लेख पर आधृत है जिसमें, इस लेख के लिखवाये जाने के समय परवर्ती-गुप्त नरेशों के 'महाराजाधिराज' बन जाने के कारण, उनके पूर्वजों का महत्त्व बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दिखा दिया गया है और उनके युद्धों का इस प्रकार उल्लेख कर दिया गया है मानों वे युद्ध उन्होंने स्वतन्त्ररूपेण लड़े थे। परन्तु इस पूर्वाग्रह के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं है। उल्टे ऐसे अनेक संकेत मिलते हैं जिनसे उनके राजनीतिक महत्त्व की अत्यल्पता प्रमाणित होती है। मौखरियों के साथ उनकी तुलना करते हुये इन संकेतों को इस प्रकार अनुसूचित किया जा सकता है। एक, अभी तक परवर्ती-गुप्तों के आदिराज्य की स्थिति तक निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। कुछ विद्वान् उनके आदिराज्य को मगध में मानते हैं, कुछ पूर्वी मालवा में और कुछ पश्चिमी मालवा में। इस ग्रन्थ में उनके आदिराज्य को राजस्थान के मालव जनपद में स्थित प्रमाणित किया गया है। ऐसी स्थिति में उनके तथाकथित 'साम्राज्य' की सीमाओं के ऊपर तो विचार करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इसके विपरीत मौखरियों के आदिराज्य का कान्यकुब्ज के आसपास होना निश्चित है। इतना ही नहीं विविध प्रमाणों से यह भी सिद्ध है कि उनका अधिकार पूर्व में मगध तक, पश्चिम में चमोली तथा सतलज के समीप स्थित निर्मण्ड तक और दक्षिण में कालञ्जर मण्डल (बुन्देलखण्ड) तक अवश्य ही था। ऐसी स्थिति में इन दोनों शक्तियों को समान मानना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। दो, छठी शती में मौखरियों के राजनीतिक महत्त्व का प्रमाण स्वयं उनके अभिलेख और सिक्के हैं। उनके अभिलेख जौनपुर, हड़हा, असीरगढ़, चमोली तथा नालन्दा आदि स्थलों से मिले हैं और सिक्के भिटौरा आदि अनेक स्थलों से। इसके विपरीत इस युग के परवर्ती-गुप्त नरेशों का न कोई अभिलेख उपलब्ध है और न सिक्के ही मिलते हैं। तीन, मौखरियों के अभिलेखों में उन्हें ईशानवर्मा के समय से 'महाराजाधिराज' उपाधि दी गई है। स्वयं परवर्ती-गुप्तों के देवबरनार्क-लेख में शर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा का उल्लेख 'परमेश्वर' के रूप में हुआ है। लेकिन परवर्ती-गुप्तों ने 'महाराजाधिराज' उपाधि सर्वप्रथम सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में धारणा की। इसके पूर्व के राजाओं को मात्र 'श्री' या अधिक से अधिक 'नृप' उपाधि दी गई है जो उस युग में सामन्त धारण करते थे।[१] चार, मौखरियों की महत्ता का प्रमाण अन्य वंशों के अभिलेख भी हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, स्वयं परवर्ती-गुप्त अभिलेखों में शर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा को 'परमेश्वर' कहा गया है। इसी प्रकार मिहिरभोज के बाड़ा-दानपत्र[२] में शर्ववर्मा को 'परमेश्वर' कहा गया है। समुद्रसेन के निर्मण्ड-दानपत्र[३] में भी उसका उल्लेख मिलता है। दक्षिण कोसल के पाण्डुवंशी राजा महाशिवगुप्त बालार्जुन के सिरपुर-लेख में भी वर्मा कुलोत्पन्न श्री सूर्यवर्मा का उल्लेख मिलता है जिसकी पहिचान लगभग सभी विद्वान् सूर्यवर्मा मौखरि से करते हैं। इस लेख में उसके वंश को मगध पर शासन करने के कारण यशस्वी कहा गया है। इसके विपरीत छठी शती के परवर्ती-गुप्त नरेश समकालिक और उत्तरकालीन लेखों में सर्वथा अनुल्लिखित हैं। पाँच, बाण ने मौखरियों के तत्कालीन राजनीतिक महत्त्व का उल्लेख किया है। वह अपने 'हर्षचरित' में प्रभाकरवर्द्धन के मुख से मौखरि वंश को 'शिवजी के चरणन्यास की भाँति सब राजाओं का शिरमौर और सकल भुवन द्वारा नमस्कृत' बताता है।[४] इसके विपरीत जब मालवराज (महासेनगुप्त) के पुत्र प्रभाकरवर्द्धन के पास आते हैं तो वे 'दूर से ही चारों अंगों तथा सिर से पृथिवी का स्पर्श कर' प्रणाम करते हैं।[५] प्रणाम की यह विधि निम्नतम श्रेणी के सामन्तों के लिये थी। इस तथ्य के बावजूद कि महासेनगुप्त प्रभाकरवर्द्धन का मामा था और ये दोनों राजकुमार उसके ममेरे भाई थे, उनका प्रभाकर को इस प्रकार प्रणाम करना इस बात का संकेत माना जाना चाहिये कि महासेनगुप्त की राजनीतिक प्रतिष्ठा बहुत मामूली रही होगी। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छठी शती ई० में परवर्तीगुप्त वंश एक अतिसामान्य, मात्र स्थानीय महत्त्व वाला, शासक वंश था। हमारे विचार से इस वंश के राजा क्रमशः

१. मजूमदार, आर० सी०, कॉ० हि० इ०, ३, १९८१, पृ० १९१; दे०, देवहूति, हर्ष : ए पोलिटिकल स्टडी, १९८३, पृ० १८।

२. पाण्डेय, रा० व०, हि० लि० इ०, पृ० १९७।

३. फ्लीट, पूर्वो०, पृ० २८६ अ०।

४. हर्षचरित, पृ० २४१।

५. वही, पृ० २३८-३९।

पश्चिमी मालवा के औलिकरों, कान्यकुब्ज के मौखरियों, बंगाल के गौडों तथा थानेसर के पुष्यभूतियों के अधीन रहे थे (दे०, आगे)। अपने इन सम्राटों के अधीन उन्होंने समय-समय पर जो युद्ध लड़े उनका अफसड़-लेख में इस प्रकार वर्णन कर दिया गया है मानो वे उनके स्वतन्त्र युद्ध थे।

तिथिक्रम और वंश विचार

परवर्ती-गुप्त वंश का इतिहास मुख्यतः आदित्यसेन (सातवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध) के अफसड़-अभिलेख और द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क-अभिलेख से ज्ञात होता है। इनके अनुसार इस वंश का प्रथम नरेश कृष्णगुप्त था जिसके उपरान्त क्रमशः हर्षगुप्त, प्रथम जीवितगुप्त, कुमारगुप्त, दामोदरगुप्त, महासेनगुप्त, माधवगुप्त, आदित्यसेन, देवगुप्त, विष्णुगुप्त और द्वितीय जीवितगुप्त ने शासन किया। इनमें चौथा राजा कुमारगुप्त चौथे मौखरि नृपति ईशानवर्मा (ज्ञात तिथि ५५४ ई०) का समकालीन था (अफसड़-अभिलेख) और सातवां राजा माधवगुप्त हर्षवर्द्धन का (अफसड़-अभिलेख एवं 'हर्षचरित')। इससे स्पष्ट है कि इस वंश का प्रथम नरेश कृष्णगुप्त प्रथम मौखरि नरेश हरिवर्मा का निकट समकालीन रहा होगा और इन दोनों ने अपने-अपने वंश की स्थापना लगभग ५०० ई० में की होगी। परवर्ती-गुप्त वंश का साम्राज्यिक गुप्त वंश से सम्भवतः कोई सम्बन्ध नहीं था, सिवाय इसके कि इस वंश के नरेशों के नामों में भी (आदित्यसेन को छोड़कर) 'गुप्त' शब्द का प्रयोग हुआ है।[1] परन्तु अफसड़-अभिलेख में कृष्णगुप्त के लिये मात्र इतना कहा गया है कि वह एक 'सद्वंश' में उत्पन्न हुआ था। हमारा विचार यह है कि परवर्ती-गुप्त नरेश वैश्यजातीय थे। अगर ऐसा न होता तो, अनुलोम-प्रतिलोम नियमानुसार, महासेनगुप्ता का विवाह वैश्यजातीय पुष्यभूति वंश में नहीं हो पाता।

परवर्ती-गुप्तों के आदिराज्य की स्थिति : प्रचलित मतों की समीक्षा

परवर्ती-गुप्तों के आदिराज्य की स्थिति का निर्धारण छठी शती ई० के भारतीय राजनीतिक इतिहास की सम्भवतः सर्वाधिक विवादग्रस्त समस्या है। कुछ विद्वान् इस राज्य को मगध में स्थित मानते हैं और कुछ मालवा में। फ्लीट और उनका अनुसरण करने वाले मजूमदार, बसाक, रा० दा० बनर्जी तथा बी० पी० सिनहा प्रभृति[2] विद्वानों का विश्वास है कि परवर्ती-गुप्त नरेश मूलतः मगध के निवासी थे। इस मत के समर्थन में कहा गया है कि :—

(१) कम से कम आदित्यसेन के समय से परवर्ती-गुप्तों की गतिविधि का केन्द्र मगध था। आदित्यसेन और उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेख (आदित्यसेन के अफसड़, शाहपुर और मन्दार-लेख, विष्णुगुप्त के मंगरांव एवं कौलेश्वरी गिरि-अभिलेख तथा द्वितीय जीवितगुप्त का देवबरनार्क अभिलेख) मगध से ही मिले हैं।[3] (२) अफसड़-अभिलेख के अनुसार प्रथम जीवितगुप्त ने समुद्रतट के समीप रहने वाले कुछ शत्रुओं को परास्त किया था और महासेनगुप्त ने लौहित्य के तट पर सुस्थितवर्मा को। यह सुस्थितवर्मा निस्संदेह कामरूप का राजा था। परवर्ती-गुप्तों की ये सफलताएँ उनका राज्य मगध में मानने पर अधिक बोधगम्य लगने लगती हैं क्योंकि बंगाल के समुद्रतटीय प्रदेश एवं कामरूप तक मगध से जाना आसान था, मालवा से जाना कठिन। (३) हर्षवर्द्धन के बाद माधवगुप्त का मगध को अधिकृत कर लेना या हर्षवर्द्धन का उसे मगध का राजा बनाना यह संकेत देता है कि माधवगुप्त के पूर्वज मगध के स्वामी थे। लेकिन-

---

१. द्र०, जे० बी० बी० आर० एस०, ३०, पृ० १६६ अ०; पो० हि० ए० इ०, पृ० ६२३। मजूमदार (कॉ० हि० इ०, ३, पृ० १६३) तथा देवहूति (पूर्वो०, पृ० १८) का कहना है कि परवर्ती-गुप्त अपने को साम्राज्यिक गुप्तों का अवशिष्ट उत्तराधिकारी मानते थे। परन्तु इसका संकेत कहीं नहीं मिलता।

२. फ्लीट, कॉर्पस, भू०, पृ० १४, बनर्जी, जे० बी० ओ० आर० एस०, १४, पृ० २५४; सिनहा, बी० पी०, डे० कि० म०, पृ० १३३ अ०; मजूमदार, वा० गु० ए०, पृ० २०८-६; बसाक, हि० नॉ० ई० इ०, पृ० १२० अ०।

३. इन अभिलेखों के लिये दे०, फ्लीट, कॉर्पस, ३; कौलेश्वरीगिरि- अभिलेख के लिये दे०, इ० आई०, ३०, पृ० ७८ अ०।

मगध विषयक मत के समर्थन में प्रदत्त उपर्युक्त तर्क बहुत सबल नहीं हैं जबकि यह धारणा कि छठी शती ई० के परवर्ती-गुप्त नृपति मालव जनपद के स्वामी थे, 'हर्षचरित' के सन्देहातीत साक्ष्य पर आधृत है। मालवा विषयक मत के मुख्य समर्थक हैं सर्वश्री हॉर्नले, रायचौधुरी, सी० वी० वैद्य, पायर्स, सालेटोर और मुकर्जी।[1] इन विद्वानों ने ध्यान दिलाया है कि 'हर्षचरित' के अनुसार किसी मालव-नरेश के दो पुत्रों—कुमारगुप्त और माधवगुप्त—ने हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन के पास शरण ली थी। बाण ने इस माधवगुप्त को हर्ष का सखा बताया है। इसी प्रकार अफसड़-अभिलेख में भी आदित्यसेन के पिता माधवगुप्त को हर्ष के साहचर्य का अभिलाषी (श्री हर्षदेव निज संगम वञ्छया) कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि 'हर्षचरित' में उल्लिखित माधवगुप्त और आदित्यसेन का पिता माधवगुप्त अभिन्न थे।[2] यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह प्रश्नातीत रूप से निश्चित हो जाता है कि परवर्ती-गुप्त नरेश माधवगुप्त का पिता 'मालवराज' था। और अगर माधवगुप्त का पिता महासेनगुप्त मालव जनपद पर शासन करता था तो यही बात कृष्णगुप्त से लेकर दामोदरगुप्त तक के विषय में क्यों नहीं कही जा सकती? बाण के इस कथन से मगध विषयक मत के समर्थकों का न केवल प्रथम तर्क निष्प्राण हो जाता है, वरन् तीसरे तर्क में भी कोई सार नहीं रह जाता। लगभग पचास वर्ष तक राज्यविहीन रहने के बाद माधवगुप्त के लिये किसी प्रदेश पर मात्र इसलिये कि उसके पूर्वज वहाँ शासन कर चुके थे अधिकार कर लेना सरल नहीं रहा होगा। जहाँ तक इस मान्यता का सम्बन्ध है कि हर्ष ने माधवगुप्त को वही प्रदेश दिया होगा जहाँ उसके पूर्वजों ने शासन किया था, यह इस पूर्वाग्रह पर आधृत है कि माधवगुप्त को राज्यलक्ष्मी हर्ष की कृपा से मिली थी। परन्तु इसका ज्ञान हमें किसी साक्ष्य से नहीं होता। और फिर यह कैसे भुला दिया जाय कि बाण ने माधवगुप्त के पिता को 'मालवराज' बताया है? मगध विषयक मत के समर्थकों का कहना है कि परवर्ती-गुप्त वंश का आदि राज्य मगध में स्थित माने बिना प्रथम जीवितगुप्त का समुद्रतट के समीप अर्थात् बंगाल में रहने वाले शत्रुओं और महासेनगुप्त का कामरूप-नरेश के विरुद्ध अभियान बोधगम्य नहीं होते। लेकिन यह आग्रह करते समय ये विद्वान् प्रायः भूल जाते हैं कि गौडों के विरुद्ध युद्ध तो ईश्वरवर्मा के शासनकाल में उसके पुत्र ईशानवर्मा ने भी लड़ा था। अब, अगर गौडों के विरुद्ध युद्ध करने वाले इन मौखरियों का क्रीड़ास्थल उत्तर प्रदेश और राजधानी कान्यकुब्ज मानी जा सकती है तो उन्हें इस अभियान में सहयोग देने वाले अथवा उनकी इस सफलता को दोहराने वाले परवर्ती-गुप्त नरेश प्रथम जीवितगुप्त को मालव जनपद का स्वामी मानने में क्या आपत्ति हो सकती है? इसी प्रकार अगर पश्चिमी मालवा का राजा यशोधर्मा लौहित्य तक विजय यात्रा का दावा कर सकता था तो, जहाँ तक विशुद्ध तर्क की बात है, यही कार्य मालव जनपद का एक अन्य राजा महासेनगुप्त क्यों नहीं कर सकता था? इस प्रश्न के उत्तर में प्रायः कहा जाता है कि मालव जनपद और कामरूप के बीच में मगध प्रदेश, जहाँ शर्ववर्मा और अवन्तिवर्मा ने निश्चितरूपेण शासन किया, पड़ता था। इसलिये महासेनगुप्त को मालव-नरेश मानने पर उसका कामरूप पर आक्रमण बोधगम्य नहीं होता। परन्तु इस तर्क में अन्तर्विरोध है। इसका प्रतिपादन करने वाले एक ओर तो यह कहते हैं कि महासेनगुप्त मालवा से कामरूप इसलिये नहीं जा सकता था क्योंकि मध्यवर्ती मगध पर उसके शत्रु मौखरियों का शासन था और दूसरी ओर वे इस कठिनाई को दूर करने के लिये महासेनगुप्त को मगध का, जहाँ उसके वंश से शत्रुता रखने वाले मौखरि शासन कर रहे थे, स्वामी मान लेते हैं। दूसरे शब्दों में इन विद्वानों के अनुसार

---

१. हॉर्नले, जे० आर० ए० एस०, १६०३, पृ० ५५१ अ०; वैद्य, हिस्ट्री ऑव मेडीवल हिन्दू इण्डिया, १, पृ० २४; मुकर्जी, हर्ष, पृ० ५३–५६; रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० ६२३ अ०; पायर्स, दि मौखरिज़, पृ० ५६; सालेटोर, लाइफ इन दि गुप्त एज, पृ० ५६–५७।

२. 'हर्षचरित' में उल्लिखित माधवगुप्त और आदित्यसेन के पिता माधवगुप्त की अभिन्नता लगभग सभी विद्वान् मानते हैं। केवल रा० दा० बनर्जी ने इसमें शंका प्रकट की थी।

जिस काल में महासेनगुप्त के लिये मगध पार करके कामरूप जाना असम्भव था उसी काल में मगध पर शासन करना सम्भव था !

परवर्ती-गुप्त वंश का राज्य राजस्थान के मालव जनपद में था

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छठी शती ई० में परवर्ती-गुप्त वंश का आदि-राज्य मगध में नहीं, मालव जनपद में था। लेकिन यह मालव जनपद था कहाँ ? इस विषय में सर्वप्रथम बाण की 'कादम्बरी' की चर्चा कर दी जाय। इसमें एक स्थल पर उज्जैन की नारियों को 'मालवी' कहा गया है। इसलिए सिनहा ने (जो यह मानते हैं कि महासेनगुप्त के समय तक परवर्ती-गुप्त नरेश मगध के शासक थे और महासेनगुप्त मगध से मालव जनपद में आकर बसा था) बाण के मालव जनपद को पश्चिमी मालवा या अवन्ति देश माना है।[१] लेकिन छठी शती में पश्चिमी मालवा पर यशोधर्मा-विष्णुवर्द्धन का शासन था। उज्जैन-मन्दसौर क्षेत्र उनके साम्राज्य का हृदय-स्थल था। यशोधर्मा के मन्दसौर अभिलेखों व महाराज गौरि के छोटी सादड़ी व मन्दसौर अभिलेखों[२] में परवर्ती-गुप्त वंश का अस्तित्व तक संकेतित नहीं है। इसलिए सामान्यतः यह माना जाता है कि परवर्ती-गुप्तों का निवास स्थान पूर्वी मालवा में था। आर० एस० त्रिपाठी, रायचौधुरी, दि० च० सरकार तथा एक समय हमारा भी यह मत था कि परवर्ती-गुप्त वंश का उदय पूर्वी मालवा में हुआ।[३] यह मत वात्स्यायन के ग्रन्थ 'कामसूत्र' पर यशोधर द्वारा लिखित टीका 'जयमंगला' पर आधृत है। 'कामसूत्र' में 'आवन्तिकाः' और 'मालव्य' के उल्लेख पर टीका करते हुए यशोधर कहता है कि अवन्ति उज्जयिनी देश (पश्चिम मालवा) को कहते हैं (आवन्तिका उज्जयिनी देश भवाः। ता एवापरमालव्यः) और जहाँ मात्र मालव्य शब्द का प्रयोग होता है वहाँ पूर्वी मालवा से तात्पर्य होता है (मालव्य इति पूर्वमालव भवाः)।[४] परन्तु हमारे विचार से यशोधर के कथन के आधार पर बाण के 'मालव' जनपद की पहिचान पूर्वी मालवा से नहीं की जा सकती। यशोधर एक परवर्ती लेखक है। उसने अपनी टीका १३वीं शती में लिखी थी।[५] तब तक आधुनिक मालवा प्रदेश इस नाम से विख्यात हो चुका था। इसलिए यशोधर के साक्ष्य से मात्र यह निश्चित माना जा सकता है कि उसके अपने युग में 'मालव' से आशय पूर्वी मालवा से होता था। परन्तु यह प्रमाणित करने के लिए अभी तक कोई साक्ष्य नहीं मिला है कि छठी शती में भी 'मालव' से आशय पूर्वी मालवा से ही होता था। इसके विपरीत हमारे पास यह विश्वास करने के लिए पर्याप्त कारण हैं कि छठी-सातवीं शताब्दी तक 'मालवा' नाम का प्रयोग राजस्थान के अजमेर-टोंक-जयपुर प्रदेश के लिए होता था और इसलिए हमारा विचार है कि परवर्ती-गुप्तों के राज्य की स्थिति राजस्थान के इस मालव जनपद में ही माननी चाहिए। उपलब्ध साक्ष्य के संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाएगा : (१) मालव जाति मूलतः पंजाब में रहती थी। उसकी पहिचान सिकन्दर के इतिहासकारों द्वारा उल्लिखित मल्लोई जाति से (जो चतुर्थ शती ई० पू० में रावी-चिनाब दोआब में रहती थी) सुनिश्चित है, क्योंकि सिकन्दर के इतिहासकार मल्लोई को ओक्सीड्रेकाई का घनिष्ठ मित्र बताते हैं और भारतीय साक्ष्य 'मालव-क्षुद्रक' द्वन्द्व का उल्लेख करते हैं। इसके बाद यह भटिण्डा के मार्ग से आकर राजस्थान में बसी जहाँ इसकी राजधानी भूतपूर्व जयपुर राज्य की उणियारा तहसील में नगर (प्राचीन मालवनगर) में थी। नगर से मालवों के सिक्के, जो ईसा की प्रारम्भिक शतियों के हैं, सहस्रों की संख्या में मिले हैं। २२६ ई० के लगभग यह शक प्रभुत्व से स्वतन्त्र हुई जैसा कि इसके

---

१. सिनहा, डे० कि० म०, पृ० १, ८ अ०।

२. सरकार, स० इ०, पृ० ४१०, ४११, ४१८।

३. त्रिपाठी, हि० क०, पृ० ४६; सरकार, जे० आर० ए० एस०बी० (एल०), ११, पृ० ६६; रायचौधुरी, पो० हि० ए० इ०, पृ० ५८२; लाहा, एन्श्येण्ट इण्डियन ट्राइब्स, २, पृ० ४१; गोयल, गुप्त एवं समकालीन राजवंश, ३, पृ० ३०४ अ०।

४. कामसूत्र, डी० डी० शास्त्री का हिन्दी संस्करण, पृ० १८८।

५. कीथ, हिस्ट्री ऑव क्लासिकल संस्कृत लिट्रेचर (हिन्दी संस्करण), पृ० ५५६।

नान्दसा से प्राप्त अभिलेख से प्रमाणित है। चौथी शती ई० में इसे समुद्रगुप्त का प्रभुत्व स्वीकार करना पड़ा। उस समय भी यह राजस्थान में ही बसी हुई थीं क्योंकि समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में इसका उल्लेख आर्जुनायनों (देहली-जयपुर-आगरा प्रदेश) व यौधेयों (उत्तरी राजस्थान व दक्षिणी पंजाब) के साथ किया गया है। इस प्रकार प्रारम्भिक गुप्त काल तक मालव जाति निश्चय ही अजमेर-टोंक-जयपुर प्रदेश में बसी हुई थी। (२) आधुनिक मालवा (पूर्वी और पश्चिमी) को 'मालवा' नाम से ख्याति सम्भवतः परमार युग में प्राप्त हुई, क्योंकि गुप्त काल और परमार काल के बीच में राजस्थान का मालव जनपद 'मालव' कहलाता रहा और तत्कालीन लेखक इसको अवन्ति से भिन्न मानते रहे। परमार युग के पूर्व उज्जयिनी प्रदेश को 'मालव' कहने वाले उल्लेख अत्यन्त विरल हैं और इनसे मात्र यह प्रमाणित होता है कि सातवीं शती में उज्जयिनी प्रदेश के लिए यह नाम प्रयोग में आना प्रारम्भ हो गया था, परन्तु लोकप्रिय नहीं हुआ था। पाँचवीं-छठी शती में, जब परवर्ती-गुप्तों ने शासन किया, अवन्ति और मालव सर्वथा भिन्न माने जाते थे और मालव जनपद अवन्ति से उत्तर की ओर स्थित माना जाता था। उदाहरणार्थ : (अ) स्वयं वात्स्यायन ने अपने 'कामसूत्र' में, जिसकी रचना गुप्त काल के प्रारम्भ में हुई, अवन्ति और मालव जनपदों को पृथक्-पृथक् माना है।[१] यह कथन तो उसके तेरहवीं शती के टीकाकार यशोधर का है कि अवन्ति का अर्थ 'पश्चिमी मालवा' है और 'मालव' का 'पूर्वी मालवा'। स्वयं वात्स्यायन ने ऐसा नहीं कहा है। (आ) 'भागवत पुराण' में, जिसकी रचना रायचौधुरी के अनुसार परवर्ती-गुप्तों के युग के आसपास हुई,[२] अर्बुद या आबू का उल्लेख 'मालव' के साथ किया गया है (सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुद मालवाः) और अवन्ति को सौराष्ट्र के समीप बताया बताया गया है।[३] (इ) वराहमिहिर ने अपनी 'बृहत्संहिता' में (छठी शती ई०)[४] 'मालव' और अवन्ति में अन्तर माना है और मालव को उत्तरापथ में रखा है।[५] इसका अर्थ है कि वराहमिहिर के अपने समय तक अवन्ति के लिये 'मालव' नाम का प्रचलन प्रारम्भ नहीं हुआ था। क्योंकि वराहमिहिर स्वयं अवन्ति का निवासी (आवन्तिक) था, इसलिए उसके साक्ष्य को आसानी से नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। उपर्युक्त साक्ष्य से स्पष्ट है कि गुप्त काल के प्रारम्भ में ही नहीं पाँचवीं-छठी ई० में भी मालव जनपद राजस्थान में ही स्थित माना जाता था और अवन्ति प्रदेश को मालव जनपद से सर्वथा पृथक् समझा जाता था। पूर्वी मालवा को तो माल वनाम पश्चिमी मालवा के भी बाद में मिला। इसलिये यह मानने के लिये कोई कारण नहीं रह जाता कि छठी शती ई० के किसी राजा को, जिसे 'मालवराज' कहा गया हो, पश्चिमी या पूर्वी मालवा का शासक मानना चाहिये। इसके विपरीत नान्दसा-अभिलेख, मालव सिक्कों के प्राप्ति-स्थल, समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति, वात्स्यायन के 'कामसूत्र', वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' तथा 'भागवत पुराण' के सम्मिलित साक्ष्य से स्पष्ट है कि छठी शती ई० तक मालव जनपद से आशय राजस्थान के अजमेर-टोंक-जयपुर प्रदेश से होता था और अवन्ति देश मालव जनपद से पृथक् माना जाता था। स्वयं शुआन-च्वांग भी उज्जयिनी और मो-ला-पो में स्पष्टतः अन्तर करता है यद्यपि उसके विवरण से मो-ला-पो की स्थिति अनिश्चित सी रह जाती है।[६] (३) यह निष्कर्ष कि परवर्ती-गुप्तों का मालव जनपद राजस्थान में था[७] उनके इतिहास में सर्वथा संगत है। क्योंकि अब यह अनायास माना जा सकता कि परवर्ती-गुप्त नरेश जीवितगुप्त ने, जो मन्दसौर के यशोधर्मा-विष्णुवर्द्धन का समकालीन था, अफसड़-लेख में वर्णित अपनी सफलताएँ यशोधर्मा के सामन्त रूप में प्राप्त की थीं।

---

१. कामसूत्र, २६.२२ तथा २४।

२. रायचौधुरी, पूर्वो०।

३. भागवत पुराण, १२.१.३८ (गीता प्रेस का संस्करण)।

४. वराहमिहिर की मृत्यु ५८७ ई० में हुई।

५. शास्त्री, अ० मि०, इण्डिया एज सीन इन दि बृहत्संहिता, पृ० ७०, ८८।

६. सिनहा, पूर्वो०, पृ० १८२।

७. विस्तृत विवेचन के लिए दे०, गोयल, एस० आर०, 'राजस्थान : दि ओरिजिनल होम ऑव दि लेटर गुप्तज़', पी० आर० एच० सी०, अजमेर सेशन, पृ० २४-३२।

इतिहास : कृष्णगुप्त से प्रथम जीवितगुप्त तक

परवर्ती-गुप्त वंश का संस्थापक कृष्णगुप्त (लगभग ५०० ई०) था। अफसड़-अभिलेख के अनुसार उसकी सेना में हजारों हाथी थे (दन्ति सहस्रगाढ़कटकः) और विद्वान् पुरुष उसे घेरे रहते थे (विद्याधराध्यासितः)। शत्रु सेना के हाथियों को मृगेन्द्र के समान घायल करके एवं असंख्य शत्रुओं को पराजित करके उसने यश अर्जित किया था। वह पश्चिमी मालवा के औलिकर सम्राटों के अधीन रहा होगा। हो सकता है वह ४९० ई० के मन्दसौर-लेख में उल्लिखित आदित्यवर्द्धन के नीचे कोई मामूली सामन्त रहा हो। कृष्णगुप्त का पुत्र और उत्तराधिकारी हर्षगुप्त (लग० ५२० ई०) था। उसकी बहिन हर्षगुप्ता का विवाह दूसरे मौखरि नरेश आदित्यवर्मा से होना इस बात का प्रमाण है कि उसके काल में परवर्ती-गुप्त और मौखरि वंशों के अच्छे सम्बन्ध थे। उसके लिये अफसड़-अभिलेख में मात्र 'देवश्री' उपाधि का प्रयोग है और उसके शौर्य एवं युद्धों की सामान्य सी चर्चा हुई है। इसका एक अर्थ यह भी माना जा सकता है कि वह अपने वंश का कोई महत्त्वपूर्ण नरेश नहीं था। दण्डेकर का यह सुझाव कि हर्षगुप्त और आदित्यवर्मा की सेनाओं ने हूणों को सम्मिलितरूपेण पराजित किया था, पूर्णतः अनुमानाश्रित है। लेकिन यह सर्वथा सम्भव है कि मौखरि तथा परवर्ती-गुप्तों ने यशोधर्मा-विष्णुवर्द्धन के प्रभुत्व में हूणों के विरुद्ध कुछ युद्ध लड़े हों। हर्षगुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र प्रथम जीवितगुप्त था। उसको अफसड़-अभिलेख में 'क्षितीश चूड़ामणि' और अपने गर्वीले शत्रुओं की स्त्रियों के मुखकमलों के लिए चन्द्रमा के समान कहा गया है। इससे लगता है कि उसकी प्रतिष्ठा हर्षगुप्त से अधिक थी, यद्यपि वह भी स्वतन्त्र नरेश नहीं था। उसका पुत्र कुमारगुप्त चौथे मौखरि नरेश ईशानवर्मा का समकालीन था इसलिये वह स्वयं तीसरे मौखरि नृपति ईश्वरवर्मा का समकालीन रहा होगा। उसके विषय में अफसड़-अभिलेख में कहा गया है कि उसके भय से उसके शत्रुओं को कहीं भी मुक्ति नहीं थी—चाहे वे समुद्रतट पर आश्रय लिए हुए थे अथवा हिमगिरि (हिमालय) में। अफसड़-अभिलख के रचयिता की दृष्टि में उसके अतिमानुषीय कर्म उसी प्रकार विस्मयकारी थे जिस प्रकार हनुमान की कोशवर्द्धन पर्वत से छलांग। उसके समुद्रतटीय व पर्वतीय शत्रुओं की पहिचान पर हम ईश्वरवर्मा के प्रसंग में विचार कर चुके हैं (पृ० ६)।

कुमारगुप्त

प्रथम जीवितगुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुमारगुप्त था। उसके शासन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना उसका ईशानवर्मा मौखरि से संघर्ष था जिसमें उसकी पराजय हुई (दे०, पृ० ६-७)। सम्भवतः इसके उपरान्त उसने प्रयाग जाकर वहाँ अग्निराशि में आत्मोत्सर्ग किया था। हमारे विचार से यह वर्णन उसके प्रयाग में किए गये अन्तिम संस्कार का नहीं, निश्चतरूपेण उसके स्वेच्छया आत्मदाह का है। उसका अन्तिम संस्कार अगर प्रयाग में सामान्यरूपेण हुआ होता तो अफसड़-अभिलेख का रचयिता उसका उल्लेख करता ही नहीं, क्योंकि उस अवस्था में यह कोई उल्लेख्य घटना नहीं होती। दूसरे, सामान्य रूप से किये गये अन्तिम-संस्कार के प्रसंग में उसके 'प्रयाग जाने' (प्रयाग गतः) का उल्लेख नहीं होता। कुमारगुप्त के इस आत्मदाह का क्या कारण था, कहना कठिन है। परन्तु यह सर्वथा सम्भव है कि उसने धर्मलाभ के लिये अपने प्राणों का उत्सर्ग किया हो। चन्देल नरेश धंग, कलचुरि राजा गांगेयदेव, पाल नृपति रामपाल तथा चालुक्यराज सोमेश्वर आहवमल्ल आदि अनेक नरेशों ने पुण्यलाभ के लिए आत्मोत्सर्ग किया था। प० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने ध्यान दिलाया है कि प्राचीन काल में प्रयाग में प्राणोत्सर्ग करना विशेषरूपेण पुण्यकर माना जाता था। यह मत कि क्योंकि कुमारगुप्त ने प्रयाग में आत्मदाह किया था इसलिए यह नगर उसके राज्य में सम्मिलित रहा होगा, सुचिन्तित नहीं कहा जा सकता। धार्मिक कारणों से प्रयाग और वाराणसी जैसे नगरों की यात्रा उस युग में भारत के विभिन्न प्रदेशों के राजा ही नहीं विदेशी नृपति भी करते थे। वस्तुतः अगर यह मत सही है कि परवर्ती-गुप्तों और मौखरियों के संघर्ष में कुमारगुप्त पराजित हुआ था तो यह भी अनायास माना जा सकता है कि उसके बाद वह मौखरियों के अधीन राजा के रूप में मौखरि राज्य में स्थित प्रयास क्या किसी नगर की भी यात्रा कर सकता था।

दामोदरगुप्त

कुमारगुप्त के द्वारा प्रयाग में आत्मदाह किए जाने का एक प्रमुख कारण उसके पुत्र दामोदरगुप्त का मौखरियों के विरुद्ध लड़े गये युद्ध में दिवंगत होना हो सकता है। दामोदरगुप्त के इस मौखरि शत्रु की पहिचान हम पीछे विचार कर आये हैं और निष्कर्ष निकाल आये हैं कि उसने भी ईशानवर्मा मौखरि से युद्ध लड़ा था, शर्ववर्मा से नहीं (पृ० ९-१०)। प० क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय[1] के अनुसार दामोदरगुप्त युद्ध में मात्र मूच्छित हुआ था, न कि मारा गया था। जैसा कि रायचौधुरी और दि० च० सरकार ने कहा है कि यहाँ सुर-वधुओं—देवांगनाओं—के स्पर्श से दामोदरगुप्त द्वारा चैतन्य-लाभ किये जाने के उल्लेख का तात्पर्य यही हो सकता है कि दामोदरगुप्त सुर-वधुओं के लोक (स्वर्ग) में जा पहुँचा था। स्मरणीय है कि अगर दामोदरगुप्त युद्ध में मात्र बेहोश हुआ होता तो इसका उल्लेख इस घटना के सौ वर्ष बाद लिखे गए लेख में शायद नहीं किया जाता। दामोदरगुप्त के दानकार्य का उल्लेख उसकी बेहोशी दूर होने के उल्लेख के बाद होना भी उसके जीवित रहने का प्रमाण नहीं माना जा सकता क्योंकि किसी श्लोक में घटनायें तिथिक्रमानुसार वर्णित हैं, यह पूर्वाग्रह ही गलत है।

महासेनगुप्त

अगर हमारा यह सुझाव सही है कि दामोदरगुप्त कुमारगुप्त (५४०–६० ई०) के काल में ही युद्ध में मारा गया था तो मानना होगा कि उसके पुत्र महासेनगुप्त ने मौखरियों के अधीन ५६० ई० के लगभग शासन करना प्रारम्भ किया होगा। उसका अपना कोई अभिलेख अभी तक नहीं मिला है। उसने अपनी बहिन महासेनगुप्ता का विवाह पुष्यभूति वंश के शासक आदित्यवर्द्धन से किया। हर्ष के पिता प्रभाकरवर्द्धन का जन्म महासेनगुप्ता के गर्भ से ही हुआ था[2] रायचौधुरी का कहना है कि गुप्तवंशीय राजकुमारी के गर्भ से जन्म लेने के कारण ही प्रभाकर के मन में साम्राज्यिक प्रतिष्ठा पाने की लालसा उत्पन्न हुई होगी। परन्तु हमें ऐसा नहीं लगता। जब परवर्ती-गुप्त नरेश स्वयं मामूली सामन्त मात्र थे तब उनके साथ विवाह-सम्बन्ध पुष्यभूतियों को क्या प्रेरणा दे सकता था ? हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह विवाह मात्र सुविधा की बात थी। राजस्थान के मालव जनपद के परवर्ती-गुप्त व थानेसर के पुष्यभूति दोनों पड़ौसी भी थे, वैश्यजातीय भी और मौखरियों के अधीन भी। इसलिए वे सहज मित्र थे, जिसका परिणाम यह विवाह-सम्बन्ध था। आदित्यसेन के अफसड़-अभिलेख में महासेनगुप्त के विषय में कहा गया है कि "श्रीमान् सुस्थितवर्मा के ऊपर प्राप्त विजय-सम्मान से चिह्नित (तथा) पूर्ण प्रस्फुटित कमल अथवा कुन्द पुष्प के समान (धवल वर्ण वाला) जिसका (अर्थात् महासेनगुप्त का) विपुल यश पूर्ण विकसित पान में पादपों की छाया में सोकर उठे सिद्ध-मिथुनों द्वारा शीतल जल वाले लौहित्य नदी के तटों पर आज भी गाया जाता है।" महासेनगुप्त के द्वारा लौहित्य के तट पर परास्त इस सुस्थितवर्मा को कुछ पुराने इतिहासकार मौखरिवंशीय मानते थे। परन्तु अब यह निश्चित हो गया है कि यह सुस्थितवर्मा कामरूप का राजा और हर्ष के मित्र भास्करवर्मा का पिता था। इस विजय के आधार पर बहुत से विद्वान् महासेनगुप्त को एक अत्यन्त शक्तिशाली नरेश मानते हैं। परन्तु हमारे विचार से यह धारणा एकदम गलत है क्योंकि महासेनगुप्त ने यह युद्ध स्वतन्त्र रूप से नहीं, गौडराज शशांक के अधीन मित्र के रूप में लड़ा था (दे०, आगे शशांक विषयक अनुभाग)।

महासेनगुप्त की कोई और सफलता ज्ञात नहीं है। सिनहा और देवहूति आदि यह मानते हैं कि महासेनगुप्त मूलतः मगध का शासक था। अतः वे यह प्रतिपादित करने को बाध्य हैं कि कामरूप पर विजय प्राप्त करने के बाद महासेनगुप्त के बुरे दिन आए और वह मगध छोड़ कर मालवा की ओर भागने के लिए विवश हुआ। इसके लिए वह

---

१. डी० आर० भाण्डारकर कॉमे० वॉल्यूम, पृ० १८०–८१।

२. महासेनगुप्ता को कहीं भी महासेनगुप्त की बहिन नहीं कहा गया है, परन्तु इन दोनों की समकालीनता एवं तत्कालीन युग में भाई बहिन के एक से नाम होने की प्रथा के आधार पर महासेनगुप्ता को दामोदरगुप्त की पुत्री प्रायः माना जाता है।

मगध पर चालुक्य, मौखरि व तिब्बती आक्रमणों का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। परन्तु चालुक्य कीर्त्तिवर्मा (५६७—९७ ई०) ने, जिसे मंगलेश के महाकूट स्तम्भ-लेख में मगध, वंग, कलिंग और अंग को जीतने का श्रेय दिया गया है, कभी भी मगध पर स्थायी प्रभुत्व स्थापित नहीं किया। इसके विपरीत मौखरियों का अधिकार मगध पर पहिले से ही था। मगध पर तिब्बती नरेश स्रोङ्-त्सन-गाम-पो का आक्रमण भी इतना भयंकर नहीं हो सकता था कि उसके कारण महासेनगुप्त मगध छोड़ने पर बाध्य होता। प्राचीन काल में पड़ौसी राज्यों के ऐसे धावे सामान्य बात थे; उनके कारण कोई राजा अपना राज्य स्थायी रूप से छोड़कर भाग नहीं जाता था। वास्तव में ये अवधारणायें इन इतिहासकारों के इस पूर्वाग्रह का परिणाम हैं कि महासेनगुप्त मगध का राजा था। इस पूर्वाग्रह का 'हर्षचरित' के साक्ष्य से (जिसमें स्पष्टतः महासेनगुप्त को ही 'मालवराज' बताया गया है) तालमेल बैठाने के लिए वह यह अस्वाभाविक कल्पना करते हैं कि महासेनगुप्त मगध से भाग कर पश्चिमी मालवा पर शासन करने लगा। ये विद्वान् पहिले तो उसे इतना शक्तिशाली बताते हैं कि उसने असम पर भी विजय प्राप्त कर ली थी और फिर कहते हैं कि वह इतना दुर्बल था कि अपना पैतृक राज्य छोड़ कर भाग गया और सुदूर स्थित एक नये प्रदेश पर शासन करने लगा। हमारा सुझाव है कि महासेनगुप्त राजस्थान के मालव जनपद का एक मामूली-सा राजा था जिसने गौडराज शशांक का प्रभुत्व मानकर गौडों के कामरूप-अभियान में भाग लिया और उस अवसर पर लौहित्य के तट पर युद्ध लड़ा जिसे अफसड़-लेख में उसका अपना युद्ध कह दिया गया है। इस सुझाव के स्वीकार से उपर्युक्त अस्वाभाविक कल्पनाओं के घोड़े दौड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

देवगुप्त, कुमारगुप्त और माधवगुप्त

महासेनगुप्त के दो लड़के थे—कुमारगुप्त और माधवगुप्त। इन दोनों का उल्लेख 'हर्षचरित' में मिलता है जिसके अनुसार 'मालवराज' के इन दो पुत्रों ने प्रभाकर के पास शरण ली थी (लग० ६०१-२ ई०) और प्रभाकर ने उनको अपने पुत्र राज्यवर्द्धन व हर्ष का सखा बना दिया था। इसके बाद कुमारगुप्त की चर्चा तो और कहीं भी नहीं मिलती परन्तु माधवगुप्त हर्ष के मित्र और महासेनगुप्त के उत्तराधिकारी के रूप में अफसड़-लेख में वर्णित है। लेकिन उसने और उसके उत्तराधिकारियों ने राजस्थान के मालव जनपद पर नहीं वरन् मगध पर शासन किया था और वह भी हर्ष की मृत्यु के बाद। इस बीच में लगभग ४५ वर्ष तक परवर्ती-गुप्त नरेश राज्यविहीन रहे। कुमारगुप्त व माधवगुप्त ने अपने फुफेरे भाई प्रभाकर के पास क्यों शरण ली इसका कारण कहीं नहीं बताया गया है, परन्तु तत्कालीन परिस्थिति से इसके विषय में कुछ अनुमान किया जा सकता है। जैसा कि हमने द्वितीय राज्यवर्द्धन के इतिहास का अध्ययन करते समय देखा है, ६०५ ई० में 'मालवराज' देवगुप्त ने गौडाधिप शशांक के साथ मिलकर ग्रहवर्मा मौखरि को मार डाला था। इस देवगुप्त का महासेनगुप्त से सम्बन्ध अज्ञात है परन्तु हो सकता है वह महासेनगुप्त का कोई सौतेला भाई, चचेरा भाई या माधवगुप्त का सौतेला भाई वगैरह कुछ रहा हो। हो सकता है उसने शशांक के प्रति उससे अधिक निष्ठा का प्रदर्शन किया हो जितनी महासेनगुप्त दिखा रहा था और इसलिए शशांक ने महासेनगुप्त को अपदस्थ करके देवगुप्त को मालवा राज्य का शासक बना दिया हो। यह घटनाक्रम अनुमानाश्रित है, परन्तु यथार्थ स्थिति इससे बहुत भिन्न नहीं रही होगी।

जो भी रहा हो, माधवगुप्त लगभग अर्द्ध शती तक राज्यविहीन रहा। उसने मगध का राज्य हर्ष की कृपा से पाया या हर्ष की मृत्यूपरान्त उस पर अधिकार किया, कहना कठिन है। लेकिन हर हालत में अफसड़-लेख का यह कथन कुछ अशुद्ध लगता है कि "(अपने) शत्रुओं का हनन सम्पन्न हो चुकने पर उसके द्वारा...हटाया गया, लोगों ने प्रणमन किया...'(मेरे) शक्तिमान शत्रु युद्ध में मारे जा चुके हैं, मेरे लिए कुछ भी करना शेष नहीं है'—उस वीर ने ऐसा मन में निश्चय किया, (और पुनः) श्री हर्षदेव से अपना सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा से...।"[1] इस वर्णन से ऐसा ध्वनित होता है कि माधवगुप्त ने अपना राज्य निष्कण्टक करने के बाद हर्ष से मित्रता की थी। परन्तु 'हर्षचरित' से

---

१. फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २५४।

स्पष्ट है कि वह हर्ष का सहचर बाल्यावस्था में ही बन गया था। वस्तुतः उसका जीवन-काल परवर्ती-गुप्त वंश के इतिहास को दो भागों में बाँटता है—उसके पूर्व परवर्ती-गुप्त नरेश मालव जनपद के स्वामी थे; माधवगुप्त की वृद्धावस्था में वे मगध के स्वामी बने।

जिस समय माधवगुप्त ने ६४६-७ में या इसके बाद मगध पर अधिकार स्थापित किया, वह लगभग साठ वर्ष का रहा होगा।[१] इसलिए वह बहुत अधिक समय तक शासन नहीं कर पाया होगा। लेकिन उसका लघु शासन काल भी उत्तर भारत के इतिहास में बहुत घटना प्रधान रहा क्योंकि इस बीच में हर्ष के साम्राज्य का विघटन हुआ, उसके मन्त्री अर्जुन या अरुणाश्व ने तीरभुक्ति पर अधिकार किया, भास्करवर्मा बंगाल का स्वामी बन बैठा, चीनी राजदूत वांग-हुएन्-त्ज़े ने नेपाल व तिब्बत की सहायता से आक्रमण किया और अरुणाश्व को बन्दी बनाकर चीन ले गया। आदित्यसेन के अफसड़-लेख में माधवगुप्त को अपनी 'हथेली' पर चक्रवहन करने वाला (=चक्रवर्ती) कहा गया है। यह वर्णन अतिरञ्जित ही है क्योंकि स्वयं परवर्ती-गुप्तों के अभिलेखों में ही माधवगुप्त को 'महाराजाधिराज' उपाधि नहीं दी गई है।[२] कई अभिलेखों में तो यह उपाधि स्वयं आदित्यसेन के लिए भी अप्रयुक्त है।

आदित्यसेन

माधवगुप्त का पुत्र और उत्तराधिकारी आदित्यसेन था। वह प्रथम परवर्ती-गुप्त नरेश है जिसके अपने अभिलेख मिलते हैं और जिसका अन्य राजाओं के लेखों में भी उल्लेख हुआ है। उसने निश्चित रूप से 'महाराजाधिराज' उपाधि भी धारण की। उसका सबसे प्रसिद्ध अभिलेख तिथिरहित अफसड़-अभिलेख है। इसका महत्त्व विशेषतः इसलिए है क्योंकि इसमें आदित्यसेन के सात पूर्वजों का वर्णन है। वस्तुतः परवर्ती-गुप्तों की आदित्यसेन के पूर्व की समस्त कीर्त्ति इसी लेख पर निर्भर है। उसके अन्य लेख शाहपुर व मन्दार से मिले हैं। उसका उल्लेख द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क अभिलेख में 'परमभागवत' उपाधि के साथ हुआ है। लेकिन यह बात विचित्र है कि इसमें उसके लिए 'महाराजाधिराज' उपाधि अप्रयुक्त है। इसके अतिरिक्त वैद्यनाथ धाम के मन्दिर से प्राप्त एक लेख में, जो मन्दारगिरि से लाया गया था, उसका वर्णन उपलब्ध है। यद्यपि लिपिशास्त्रीय दृष्टि से यह लेख सोलहवीं शती से प्राचीनतर नहीं है, परन्तु इसमें कुछ सत्य घटनाओं की स्मृति सुरक्षित लगती है।

आदित्यसेन का सर्वाधिक विश्वसनीय वर्णन उसके अपने अभिलेखों में है। उसके अफसड़-लेख में उसे 'क्षितीश चूड़ामणि' बताया गया है। कहा गया कि वह ऐसा लोकपाल था जिसके श्वेत छत्र से वसुधा मण्डल आवृत्त था और जिसके चरणों की प्रबल प्रतापाग्नि अन्य राजाओं के मस्तकों की चूड़ाओं से न्यस्त थी। यह विवरण आलंकारिक और अतिशयोक्तिपूर्ण माना जा सकता है, विशेषतः अगर हम यह स्मरण रखें कि उसके इस लेख में ही नहीं ६६ वें वर्ष (=६७२ ई०) के शाहपुर प्रतिमा-लेख में भी उसे कोई साम्राज्यिक उपाधि नहीं दी गई है। उसका ६७२ ई० तक 'महाराजाधिराज' उपाधि धारण न करना कम से कम नाम मात्र के लिए ही सही, किसी परमाधीश्वर के अधीन होने का प्रमाण माना जाना चाहिए। स्मरणीय है कि द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क-लेख में भी उसे मात्र 'महाराज' कहा गया है। इससे भी लगता है कि उसने पूर्ण स्वतन्त्रता की स्थिति अपने शासन के अन्तिम दिनों में ही अर्जित की होगी। उसके परमाधीश्वर की पहिचान अनिश्चित है, लेकिन हो सकता है कि उसका स्वामी भोगवर्मा मौखरि रहा हो। नेपाल के शासक द्वितीय जयदेव की पशुपतिनाथ-प्रशस्ति (७२९ ई०) के अनुसार जयदेव की माता (द्वितीय शिवदेव की पत्नी वत्सदेवी) बाहुबलाढ्य मौखरियों के वर्मा वंश के चूड़ामणि भोगवर्मा की पुत्री और

---

१. हर्ष से ६०१-२ ई० के लगभग भेंट होने के समय उसकी आयु १५-१६ वर्ष थी और उसके बड़े भाई की १८ वर्ष।

२. द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क-अभिलेख में माधवगुप्त का उल्लेख है। इसमें जहाँ उसकी उपाधि थी वह अंश टूट गया है। परन्तु उसमें केवल 'महाराज' शब्द लिखे जाने योग्य स्थान है, 'महाराजाधिराज' लिखे जाने योग्य नहीं।

'मगधाधिप' आदित्यसेन की दौहित्री थी। यह भोगवर्मा कहाँ का राजा था, यह कहीं नहीं बताया गया है परन्तु ये तथ्य कि (१) आदित्यसेन ने उससे अपनी पुत्री का विवाह किया, (२) भोगवर्मा की अपनी पुत्री और आदित्यसेन की दौहित्री वत्सदेवी नेपाल की रानी बनी तथा (३) भोगवर्मा को इस लेख में अपने कुल का चूड़ामणि तथा अपनी कीर्त्ति से सब शत्रुओं को शर्मिन्दा करने वाला कहा गया है, यह संकेत देते हैं कि यह भोगवर्मा मौखरि साम्राज्य-निर्माता मौखरियों से सम्बन्धित रहा होगा।[1]

देवगुप्त और विष्णुगुप्त

आदित्यसेन का उत्तराधिकारी उसका पुत्र देवगुप्त था। उसका कोई लेख अभी तक नहीं मिला है लेकिन द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क अभिलेख में उसे 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' कहा गया है। सिनहा ने उस की पहिचान उस देववर्मा से की है जो ६७२-९५ में भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री ई-त्सिंग के अनुसार उसकी यात्रा के समय भूतकाल में महाराज श्री गुप्त द्वारा बनवाए गए चीनी मन्दिर को प्रदत्त भूमि का स्वामी था। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' श्री विष्णुगुप्त था, जो परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी कमला देवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। उसके मंगराव-लेख में उसके शासन के १७ वें वर्ष का उल्लेख है। कौलेश्वरी-पर्वत (जिला हजारी बाग) से भी उसके शासन काल का एक शिलालेख मिला है जिसमें उसे 'परमभट्टारक' महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णुगु······ 'कहा गया है। इन दोनों ही अभिलेखों में उसकी वंशावली नहीं दी गई है, परन्तु इनकी लिपि के आधार पर इनके विष्णुगुप्त को गुप्त सम्राट् विष्णुगुप्त न मानकर परवर्ती-गुप्त नरेश विष्णुगुप्त ही माना जा सकता है।

द्वितीय जीवितगुप्त

विष्णुगुप्त के उपरान्त उसके पुत्र 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' द्वितीय जीवितगुप्त ने, जो 'परमभट्टारिका राज्ञी' इज्जादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, शासन किया। उसका एक सुप्रतिथ तिथिविहीन अभिलेख देवबरनार्क (जिला शाहाबाद) में एक मन्दिर के स्तम्भ पर उत्कीर्ण मिला है। इसका उद्देश्य वरुणवासी उपाधि से अभिहित सूर्य के लिए वारुणिका नाम ग्राम के दान को, जो पहिले परमेश्वर बालादित्य, परमेश्वर शर्ववर्मा और परमेश्वर अवन्तिवर्मा द्वारा अनुमोदित हुआ था, द्वितीय जीवितगुप्त द्वारा पुनः अनुमोदित किए जाने का उल्लेख करना है। सिनहा के अनुसार इस लेख से द्वितीय जीवितगुप्त का बनारस के पश्चिमी में गोमती तक अधिकार प्रमाणित होता है। द्वितीय जीवितगुप्त को प्रायः वह गौडराज माना जाता है जिसका उन्मूलन यशोवर्मा ने किया था।

रामगुप्त और जीवगुप्त

कुछ वर्ष पूर्व उत्तरी बिहार के कटरा स्थल से एक अभिलेख मिला था जिसमें दो राजाओं का उल्लेख है—तारा भट्टारिका के गर्भ से उत्पन्न 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' रामगुप्तदेव और रामगुप्त की पत्नी रामा भट्टारिका के गर्भ से उत्पन्न 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' जीवगुप्तदेव। इस जीवगुप्त को लघु जीवगुप्त कहा गया है, इसलिए यह अनुमान किया गया है कि उसके पितामह और रामगुप्त के पिता का नाम भी जीवगुप्त रहा होगा। दि० च० सरकार ने इन राजाओं को परवर्ती-गुप्त वंश का सदस्य और वृद्ध जीवगुप्त को द्वितीय जीवितगुप्त माना है। लेख का प्राप्ति स्थल व लिपि इस सुझाव के अविरुद्ध हैं। हो सकता है कि यशोवर्मा के आक्रमण के बाद परवर्ती-गुप्तों का अधिकार उत्तरी बिहार तक सीमित रह गया हो। परन्तु यह सम्भावना कि ये राजा उत्तरी बिहार के स्थानीय नरेश थे, सर्वथा विस्मृत नहीं की जा सकती।

---

१. सिनहा का यह सुझाव अनुमानाश्रित है कि मौखरि भोगवर्मा आदित्यसेन के अधीन था। स्थिति इससे बिलकुल उल्टी लगती है।

शशांक

गौड देश और शशांक[1] क उदय

गौड का प्रथम ऐतिहासिक नरेश जयनाग था। उसके अस्तित्व का ज्ञान हमें वप्पघोषवाट-दानशासन से होता है जिसे बंगाल के मुर्शिदाबाद जिले में स्थित प्राचीन कर्णसुवर्ण नामक नगर से जारी किया गया था। इसके अतिरिक्त उसकी धनुर्धारी प्रकार की मुद्राएँ भी उपलब्ध हैं। लेकिन बंगाल का प्रथम महत्त्वपूर्ण नरेश शशांक था जिसने बंगाल के बाहर अनेक प्रदेशों को जीता। उसने जयनाग के उपरान्त शासन किया प्रतीत होता है। उसका उल्लेख श़ुआन-च्वांग तथा 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' के लेखक ने किया है। उसके अपने अभिलेख भी मिलते हैं। इनमें रोहतासगढ़ से प्राप्त साँचा-मुहर लेख, जो एक शिला पर उत्कीर्ण है, उसे 'श्रीमहासामन्त शशांक' कहता है। इससे लगता है कि उसने एक सामन्त के रूप में शासन प्रारम्भ किया था। लेकिन उसका उदय निश्चय ही गौड देश में हुआ था। श़ुआन-च्वांग के अनुसार शी-शाङ्-क्या (= शशांक), जिसने राज्यवर्द्धन को मारा था, 'पूर्वी भारत' का राजा था और उसकी राजधानी कर्णसुवर्ण थी। बाण के 'हर्षचरित' में राज्यवर्द्धन को मारने वाले राजा का नाम नहीं दिया गया है, परन्तु इस ग्रन्थ में उसके लिये 'गौडाधिप', 'गौडाधम' तथा 'दुष्टगौडभुजंग' इत्यादि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं और कहा गया है कि राज्यवर्द्धन की हत्या की दुःखद सूचना पाकर हर्ष ने पृथिवी को गौडविहीन करने की प्रतिज्ञा की थी। इससे स्पष्ट है कि शशांक गौड देश का निवासी था अन्यथा बाण गौडजनों के लिए इस प्रकार निन्दासूचक शब्दों का प्रयोग नहीं करता। 'हर्षचरित' के टीकाकार शंकर ने तो स्पष्ट कहा है कि बाण द्वारा उल्लिखित दुष्ट गौडराज का नाम शशांक था।

बंगाल में अपनी शक्ति सुदृढ़ करने के उपरान्त शशांक ने सर्वप्रथम सम्भवतः कामरूप पर आक्रमण किया। इसका ज्ञान हर्ष के समकालीन कामरूप-नरेश भास्करवर्मा के दूबी-दानशासन से होता है। यद्यपि यह लेख कामरूप राजवंश का है और इसमें भास्करवर्मा और कामरूप के अन्य नरेशों की असफलताओं को छिपाने अथवा लघुतर करने का प्रयास किया गया है, फिर भी इसका लेखक यह स्वीकृत करता है कि (सम्भवतः सुस्थितवर्मा की मृत्यु के तत्काल बाद) गौड-नरेश ने सबल जल और हस्तिसेना सहित कामरूप पर आक्रमण किया था जिसका प्रतिरोध एक लघु सैन्य के साथ सुस्थितवर्मा के पुत्रों, सुप्रतिष्ठितवर्मा और भास्करवर्मा, ने किया (श्लोक, ६८)। अगले श्लोक में इन दोनों भाइयों की तुलना बल और अच्युत (बलराम और कृष्ण) के साथ की गई है और गौडराज की असुरराज बाण के साथ। इसके आगे कहा गया है कि शत्रुसेना को हतोत्साह कर देने के बावजूद सुप्रतिष्ठित और भास्कर घायल होकर बेहोश हो गये (मोहान्गतौ) और दुर्भाग्यवश (विधिवशात्) बन्दी बना लिए गए (आसादितौ)। गौडराज उन्हें वहाँ से अपने देश ले गया लेकिन वे अपने गुणों के कारण (गुणवत्तयैव) शीघ्र ही स्वदेश लौटने में सफल हुए (प्राप्य स्वराज्यमचिरात्पुनरागतौ तौ, श्लोक ७०-७१)।[2] स्पष्ट है कि उन्होंने गौड-नरेश की प्रभुता स्वीकृत करके मुक्तिलाभ किया होगा। इस गौड-नरेश की पहिचान देवहूति ने जयनाथ से की है[3] और र० च० मजूमदार[4] तथा पी० डी० चौधुरी ने महासेनगुप्त के साथ (जिसे आदित्यसेन के अफसड़-अभिलेख में सुस्थितवर्मा पर विजय प्राप्त करने का श्रेय दिया गया है) की थी।[5] लेकिन महासेनगुप्त न तो किसी साक्ष्य में गौड-नरेश कहा गया है और न अफसड़-लेख उसके द्वारा कामरूप के राजकुमारों को बन्दी बनाये जाने का उल्लेख करता है जिसकी चर्चा उस अभिलेख में अवश्य होती अगर महासेनगुप्त इस अभियान का नेता रहा होता। हमारे विचार से महासेनगुप्त ने कामरूप पर आक्रमण

---

१. विस्तार से अध्ययन के लिये दे०, गोयल, श्रीराम, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, मेरठ, १९८६, अध्याय ६।

२. सिनहा को यह भ्रम है कि इस युद्ध में गौड-नरेश पराजित हुआ था।

३. देवहूति, हर्ष : ए पोलिटिकल स्टडी, १९८३, पृ० ४३।

४. मजूमदार, कॉ० हि० इ०, ३, १९८१, पृ० १९४, १९८।

५. जे० ए० आर० एस०, १२, पृ० १६-३३।

स्वतन्त्ररूपेण नहीं, सम्भवतः शशांक के प्रभुत्व में उसकी सहायतार्थ किया था। इस सुझाव के स्वीकार से उत्तर भारतीय राज्यों की तत्कालीन कूटनीतिक गतिविधि अधिक बोधगम्य हो जाती है। उदाहरणार्थ, अब हम यह कह सकते हैं कि भास्करवर्मा ने हर्ष के साथ मैत्री शशांक से प्रतिशोध लेने के लिए की थी तथा महासेनगुप्त और शशांक—इन दोनों का कामरूप के प्रति शत्रुभाव शशांक और देवगुप्त की मैत्री का मूलसूत्र था।

अब से कुछ समय पूर्व तक उड़ीसा में शशांक की सफलता का ज्ञान केवल उसके गुप्त संवत् ३०० (=६१९ ई०) के गंजाम--अभिलेख से होता था जिसके अनुसार शैलोद्भववंशीय महासामन्त द्वितीय सैन्यभीत माधवराज, जो कोंगोद मण्डल (दक्षिण उड़ीसा) का स्वामी था, 'महाराजाधिराज' शशांक के प्रभुत्व को मानता था। लेकिन अब मिदनापुर से उपलब्ध दो दानलेखों से ज्ञात होता है कि शशांक ने उत्तरी उड़ीसा के मानवंशीय राजाओं को भी परास्त किया था और सोमदत्त नामक सामन्त महाराज को उत्कल (उड़ीसा) तथा दण्डभुक्ति (मिदनापुर) पर शासन करने के लिये नियुक्त किया था। सोमदत्त के उपरान्त उत्कल में भानुदत्त ने उसी पद के साथ शासन किया यद्यपि उसके अभिलेखों में परमाधीश्वर के रूप में शशांक का उल्लेख नहीं मिलता।

शशांक का मगध पर अधिकार पहले से ही था, जैसा कि रोहितासगढ़ से प्राप्त मुहर-साँचा अभिलेख से सिद्ध है। इसके बाद उसका इस प्रदेश पर अधिकार बहुत समय तक बना रहा। एक, उसके द्वारा ६०६ ई० में मौखरि राज्य पर आक्रमण यह सिद्ध करता है कि उसके पूर्व वह मगध तथा उत्तर प्रदेश के काफी बड़े भूभाग को अपने अधिकार में दृढ़रूपेण कर चुका। दूसरे, नालन्दा और गया से उसके सिक्कों की उपलब्धि उस प्रदेश पर उसके प्रभाव-विस्तार की सूचक है। तीसरे, 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' में सोम (= शशांक) को बनारस तक विस्तृत प्रदेश का स्वामी बताया गया है।[1] चौथे, शुआन-च्वांग ने, ६३७ ई० में मगध की यात्रा करते समय लिखा है कि शशांक ने 'अभी हाल ही में' भगवान् बुद्ध के चरण चिह्नों से युक्त शिला को गंगा में फिकवा दिया था।[2] अन्यत्र वह लिखता है कि शशांक ने पवित्र बोधिवृक्ष को कटवाकर उसकी जड़ों को खुदवा डाला था।[3] इसी प्रकार कुशीनगर के प्रसंग में भी उसने शशांक की बौद्ध धर्म विरोधी गतिविधि का उल्लेख किया हैं।[4] इन साक्ष्य से स्पष्ट है कि ६३७ ई० के पूर्व किसी समय तक शशांक का सम्पूर्ण बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ भाग पर दृढ़ अधिकार था।

शशांक द्वारा मौखरियों का उन्मूलन व राज्यवर्द्धन की हत्या

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ६०५ ई० के कुछ पूर्व शशांक के अभ्युत्थान के कारण तत्कालीन मौखरि राजा ग्रहवर्मा के हाथ से मगध और पूर्वी उत्तर प्रदेश निकल गए और मौखरियों का अधिकार केवल पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक सीमित रह गया। इसके बाद शशांक ने महासेनगुप्त के किसी सम्बन्धी देवगुप्त को (जिसने राजस्थान के मालव जनपद पर सम्भवतः शशांक की सहायता से अधिकार कर लिया था) कन्नौज पर आक्रमण करने के लिए भेजा। देवगुप्त इस अभियान में सफल हुआ और जिस समय थानेसर में प्रभाकर की मृत्यु हुई, देवगुप्त ने ग्रहवर्मा को मार डाला। बाण के वर्णन से स्पष्ट है कि गौड-नरेश अर्थात् शशांक[5] (बाण उसका नाम नहीं लिखता) मालवराज अर्थात् देवगुप्त (बाण उसका भी नाम नहीं लिखता) के आक्रमण के समय उसी के समीप ही कहीं उपस्थित था क्योंकि जब द्वितीय राज्यवर्द्धन दस सहस्र अश्वारोहियों के साथ मालवराज को दण्डित करने आया तो गौड़राज ने (जो अपने मित्र मालवराज की सहायता नहीं कर पाया था) राज्यवर्द्धन को धोखे से मार डाला। इसके बाद बाण कन्नौज में 'गौडसंकट' की बात भी कहता है। क्योंकि राज्यवर्द्धन अपनी बहिन को कन्नौज के बन्दीघर से छुड़ा नहीं पाया था,

---

१. सोमाख्योऽपि ततो राजा एकवीरो भविष्यति।
गंगातीर पर्यन्तं वाराणस्यामतः परम् ॥७१५॥
—इ० हि० इ०, मूलपाठ।

२. वाटर्स, ट्रैवेल्स्, २, पृ० ९२।

३. वही, पृ० ११५, ११६।

४. वही, पृ० ४३।

५. डी० सी० गंगूली (आई० एच० क्यु०, १९४७, पृ० ५३) को बाण के गौडराज की पहिचान शशांक से करने में आपत्ति है।

इसलिए कन्नौज पर 'गौडसंकट' का अर्थ वहाँ शशांक का अधिकार ही हो सकता है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि शशांक ग्रहवर्मा की हत्या के समय देवगुप्त के साथ तो नहीं था परन्तु कन्नौज से बहुत दूर भी नहीं था। बाण ने मौखरि राज्य पर मालवराज व गौड-नरेश के आक्रमण का इस प्रकार वर्णन किया है मानो ये अप्रत्याशित घटनाएँ थीं। मजूमदार जैसे अनेक आधुनिक इतिहासकार भी इन्हें बड़ी तेजी से अचानक घटी ऐसी घटनाएँ मानते हैं जिनका मौखरियों और पुष्यभूतियों को अनुमान तक नहीं था।[1] परन्तु हमें यह मान्यता सही नहीं लगती। जैसा कि सर्वथा स्पष्ट है ग्रहवर्मा की हत्या के पूर्व शशांक ने मौखरियों से बिहार व पूर्वी उत्तर प्रदेश भी जीते होंगे जिनकी सूचना कन्नौज और थानेसर पहुँची ही होगी। मालव जनपद में महासेनगुप्त का पतन और देवगुप्त का अभ्युत्थान कन्नौज व थानेसर के राजनेताओं को केवल मालूम ही नहीं वरन् चिन्ता का विषय भी रहे होंगे। क्योंकि महासेनगुप्त के दो पुत्रों को थानेसर में शरण लेनी पड़ी थी, इसलिये देवगुप्त का मौखरियों के विरुद्ध तथा शशांक के पक्ष में होना भी कन्नौज और थानेसर में चर्चा और चिन्ता का विषय रहा होगा। ऐसी स्थिति में यह सोचना कि ग्रहवर्मा के ऊपर आए संकट का ज्ञान स्वयं मौखरियों और पुष्यभूतियों को नहीं था, ठीक नहीं होगा। जो भी हो, ग्रहवर्मा तथा द्वितीय राज्यवर्द्धन की हत्या से शशांक की शक्ति बहुत बढ़ गई। यह स्थिति थी जब लगभग सोलह वर्षीय हर्ष थानेसर की गद्दी पर बैठा।

पुष्यभूति वंश

पुष्यभूति वंश की जाति

पुष्यभूति या वर्द्धन वंश[2] की जाति का प्रश्न कुछ विवादग्रस्त बना हुआ है। 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' में पुष्यभूतियों को वैश्यजातीय बताया गया है।[3] इसी प्रकार युआन-च्वांग के 'यात्रा विवरण' में यह बात स्पष्टतः लिखी हुई है कि हर्ष शीलादित्य 'फी-शे' या वैश्य जाति का था।[4] इसलिए पुष्यभूति वंश के राजाओं को सामान्यतः वैश्य माना जाता है। यही मत सही भी है। लेकिन कनिंघम का विचार था कि पुष्यभूति राजा बैस राजपूत थे जिससे युआन-च्वांग को उनके वैश्य होने का भ्रम उत्पन्न हो गया होगा।[5] लेकिन युआन-च्वांग ने अन्य अनेक राजाओं की जाति सही लिखी है। वह भास्करवर्मा को ब्राह्मण, वलभी के ध्रुवभट को क्षत्रिय, सिन्ध-नरेश को शूद्र तथा पारियात्र के राजा को वैश्य बताता है। इसलिए यह मानना न्यायसंगत होगा कि उसे हर्ष की भी सही जाति मालूम थी जो उसके काल में निश्चय ही चर्चा का विषय रही होगी।

कुछ विद्वानों का यह दृढ़ मत रहा है कि हर्ष चन्द्रवंशी क्षत्रिय था। इस मत का आधार 'हर्षचरित' का वह स्थल है जहाँ राज्यश्री और ग्रहवर्मा के विवाह के अवसर पर उनके वंशों की तुलना चन्द्र और सूर्य वंशों से की गई है (सोमसूर्यवंशाविव पुष्यभूतिमुखरवंशौ)। आग्रह किया जाता है कि यहाँ पुष्यभूति और मौखरि वंशों को चन्द्र और सूर्यवंशी कहा गया है और क्योंकि मौखरि सूर्यवंशी थे, इसलिए पुष्यभूति नरेश चन्द्रवंशी रहे होंगे। इस मत के प्रत्याख्यान में अनेक विद्वानों द्वारा बार-बार ध्यान दिलाया गया है कि यहाँ बाण ने चन्द्र और सूर्य वंशों के साथ पुष्यभूति और मौखरि वंशों की मात्र तुलना की है, स्वयं उनको चन्द्र और सूर्य वंश नहीं कहा है। अभी हाल ही में शंकर गोयल ने 'हर्षचरित' से कुछ ऐसे अंश उद्धृत किये हैं जिनसे प्रश्नातीत रूप से प्रमाणित हो जाता है कि हर्ष का वंश चन्द्र या सूर्य वंशों से सम्बन्धित नहीं था। इस ग्रन्थ के दूसरे उच्छ्वास में बाण ने हर्ष के दौवारिक पारियात्र का

---

१. क्ला० ए०, पृ० ७६।

२. इस वंश को 'वर्द्धन' के बजाय 'पुष्यभूति' कहना श्रेष्ठतर है। बाण इसे बराबर 'पुष्यभूति वंश' कहता है। यथा—'पुष्यभूति मुखर वंशौ' (चतुर्थ उच्छ्वास, पृ० २५०) तथा 'यो मालवैः परिभवः पुष्यभूतिवंशस्य' (षष्ठ उच्छ्वास, पृ० ३२४)।

३. जायसवाल, इ० हि० इ०, पृ० २८; श्लोक ६१७ (नीचे उद्धृत)।

४ वाटर्स, १, पृ० ३४३।

५. वही, पृ० ३४४।

वर्णन करते हुए कहा है: "उसके कानों में दो मणिकुण्डल शोभित हो रहे थे मानो वे (अर्थात् मणिकुण्डल) चन्द्र और सूर्य थे और वहाँ यह पूछने के लिये लाए गये थे कि यदि चन्द्रवंश या सूर्यवंश में भी हर्ष जैसा कोई सम्राट् हुआ हो तो बताओ।"[१] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि स्वयं बाण की दृष्टि में हर्ष न चन्द्रवंशी था और न सूर्यवंशी। अपने इस मन्तव्य को वह तीसरे उच्छ्वास में स्पष्टतर करता है। इस उच्छ्वास में जब हर्ष के वंश का संस्थापक पुष्यभूति भैरवाचार्य की सहायता करता है तब लक्ष्मी उसे दर्शन देकर वर देती है: राजन् अपने बल के इस उत्कर्ष से और भगवान् शिव भट्टारक की असाधारण भक्ति से तू एक महान् राजवंश का कर्त्ता होगा। सूर्य और चन्द्रमा के बाद तू तीसरा स्थान प्राप्त करेगा (सूर्याचन्द्रमसोस्तृतीय इव)।··· उसी वंश में हरिश्चन्द्र के समान समस्त द्वीपों पर शासन करने वाला चक्रवर्ती हर्ष उत्पन्न होगा···आदि।[२] बाण के इस कथन से, जिसकी ओर अन्य किसी इतिहासकार ने अभी तक ध्यान नहीं दिया है, यह सिद्ध हो जाता है कि हर्ष का सम्बन्ध चन्द्र या सूर्य वंशी क्षत्रियों से नहीं था। इस प्रसंग में यह भी स्मरणीय है कि सम्पूर्ण 'हर्षचरित' में बाण ने हर्ष के वंश को कहीं भी क्षत्रिय नहीं कहा है। वह इस वंश के राजाओं की वीरता की प्रशंसा को करता है परन्तु बिना उसको क्षत्रिय बताये। इसलिये हमारे विचार से पुष्यभूति वंश की उत्पत्ति के विषय में शुआन-च्वांग तथा 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' के साक्ष्य को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है।[३]

हर्ष के पूर्वज : प्रभाकरवर्द्धन तक

स्थाण्वीश्वर के राजनीतिक इतिहास का विवरण प्रारम्भ करते हुए बाण कहता है कि एक समय वहाँ पुष्यभूति नामक राजा हुआ। उसका उल्लेख पुष्यभूति अभिलेखों में नहीं मिलता। बाण ने उसे 'कर्मचारी, मन्त्री और अपने भुजबल से परास्त बड़े-बड़े सामन्तों द्वारा सेवित' एवं 'युद्ध में शत्रुघ्न के समान' तथा 'शूरसेनों को पराभूत करने वाला' (शूरः शूरसेनाक्रमणे) कहा है। आगे चल कर बाण ने पुष्यभूति से एक राजवंश के प्रारम्भ होने की बात कही है जिसमें कालक्रमेण प्रभाकरवर्द्धन नाम का राजाधिराज हुआ। प्रभाकर का दूसरा नाम प्रतापशील था। किन्तु हर्ष के बांसखेड़ा एवं मधुबन-अभिलेखों से प्रभाकर के पूर्व हुए तीन अन्य शासकों के नाम ज्ञात होते हैं।[४] इनमें प्रथम नरवर्द्धन था जिसनी पत्नी वज्रिणीदेवी थी। उसे अभिलेखों में 'महाराज' कहा गया है। सम्भवतः वह एक सामन्त शासक मात्र था। प्रथम राज्यवर्द्धन इस वंश का दूसरा शासक था। उसकी पत्नी का नाम अप्सरोदेवी बताया गया है। वह सूर्य का उपासक था (परमादित्यभक्तः)। उसकी उपाधि भी केवल 'महाराज' थी। प्रथम राज्यवर्द्धन के पश्चात् आदित्यवर्द्धन शासक बना। उसे भी 'परमादित्यभक्त' कहा गया है। उसने महासेनगुप्ता से विवाह किया जो स्पष्टतः परवर्ती-गुप्त शासक महासेनगुप्त की बहन थी। यह बता सकना कठिन है कि यह वैवाहिक सम्बन्ध उसके पिता के जीवनकाल में ही हुआ अथवा पिता की मृत्यु के पश्चात्। मजूमदार का कहना है, यह सम्बन्ध निश्चित-रूपेण पुष्यभूतियों की शक्ति तथा महत्त्व में वृद्धि प्रदर्शित करता है। स्मिथ का भी अनुमान था कि इस तथ्य ने कि उसकी माता गुप्तवंशीया राजकुमारी थी, प्रभाकरवर्द्धन की महत्त्वाकांक्षा को उत्तेजित किया। परन्तु यह अनुमान इस पूर्व-धारणा पर अवलम्बित है कि परवर्ती-गुप्त वंश बहुत महत्त्वपूर्ण और मौखरियों के समकक्ष था। परन्तु जैसा कि पीछे देखा जा चुका है (पृ० १२-३), यह मान्यता निराधार है।

---

१. हर्षचरित, पृ० १०५। द्र०, गोयल, शंकर, सोशल मिल्यु ऑव दि पुष्यभूतिज़,' जे० बी आर० एस०, पटना, में प्रकाश्य।

२. हर्षचरित, पृ० १९६।

३. इस समस्या पर अन्य मतों के लिए द्र०, गोयल, श्रीराम, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, मेरठ, १९८६, पृ० १३५ अ०।

४. इन तीन शासकों के विषय में मजूमदार (क्लासिकल एज, पृ० ९७) ने लिखा है कि वे हूणों का अथवा गुप्तों का अलग-अलग-अलग समयों में प्रभुत्व स्वीकार करते थे तथा यह भी संभव है कि उन पर मौखरियों की प्रभुता रही हो।

अभिलेखों के अनुसार आदित्यवर्द्धन के पश्चात् उसकी रानी महासेनगुप्ता से उत्पन्न उसका पुत्र प्रभाकरवर्द्धन शासक बना। बाण के अनुसार उसका एक अन्य नाम प्रतापशील था। वह इस राजवंश का प्रथम शासक था जिसने 'परमभट्टारक महाराजाधिराज' उपाधि धारण की। हर्ष के बांसखेड़ा-अभिलेख में उसका एक ऐसे शासक के रूप में वर्णन किया गया है जिसका यश चारों समुद्रों के पार पहुँच गया था एवं जिसने अपने शौर्य अथवा प्रेम द्वारा अन्य शासकों पर विजय प्राप्त कर ली थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसके समय में स्थाण्वीश्वर पूर्ण प्रभुता सम्पन्न राज्य बन गया था। यह निष्कर्ष इस तथ्य से भी समर्थित होता है कि उसका विधिवत् राज्याभिषेक संस्कार सम्पन्न हुआ था[1]। बाण ने उसकी राजनीतिक उपलब्धियों का आलंकारिक शैली में वर्णन किया है। वह कहता है कि प्रभाकरवर्द्धन 'हूण रूपी हरिणों के लिए सिंह, सिन्धु देश के राजा के लिए ज्वर, गुर्जर के लिए (चैन से न सोने देने वाला) उन्निद्र रोग, गन्धारराज रूपी मस्त हाथी के लिए कूटपाकल नामक बुखार, लाट देश की चातुरी को समाप्त करने वाला तथा मालव-लक्ष्मी रूपी लता को काटने वाला कुठार' था[2]। उसके ये शत्रु राज्य दो वर्गों में विभाज्य हैं—एक, पश्चिमोत्तर प्रदेश के हूण, गन्धार और सिन्ध और दूसरे थानेसर के दक्षिण में स्थित मालव, लाट और गुर्जर। मालव जनपद पर प्रभाकर का कुछ प्रभाव इस तथ्य से संकेतित है कि मालवराज के पुत्रों (कुमारगुप्त व माधवगुप्त) ने उसके पास शरण ली थी। ऐहोले-लेख के अनुसार लाट, मालव और गुर्जरों ने बाद में चालुक्य द्वितीय पुलिकेशी के प्रभुत्व को माना था। यह तथ्य पुष्यभूति-चालुक्य वैमनस्य में इन राज्यों की भूमिका का प्रमाण है। पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्रभाकर के काल में हुए हूण-पुष्यभूति संघर्ष का प्रमाण स्वयं 'हर्षचरित' में ही मिलता है। सिन्ध में भी हर्ष द्वारा लूटपाट किए जाने का उल्लेख भी 'हर्षचरित' में है। लेकिन शुआन-च्वांग ने कु-चे-लो (गुर्जर) तथा मो-ला-पो (मालवा) का कोई सम्बन्ध हर्ष से नहीं बताया है, गन्धार को कपिशा के अधीन कहा है तथा सिन्धु का एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में उल्लेख किया है। इन सब साक्ष्य को समवेतरूपेण ध्यान में रखने पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त छ: राज्यों में कुछ प्रभाकरवर्द्धन के धावों के शिकार हुए थे और कुछ के साथ उसके शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध थे। लेकिन इनमें कोई भी उसके साम्राज्य में सम्मिलित नहीं था।[3]

'हर्षचरित' के अनुसार प्रभाकरवर्द्धन की रानी यशोमती या यशोवती के गर्भ से राज्यवर्द्धन (द्वितीय) तथा हर्ष नामक दो पुत्र तथा राज्यश्री नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। राज्यश्री का विवाह मौखरि राजा ग्रहवर्मा से (६०४-५ ई०) हुआ। उस समय राज्यश्री की आयु १२-१३ वर्ष रही होगी। वह हर्ष से, जिसका जन्म लग० ५९० में हुआ, दो वर्ष छोटी थी। प्रभाकर यशोमती से उसके विवाह की बात करते हुए उसे 'तरुणी' (तरुणीभूता वत्सा राज्यश्री) और उन्नत पयोधर वाली (पयोधरोन्नतिरस्या:) कहता है। उसकी तुलना में ग्रहवर्मा की आयु बहुत अधिक थी। अन्यत्र बाण ने बताया है कि दिवाकरमित्र, जो ग्रहवर्मा का बालसखा था, हर्ष से भेंट के समय अधेड़ आयु का (मध्यमे वयसि) था। इसलिए इस विवाह के समय, जो हर्ष और दिवाकरमित्र की भेंट के कुछ ही पहिले हुआ, ग्रहवर्मा भी अधेड़ आयु का रहा होगा। अगर अधेड़ आयु का अर्थ ३५ वर्ष के आस पास भी माना जाये तो ग्रहवर्मा राज्यश्री से कम से कम २०-२२ वर्ष बड़ा रहा होगा। अत: यह विवाह निश्चय ही बेमेल था।

द्वितीय राज्यवर्द्धन

प्रभाकरवर्द्धन के उपरान्त लघुकाल के लिये उसके बड़े पुत्र द्वितीय राज्यवर्द्धन ने शासन किया (६०५-६ ई०)। यद्यपि

---

१. हर्षचरित, पृ० २०३।

२. वही (हूणहरिणकेसरी सिन्धुराजज्वरो गुर्जर-प्रजागरो गान्धाराधिपगन्धद्विपकूटपाकलो लाटपाटव-पाटच्चरो मालवलक्ष्मीलतापरशु……)।

३. द्र०, क्ला० ए०, पृ० ९८।

बाण के 'हर्षचरित' में घटनाओं का क्रम और वर्णन जिस प्रकार दिया गया है उसमें प्रभाकर और हर्ष के मध्य द्वितीय राज्यवर्द्धन के लिये विधिवत् शासन करने का अवकाश नहीं है परन्तु हर्ष के अभिलेखों से स्पष्ट है कि राज्यवर्द्धन 'महाराधिराज' बना था। अपने पिता के जीवन काल में वह हूणों से लड़ने के लिये गया था और पिता की मृत्यूपरान्त भिक्षु बनने की इच्छा के बावजूद वह शासक बना। जब उसे मालूम हुआ कि राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा को मालवराज ने (जो स्पष्टतः देवगुप्त था) मार डाला है तो वह सेना लेकर कन्नौज गया परन्तु देवगुप्त को परास्त करने में सफलता पाने के बावजूद 'दुष्ट गौडराज' (स्पष्टतः शशांक) के हाथों धोखे से मार डाला गया। इसकी चर्चा शशांक आदि के सन्दर्भ में पीछे की जा चुकी है (पृ० २४-५)।[१]

हर्ष शीलादित्य

द्वितीय राज्यवर्द्धन की हत्या हो जाने पर उसका अनुज हर्ष (उपाधि शीलादित्य) राजा बना (ज्ञात तिथियां ६०६ से ६४६ ई० तक)। वह प्राचीन भारत का एक महान् नरेश माना जाता है। उसके शासन का इतिहास बाण के 'हर्षचरित', उसके काल में भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री शुआन-च्वांग के ग्रन्थ 'शी-यू-की' तथा शुआन-च्वांग की 'जीवनी', अन्य अनेक चीनी ग्रन्थों व उसके कुछ अभिलेखों व सिक्कों से ज्ञात होता है। अन्य नरेशों के कुछ लेखों में भी उसकी चर्चा मिलती है। गद्दी पर बैठते ही उसने शशांक से प्रतिशोध लेने व सर्वपृथिवीविजय की इच्छा घोषित की। सर्वप्रथम उसने अपनी बहिन राज्यश्री को खोजा जो कान्यकुब्ज की जेल से निकल कर विन्ध्य की ओर भाग गई थी। तदुपरान्त उसने कन्नौज पर अधिकार किया—शायद अपनी बहिन के नाम पर।[२] इस बीच में उसकी कामरूप के भास्करवर्मा से सन्धि हो चुकी थी। शशांक को परास्त करने में उसकी पूर्ण सफलता सन्दिग्ध है क्योंकि शशांक 'महाराजाधिराज' रूप में ६१९ ई० तक अवश्य ही शासन कर रहा था। उसके अन्य अभियानों में एक वलभी-नरेश के विरुद्ध था जिसे हर्ष के कोप से लाट के गुर्जर-नरेश द्वितीय दद्द ने बचाने का दावा किया है। लाट, मालव और गुर्जरों ने दक्षिण के चालुक्यराज द्वितीय पुलिकेशी का प्रभुत्व स्वीकृत किया था, ऐसा ऐहोले-अभिलेख में कहा गया है। शायद हर्ष का पश्चिमी भारत पर आक्रमण इसका कारण था। स्वयं हर्ष और पुलिकेशी का संघर्ष भी इस घटना-क्रम की कड़ी हो सकता है। इस संघर्ष की चर्चा ऐहोले-अभिलेख व शुआन-च्वांग की भारत-यात्रा-विवरण दोनों में मिलती है। जैसा कि हमने अन्यत्र दिखाया है, यह संघर्ष सुदीर्घ काल तक चला था। यद्यपि पुलिकेशी अपने ऐहोले-लेख में हर्ष को हराने का दावा करता है (६३४ ई०) परन्तु शुआन-च्वांग ने इसके कई वर्ष बाद भी दोनों नरेशों को संघर्षरत पाया था। लेकिन कुल मिलाकर इस संघर्ष में हर्ष असफल रहा था। सिन्ध प्रदेश में हर्ष ने कुछ सफलता पाई थी तथा पर्वतीय प्रदेश में कर वसूल किया था, इसकी चर्चा भी बाण करता है। लेकिन पूर्वी भारत में हर्ष की सफलताएं अधिक महत्त्वपूर्ण थीं। ६४१ ई० में उसने मगध-नरेश की उपाधि धारण की थी। ६४२ ई० तक वह बंगाल व उड़ीसा पर विजय प्राप्त कर चुका था। कामरूप का भास्करवर्मा, जो पहिले उसका मित्र था, अब उससे डरने लगा था। कुल मिलाकर हर्ष ने पुष्यभूति वंश को उत्तर भारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शक्ति बना दिया।

आधुनिक इतिहासकार हर्ष को प्रायः एक महान् बौद्ध नरेश मानते हैं। परन्तु उसने कभी भी बौद्ध धर्म को व्यक्तिगत रूप से स्वीकृत नहीं किया था।[३] उसने ६०६ ई० में प्रारम्भ होने वाला एक संवत् चलाया था।

---

१. द्वितीय राज्यवर्द्धन के इतिहास के विस्तृत अध्ययन के लिए दे०, गोयल, श्रीराम, हर्ष शीलादित्य, मेरठ, १९८६; मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, मेरठ, १९८६।

२. उसका यह प्रयास विधिसम्मत नहीं था क्योंकि ग्रहवर्मा की हत्या के बाद मौखरि राज्य पर राज्यश्री दावा नहीं कर सकती थी।

३. दे०, गोयल, एस० आर०, हर्ष एण्ड बुद्धिज्म, मेरठ, १९८६।

वांग-हुएन्-त्जे का आक्रमण

हर्ष की अन्तिम ज्ञात तिथि ६४६ ई० है। उसका साम्राज्य स्थायी सिद्ध नहीं हुआ। उसका अपना कोई उत्तराधिकारी ज्ञात नहीं है। जब चीनी राजदूत वांग-हुएन्-त्जे ६४७ ई० में भारत आया तो उस समय तक हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी और उसका मन्त्री अ-ला-न-शुएन (=अरुणाश्व ? अर्जुन ?) तीरभुक्ति पर शासन कर रहा था। अरुणाश्व ने चीनी राजदूत पर आक्रमण कर उसे हरा दिया परन्तु वांग-हुएन्-त्जे ने नेपाल-नरेश अंशुवर्मा तथा तिब्बती-नरेश स्रोङ्-त्सन-गाम-पो की सहायता से मध्य देश के चा-पुओ-हो-लो तक विजय प्राप्त की तथा अर्जुन को परास्त कर कैद कर लिया। चीनी साक्ष्यानुसार ५८० प्राचीर युक्त नगरों ने उसका प्रभुत्व स्वीकार किया। यह वर्णन निश्चय ही अतिरञ्जित है परन्तु हर्ष के उपरान्त उसके साम्राज्य के पूर्ण विघटन को प्रमाणित करता है।[४]

उत्तर भारत की अन्य शक्तियां

कामरूप

प्राचीन संस्कृत साहित्य में आधुनिक असम राज्य के लिए कामरूप और प्राग्ज्योतिष नाम प्रयुक्त हुए हैं यद्यपि इनमें दूसरे नाम को उसकी राजधानी के लिए भी प्रायः प्रयुक्त किया जाता था। समुद्रगुप्त के काल से लेकर सातवीं शती ई० के मध्य तक कामरूप पर एक ही वंश का शासन रहा जिसे नारक, भौम अथवा वर्मा कहा जाता है। इसका इतिहास जानने के मुख्य स्रोत भास्करवर्मा के निधानपुर- और दूबी-दानशासन, नालन्दा से प्राप्त मुहरों में प्रदत्त वर्मा-वंश वर्णन, कुछ अन्य अभिलेख, बाण का 'हर्षचरित' एवं शुआन-च्वांग द्वारा प्रदत्त कुछ छिटपुट सूचनाएँ हैं। सातवीं शती ई० में प्रचलित अनुश्रुतियों के अनुसार वर्मा वंश का आदि पुरुष नरक नाम का असुर था जिसे महाकाव्यों और पुराणों में विष्णु का वसुमती (पृथ्वी) के गर्भ से उत्पन्न पुत्र बताया गया है। नरक के उपरान्त क्रमशः उसके पुत्र भगदत्त और पौत्र वज्रदत्त ने शासन किया और तदुपरान्त वज्रदत्त के उत्तराधिकारियों ने। निधानपुर-दानशासन के अनुसार वज्रदत्त के ३००० वर्ष उपरान्त पुष्यवर्मा का, जिसके राज्यारोहण से कामरूप का ऐतिहासिक युग प्रारम्भ होता है, आविर्भाव हुआ था। कामरूप के नरेशों का अपने को नरकासुर का वंशज बताना इस बात का संकेत माना जा सकता है कि वे स्वयं ब्राह्मण होने और आर्य संस्कृति से प्रभावित होने के बावजूद सम्भवतः किसी आर्येतर जाति से भी सम्बद्ध थे। वर्मा वंशीय नरेशों के अभिलेखों से हमें पुष्यवर्मा के १२ उत्तराधिकारियों के नाम ज्ञात हैं। ये १३ राजा १२ पीढ़ियों में हुए क्योंकि अन्तिम पीढ़ी में सुस्थितवर्मा के दो पुत्रों, सुप्रतिष्ठिवर्मा और भास्करवर्मा, ने शासन किया था। भास्करवर्मा हर्षवर्द्धन का समकालीन और मित्र था और उसने सातवीं शती ई० के मध्य तक शासन किया, इसलिए इन बारह पीढ़ियों का कुल शासन प्रति पीढ़ी २५ वर्ष के हिसाब से ३०० वर्ष मानकर इस वंश के प्रथम नरेश पुष्यवर्मा का राज्यारोहण चौथी शती ई० के मध्य (लगभग ३५५ ई०) रखा जा सकता है। उसने ठीक उसी समय शासन किया जब समुद्रगुप्त कामरूप को अपने अधीन करने का दावा करता है। इसलिए यह अनुमान करना कि पुष्यवर्मा को राज्यश्री समुद्रगुप्त की कृपा से मिली थी, सर्वथा निराधार नहीं कहा जा सकता। उसने अपने पुत्र और पुत्रवधू के नाम भी, स्पष्टतः अपने स्वामी गुप्त सम्राट् एवं सम्राज्ञी के नाम पर, समुद्रवर्मा और दत्तदेवी (जिसे कहीं-कहीं दत्तवती कहा गया है) रखे थे। समुद्रवर्मा के उपरान्त क्रमशः बलवर्मा, कल्याणवर्मा, गणपति (अथवा गणेन्द्र) वर्मा, महेन्द्रवर्मा और नारायणवर्मा ने शासन किया। इनमें प्रत्येक अपने पूर्वगामी राजा का पुत्र था। कामरूप-अभिलेखों में उनकी सामान्य प्रशंसा के अतिरिक्त उनके विषय में कोई अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य नहीं दिया गया है। नारायणवर्मा के उपरान्त उसकी देववती अथवा देवमती रानी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र महाभूतवर्मा अथवा भूतिवर्मा ने शासन किया। दूबी-दानशासन के अनुसार उसका राज्याभिषेक उसके पिता के जीवनकाल में ही हो गया था। उसका २३४ अथवा २४४ तिथि का एक लघु शिलालेख, जो बड़गंगा-शिलालेख कहलाता है, कोपिली नदी की घाटी में मिला है। उस के शासनकाल में कामरूप राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ी और वह पहले से विस्तृत हो गया। भास्करवर्मा के निधानपुर-दानशासन के दूसरे श्लोक में शिव की स्तुति के साथ श्लेषात्मक रूप से कहा गया है कि

४. दे०, क्ला० ए०, पृ० १२४-५।

भूतिवर्मा के प्रभुत्व में अनेक राजाओं का मण्डल था और उसने कामरूप को अपने दृष्टिपात मात्र से जीत लिया था (ईक्षण-जित-कामरूपम्)। 'हर्षचरित' में भास्करवर्मा का दूत (जब वह हर्षवर्द्धन के सम्मुख अपने स्वामी के वंश का संक्षिप्त वर्णन करता है), नरक और भगदत्त आदि पौराणिक राजाओं के उपरान्त ऐतिहासिक युग के राजाओं का वर्णन भूतिवर्मा से ही प्रारम्भ करता है। इसे इस बात का संकेत माना जा सकता है कि भूतिवर्मा को वर्मा वंश की महत्ता का वास्तविक संस्थापक माना जाता था। भूतिवर्मा के पुत्र और उत्तराधिकारी चन्द्रमुखवर्मा के विषय में, जो भूतिवर्मा की पत्नी विज्ञानवती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, कुछ ज्ञात नहीं है। लेकिन चन्द्रमुख के पुत्र और उत्तराधिकारी स्थितवर्मा (अथवा स्थिरवर्मा या स्थितिवर्मा) के विषय में निधानपुर-दानशासन में कहा गया है कि उसने दो अश्वमेध किए थे। स्थितवर्मा के उपरान्त उसकी पत्नी नयनदेवी (अथवा नयनादेवी या नयनशोभादेवी) के गर्भ से उत्पन्न पुत्र सुस्थितवर्मा या सुस्थिरवर्मा ने (जो निधानपुर-लेख व 'हर्षचरित' के अनुसार 'मृगांक' नाम से भी विख्यात था) शासन किया। 'हर्षचरित' में उसके लिए 'महाराजाधिराज' उपाधि प्रयुक्त है जबकि उस ग्रन्थ में भूतिवर्मा तक के लिए मात्र 'महाराज' उपाधि का प्रयोग किया गया है। आदित्यसेन के अफसड़-अभिलेख के अनुसार सुस्थितवर्मा का महासेनगुप्त से लौहित्य नदी के तट पर संघर्ष हुआ था जिसमें महासेनगुप्त को विजय प्राप्त हुई थी। जैसा कि हम पीछे देख आए हैं (पृ० १९,२३) महासेनगुप्त ने गौडराज शशांक के कामरूप-अभियान में भाग लिया होगा।

दूबी-दानपत्र के अनुसार सुस्थितवर्मा की मृत्यु के समय उसकी पत्नी श्यामादेवी (दूसरा नाम ध्रुवलक्ष्मी देवी) के गर्भ से उत्पन्न उसके पुत्रों, सुप्रतिष्ठितवर्मा और भास्करवर्मा, को गौडराज के आक्रमण का सामना करना पड़ा जिसमें वे पराजित हुए और बन्दी बना लिए गए। कुछ समय उपरान्त, स्पष्टतः गौडराज की प्रभुता स्वीकृत कर लेने पर, उन्हें मुक्ति मिली। शशांक के साथ यह शत्रुता भास्करवर्मा और हर्ष की मित्रता का कारण बनी। उसने हर्ष की धर्म व दान सभाओं में भी भाग लिया था। लेकिन हर्ष की मृत्यु के उपरान्त उसने उत्तरी बंगाल पर अधिकार कर लिया और जब चीनी-राजदूत वांग-हुएन्-त्से ने तिब्बत व नेपाल की सहायता से उत्तर भारत पर आक्रमण किया तो भास्करवर्मा ने भी उसे सहायता दी। कुछ अनुश्रुतियों के अनुसार, जिनमें कुछ सत्यांश हो सकता है, भास्करवर्मा के साथ ही उसके वंश का अन्त एक म्लेच्छ शासक शालस्तम्भ के आक्रमण के कारण हो गया। उसके बाद कुछ समय के लिये कामरूप का इतिहास तिमिराच्छन्न हो जाता है।

वलभी के मैत्रक

स्कन्दगुप्त के जूनागढ़-लेख की तिथि (४५५ ई०) के उपरान्त (जिसमें सुराष्ट्र का गवर्नर पर्णदत्त को बताया गया है) और ५०२ ई० (जब मैत्रकवंशीय द्रोणसिंह का अभिषेक हुआ) के पूर्व किसी समय सेनापति भटार्क ने वलभी को राजधानी बनाकर[1] काठियावाड़ अथवा सौराष्ट्र में मैत्रक वंश की स्थापना की। इस वंश के दानशासन काफी संख्या में उपलब्ध हैं। लेकिन इनमें मैत्रक राजाओं की तिथियों एवं वंशावली के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्त्व के तथ्य बहुत कम मिलते हैं। इस विषय में एक रोचक बात यह है कि इस वंश में किसी राजा के बाद प्रायः उसके भाई ने शासन किया। यह तथ्य, जो प्राचीन भारतीय प्रशासन के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, गुजरात पर शक क्षत्रप परम्परा के प्रभाव का परिणाम माना जा सकता है। सबसे पहला मैत्रक अभिलेख इस वंश के तीसरे सदस्य और भटार्क के दूसरे पुत्र द्रोणसिंह का गुप्त-वलभी संवत् १८३ (=५०२ ई०) का भमोद्र-मोहोता दानशासन है। इस लेख में द्रोणसिंह के पूर्वजों के नाम नहीं दिए गए हैं परन्तु अन्य लेखों से ज्ञात होता है कि उसके पहले इस वंश का संस्थापक भटार्क और भटार्क का बड़ा पुत्र प्रथम धरसेन शासन कर चुके थे। ये दोनों, भटार्क और उसका पुत्र प्रथम धरसेन, राज्यश्री का उपभोग करने के बावजूद मात्र 'सेनापति' उपाधि से सन्तुष्ट रहे। लेकिन भटार्क के दूसरे पुत्र और प्रथम

---

१. द्र०, गोयल, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, अध्याय ५।

धरसेन के उत्तराधिकारी द्रोणसिंह (ज्ञात तिथि, ५०२ ई०) विषय में कहा गया है कि 'अखिल भुवन मण्डल के स्वामी' ने स्वयं आकर उसका अभिषेक किया था।[1] स्वयं उसके लिये तथा छठी शती ई० के मध्य तक शासन करने वाले अन्य मैत्रक राजाओं के लिये 'परमभट्टारक पादानुध्यात' वाक्यांश का प्रयोग भी यह सिद्ध करता है कि प्रारम्भिक मैत्रक नरेश किसी अन्य शक्ति के अधीन थे। इस परमाधीश्वर की पहिचान फ्लीट ने यशोधर्मा से की है, कनिंघम ने बुधगुप्त से, स्मिथ ने हूणों से, वीरजी ने हरिषेण वाकाटक से, बुद्धप्रकाश ने वैन्यगुप्त से तथा सिनहा और देवहूति ने नरसिंह-गुप्त बालादित्य से। परन्तु ये तथ्य कि (१) मैत्रक औलिकरों के पड़ोसी थे, (२) भटार्क ने वलभी प्रदेश पर उसी युग में अधिकार किया था जब यशोधर्मा के पूर्वगामी प्रकाशधर्मा औलिकर एवं प्रकाशधर्मा के पूर्वजों ने पश्चिमी मालवा में अपनी सत्ता स्थापित की[2] तथा मन्दसौर में आदित्यवर्द्धन के वंश का, जो यशोधर्मा के वंश की शाखा लगता है, उदय हुआ[3] और (३) मैत्रक राजाओं ने अपने को 'परमभट्टारक पादानुध्यात' कहना लगभग उसी समय बन्द किया जिस समय औलिकर साम्राज्य का पतन हुआ, इस बात के सबल संकेत हैं कि मैत्रकों का राजनीतिक भाग्य औलिकारों के साथ घनिष्ठतः सम्बद्ध था। अतः द्रोणसिंह का अभिषेक करने वाले परमाधीश्वर को औलिकर सम्राट् ही मानना चाहिए। द्रोणसिंह के उपरान्त भटार्क के तीसरे पुत्र प्रथम ध्रुवसेन ने शासन किया। उसके १६ दानशासन उपलब्ध हैं, लेकिन इनसे केवल इतना ज्ञात होता है कि उसने महाराज, महासामन्त, महाप्रतिहार, महादण्डनायक तथा महाकार्ताकृतक इत्यादि उपाधियाँ धारण की थीं और कम से कम २०६ से २२६ (=५२५ से ५४५ ई०) तक शासन किया था। उसके ५३५ ई० के दानशासन में कहा गया है कि उसकी भाञ्जी 'परमोपासिका' (बुद्ध की परम उपासिका) ने एक विशाल बौद्ध विहार बनवाया था। दुद्दा-विहार नाम से प्रसिद्ध इस संस्था की चर्चा परवर्ती मैत्रक अभिलेखों में भी मिलती है। प्रथम ध्रुवसेन के उपरान्त भटार्क के सबसे छोटे पुत्र महाराज धरपट्ट ने शासन किया। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र महाराज गुहसेन था। उसकी ज्ञात तिथियाँ २३७ अथवा २४० से २४८ (=५५६ अथवा ५५९ से ५६७ ई०) हैं। वह प्रथम मैत्रक नरेश है जिसके लिये अभिलेखों में 'परमभट्टारक पादानुध्यात' वाक्यांश का प्रयोग नहीं मिलता। उसके बाद उसके पुत्र द्वितीय धरसेन ने शासन किया। उसके डेढ़ दर्जन से अधिक दानशासन उपलब्ध हैं और उसकी ज्ञात तिथियाँ हैं ५७१ से ५९० ई०। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी प्रथम शीलादित्य धर्मादित्य के (जिसके १३ उपलब्ध लेखों से उसकी ६०६ ई० से ६१० अथवा ६१२ ई० तक तिथियाँ ज्ञात हैं) सिंहासनारोहण का सम्भवतः उसके अनुज प्रथम खरग्रह ने विरोध किया था क्योंकि अमरेली-दानशासन से ज्ञात होता है कि प्रथम खरग्रह ५९८ ई० में भी शासन कर रहा था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम शीलादित्य ने खरग्रह के विरोध को दबा दिया था। बाद में खरग्रह और शीलादित्य के सम्बन्धों में सुधार हो गया और खरग्रह को युवराज मान लिया गया। शुआन-च्वांग ने जिस शीलादित्य को मो-ला-पो का राजा बताया है वह प्रथम शीलादित्य ही था, यद्यपि चीनी यात्री ने उसकी तिथि लिखते समय कुछ भूल कर दी है। शुआन-च्वांग द्वारा उल्लिखित मो-ला-पो की सही स्थिति विवादास्पद है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह 'मालव' नाम का चीनी रूपान्तर है और इसमें पश्चिमी मालवा का कुछ भाग अवश्य रहा होगा। इससे स्पष्ट है कि प्रथम शीलादित्य ने काफी विशाल राज्य पर शासन किया था। शुआन-च्वांग ने उसकी प्रशासकीय योग्यता और दयालु स्वभाव की प्रशंसा की है। वह हमें बताता है कि शीलादित्य एक अत्यन्त कलात्मक बौद्ध विहार का निर्माता था और प्रति वर्ष एक बौद्ध धर्मसभा आयोजित किया करता था। यह वर्णन उसके लिए अभिलेखों में उल्लिखित 'धर्मादित्य' उपाधि के साथ पूर्णतः संगत है।

प्रथम शीलादित्य के उपरान्त उसके अनुज खरग्रह (ज्ञात तिथि ६१६ ई०; दे०, पीछे) और खरग्रह के

---

१. अखिल भुवनमण्डलाभोगैकस्वामिनास्वयमुपहितराज्याभिषेकः।

२. गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ० ३६३ अ०।

३. वही, पृ० ३६२-३।

उपरान्त उसके पुत्र तृतीय धरसेन (ज्ञात तिथि, ६२३ ई०) ने शासन किया। तृतीय धरसेन के शासन काल में उत्तरी गुजरात मैत्रकों के अधिकार में था। उसका अनुज और उत्तराधिकारी द्वितीय ध्रुवसेन बालादित्य था जिसने ६२९ ई० के पूर्व किसी समय से लेकर कम से कम ६४० ई० तक शासन किया। सम्भवत: वही सम्राट् हर्ष का वह दामाद है जिसकी चर्चा युआन-च्वांग ने की है। उसके ९ दानशासन उपलब्ध हैं। उस के उपरान्त मैत्रक राज्य का स्वामी उसका पुत्र चतुर्थ धरसेन हुआ जिसकी ज्ञात तिथियाँ ६४६ ई० से ६५० ई० है। वह प्रथम मैत्रक नरेश है जिसने 'चक्रवर्ती' तथा 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' उपाधियाँ धारण कीं। उसके दो दानपत्र भड़ौंच के समीप मिले हैं। उसके उपरान्त मैत्रक राज्य में कुछ अव्यवस्था उत्पन्न हुई जिसका अन्त तृतीय शीलादित्य (६६२-८४ ई०) के शासन काल में हुआ। तृतीय शीलादित्य एक महत्त्वपूर्ण नरेश था। उसके बाद इस वंश को अरबों का आक्रमण सहना पड़ा। इस वंश का अन्तिम शासन सप्तम शीलादित्य था जिसकी ज्ञात तिथि ७६६-७ ई० है।[1]

मण्डोर या जोधपुर (राजस्थान) के प्रतिहार

प्रतिहारों का भारतीय राजनीति में उदय छठी शती० ई० के उत्तरार्द्ध में हुआ। राजस्थान में इनकी प्रधान शाखा मण्डोर (जोधपुर के निकट) शासन करती थी। मण्डोर के प्रतिहारों को आजकल अधिकांश विद्वान् गुर्जरजातीय मानते हैं और कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहारों से (जिनमें नवीं शती ई० में द्वितीय नागभट व मिहिरभोज आदि राजा हुए) घनिष्ठत: सम्बद्ध बताते हैं और विश्वास करते हैं कि लाट का गुर्जर वंश मण्डोर के प्रतिहारों की एक शाखा था। परन्तु (१) मण्डोर के प्रतिहारों को कहीं भी 'गुर्जर' नहीं कहा गया है और लाट के गुर्जरों को कहीं भी 'प्रतिहार' नही बताया गया है। लाट के गुर्जर अपने लेखों में राम के भाई लक्ष्मण का उल्लेख तक नहीं करते। इसलिए यह मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि ये दोनों वंश एक ही थे। इन दोनों वंशों में दद्द नाम के राजा अवश्य मिलते हैं परन्तु दो वंशों में राजाओं के एक-दो नाम समान होने से कुछ भी प्रमाणित नहीं होता। (२) मण्डोर के प्रतिहार अपने को स्पष्टत: हरिचन्द्र नामक ब्राह्मण का वंशज बताते हैं जबकि कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार अपने को प्रारम्भ से ही रघु-वंशी—सूर्यकुलोत्पन्न—क्षत्रिय कहते हैं। अत: इन दोनों की उत्पत्ति भी समान नहीं हो सकती। (३) मण्डोर के प्रतिहार लक्ष्मण का उल्लेख मात्र इसलिए करते हैं क्योंकि लक्ष्मण ने प्रतिहार (द्वारपाल) कार्य का करके इस पेशे को गौरव प्रदान किया था जबकि कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार अपने को लक्ष्मण का वंशज बताते हैं। दोनों में एक अन्तर यह भी है कि मण्डोर के प्रतिहारों को कहीं भी 'गुर्जर' नहीं कहा गया है जबकि कन्नौज के प्रतिहार बराबर 'गुर्जर' कहे जाते रहे। (४) लाट के गुर्जर भी कन्नौज के गुर्जर सम्राटों से भिन्न थे क्योंकि लाट के गुर्जर अपने को न प्रति-हार कहते हैं और न लक्ष्मण का वंशज बनाते हैं। (५) लाट के गुर्जरों के नौसारी-दानपत्र तथा वाटसन म्युजियम-दानपत्र में कहा गया है कि द्वितीय दद्द महाराज कर्ण के वंश में (महति महाराज कर्णान्वये) उत्पन्न हुआ था। यह कर्ण 'महाभारत' का कर्ण है या कोई और, परन्तु इसमें शक नहीं कि यह दावा न कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार करते हैं और न लाट के गुर्जर। जोधपुर के प्रतिहार राज्य के संस्थापक हरिचन्द्र का, जिसकी उपाधि रोहिल्लद्धि थी, समय छठी शती का मध्य माना जा सकता है। उसके वंश का इतिहास मुख्यत: उसके एक उत्तराधिकारी बाउक के जोधपुर-अभिलेखों से, जो ८३७ ई० का है, एवं बाउक के भाई कक्कुक के पाँच घटियाला-अभिलेखों से, जिनमें तीन ८६१ ई० के हैं, ज्ञात होता है। जोधपुर-लेख में कहा गया है कि हरिचन्द्र वेदों और शास्त्रों का ज्ञाता प्रतिहार ब्राह्मण था। वह प्रजापति के समान गुरु था। उसे कोई राजकीय विरुद नहीं दिया गया है, परन्तु इसका कारण लेख का पद्यमय होना भी हो सकता है। उसकी दो पत्नियाँ थीं—एक ब्राह्मणी और दूसरी क्षत्रिया। उसकी ब्राह्मणी पत्नी के (जिसे अभिलेख में 'राज्ञी' उपाधि नहीं दी गई है) गर्भ से उत्पन्न पुत्र प्रतिहार ब्राह्मण कहलाए और भद्रा नामक क्षत्रिया पत्नी के (जो 'राज्ञी' कही गई है) गर्भ से उत्पन्न पुत्र 'मधुपायी' बने, अर्थात् क्षत्रिय कहलाए। इन क्षत्रिय पुत्रों के नाम थे भोगभट, कक्क, रज्जिल और दद्द। इनमें के प्रथम दो पुत्रों के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं

१. विस्तृत अध्ययन के लिये दे०, क्ला० ए०, पृ० १५०-५२।

है। चौथा दद्द प्रायः नान्दीपुरी के गुर्जर-वंश का संस्थापक माना जाता है। परन्तु हमें यह मत गलत लगता है। एक, न तो गुजरात के गुर्जरों को कहीं प्रतिहार कहा गया है और न मण्डोर के प्रतिहारों को कहीं गुर्जर बताया गया है। दूसरे, लाट के गुर्जर वंश और मण्डोर के प्रतिहार वंश में समान घटक केवल दद्द का नाम है। परन्तु एक-दो राजाओं के नाम साम्य के आधार पर एक वंश को दूसरे की शाखा नहीं माना जा सकता। तीसरे, मण्डोर राज्य से लाट देश बहुत दूर था। अगर हरिचन्द्र के पुत्रों ने बीच के इन प्रदेशों को जीता होता तो जोधपुर-लेख में इसका बड़े गौरव से वर्णन किया जाता। इसका लेखक हरिचन्द्र के पुत्रों की मात्र मण्डोर-विजय का वर्णन करके सन्तुष्ट नहीं हो जाता। हरिचन्द्र का तृतीय पुत्र रज्जिल (५७५-६०० ई०) माण्डव्यपुर पर शासन करता रहा। रज्जिल के उपरान्त उसके पुत्र नरभट पेल्लापेल्ली (लग० ६००-६२५ ई०) ने और तदुपरान्त नरभट के पुत्र नागभट (लग० ६२५-५० ई०) ने शासन किया। ये दोनों हर्ष के समकालीन थे। नागभट का उत्तराधिकारी उसका पुत्र तात था। मजूमदार ने, जो यह मानते हैं कि मण्डोर के प्रतिहार गुर्जर थे[१], सुझाव रखा है कि तात ही गुर्जर राज्य का वह युवक क्षत्रिय नरेश था जिसका उल्लेख चीनी यात्री शुआन-च्वांग ने[२] किया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तात चीनी यात्री के आगमन अर्थात् ६४० ई० के आसपास शासन कर रहा था। परन्तु शुआन-च्वांग ने जिस गुर्जर राज्य की चर्चा की है वह भिल्लमाल का चाप राज्य था। दूसरे, मण्डोर के प्रतिहार सम्भवतः गुर्जर थे ही नहीं। बाउक के विक्रम संवत् ८९४ (=८३७ ई०) के जोधपुर-अभिलेख के अनुसार संसार को विद्युत् के समान चंचल समझकर तात ने राज्य अपने अनुज भोज को सौंप दिया और स्वयं पुण्य निर्झर तट पर सुशोभित माण्डव्य आश्रम में शुद्ध धर्मानुसार आचरण करने चला गया। भोज के अनन्तर तात के पुत्र यशोवर्द्धन और उसके उपरान्त यशोवर्द्धन के पुत्र चन्दुक ने शासन किया। इन तीनों नरेशों के विषय में कोई उल्लेखनीय तथ्य ज्ञात नहीं है। सम्भवतः उन्होंने ८वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में शासन किया होगा। किन्तु चन्दुक का उत्तराधिकारी और तात का प्रपौत्र शिलुक (शीलादित्य) एक महत्त्वपूर्ण नरेश हुआ। जोधपुर-अभिलेख के अनुसार उसनेस्त्रवणी (अथवा त्रवणी) और वल्ल के मध्य स्थायी सीमा निर्धारित की तथा भट्टिक देवराज को परास्त कर उससे तत्क्षण 'छत्रचिह्न' प्राप्त किया। इस अभिलेख में उसे 'वल्ल-मण्डल पालक' भी कहा गया है।[३] उसके शासन काल के अन्तिम वर्षों में अथवा उसके उत्तराधिकारी झोट के काल में राजस्थान पर अरब आक्रमण हुआ। अरबों ने जिन प्रदेशों पर विजय प्राप्त की उनमें मरमाड मण्डल निश्चय ही प्रतिहार राज्य में सम्मिलित था।

भिल्लमाल का चाप (गुर्जर) राज्य

भिल्लमाल के राजा चापवंशीय थे। चाप भारतीय साहित्य व अभिलेखों में 'चापोत्कट', 'चावड़ा', 'चौड़ा' आदि कहे गए हैं। उनके कई राज्य थे, यथा काठियावाड़ में बढियर और गुजरात में अनहिलपाटक। धरणीवराह के हड्डाल-दानपत्र के अनुसार उनकी उत्पत्ति शंकर के चाप से हुई थी। शुआन-च्वांग ने भिनमाल के शासकों को 'गुर्जर' बताया है। इससे लगता है। कि चाप गुर्जरों की एक शाखा थे। वर्मलात नामक राजा के ६२५ ई० (वि० सं० ६८२) के बसन्तगढ़-लेख से भिल्लमाल राज्य पर और प्रकाश मिलता है। यह सिरोही राज्य में पिण्डवारा से पाँच मील दक्षिण की ओर मिला था। यह एक शाक्त अभिलेख है जिसमें वर्मलात के एक सामन्त वज्रभट सत्याश्रय का उल्लेख है जो हिमवत् के पुत्र अर्थात् आबू की रक्षा करने में समर्थ हुआ। इस प्रकार ६२५ ई० में भिल्लमाल प्रदेश पर वर्मलात का शासन था। माघ के 'शिशुपालवध' के अनुसार माघ का पितामह सुप्रभ-देव वर्मलात का मन्त्री था। अब, माघ का समय निश्चित रूप से सातवीं शती का उत्तरार्द्ध है। वह हर्ष के 'नागानन्द' तथा 'काशिकावृत्ति' पर जिनेन्द्रबुद्धि द्वारा लिखित 'न्यास' की चर्चा करता है। इसलिए उसके पितामह का संरक्षक

---

१. इ० आई०, १८, पृ० ८७ अ०। मतान्तर के लिए द्र०, दशरथ शर्मा, राजस्थान थ्रू दि एजिज़, पृ० १०२ अ०, पृ० २१५ अ०।

२. वाटर्स, २, पृ० २४९।

३. क्ला० ए०, पृ० १५४; शर्मा, द०, पूर्वो०, पृ० २१७-८।

वर्मलात भिल्लमाल का राजा वर्मलात ही होना चाहिए। यह वर्मलात किस वंश का था इसका पता ब्रह्मगुप्त के 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' से चलता है। ब्रह्मगुप्त स्वयं 'भिल्लमालकाचार्य' कहलाता था। उसने अपना ग्रन्थ ६२८ ई० में चाप वंश के राजा व्याघ्रमुख के शासन काल में लिखा। यह व्याघ्रमुख या तो स्वयं वर्मलात होगा और या उसका उत्तराधिकारी।

गुप्तोत्तरकाल में राजस्थान की अन्य शक्तियाँ : चाहमान

गुप्तोत्तर काल में राजस्थान में जिन अन्य शक्तियों का उदय हुआ उनमें चाहमान और गुहिल उल्लेख्य हैं। ये दोनों प्रतिहारों के समान मूलतः ब्राह्मण वंश थे जो बाद में 'राजपूत' वंशों में गिने गए। इस दृष्टि से इनका राजनीतिक विकास पल्लवों, कदम्बों तथा परमारों से तुलनीय है। राजपूतों की उत्पत्ति की समस्या बड़ी रोचक है। गुप्तोत्तर-काल में चाहमानों का मात्र उदय होता है। अतः यहाँ इस समस्या पर विस्तार से विचार करना ठीक नहीं है। इनका प्रथम महत्त्वपूर्ण शासक प्रथम गूवक था जो प्रतिहार सम्राट् द्वितीय नागभट (ज्ञात तिथियाँ ८१५ और ८३० ई०) का सामन्त था। बिजौलिया-लेख[1] के अनुसार उसके पूर्व छठी पीढ़ी में उसका सामन्त नामक पूर्वज हुआ जिसे वत्स गोत्र में अहिच्छत्रपुर में उत्पन्न विप्र बताया गया है। उसका समय सातवीं शती का तृतीय पाद होना चाहिए। उसका चाहमान वंश के संस्थापक वासुदेव से, जिसे 'प्रबन्धकोश' के अनुसार वि० सं० ६०८ (=५५१ ई०) में रखा जाता है, सम्बन्ध अज्ञात है। चाहमानों का आदिराज्य सम्भवतः दक्षिण में पुष्कर से लेकर उत्तर में हर्ष के मध्य स्थित शाकम्भरी सपादलक्ष में कहीं तक था।

मेवाड़ और किष्किन्धा के गुहिल

गुहिल (गुहिलोत, गहलोत, गोभिलपुत्र, गौहिल्य) राजपूतों को राजपूत वंशों का सिरमौर माना जाता है। उनके नाम के साथ अनेक दन्तकथाएँ जुड़ी हैं जिन्होंने उनके इतिहास का पुनर्निर्माण दुष्कर कर दिया है। इस वंश के राजाओं की वंशावली सर्वप्रथम शक्तिकुमार के ९७७ ई० के आटपुर-अभिलेख में मिलती है। इसमें गुहदत्त से लेकर शक्ति-कुमार तक बीस नाम दिए गए हैं। अगर हम एक पीढ़ी को २० वर्ष का समय दें तो निष्कर्ष निकलेगा कि इस वंश की स्थापना छठी शती ई० उत्तरार्द्ध में कभी हुई थी। आटपुर-लेख की सूची के पाँचवें और छठे राजाओं—शील (शीलादित्य) और अपराजित—के अभिलेख जो ६४६ और ६६१ ई० के हैं, इस निष्कर्ष का समर्थन करते हैं। इस आभिलेखिक साक्ष्य से यह चारण परम्परा स्वतः निर्जीव हो जाती है कि गुहिल वंश का संस्थापक गुह या गुहिल वलभी के अन्तिम राजा शीलादित्य का पुत्र था, क्योंकि वलभी के मैत्रक वंश का अस्तित्व छठी शती के मध्य ही समाप्त नहीं हो गया था, आठवीं शती के तृतीय पाद तक, कम से कम ७६६ ई० तक, चलता रहा था।

किष्किन्धा और मेवाड़ के गुहिल अपना आदिराज गुहिल को बताते हैं। उसका कोई लेख अभी तक नहीं मिला है। उसके दो निकट उत्तराधिकारी भोज और महेन्द्रनाग थे। महेन्द्रनाग को नागदा का संस्थापक माना जाता है। उसके बाद शील या शीलादित्य ने शासन किया जिसका वि० सं० ७०३ (=६४६ ई०) का एक लेख सामोली (भोमट जिला) से मिला है। टॉड ने उसकी पहिचान बप्पा रावल से की है जबकि अन्य विद्वान् बप्पा की पहिचान शीलादित्य के किसी उत्तराधिकारी से करते हैं। बप्पा (बप्प या बप) रावल राजपूत इतिहास में एक युग-पुरुष माना जाता है। उसका नाम शक्तिकुमार के ९७७ ई० के आटपुर-अभिलेख की वंशावली में नहीं मिलता, लेकिन तेरहवीं शती से वह गुहिल वंश में आदिराज के रूप में उल्लिखित मिलता है[2]। इस वर्ग के अचलेश्वर-लेख (१३४२ वि० सं०) जैसे प्राचीनतर अभिलेखों में कहा गया है कि बप्पा रावल आनन्दपुर से आया और ऋषि हारीत राशि की कृपा से चित्रकूट (चित्तौड़) का राजा बना। परवर्ती लेखों के अनुसार उसने हारीत राशि की कृपा

१. इ० आई०, २६, पृ० ९०-१००।   २. क्ला० ए०, पृ० १५८।

पाने के बाद मोरिवंशीय नरेश मान से चित्तौड़ जीता और 'रावल' उपाधि धारण की। विभिन्न तिथिक्रमिक परम्पराओं में उसका समय आठवीं शती का मध्य माना गया है। 'एकलिंग माहात्म्य' में उसका राज्यत्याग वि० सं० ८१० (७५३ ई०) में रखा गया है। टॉड ने उसकी चित्तौड़-विजय ७२० ई० में मानी है और राज्य-त्याग ७६४ ई० में। अधिकांश विद्वान् इन तिथियों को मामूली से संशोधन के साथ स्वीकार करते हैं।[1] १२७४ ई० के चित्तौड़गढ़-अभिलेख और १२८५ ई० के अचलेश्वर-अभिलेख के अनुसार बप्पा रावल गुहिल या गुहदत्त का पिता था। परन्तु यह स्पष्टतः गलत है क्योंकि उसका समय गुहिल या गुहदत्त से लगभग दो शती बाद में पड़ता है। नरवाहन के शासन काल की ९७१ ई० की एकलिंग-प्रशस्ति में बप्पक को 'गुहिल वंश का चन्द्र' (गुहिल गोत्र नरेन्द्र चन्द्रः श्री बप्पक क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम) कहा जाना भी यही प्रमाणित करता है।

जैसाकि स्पष्ट है, 'बप्पा' व्यक्तिवाचक नाम नहीं आदरसूचक उपाधि या सम्बोधन मात्र है।[2] यह उपाधि किसी भी राजा की रही हो सकती है। 'श्री बप्प' लेख वाले कुछ सिक्कों के अस्तित्व से भी यह प्रमाणित नहीं होगा कि 'बप्प' किसी का व्यक्तिवाचक माम था क्योंकि प्राचीन काल में राजाओं के सिक्कों पर मात्र उनकी उपाधि का अक्सर उल्लेख होता था। दूसरे, इन सिक्कों पर बप्पा की कथाओं से जुड़े इतने अधिक प्रतीकों का अंकन मिलता है कि इनका स्वयं बप्पा द्वारा प्रचलित होना संदिग्ध है।

टॉड और जी० सी० रायचौधुरी ने बप्पा की पहिचान शील अर्थात् शीलादित्य से की है (ज्ञात तिथि ६४६ ई०)। इसके पक्ष में कहा गया है कि १४६० ई० के कुम्भलगढ़-अभिलेख की वंशावली में शील का नाम छोड़ दिया गया है और बप्पा का जोड़ दिया गया है। शील ने काफी महत्त्वपूर्ण सफलताएँ भी अर्जित की थीं। १२७४ ई० के चित्तौड़गढ़-अभिलेख में कहा गया है कि उसने राज्यलक्ष्मी को, जो मातंगों (भीलों या मेदों) के सम्पर्क में आने के कारण अशुद्ध हो गई थी, अपनी असिधार से पवित्र कर स्वीकृत किया। लेकिन उसकी उपलब्धियों में ऐसी कोई विशेष बात नहीं है जिससे उसकी पहिचान बप्पा से करने में सहायता मिले। कुम्भलगढ़-लेख में उसके स्थान पर बप्पा का नाम गलती से लिख दिया गया है क्योंकि, जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, 'एकलिंग माहात्म्य' के अनुसार बप्पा वि० सं० ८१० (७५३ ई०) में सन्यासी बना जबकि शीलादित्य की ज्ञात तिथि ६४६ ई० है।

शीलादित्य का उत्तराधिकारी अपराजित था जिसके शासन का ६६१ ई० का एक अभिलेख उपलब्ध है। उसका पौत्र कालभोज था। कालभोज का शासन काल निश्चय ही महत्त्वपूर्ण था। १२८५ ई० के अचलेश्वर-अभिलेख के अनुसार उसने कर्णाटों व चोलों के विरुद्ध महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की थीं। जी० सी० रायचौधुरी के अनुसार उसने चालुक्यराज विनयादित्य को, जिसने उत्तर भारत पर आक्रमण किया था, परास्त किया होगा। परन्तु विनयादित्य बादामी का राजा था, चोलराज नहीं। अतः हमें यह मानना अधिक उचित लगता है कि उसने यशोवर्मा का प्रभुत्व मान लिया था और इस कन्नौज-नरेश के दक्षिण-अभियान में भाग लिया था।

कालभोज का उत्तराधिकारी प्रथम खुम्माण था (आटपुर-लेख)। नैणसी की ख्यात और राजप्रशस्ति में खुम्माण को बप्पा का पुत्र बताया गया है, इसलिए गो० ही० ओझा ने बप्पा और कालभोज को एक माना है तथा उसका समय ७३४ से ७५३ ई० तक निर्धारित किया है। लेकिन चित्तौड़ तथा राणकपुर से प्राप्त कई प्रशस्तियों में कालभोज व बप्पा का नाम साथ-साथ पृथक्-पृथक् राजाओं के रूप में उल्लिखित है। दूसरे, ७१३ ई० में बप्पा की चित्तौड़-विजय किसी भी अभिलेख में (सिवाय १६७५ ई० की राजप्रशस्ति के) उल्लिखित नहीं है। अबुल फजल भी इस परम्परा से अनवगत था। तत्कालीन अभिलेखों से प्रमाणित है कि मौर्य या मोरिवंशीय

---

१. टॉड, एनाल्स एण्ड एण्टिक्वीटिज़ ऑव राजस्थान, १, पृ० २६९।

२. मतान्तर के लिए दे०, शर्मा, गो० ना०, राजस्थान का इतिहास, पृ० ४७।

राजा ७५३ ई० के बाद भी चित्तौड़ पर शासन करते रहे। दशरथ शर्मा के अनुसार प्रथम गुहिल राजा जिसने चित्तौड़ पर निश्चित रूप से शासन किया जैत्रसिंह (१२१३-५३ ई०) था। इसलिए यह अनुमान कि बप्पा की चित्तौड़-विजय की कहानी १७वीं शती में कल्पित की गई थी, सही लगता है।

कालभोज के पुत्र प्रथम खुम्माण का समय आठवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध है। इस युग में अरबों का सिन्ध व राजस्थान पर आक्रमण हुआ। हो सकता है उसने अरबों के विरुद्ध सफलता प्राप्त की हो। भाण्डारकर और मजूमदार ने उसको बप्पा रावल बताया है।[1] लेकिन बाद में भाण्डारकर ने इस मत को छोड़ दिया और वह बप्पा की पहिचान खुम्माण के पौत्र सिंह से करने लगे। भाण्डारकर ने अपराजित (६६१ ई०) और अल्लट (९५३ ई०) के मध्य शासन करने वाले राजाओं का औसत निकाला है। यह औसत है २४ वर्ष। बप्पा के सिंहासन-त्याग की तिथि ७५३ ई० मानकर वह उपर्युक्त औसत की सहायता से इस निश्चय पर पहुँचे हैं कि उस वर्ष खुम्माण के शासन का अन्त हुआ था और इसलिए वह बप्पा रावल से अभिन्न माना जाना चाहिए। लेकिन यह निष्कर्ष इस परम्परा के विरुद्ध है कि खुम्माण बप्पा का पुत्र था। इससे स्पष्ट है कि बप्पा रावल की पहिचान का प्रश्न वर्तमान जानकारी के परिप्रेक्ष्य में सुलझना अत्यन्त कठिन है।[2] शायद भविष्य में किसी नए प्रमाण के प्रकाश में आने पर इस समस्या का समाधान हो सके। जहाँ तक किष्किन्धा के गुहिल राजाओं—पड्ड, देवगण, भाविहित, भेत्ति, भाभट और कदछि—का सम्बन्ध है, उनके ऊपर आगे उनके अभिलेखों के सन्दर्भ में विचार किया गया है। सरकार ने उनका समय सातवीं-आठवीं शती ई० माना है।

चाटसु के गुहिल

गुहिल वंश की एक अन्य शाखा हर्षोत्तर काल में जयपुर-उदयपुर भूखण्ड पर शासन करती थी। इसका संस्थापक भर्तृपट्ट नामक व्यक्ति था जिसने छठी शती ई० के अन्त या सातवीं शती के प्रारम्भ में शासन किया। उसके वंश का इतिहास चाटसु (जयपुर से २६ मील उत्तर की ओर) तथा नगर (उणियारा तहसील, जयपुर) से प्राप्त दो अभिलेखों से ज्ञात होता है। चाटसु-लेख के अनुसार भर्तृपट्ट राम (=परशुराम) के समान ब्रह्मक्षत्रान्वित (ब्राह्मण व क्षत्रियों के गुणों से युक्त) था। यह गुहिलों के मूलतः ब्राह्मण होने का अतिरिक्त प्रमाण है। उसके तीन उत्तराधिकारी थे, ईशानभट, उपेन्द्रभट तथा प्रथम गुहिल जिनके बारे में कुछ विशेष ज्ञान नहीं है। गुहिल का पुत्र धनिक नगर से प्राप्त लेख (६८४ ई०) से भी ज्ञात है। भाण्डारकर ने उसकी पहिचान धवलप्पदेव के काल के डबोक (उदयपुर से ८ मील दूर) अभिलेख में उल्लिखित धनिक नामक राजा से की है। भाण्डारकर ने डबोक-अभिलेख की तिथि ४०७ पढ़ी और इसे गुप्त संवत् का वर्ष मानी (७२५ ई०) और आर० आर० हाल्डेर ने २०७ पढ़ी और इस हर्ष संवत् का वर्ष बताया (८१३ ई०)। मजूमदार ने प्रथम विकल्प को स्वीकार किया। उसके अनुसार धनिक का समय ८१३ ई० नहीं हो सकता क्योंकि उसकी चौथी पीढ़ी का राजा हर्षराज मिहिरभोज का समकालीन था। डबोक-अभिलेख के अनुसार धनिक धवगर्ता (भूतपूर्व उदयपुर राज्य के जहाजपुर जिले का टोड स्थल) पर शासन करता था। वह 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' श्री धवलप्पदेव का सामन्त था। डी० आर० भाण्डारकर के अनुसार यह धवलप्पदेव ७३८ ई० के कनसवा (कोटा राज्य) अभिलेख में उल्लिखित मौर्य राजा धवल था। इससे लगता है कि चाटसु के गुहिल उदयपुर प्रदेश के मौर्यों के अधीन थे। मजूमदार के अनुसार तो गुहिलों की मुख्य शाखा भी मौर्यों के अधीन थी और बप्पा ने स्वतन्त्र गुहिल राज्य की स्थापना अरबों के आक्रमण के कारण मौर्य राज्य के विनष्ट हो जाने पर उसके ध्वंसावशेषों पर की थी[3]। लेकिन दशरथ शर्मा को इन दोनों धनिकों को एक मानने में आपत्ति है। उनका कहना है कि नगर-अभिलेख में धवलदेव का उल्लेख नहीं है। लेकिन यह सर्वथा सम्भव है कि धनिक ने धवलप्पदेव का प्रभुत्व ६८४ ई० में नगर-अभिलेख लिखे जाने के बाद स्वीकृत किया हो।

---

१. भाण्डारकर, इण्डियन एण्टिक्वेरी, १९१०, पृ० १९०; मजूमदार, क्ला० ए०, पृ० १५६।

२. दे०, शुक्ल, दि० च०, दि अर्ली हिस्ट्री ऑव राजस्थान।

३. क्ला० ए०, पृ० १५८।

मेवाड़ के मौर्य

सातवीं शती में दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में मौर्यों (मोरि राजपूतों) का एक सबल राज्य था। शायद प्रतिहारों के उदय के पूर्व वे इस प्रदेश की सबलतम शक्ति थे। परमारों में मौर्य नामक शाखा अब तक मिलती है।[१] मेवाड़ के मौर्यों का प्राचीन मौर्य नरेशों से सम्बन्ध सर्वथा अज्ञात है। चारण परम्पराओं के अनुसार बप्पा रावल ने चित्तौड़ को मोरि राजा मनुराज से छीना था।[२] टॉड ने उसकी पहिचान एक अभिलेख में उल्लिखित (जिसकी चर्चा उन्होंने अपने 'एनाल्स' में की है) मौन नामक राजा से की है। इस लेख की शिला टॉड को इसके वजनी होने के कारण समुद्र में गिरानी पड़ गई थी।[३] मौन के पूर्व तीन राजाओं ने शासन किया—माहेश्वर, भीम तथा तथा भोज। भीम को एक कुशल योद्धा व अवन्तिपुर का शासक बताया गया है। उसका पौत्र मौन मानसरोवर का निर्माता था। शंकरघट्टा से प्राप्त ७१३ ई० के एक लेख में मानभंग नामक राजा का उल्लेख मिलता है। इसमें उसे चित्तौड़ में राजप्रासाद व सरोवर बनवाने का श्रेय दिया गया है। परम्पराओं में चित्रागंद मौर्य को चित्तौड़ में चित्रांग सरोवर का निर्माता बताया गया है। इस सरोवर का उल्लेख १२८७ ई० के एक लेख में मिलता भी है।[४] दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में मौर्यों का अस्तित्व ६९० ई० के झालरापाटन-अभिलेख से भी प्रमाणित है जिसमें मौर्य राजा दुर्गगण की चर्चा है।[५] ७३८ ई० के कनसवा-अभिलेख में एक स्थानीय ब्राह्मण राजकुमार शिवगण को मौर्य नरेश धवल का मित्र बताया गया है। यह धवल वही राजा लगता है जिसको डबोक-अभिलेख में गुहिलपुत्र धनिक का स्वामी 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' श्री धवलप्पदेव कहा गया है (दे०, पीछे)।

मौर्य इतिहास विषयक इन तथ्यों से कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। चारण परम्परानुसार बप्पा ने मोरि या मौर्य राजा मान या मनुराज से चित्तौड़ छीना था और मनुराज की तिथि शंकरघट्टा-अभिलेख से ७१३ ई० लगती है। परन्तु मौर्य धवलप्पदेव ७३८ ई० में शासन कर रहा था। अतः मनुराज मौर्य वंश का अन्तिम राजा नहीं हो सकता। ७२५ ई० के टोड-अभिलेख में भी धनिक धवलप्पदेव का उल्लेख है। इन कारणों से चारण परम्पराओं में सन्देह उत्पन्न होता है।

नान्दीपुरी (लाट) के गुर्जर

नान्दीपुरी के गुर्जर वंश के प्रारम्भिक नरेशों का वर्णन द्वितीय दद्द प्रशान्तराग नामक राजा द्वारा ६२९ से ६४१ ई० के मध्य जारी किए गए चार दानशासनों में मिलता है। इनसे पता चलता है कि द्वितीय दद्द प्रथम जयभट वीतराग का पुत्र और प्रथम दद्द का पौत्र था। प्रथम दद्द और उसके उत्तराधिकारी मात्र 'सामन्त' कहे गये हैं जिससे स्पष्ट है कि वे किसी परमाधीश्वर के अधीन रहे होंगे, यद्यपि गुर्जर लेखों में उस प्रभु-नरेश का नाम नहीं बताया गया है। भड़ौंच प्रदेश पर कलचुरि-नरेश शंकरगण (५९५ ई०) तथा बुद्धराज (६०८-९ ई०) ने भी शासन किया था। फ्लीट का कहना था कि ये गुर्जर नरेश स्वयं कलचुरियों के अधीन थे और मजूमदार का (जो इन गुर्जरों को जोधपुर प्रदेश के प्रतिहारों की शाखा मानते हैं) मत है कि प्रथम दद्द ने पहिले दक्षिणी राजपूताना में कहीं शासन किया, बाद में कलचुरियों के पतनोपरान्त स्वयं उसने अथवा उसके उत्तराधिकारी ने भड़ौंच और निकटवर्ती प्रदेश जीते। इस समस्या का अध्ययन थानेसर के पुष्यभूति वंश एवं बादामी के चालुक्यों की प्रतिद्वन्द्विता की पृष्ठभूमि में किया जा सकता है।

---

१. टॉड, १, पृ० २६५, टि० ३।
२. वही, पृ० २६५-६६।
३. वही, २, पृ० ९१९-२२।
४. शर्मा, जी० एन०, राजस्थान के इतिहास के स्रोत, पृ० ११८।
५. क्ला० ए०, पृ० १६२, टि० ३।

द्वितीय दद्द ने वलभी के राजा को हर्ष के कोप से त्राण दिया था। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों को स्वयं वलभी के आक्रमण सहने पड़े। उसके ज्ञात उत्तराधिकारी हैं—द्वितीय जयभट, तृतीय दद्द बाहुसहाय, तृतीय जयभट, अहिरोल तथा चतुर्थ जयभट। चतुर्थ जयभट के काल में लाट पर अरब आक्रमण हुआ।

पश्चिमोत्तर भारत और कश्मीर

छठी शती ई० में पश्चिमोत्तर भारत में सबसे बड़ी शक्ति हूणों की थी। लेकिन हूणों का मिहिरकुल के बाद का इतिहास स्पष्ट नहीं है। छठी शती के मध्य मौखरियों ने भी हूणों से सफल संघर्ष किया। इसका स्पष्ट उल्लेख आदित्यसेन के अफसड़-लेख में हुआ। छठी शती के अन्त में पुष्यभूति-नरेश प्रभाकरवर्द्धन के गन्धारों, हूणों व सिन्धु-राज के साथ शत्रुतापूर्ण सम्बन्धों का उल्लेख 'हर्षचरित' में हुआ है। कश्मीर का आदिकाल से लेकर बारहवीं शती ई० तक का विस्तार से इतिहास कल्हण की 'राजतरंगिणी' में मिलता है। कल्हण की इतिहास-दृष्टि 'आधुनिक' और 'वैज्ञानिक' थी, लेकिन उसका सातवीं शती ई० के पहिले का तिथिक्रम बड़ा अशुद्ध है। उसके अनुसार कश्मीर में गोनन्द वंश के उपरान्त कार्कोट या नाग वंश ने शासन किया। इसके संस्थापक दुर्लभवर्द्धन (६२७ ई०) के काल में श्रुआन-च्वांग भारत आया था। उसके वंश में सुप्रतिथ नरेश ललितादित्य मुक्तापीड़ हुआ जो कन्नौज के शासक यशोवर्मा का समकालीन था। इन दोनों नरेशों के संघर्ष की चर्चा पीछे की जा चुकी है।[1] ललितादित्य की मृत्यु लगभग ७६० ई० में हुई।

दक्षिणापथ : वातापी के चालुक्य

चालुक्यों की उत्पत्ति

वातापी (आधुनिक बादामी, जिला बीजापुर) के चालुक्यों ने, जिन्हें प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य भी कहा जाता है, दक्षिणापथ में छठी शती ई० के मध्य से आठवीं शती ई० के मध्य तक साम्राज्यिक सत्ता का उपभोग किया। उनके अभिलेखों में उनका वंशनाम प्रायः चल्क्य, चल्क्यि, चलुक्य आदि रूपों में मिलता है, चालुक्य रूप में कम।[2] उनके वंश का प्रथम सदस्य जयसिंह को बताया गया है। जयसिंह का पुत्र रणराग था और रणराग का प्रथम पुलिकेशी उर्फ वल्लभेश्वर जिसका शक संवत् ४६५ (=५४३ ई०) का एक लेख बादामी से उपलब्ध हुआ है। यह चालुक्यों का प्रथम अभिलेख है। प्रथम पुलिकेशी के उपरान्त उसके वंशजों का क्रम और तिथिक्रम लगभग निश्चित रूप से ज्ञात है। लेकिन कल्याणी के परवर्ती चालुक्य वंश के अभिलेखों में चालुक्यों की उत्पत्ति मनु अथवा चन्द्र से बताई गई है और उनका सम्बन्ध अयोध्या से जोड़ा गया है। पंचम विक्रमादित्य के १००९ ई० के कौथेम-दानपत्रानुसार चालुक्य वंश के ५७ राजाओं ने अयोध्या पर शासन किया। तदनन्तर १६ और राजाओं ने दक्षिणापथ पर शासन किया। उसके बाद राजसत्ता कुछ समय के लिए उनके साथ से निकल गई। प्रथम जयसिंह ने इसकी पुनर्स्थापना की।[3] द्वितीय जयसिंह के १०१९ ई० के बलगाम्बे-अभिलेख के अनुसार 'अयोध्या पर ५७ राजाओं ने शासन किया। उनके बाद उनके वंश में सत्याश्रय का जन्म हुआ जिसके नाम पर यह वंश 'सत्याश्रयकुल' कहलाया।[4] इस अभिलेख के कुछ वर्ष बाद १०२५ ई० में जारी किए गए कल्याण-दानपत्र में कहा गया है कि ब्रह्मा के मानस पुत्र स्वायम्भुव मनु थे। उनका पुत्र था मानव्य जिनसे वे सब लोग पैदा हुए जो मानव्य गोत्र के माने जाते हैं। मानव्य का पुत्र हरित था और हरित का पंचशिखि हारीति।[5] पंचशिखि हारीति का ही पुत्र वह चलुक्य था जिससे चलुक्य

---

१. दे० मिश्र, श्याम मनोहर, यशोवर्मा ऑव कन्नौज, दिल्ली, १९७७, पृ० ९२ अ०।

२. क्ला० ए०, पृ० २२७।

३. आई० ए०, १९, पृ० २१।

४. वही, ५, पृ० १७।

५. 'हारीति' शब्द का सही अर्थ विस्मृत हो जाने पर बाद में इसको अनेक रूपों में लिखा जाने लगा।

वंश का प्रादुर्भाव हुआ ।[1] लेकिन स्वयं वातापी के चालुक्यों के प्राचीनतम अभिलेखों से उनकी उत्पत्ति पर विशेष प्रकाश नहीं मिलता । उनका प्राचीनतम अभिलेख प्रथम पुलिकेशी का ५४३ ई० का बादामी-अभिलेख है । इसमें उसे 'हिरण्यगर्भ सम्भूतः' (=हिरण्यगर्भ दान देने वाला) और अश्वमेधादि श्रौत यज्ञ करने वाला कहा गया है । बाद में हिरण्यगर्भ का अर्थ ब्रह्मा मानकर चालुक्यों का वंश वर्णन ब्रह्मा से प्रारम्भ किया गया । प्रथम पुलिकेशी के बादामी-लेख के उपरान्त चालुक्य वंश का वर्णन करते समय कुछ अधिक विशेषणों का प्रयोग किया जाने लगा । उदाहरणार्थ, प्रथम कीर्त्तिवर्मा के ५७८ ई० के बादामी-गुहालेख में चालुक्यों को स्वामी (=महासेन=कार्त्तिकेय) का पादानुध्यात और अग्निष्टोम, अग्निचयन, वाजपेय, पौण्डरीक, बहुसुवर्ण और अश्वमेध के अवभृथस्नान से पवित्रीकृत कहा गया है, मंगलेश के ६०२ ई० के महाकूट स्तम्भ-लेख में 'मातृपितृचरणानुध्यात' तथा मंगलेश के ही नेरूर-दानपत्र में 'स्वामि महासेन पादानुध्यात' । द्वितीय पुलिकेशी के ६१३ ई० में हैदराबाद-दानपत्र के समय तक चालुक्य-अभिलेखों का यह औपचारिक वंश-वर्णन लगभग निश्चित-सा हो गया था । यह वर्णन न्यूनाधिक संशोधनों के साथ द्वितीय पुलिकेशी के सभी उत्तराधिकारियों के दानपत्रों में मिलता है । कल्याणी एवं वेंगी के परवर्ती चालुक्यों के अभिलेखों में प्रदत्त कथाएँ इन विशेषणों की व्याख्या करने के हेतु ही रची गई थीं ।

चन्दबरदाई के सुप्रतिथ ग्रन्थ 'पृथवीराजरासो' के अनुसार चालुक्य उन चार राजपूत वंशों में एक थे जिनकी उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई थी । टॉड, स्मिथ, जैक्सन क्रुक, केम्पबैल, डी० आर० भाण्डारकर तथा अन्य अनेक विद्वानों की धारणा रही है कि अग्निकुण्ड से उत्पन्न बताए गए ये चारों वंश मूलतः विदेशी जातियों—विशेषतः हूणों और गुर्जरों—की सन्तान थे और इस कथा में उनके हिन्दू समाज में प्रवेश का इतिहास प्रतीकात्मकरूपेण वर्णित है । लेकिन स्वयं चालुक्यों के अपने अभिलेखों में तथा बिल्हण के 'विक्रमांकदेवचरित' में उनकी अग्निकुण्ड से उत्पत्ति का संकेत तक नहीं है । उनका सम्बन्ध गुर्जरों से जोड़ने का प्रयास तथा उसके साथ ही यह पूर्वाग्रह कि गुर्जर एक विदेशी जाति थे, हमारी प्रस्तुत समस्या के सन्दर्भ में सर्वथा अप्रासांगिक हैं, क्योंकि कम से कम वातापी और कल्याणी के चालुक्य गुर्जर जातीय नहीं थे । उल्टे ऐहोले-अभिलेख (६३४ ई०) में, जो वातापी के चालुक्यों के इतिहास के प्रारम्भ का है, द्वितीय पुलिकेशी को लाट और मालवों के साथ गुर्जरों को अपने अधीन करने का श्रेय दिया गया है । रण्ण नामक कन्नड़ कवि ने भी अपने संरक्षक और कल्याणी के चालुक्य वंश के संस्थापक को 'गुर्जरों के लिए ज्वर के समान' बताया है ।

यह तथ्य कि चालुक्य अपने इतिहास के प्रारम्भ से ही अपने को क्षत्रिय मानते थे, निर्विवाद है । उनके अभिलेखों तथा बिल्हण के 'विक्रमांकदेवचरित' में उन्हें क्षत्रिय माना गया है और अयोध्या के पौराणिक राजाओं का वंशज बताया गया है । दूसरे, सातवीं शती ई० में भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री शुआन-च्वांग ने अपने समकालीन चालुक्य नृपति पुलिकेशी (पु-लो-की-शे) को जन्म से क्षत्रिय बताया है । लेकिन इस तथ्य के सुनिश्चित होते हुए भी कि चालुक्य अपने को छठी-सातवीं शती ई० से ही क्षत्रिय मानते थे और समाज में इस रूप में स्वीकृत भी किए जाते थे, यह अनुमान करने के लिए कुछ आधार हैं कि भारत के अन्य अनेक राजवंशों के समान वे भी मूलतः ब्राह्मण थे यद्यपि दीर्घकाल तक क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करने के कारण क्षत्रिय वर्ण में परिगणित किए जाने लगे थे । दूसरे शब्दों में वे भी प्रतिहारों, चाहमानों तथा परमारों के समान 'ब्रह्मक्षत्र'—आदौ ब्राह्मणः पश्चत्क्षत्रियः —कुलों में से एक थे । चालुक्य वंश के आदिपुरुष का नाम सम्भवतः चुलुक था । पाणिनि के युग में चुलुक नामक ऋषि और उसके वंशज भी, जो चौलुक अथवा चौलुकायन कहलाते थे, भलीभाँति ज्ञात थे । हो सकता है चौलुक्य इन्हीं चौलुक ब्राह्मणों के क्षत्रिय वंशज रहे हों और परवर्ती युग में जब वे अपने वंश के आदिपुरुष का यथार्थ परिचय भूल गये हों तब इस नाम की

---

१. पी० आई० एच० सी०, १९३९, पृ० ३९ । १९७७, पृ० १८९ अ० ।
दे०, याजदानी, जी०, दकन का प्राचीन इतिहास, दिल्ली,

व्याख्या के लिये बिल्हण और चालुक्य लेखों के रचयिताओं ने उसकी उत्पत्ति ब्रह्मा अथवा पंचशिख के चुलुक से बताकर इस नाम की व्याख्या करने का प्रयास किया हो। प्राचीन भारतीय साहित्य में पंचशिख नामक एक ब्राह्मण विद्वान् सांख्य दर्शन के आचार्य के रूप में प्रसिद्ध है। यहां यह तथ्य भी विचारणीय है कि पंचशिख का एक अन्य नाम चूलिक भी था। चालुक्यों के मूलत: ब्राह्मण होने की कुछ स्मृति सम्भवत: मध्य काल में भी शेष थी। उदाहरणार्थ, 'वीरभानूदय' ग्रन्थ की १६वीं शती की एक पाण्डुलिपि में गुजरात के वाघेल चौलुक्यों को 'विप्र' कहा गया है और विप्र शब्द का अर्थ केवल ब्राह्मण ही हो सकता है। चालुक्यों और कदम्बों की, जो निश्चयत: ब्राह्मण थे, सामाजिक प्रतिष्ठा में सादृश्य से भी यही संकेत मिलता है। इन दोनों ही वंशों के नरेश अपने को मानव्यसगोत्र, हारीतिपुत्र तथा कार्तिकेय और सप्तमातृकाओं का उपासक कहते थे। फ्लीट का सुझाव था कि इस विषय में चालुक्यों ने कदम्बों का, जिनको अपदस्थ करके उन्होंने कुन्तल पर शासन किया, अनुकरण किया था। परन्तु इस सुझाव से कि चालुक्य भी कदम्बों के समान मूलत: ब्राह्मण थे, इस सादृश्य की अधिक सही व्याख्या हो जाती है।

चालुक्यों का प्रारम्भिक इतिहास

चालुक्य वंश के प्रथम नरेश थे जयसिंह, उसका पुत्र रणराग और रणराग का 'प्रियपुत्र' प्रथम पुलिकेशी (पोलेकेशी, पुलकेशी)। प्रथम पुलिकेशी (लगभग ५३५ से ५६६ ई०) अपने वंश का प्रथम महाराज था। उसकी उपाधियां सत्याश्रय, रणविक्रम, श्रीपृथिवीवल्लभ और वल्लभेश्वर आदि थीं जो उसके बाद उसके उत्तराधिकारियों ने भी प्राय: धारण कीं। उसका एक लेख बादामी से मिला है जिसमें शक संवत् ४६५ (=५४३ ई०) तिथि दी गई है। इसमें उसे हिरण्यगर्भप्रसूत, अश्वमेधयाजी तथा वातापी दुर्ग का निर्माता कहा गया है।[1] उसकी सफलताओं में उसके पुत्र और उत्तराधिकारी कीर्त्तिवर्मा (५६६-७ से ५९७-८ ई० तक) का भी महत्त्वपूर्ण योगदान था। चिपलुन-लेख में कीर्त्तिवर्मा को ही वातापी का निर्माता बताया गया है। मंगलेश के महाकूट-अभिलेख के अनुसार कीर्त्तिवर्मा ने वंग, अंग, कलिंग, वट्टूर, मगध, मद्रक, केरल, गंग, मूषक, पाण्ड्य, द्रमिल, वैजयन्ती आदि के राजाओं को जीता था। यह वर्णण निश्चय ही अतिरञ्जित है। स्वयं उसके पुत्र द्वितीय पुलिकेशी के ऐहोले-लेख में उसे केवल नलों, मौर्यों और कदम्बों का विजेता कहा गया है।

द्वितीय पुलिकेशी

कीर्त्तिवर्मा की मृत्यु के समय उसका पुत्र द्वितीय पुलिकेशी अल्पवयस्क था। इसलिये मंगलेश, जो कीर्त्तिवर्मा का सगा या सौतेला भाई था, सिंहासन का अधिकारी बना। उसने कटच्छुरियों (कलचुरियों) पर विजय पाई और रेवती द्वीप को जीता। बाद में मंगलेश के मन में अपने पुत्र को उत्तराधिकारी बनाने की कामना हुई। इसके परिणामस्वरूप कीर्त्तिवर्मा के पुत्र द्वितीय पुलिकेशी ने विद्रोह करके उसे मार डाला। पुलिकेशी अपने वंश का महानतम नरेश सिद्ध हुआ। उसने ६१०-११ से ६४२ तक शासन किया। उसकी विजयों का विवरण उसके ऐहोले-अभिलेख (६३४-५ ई०) में मिलता है। इसमें उसके द्वारा गृहयुद्ध के कारण हुए विद्रोहों को दबाने, लगभग समस्त दक्षिणापथ को जीतने तथा दक्षिण में पल्लवों व उत्तर में स्वयं हर्ष को हराने और अन्य अनेक राज्यों को जीतने का वर्णन है। हर्ष-पुलिकेशी युद्ध की तिथि विवादग्रस्त है। कुछ विद्वान् मानते हैं कि पुलिकेशी ने हर्ष को ६१२ ई० के पूर्व हराया था और कुछ के अनुसार लगभग ६३० ई० में, परन्तु निश्चय ही ६३४-५ ई० के पूर्व। परन्तु हमारे विचार से हर्ष-पुलिकेशी संघर्ष एक लम्बासंघर्ष था। ऐहोले-लेख में इसकी केवल एक अवस्था की चर्चा है। वास्तव में तो यह युद्ध ६४१ ई० में भी चल रहा था जब शुआन-च्वांग ने महाराष्ट्र की यात्रा की थी। द्वितीय पुलिकेशी का अन्त पल्लवों के प्रत्याक्रमण के कारण हुआ जब, सम्भवत: पल्लवराज प्रथम नरसिंहवर्मा ने, वातापी पर आक्रमण करके चालुक्य राजधानी को नष्ट कर दिया, पुलिकेशी को मार डाला और 'वातापीकोण्ड' उपाधि धारण की।[2]

---

१. मिश्र, श्याम मनोहर, दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास, लखनऊ, १९८५, पृ० २२०।

२. दे०, श्रीवास्तव, बलराम, दक्षिणी भारत, वाराणसी, १९८२, अध्याय ९।

द्वितीय पुलिकेशी के उपरान्त

चालुक्य सत्ता की पुनर्स्थापना पुलिकेशी के छोटे पुत्र प्रथम विक्रमादित्य ने की(लग० ६५५-८१) । उसने पल्लव सम्राटों से दीर्घकाल तक संघर्ष किया और स्वयं पल्लव राजधानी कांची पर भी अधिकार करने में सफलता पाई । लेकिन वह स्वयं भी पल्लवों द्वारा कई बार परास्त हुआ । उसके उपरान्त क्रमशः विनयादित्य (६८१-९६ ई०), विजयादित्य (६९६-७३३ ई०), द्वितीय विक्रमादित्य (७३३-३४ से ७४४-४५ ई०) तथा द्वितीय कीर्त्तिवर्मा (७४४-४५ से ७५७ ई०) ने शासन किया । उसके बाद कुछ समय के अन्दर ही चालुक्य राज्य पर राष्ट्रकूटों ने अधिकार कर लिया ।

सुदूर दक्षिण

वेंगी का पूर्वी चालुक्य वंश

वेंगी के पूर्वी चालुक्य वंश की स्थापना द्वितीय पुलिकेशी के अनुज विष्णुवर्द्धन या कुब्ज-विष्णुवर्द्धन ने की थी । ६१७ ई० में वह पुलिकेशी का युवराज था और ६३१ के लगभग वेंगी का वायसराय नियुक्त हुआ । उसने कुल मिलाकर १८ वर्ष शासन किया लेकिन ये वर्ष कब से गिने जायें, यह निश्चित नहीं है । उसका वंश बादामी के मुख्य चालुक्य वंश से अधिक स्थायी और राष्ट्रकूटों का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी सिद्ध हुआ ।

पल्लव वंश

पल्लव राजवंश का उदय गुप्त काल के पूर्व ही हो गया था । इस वंश के प्रारम्भिक राजाओं के दानपत्र प्राकृत में मिलते हैं। इसके बाद संस्कृत दानपत्रों के प्रारम्भिक पल्लव नरेशों ने शासन किया । संस्कृत दानपत्रों से ज्ञात सोलह राजाओं को ३५० से ७७५ ई० के मध्य रखा जा सकता है । सिंहविष्णु से, जिसका समय छठी शती ई० के मध्य पड़ेगा, महान् पल्लवों का युग प्रारम्भ होता है । उसने चोलमण्डल जीता और कलभ्रों को हराया । उसका पुत्र प्रथम महेन्द्रवर्मा 'विचित्रचित्त' हुआ (लगभग ६०० से ६३० ई०) । महेन्द्रवर्मा, उसके पुत्र प्रथम नरसिंहवर्मा महामल्ल (लगभग ६३० से ६६८ ई०) और उसके उत्तराधिकारियों का बादामी के चालुक्यों से लम्बा संघर्ष चला जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है ।

दक्षिण भारत की अन्य शक्तियां

चालुक्य युग में दक्षिण भारत में अन्य अनेक राजवंश मिलते हैं । इनमें उरैयूर और रेनाण्डु के चोल, कलभ्र, पाण्ड्य पश्चिमी गंग, कदम्ब, बाण, आलूप आदि उल्लेखनीय हैं ।[1] इसमें कुछ ने लघु अथवा दीर्घ काल के लिये अपेक्षया बड़े-बड़े राज्य स्थापित किये और चोल बाद में साम्राज्यिक शक्ति के रूप में चमके । परन्तु यहां इन शक्तियों का इतिहास देना न सम्भव है और न आवश्यक ।

---

१. इन राज्यों के इतिहास के लिए दे०, मिश्र, श्याम बलराम, दक्षिण भारत; क्ला० ए०, अध्याय १३; मनोहर, दक्षिण भारत का राजनैतिक इतिहास; श्रीवास्तव, शास्त्री, नी० का०, ए हिस्ट्री ऑव साउथ इण्डिया ।

पूर्वपीठिका (आ)

हर्ष संवत्

समस्या

ये धारणाएँ कि पुष्यभूति वंश के विख्यात नृपति हर्ष का राज्यारोहण ६०६ ई० हुआ और यह तिथि उसके नाम से प्रचलित संवत् का प्रथम वर्ष थी, इतिहासकारों में लगभग सर्वमान्य हैं। इसके विरुद्ध केवल पहिले वाटर्स ने और बाद में मजूमदार ने आवाज उठाई,[1] यद्यपि मजूमदार के साथ न्याय करते हुए यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि उन्होंने बार-बार इस बात पर भी बल दिया है कि उनका आशय यह सिद्ध करना नहीं रहा है कि हर्ष ने ६०६ ई० में शासन करना प्रारम्भ नहीं किया अथवा उसने कोई संवत् नहीं चलाया। उनका उद्देश्य मात्र इस बात पर बल देना रहा है कि इन धारणाओं के पक्ष में उपलब्ध प्रमाण, उनके अनुसार, अत्यन्त दुर्बल हैं। उनके तर्कों का उत्तर दि० च० सरकार[2] तथा देवहूति[3] ने दिया है। यहाँ हम समस्या के मुख्य पक्षों की संक्षेप में समीक्षा करेंगे।

६०६ ई० में हर्ष के राज्यारोहण और हर्ष संवत् के प्रवर्त्तन के पक्ष में प्रमाण

(१) हर्ष संवत् के अस्तित्व का उल्लेख ११वीं शती ई० में भारत की यात्रा करने वाले मुस्लिम यात्री अल्बरूनी ने किया है।[4] वह सूचित करता है कि उसके समय में भारत के लोग श्री हर्ष, विक्रमादित्य, शक, बलभ और गुप्त संवतों का प्रयोग करते थे क्योंकि कलि और कालयवन जैसे संवतों में बड़ी-बड़ी संख्याएँ प्रयुक्त करने का झञ्झट था। श्री हर्ष का संवत् मथुरा और कन्नौज प्रदेश में प्रचलित था। वहां के लोगों ने उसे बताया था कि श्री हर्ष विक्रमादित्य से ४०० वर्ष पूर्व अर्थात् ४५७ ई० पू० में हुए। लेकिन अल्बरूनी ने पाया कि कश्मीरी पंचांग में श्री हर्ष को विक्रमादित्य से ६६४ वर्ष बाद (=६०६ ई०)[5] रखा गया था। अल्बरूनी यह तय नहीं कर पाया कि इनमें कौन सी परंपरा सही थी, यद्यपि यह गणना करते समय कि यज़्दगिर्द के ४०० वें वर्ष में विभिन्न भारतीय संवतों की क्या तिथियाँ चल रही थीं, उसने हर्ष को विक्रमादित्य से ४०० वर्ष पहिले माना। (२) लेकिन हर्ष संवत् की जो तिथि अल्बरूनी ने कश्मीर पंचांग में देखी थी वह स्पष्टतः सही है। यह तथ्य कि हर्ष ने सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में शासन किया, शुआन-च्वांग (जो ६२९ से ६४५ तक भारत में था), द्वितीय पुलिकेशी (६१०-४२ ई०), द्वितीय ध्रुवसेन बालादित्य (६२९-४२ ई०) तथा द्वितीय दद्द प्रशान्तराग (६२९-४२) से उसकी समकालीनता से सिद्ध है। (३) भारत के विभिन्न भागों से—पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में पंजाब और राजस्थान तक—ऐसे बहुत से अभिलेख मिलते हैं जिनमें

---

१. वाटर्स, ट्रैवेल्स, १, पृ० ३४६-७; मजूमदार, आई० एच० क्यु०, २७, पृ० १८३ अ०; २८, पृ० २८० अ०। ये दोनों लेख मजूमदार के शोध-निबन्धों के संग्रह 'रीडिंग्स इन पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव इण्डिया' में, जिसे एस० पी० गुप्त ने सम्पादित किया है (दिल्ली, १९७६), पुनर्मुद्रित हैं (पृ० १४३-५३)।

२. आई० एच० क्यु०, २७, पृ० ३२१ अ०; २९, पृ० ७२ अ०; इण्डियन एपिग्रेफी, दिल्ली, १९६५, पृ० २९१-७; दि गुहिलज़ ऑव किष्किन्धा, कलकत्ता, १९६५, पृ० ४७-८।

३. देवहूति, हर्ष : ए पोलिटिकल स्टडी, १९८३, पृ० २६९ अ०।

४. साचउ, अल्बरूनीज़ इण्डिया, २, पृ० ५।

५. कनिंघम ने इस तिथि को ६०७ ई० माना है (बुक ऑव इण्डियन एराज़, पृ० ६४)।

प्रयुक्त संवत् का प्रथम वर्ष सातवीं शती ई० के शुरु में पड़ेगा जिसे अनायास उपर्युक्त हर्ष संवत् माना जा सकता है। इन अभिलेखों में सरकार ने निम्नलिखित को परिगणित किया है: वर्ष ४८ का कोट (भरतपुर)-अभिलेख; भाविहित का वर्ष ४८ का डूंगरपुर (राजस्थान)-लेख; आदित्यसेन का वर्ष ६६ का शाहपुर (बिहार)-अभिलेख; भेत्ति का वर्ष ७३ का धुलेव (उदयपुर)-दानपत्र; भामट का वर्ष ८३ का डूंगरपुर-दानपत्र; वर्ष १५८ का हुण्ड (अटक के पास, पश्चिमी पाकिस्तान)-अभिलेख; वर्ष १८२ का तसाई (राजस्थान)-अभिलेख; वर्ष १८४ का पंजाब से प्राप्त एक लेख; वर्ष १८० से २७६ तक की तिथियों का उल्लेख करने वाला कमान (भरतपुर)-अभिलेख; वर्ष २०१ का खण्डेल (जयपुर)-अभिलेख; वर्ष २०७ का उदयपुर-संग्रहालय अभिलेख; वर्ष २१८ का खजुराहो-अभिलेख; वर्ष २५८ से २६८ तक की तिथियों का उल्लेख करने वाला अहाड़ (बुलन्दशहर, उ० प्र०)-अभिलेख; वर्ष २६३ का कमान-अभिलेख; वर्ष २७६ का पहोआ (कर्नाल)-अभिलेख तथा वर्ष ५८३ का पिञ्जौर (पटियाला)-अभिलेख।[1] इन अभिलेखों की तिथियों की सर्वोत्तम व्याख्या इन को हर्ष संवत् की तिथियाँ मानने पर होती है। हर्ष संवत् के पंजाब में बारहवीं शती तक प्रचलित होने से अल्बरूनी के काल में (१०३० ई०) इसका ज्ञान कश्मीर में होना भी बोधगम्य हो जाता है। जैसा कि दि० च० सरकार ने कहा है यह मान्यता अधिक समीचीन है कि इन सभी अभिलेखों में एक ही संवत् प्रयुक्त हुआ है बजाय इसके कि इनमें अलग-अलग संवतों का प्रयोग माना जाय।[2] (४) 'हर्षचरित' में बताई गई हर्ष के जन्म के समय की ग्रह-नक्षत्र दशा के आधार पर गणना करके हर्ष का जन्म ५९० ई० में निर्धारित किया गया है।[3] अतः वह अगर ६०६ ई० में गद्दी पर बैठा तो उस समय मात्र १६ वर्ष का रहा होगा। यह निष्कर्ष 'हर्षचरित' के इस साक्ष्य से सर्वथा संगत है कि गद्दी पर बैठने के समय वह अल्पायु और अनुभवहीन था। जिस समय प्रभाकरवर्द्धन द्वितीय राज्यवर्द्धन को हूणों के विरुद्ध युद्ध करने के लिये भेजता है और हर्ष कुछ पड़ावों तक बड़े भाई के साथ जाता है तो बाण राज्यवर्द्धन को 'बालसिंह' तथा हर्ष को 'नई अवस्था को प्राप्त' (नवे वयसि) बताता है। इसी प्रकार जब प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु और ग्रहवर्मा की हत्या के बाद राज्यवर्द्धन मालवराज को दण्डित करने के किये जाता है और हर्ष उसके साथ जाने का अनुरोध करता है, उस समय हर्ष आग्रह करता है: "मेरे अनुगमन में आर्य कौन सा दोष देखते हैं? यदि मैं बालक हूँ (यदि बाल इति) तो भी परित्याग के योग्य नहीं हूँ।...... यदि असमर्थ हूँ तो भी आर्य ने मेरी परीक्षा कहाँ ली है (अशक्त इति क्व परीक्षितोऽस्मि)"? क्योंकि ये बातें हर्ष के राज्यारोहण से ठीक पहिले की हैं, इसलिये मानना होगा कि अपने राज्यारोहण के समय हर्ष १५-१६ वर्ष से अधिक आयु का नहीं था।

हर्ष की तिथि के लिये चीनी साक्ष्य

हर्ष के राज्यारोहण की तिथि के लिये चीनी साहित्य का प्रमाण महत्त्वपूर्ण है। अपनी भारत-यात्रा के विवरण में शुआन-

---

१. सन्दर्भों के लिये दे०, सरकार, दि गुहिलज़ ऑव किष्किन्धा, कलकत्ता, १९६५, पृ० ४७; इण्डियन एपिग्रेफी, पृ० २९५-६।

२. मिराशी ने भेत्ति के धुलेव-दानपत्र में भटिक संवत् का प्रयोग हुआ माना है (इ० आई०, ३०, पृ० ३) तथा मजूमदार ने आदित्यसेन के शाहपुर-लेख में नेपाल के लिच्छवि संवत् का (आई० एच० क्यु०, २७, पृ० १८७)। डी० एन० मुकर्जी (एन० आई० ए०, ३, पृ० २४४) ने सुझाया है कि उपर्युक्त अभिलेखों में शक संवत् में तिथि दी गई गई है, परन्तु इनमें ५०० का अंक निकाल दिया गया है। जैसे, इनका वर्ष ४८ वस्तुतः शक संवत् ५४८ है। परन्तु इस मत को मानना असम्भव है। इसके स्वीकार का अर्थ होगा कि हर्ष के अपने दानपत्र ६०० तथा ६०३ ई० के हैं। अगर ६०० ई० को हर्ष के शासन का प्रथम वर्ष भी माना जाय तब भी इसकी संगति इस चीनी साक्ष्य से नहीं बैठाई जा सकती कि ६४२-३ ई० में हर्ष को शासन करते हुए ३० से कुछ ज्यादा या ३६ वर्ष व्यतीत हुए थे।

३. दे०, देवहूति, पूर्वो०, पृ० ७५; वैद्य, सी० वी०, जे० बी० बी० आर० ए० एस०, २४, पृ० २५२-४।

च्वांग ने लिखा है : "ज्यों ही शीलादित्य (=हर्ष) शासक बना, उसने एक विशाल सेना एकत्र की और अपने भाई की हत्या का प्रतिशोध लेने व पड़ोसी राज्यों को अपने अधीन करने के निकल पड़ा। पूर्व की ओर बढ़कर उसने उन राज्यों पर आक्रमण किया जिन्होंने उसका प्रभुत्व मानने से इंकार कर दिया था और लगातार युद्ध लड़े जब तक कि छः वर्षों में उसने 'पञ्चभारत' को अधिकार में नहीं कर लिया (एक अन्य अनुवादानुसार जब तक कि छः वर्षों में उसने पञ्चभारत से युद्ध नहीं कर लिया)। तब, अपना साम्राज्य विस्तृत कर लेने पर, उसने अपनी सेना बढ़ाई—हस्तिसेना की संख्या ६०,००० की और अश्वारोही सेना की १००,०००—और तीस वर्षों तक बिना कोई हथियार उठाये शान्तिपूर्वक शासन किया"।[१] इस कथन से स्पष्ट है कि शुआन-च्वांग हर्ष के ६+३०=३६ वर्षों तक शासन करने की बात कहता है।[२] प्रश्न उत्पन्न होता है कि शुआन-च्वांग के अनुसार ये ३६ वर्ष कब समाप्त हुए। वाटर्स व मजूमदार के अनुसार शुआन-च्वांग हर्ष की मृत्यु-तिथि से परिचित था और इसलिये हर्ष के राज्यारोहण की तिथि उसकी मृत्यु-तिथि के ३६ वर्ष पूर्व पड़ेगी। इस प्रसंग में वाटर्स ने ध्यान दिलाया है[३] कि चीनी साहित्य में हर्ष की मृत्यु विषयक दो परम्परायें मिलती हैं—६४८ ई० तथा ६५५ ई०। इसलिये हर्ष ने अगर ३६ वर्ष शासन किया तो उसका राज्यारोहण ६१२ ई० में हुआ मानना होगा या ६१९ ई० में। इनमें ६१९ ई० इस चीनी अनुश्रुति से संगत है कि भारत में वे उपद्रव, जिनके परिणामस्वरूप शीलादित्य का शासन प्रारम्भ हुआ, तांग काओ त्सु के राज्यकाल में (६१८ से ६२७ ई० तक) हुए थे। लेकिन, वाटर्स के अनुसार, सम्भवतः हर्ष की मृत्यु की सही तिथि ६४८ ई०, बल्कि ६४७ ई०, होनी चाहिये। शुआन-च्वांग की 'जीवनी' के अनुसार ६४१ या ६४२ ई० में (वस्तुतः ६४२-३ ई० में) शीलादित्य ने चीनी यात्री को बताया था कि उसे शासन करते हुए 'तीस वर्ष से कुछ ज्यादा' हो चुके थे।[४] इससे उसका राज्यारोहण ६१२ ई० में होना प्रमाणित है और तदनुसार उसकी मृत्यु इसके ६+३० वर्ष बाद अर्थात् ६४८ ई० में हुई होगी। वाटर्स के अनुसार इसका समर्थन दो अन्य तथ्यों से होता है। एक, चीनी ग्रन्थों के अनुसार ६४८ ई० के प्रारम्भ में चीनी सम्राट् ने वांग-हुएन्-त्ज़े को राजदूत बनाकर भारत भेजा था।[५] लेकिन जब वांग-हुएन्-त्ज़े भारत पहुँचा तो उसने पाया कि हर्ष की मृत्यु हो चुकी है।[६] इससे भी हर्ष की मृत्यु तिथि ६४८ ई० तय होती है। दूसरे, इसी वर्ष शुआन-च्वांग ने चीनी सम्राट् ताई-त्सुंग को अपना यात्रा-विवरण प्रस्तुत किया था। उस समय तक हर्ष की मृत्यु हो चुकी होगी जिसका ज्ञान शुआन-च्वांग को रहा होगा।

इस प्रकार चीनी साहित्य से हर्ष की मृत्यु की दो तिथियां संकेतित हैं—६५५ ई० और ६४८ ई०, और तदनुसार उसका राज्यारोहण ६१९ ई० या ६१२ ई० में रखा जा सकता है। परन्तु वस्तुतः ये दोनों तिथियां ही गलत हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 'जीवनी' के अनुसार स्वयं हर्ष ने शुआन-च्वांग को ६४२-३ ई० में बताया था कि उस समय उसे शासन करते हुए '३० से कुछ अधिक वर्ष' हो चुके थे। इसलिये उसका राज्यारोहण ६१९

१. वाटर्स, ट्रैवेल्स, १, पृ० ३४३।

२. देवहूति (पूर्वो०, पृ० २७०) का आग्रह है कि हर्ष के शासन के प्रथम छः वर्ष बाद के तीस वर्षों में शामिल माने जाने चाहियें। अर्थात् शुआन-च्वांग के इस कथन में हर्ष का शासन कुल तीस वर्ष का बताया गया है। लेकिन उपर्युक्त कथन में ६ वर्ष का समय अनवरत लड़े गये युद्धों का बताया है और तीस वर्ष का समय पूर्ण शान्ति का, जब हर्ष ने कोई हथियार उठाये बिना शासन किया। इसलिये चाहे हम यह मानें या न मानें कि हर्ष तीस वर्ष तक बिना हथियार उठाये शान्तिपूर्वक शासन कर सकता था या नहीं, यह तो मानना ही पड़ेगा कि यहां उसके शासन के ३६ वर्षों की चर्चा है—छः वर्ष अनवरत युद्धों के तथा तीस वर्ष शान्तिपूर्ण शासन के।

३. वाटर्स, ट्रैवेल्स, १, पृ० ३४६-७।

४. जीवनी, पृ० १८३-४।

५. वांग-हुएन्-त्ज़े के चीन से चलने की तिथि क्ला० ए० (पृ० १२१) में ६४६ ई० दी गई है।

६. वांग-हुएन्-त्ज़े के दौत्य के इतिहास के विस्तृत अध्ययन के लिये दे०, देवहूति, पूर्वो०, अध्याय ७।

ई० में तो रखा ही नहीं जा सकता। इसी प्रकार वाटर्स व मजूमदार की यह धारणा भी गलत है कि ६४८ ई० में अपना यात्रा-विवरण चीनी सम्राट् को समर्पित करने के पूर्व शुआन-च्वांग को यह मालूम हो चुका था कि हर्ष की की मृत्यु उसी वर्ष अर्थात् ६४८ ई० में हो चुकी थी।[1] शुआन-च्वांग की भारत-यात्रा का विवरण उसके 'नोट्स' के आधार पर पियेन-ची की सहायता से तैयार किया गया था। इसका प्रथम प्रारूप (ड्राफ्ट) सम्राट् के समक्ष ६४६ ई० में प्रस्तुत किया गया था और उसको संशोधित करके ६४८ ई० में वर्तमान रूप दिया गया था। इसके विपरीत हर्ष की मृत्यु का समाचार चीन में वांग-हुएन्-त्ज़े के चीन लौटने पर अर्थात् ६४८ ई० के काफी बाद में पहुंचा होगा। इसलिये जब शुआन-च्वांग अपने यात्रा-विवरण में यह कहता है कि हर्ष ने अपने राज्यारोहण के उपरान्त छः वर्ष तक लगातार युद्ध लड़े और तदुपरान्त तीस वर्ष तक शान्तिपूर्वक शासन किया तो वह इन छत्तीस वर्षों का अन्तिम बिन्दु ६४२-४३ ई० को मान रहा था जब वह हर्ष से मिला था और जब हर्ष ने उसे बताया था कि उसे 'भारत का स्वामी' बने तीस वर्ष से अधिक वर्ष हो चुके थे—इनका समापन वह हर्ष की मृत्यु के साथ नहीं मान रहा था। अतः यह मानना अनिवार्य है कि हर्ष का राज्यारोहण ६४२-३ ई० के छत्तीस वर्ष पूर्व अर्थात् ६०६ ई० में हुआ था। यही तिथि हर्ष संवत् की है। 'जीवनी' के अनुसार ६४२-३ ई० में हर्ष ने शुआन-च्वांग को न केवल यह बताया था कि उसे 'भारत का स्वामी' (=सम्राट् या चक्रवर्त्ती) बने 'तीस से अधिक वर्ष' हो चुके थे वरन् यह भी कहा था कि इसके पूर्व वह प्रयाग में पांच पञ्चवार्षिक दानयज्ञ कर चुका था और छठा करने वाला था जिसमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण उसने शुआन-च्वांग को दिया था। इस कथन की संगति ज्ञात तथ्यों से अनायास बैठाई जा सकती है। जब हर्ष ६०६ ई० में थानेसर की गद्दी पर बैठा, वह मामूली-सा स्थानीय राजा था। इसके बाद उसने गौडों और मालवों से संघर्ष करके मौखरि साम्राज्य को 'स्वतन्त्र' किया। इसके लिये उसने जो युद्ध लड़े ये स्पष्टतः वे युद्ध रहे होंगे जिन्हें शुआन-च्वांग के यात्रा-विवरण में 'भारत का स्वामी' बनने के पूर्व छः वर्ष तक अनवरत रूप से लड़े गये युद्ध कहा गया है। इसके बाद कन्नौज के मन्त्रियों ने हर्ष को वहां का शासक बनने के लिये निमन्त्रित किया और वह अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व की सलाह लेकर 'कुमार' उपाधि से वहां का शासन चलाने लगा। तदुपरान्त वह वास्तविक सम्राट्, शुआन-च्वांग के शब्दों में 'भारत का स्वामी', बना। उसकी प्रतिष्ठा में यह परिवर्तन ६१२ ई० आया होगा। इसीलिये उसने शुआन-च्वांग को ६४२-३ में बताया कि उसे 'भारत का स्वामी' यानी सम्राट् बने हुए तीस से कुछ अधिक वर्ष हो गये हैं। स्मरणीय है कि थानेसर के राजा के रूप में वह प्रयाग में पञ्चवार्षिक दानयज्ञ नहीं कर सकता था। मौखरि साम्राज्य को अधिकृत करने के बाद ही वह प्रयाग प्रदेश का स्वामी बना जहां उसने हर पांचवें वर्ष दानयज्ञ करने की परम्परा का अनुसरण किया। शायद प्रथम पञ्चवार्षिक दानयज्ञ ६१७ ई० में, भूतपूर्व मौखरि साम्राज्य का स्वामी बनने के पांच वर्ष बाद देवताओं के प्रति कृतज्ञताज्ञापन हेतु, किया गया होगा। इसीलिये ६४२-३ ई० का पञ्चवार्षिक दानयज्ञ उसका छठा पञ्चवार्षिक दानयज्ञ था।

मजूमदार का मत और उसकी आलोचना

र० च० मजूमदार ने हर्ष का राज्यारोहण ६०६ ई० में मानने और उसके द्वारा एक संवत् के प्रचलित किये जाने के विरुद्ध वाटर्स के उपर्युक्त तर्कों को दोहराने के अतिरिक्त ये तर्क रखे हैं: (१) बाण और शुआन-च्वांग दोनों ही हर्ष के द्वारा किसी संवत् के प्रवर्त्तन की चर्चा नहीं करते। (२) अल्बरूनी ने यह कहीं नहीं कहा है कि कश्मीरी पञ्चांग में उसने विक्रमादित्य के ६६४ वर्ष बाद प्रारम्भ होने वाला हर्ष संवत् प्रचलित देखा था। वह वहां केवल हर्ष की तिथि की चर्चा करता है। (३) कल्हण ने भी 'राजतरंगिणी' में हर्ष संवत् के प्रचलन का उल्लेख नहीं किया है। वह तो स्वयं हर्ष की भी चर्चा नहीं करता। (४) सरकार द्वारा अनुसूचित उपर्युक्त अभिलेखों में हर्ष संवत् से इतर अन्य संवत् प्रयुक्त हो सकते हैं। जैसे कुछ अभिलेखों में भटिक संवत् और कुछ में नेपाल का लिच्छवि संवत् प्रयुक्त रहा हो सकता है। मजूमदार ने भटिक संवत् की पहिचान मुस्लिम हिज्री संवत् से सुझाई

---

१. यह मानना अनिवार्य नहीं है कि हर्ष की मृत्यु ६४८ ई० में हुई जब वांग-हुएन्-त्ज़े भारत पहुंचा। हो सकता है हर्ष की मृत्यु इसके एक-दो वर्ष पूर्व ही हो चुकी हो।

है। (५) मजूमदार का यह भी कहना है कि हर्ष ने अगर कोई संवत् प्रवर्त्तित किया भी होता तो वह संवत् जीवित नहीं रह सकता था क्योंकि न तो उसका साम्राज्य स्थायी सिद्ध हुआ और न उसका कोई उत्तराधिकारी ज्ञात है जो उसके संवत् का प्रचलन जारी रखता।

परन्तु मजूमदार के ये तर्क सबल नहीं कहे जा सकते। (१) बाण और शुआन-च्वांग हर्ष के संवत् का उल्लेख नहीं करते, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उसने कोई संवत् चलाया ही नहीं था। संवत्-प्रचलन की चर्चा प्रसंगवशात् ही हो सकती थी जो उनके सामने उपस्थित नहीं हुआ। (२) अल्बरूनी ने कश्मीरी पञ्चांग की चर्चा करते समय हर्ष की तिथि की चर्चा की है संवत् की नहीं, यह आग्रह गलत है। अल्बरूनी वहां हर्ष की तिथि की चर्चा ही इसलिये कर रहा है क्योंकि उस तिथि से हर्ष संवत् के प्रचलित होने की परम्परा थी। भारतीय साहित्य में विक्रम संवत् की तिथि की चर्चा प्राय: विक्रमादित्य की तिथि के रूप में मिलती है। (३) कल्हण के द्वारा हर्ष या हर्ष संवत् का अनुल्लेख भी मात्र मौन साक्ष्य है। (४) जिन अभिलेखों में हर्ष संवत् के प्रयोग की सम्भावना है उनमें मनमाने ढंग से अलग-अलग संवतों का प्रयोग मान लेना अनुचित है। नेपाली लेखों में भारतीय संवतों का प्रयोग हुआ है, किसी नेपाली संवत् का प्रयोग भारतीय अभिलेखों में नहीं मिलता। इसी प्रकार भटिक संवत् को हिज्री संवत् का भारतीय रूप मानना भी निराधार है। (५) मजूमदार का यह आग्रह भी स्वीकार्य नहीं माना जा सकता कि हर्ष ने कोई संवत् चलाया भी होता तो वह जीवित नहीं रह सकता था क्योंकि न तो उसका साम्राज्य स्थायी सिद्ध हुआ और न उसका संवत् प्रचलित रखने वाला उत्तराधिकारी ज्ञात है। यह सर्वथा सम्भव है कि हर्ष के राज्यारोहण से की गई वर्ष गणना को एक संवत् के रूप में उसके अधीन राजाओं ने जीवित रखा हो। इस विषय में जो काम उसके अपने वंशज कर सकते थे वही उसके अधीन राजा और सामन्त—बिहार में परवर्ती-गुप्त, राजस्थान में गुहिल आदि—कर सकते थे।

मौखरि-अभिलेख

मगध के मौखरियों के अभिलेख

१. अनन्तवर्मा का तिथिविहीन बराबर गुहा-लेख
२. अनन्तवर्मा का तिथिविहीन नागार्जुनी गुहा-लेख
३. अनन्तवर्मा का तिथिविहीन नागार्जुनी गुहा-लेख

उत्तर प्रदेश के मौखरियों के अभिलेख

१. ईश्वरवर्मा का जौनपुर प्रस्तर-लेख
२. ईशानवर्मा का हड़हा-अभिलेख : मालव सं० ६११
३. शर्ववर्मा का असीरगढ़ ताम्र मुहर-लेख
४. शर्ववर्मा का सिरौली (चमोली)-शिलालेख
५. शर्ववर्मा का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख
६. अवन्तिवर्मा का सोहनाग मुहर-लेख
७. अवन्तिवर्मा का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख
८. अवन्तिवर्मा (?) का कन्नौज मृत्तिका सांचा मुहर-लेख
९. महाराजाधिराज 'सु' का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख
१०. मनोरथवर्म्मदेव (मौखरि ?) का तिथिविहीन इलिया-अभिलेख
११. यशोवर्मा (मौखरि ?) का नालन्दा पाषाण-अभिलेख

१

अनन्तवर्मा मौखरि का तिथिविहीन बराबर गुहा-लेख

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य में गया से लगभग चौदह मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित बराबर की पहाड़ी में लोमश ऋषि गुहा के प्रवेश द्वार के ऊपर ।

लिपि : पाँचवी-छठी शती ई० की उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी ।

भाषा : संस्कृत । 'ओम्' के निर्देशक प्रतीक को छोड़कर सम्पूर्णतः पद्यमय ।

छन्द : १ : स्रग्धरा; २-३ : शार्दूलविक्रीडित ।

उद्देश्य : अनन्तवर्मा मौखरि द्वारा प्रवरगिरि गुहा में विष्णु की कृष्णावतार रूप में एक मूर्त्ति की स्थापना का उल्लेख ।

महत्त्व : इससे मगध पर सम्भवतः छठी शती के प्रारम्भ में शासन करने वाले मौखरि शासक शार्दूलवर्मा व उसके पुत्र अनन्तवर्मा का अस्तित्व ज्ञात होता है । शार्दूलवर्मा को 'सामन्त चूड़ामणि' कहा गया है ।

विशेष चर्चा : कनिंघम ने इस लेख को वस्तुतः दो लेख माना था—प्रथम पहिली दो पंक्तियों का और दूसरा शेष चार पंक्तियों का । परन्तु थपल्याल ने फ्लीट के इस मत को माना है कि ये तथाकथित दो लेख वस्तुतः एक लेख हैं । प्रवरगिरि का शाब्दिक अर्थ है 'श्रेष्ठ पहाड़ी', परन्तु यहाँ यह उस पहाड़ी का गुप्तकालीन नाम लगता है जो आजकल बराबर की पहाड़ी कहलाती है । जिस गुहा में यह लेख लिखा है वह आजकल लोमश ऋषि गुहा कहलाती है । इसे अशोक ने खुदवाया था । फ्लीट के मतानुसार इस लेख में शार्दूलवर्मा का जिस प्रकार उल्लेख है उससे लगता है कि वह यह लेख लिखे जाने के समय जीवित था ।

सन्दर्भ-ग्रंथ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, सं० ४८; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, नई दिल्ली, १९८५, पृ० १३३-३४ ।

मूलपाठ

१. ओम् [।।*] भू(पाना) [।*] मौखरीणां कुलमतनुगुणो[ऽ*] लंचकारात्मजातया ।
श्रीशार्दूलस्य यो[ऽ*]भूज्जनहृदयहरो[ऽ*]नन्तवर्म्मा सुपुत्रः [*]

२. कृष्णस्याकृष्णकीर्त्तिः प्रवरगिरिगुहासंश्रितं बिंव (बिम्ब) मेतत्
मूर्त्तं लोके यश [:*] स्वंरचितमिव मुदाचीकरत्कान्तिमत्सः ।। [१।।*]

३. कालः शत्रुमहीभुजां प्रणयिनां इच्छाफलः पादपो ।
दीपः क्षत्त्रकुलस्य नैकसमरव्यापारशोभावतः [।*]

४. कान्ताचित्तहरः स्मरप्रतिसमः पाता व (ब) भूव क्षितेः
श्री शार्दूल इति प्रतिष्ठितयश [:*] सामन्त-चूडामणिः ।।[२।।*]

५. उत्पक्षमान्तविलोहितोरुतरलस्पष्टेष्टतारां रुषा ।
श्रीशार्दूलनृपः करोति विषमां यत्र स्वदृष्टिं रिपो (पौ) ।

६. तत्त्राकर्ण्णविकृष्टशार्ङ्ग शरधिव्यस्तशरोता (न्ता)वहः
तत्पुत्रस्य पतत्यनन्तसुखदस्यानन्तवर्म्मश्रुतेः।।[३।।*]

२

अनन्तवर्मा मौखरि का तिथिविहीन नागार्जुनी गुहा-लेख

प्राप्तिस्थल : बिहार में गया से लगभग १५ मील दूर स्थित जाफरा गाँव के पास नागार्जुनी पहाड़ी में बनी एक अन्य दशरथ-गुहा के, जो गोपी-गुफा कहलाती है, प्रवेश द्वार के बाईं ओर उत्कीर्ण है।

लिपि : पाँचवी-छठी ई० की उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी।

भाषा : संस्कृत। 'ओम्' के प्रतीक चिह्न को छोड़कर पूर्णतः पद्यात्मक।

छन्द : १-५ : शार्दूलविक्रीडित।

विशेष चर्चा : कई पंक्तियों में विराम अनावश्यक रूप से उत्कीर्ण हैं।

उद्देश्य : यज्ञवर्मा के पौत्र और शार्दूलवर्मा के पुत्र अनन्तवर्मा द्वारा विन्ध्य की एक गुहा में कात्यायनी (= पार्वती) की एक मूर्त्ति स्थापित करवाये जाने तथा भवानी के नाम पर ग्राम दान दिये जाने का उल्लेख।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, सं० ५०; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, नई दिल्ली, १९८५, पृ० १३७-८।

मूलपाठ

१. ओम् (।।*) उन्निद्रस्य सरोरुहस्य सकलामाक्षिप्य शोभां रुचा।
सावज्ञं महिषासुरस्य शिरसि न्यस्तः क्वणन्नूपुरः [।*]

२. देव्या वः स्थिरभक्तिवादसदृशीं युञ्जन्फलेनार्थितां।
दिश्यादच्छनखाङ्शुजाल जटिलः पादः पदं संपदां (म्) ।। [१।।*]

३. आसीदिष्टसमृद्धयज्ञमहिमा श्रीयज्ञवर्म्मा नृपः।
प्रख्याता (तो) विमलेन्दुनिर्म्मलयशा [:*] क्षात्त्रस्य धाम्नः पदं (दम्)।

४. प्रज्ञानान्वयदानविक्रमगुणैर्यो राजकस्याग्रणी [:*] ।
भूत्वापि प्रकृतिस्थ एव विनयादक्षोभ्यसत् [त्*] वोदधि [:*] ।। [२।।*]

५. तस्योदीर्णमहार्णवोपमरणव्यापारलब्धं (ब्धं) यशः
तन्वानः ककुदं सुखेषु ककुभं कीत् [त्*] र्या जितेदं युगः [।*]

६. श्रीमान्व (ब) न्धुसुहृज्जनप्रणयिनामाशाः फलैः पूरय [न्*] ।
पुत्त्रः कल्पतरोरिवाप्तमहिमां (मा) शार्दूलवर्म्मा नृपः ।। [३।।*]

७. तस्यानन्तमनन्तकीर्त्तियशसो[ऽ*]नन्तादिवर्म्माख्यया।
ख्यातेनाहितभक्तिभावितधिया पुत्त्रेण पूतात्मना [।*]

८. आसूर्यक्षितिचन्द्रतारकमियं पुण्यास्पदं वाञ्च्छ (ञ्छ) ता ।
विन्यस्ताद्भुतविन्ध्यभूधरगुहामाश्रित्य कात्यायनी ॥ [४॥*]
९. धौताङ्हो(तांहो)पङ्कदोषममलैर्माहानदैरम्वु (म्बु) भि : ।
व्याधूतोपवनप्रियङ्गु बकुलैरामोदितं वायुभि [:*]
१०. कल्पान्तावधिभोग्यमुच्चशिखरिच्छायावृत्तार्क्कद्युति ।
[···]ग्राममनल्पभोगविभवं रम्यं भवान्यै ददौ ॥ [५॥*]

३

अनन्तवर्मा मौखरि का तिथिविहीन नागार्जुनी गुहा-लेख

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य में गया से लगभग १५ मील दूर स्थित जाफरा गाँव के पास नागार्जुनी पहाड़ी में उस गुफा के प्रवेश-द्वार पर उत्कीर्ण जिसमें दशरथ नामक मौर्य नरेश का लेख भी मिलता है।

लिपि : पाँचवी-छठी ई० की उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी।

भाषा : संस्कृत। 'ओम्' के प्रतीकात्मक चिह्न को छोड़ कर सम्पूर्णतः पद्यात्मक।

छन्द : १-२ : शार्दूलविक्रीडित; ३ : स्रग्धरा; ४ : मन्दाक्रान्ता।

उद्देश्य : अनन्तवर्मा द्वारा भूतपति (शिव) तथा देवी (पार्वती) की प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख।

महत्त्व : इसमें अनन्तवर्मा के पिता शार्दूलवर्मा के अतिरिक्त शार्दूल के पिता यज्ञवर्मा का उल्लेख है जिसकी, तुलना मनु से की गई है। इस लेख से यह भी सिद्ध है कि अनन्तवर्मा धार्मिक दृष्टि से उदार था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : कीलहॉर्न, आई० ए०, २०, १८९१, पृ० १८६ अ०; फ्लीट, कॉर्पस, ३, सं० ४६; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, नई दिल्ली, १९८५, पृ० १३५-६।

मूलपाठ

१. ओम् [।।*]
आसीत्सर्व्वमहीक्षिता(तां)मनुरिव क्षत्रस्थितेर्द्देशिकः
श्रीमान्मत्तगजेन्द्रखेलगमनः श्रीयज्ञवर्म्मा नृपः [।*]

२. यस्याहूतसहस्रनेत्रविरहक्षामा सदैवाध्वरैः
पौलोमी चिरमश्रुपातमलिनां धा (ध) त्ते कपोलश्रियं (यम्) ।। [१*]

३. श्रीशार्दूलनृपात्मजः परहितः श्रीपौरुषः श्रूयते ।
लोके चन्द्रमरीचिनिर्म्मलगुणो यो[ऽ*]नन्तवर्म्माभिधा (धः): [।*]

४. दृष्टादृष्टविभूतिकर्त्तृवरदं तेनाद्भुतं कारितं ।
बिम्बं भूतपतेर्गुहाश्रितमिदं देव्याश्च पायाज्जगत् ।। [२।।*]

५. अन्सा(अंसा)न्ताकृष्टशार्ङ्गप्रविततसशरज्यास्फुरन्मण्डलान्त-
व्यक्तभ्रूभङ्गलक्ष्मव्यतिकरशवलाखण्ड-वक्त्रेन्दुविम्व [:*]

६. अन्तायानन्तवर्म्मा स्मरसदृशवपुर्ज्जीविते नि [:*] स्पृहाभिः
दृष्ट [:*] स्थित्वा मृगीभिः सुचिरमनिमिषस्निग्धमुग्धेक्षणाभिः ।। [३।।*]

७. अत्याकृष्टात्कुररविरुतस्पर्द्धिनः शार्ङ्गयन्त्रा–
द्वेगाविद्धः प्रविततगुणादीरितः सौष्ठवेन ।

८. दूरप्रापी विमथितगजोद्भ्रान्तवाजीप्रवीरो
वाणो[ऽ*]रिस्त्रीव्यसनपदवीदेशिको[ऽ*]नन्तनाम्ना (म्न): ।। [४।।*]

४

ईश्वरवर्मा का खण्डित जौनपुर पाषाण फलक-अभिलेख

लेख-परिचय—वह पाषाण-फलक जिस पर यह लेख उत्कीर्ण है जौनपुर की जामा मस्जिद के दक्षिणी द्वार की बाहरी दीवार पर लगा हुआ था। इसको जनरल कनिंघम ने खोज निकाला था। लेख का क्षेत्रफल १′३½″ × १′१½″ है। यह एक बड़े लेख का अंश मात्र है। इसका निचला अंश और उपलब्ध पंक्तियों का प्रारम्भिक भाग नष्ट हो चुके हैं। फ्लीट के अनुसार प्रत्येक पंक्ति के ३८ से ७२ तक अक्षर नष्ट हुए हैं। अक्षरों का औसत आकार ७/१६″ है। इसकी **लिपि** उत्तरी प्रकार की ब्राह्मी है और शर्ववर्मा की असीरगढ़-मुहर की लिपि जैसी पर उससे कुछ अधिक अलंकरणपूर्ण है। इसकी **भाषा** संस्कृत है और इसका उपलब्ध अंश पूर्णत छन्दोबद्ध है। **वर्तनी** में अनुवर्ती 'र' के साथ संयोग होने पर 'क' 'त' तथा 'द' का द्वित्व उल्लेख्य हैं। उपलब्ध पंक्तियों में न **तिथि** दी गई है और न इससे इसके लिखवाये जाने का **उद्देश्य** ज्ञात हो पाता है। लेकिन इसके बावजूद लेख बड़ा **महत्त्वपूर्ण** है क्योंकि इसमें मौखरि राजा ईश्वरवर्मा का न केवल उल्लेख है वरन् उसके शासन काल की कुछ घटनाओं की चर्चा भी है। उनका रूप यद्यपि लेख की खण्डितावस्था के कारण पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाता परन्तु इनसे ईश्वरवर्मा तथा उनके पुत्र ईशानवर्मा का इतिहास जानने में काफी सहायता मिल जाती है।

महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ-ग्रन्थ—फ्लीट, कॉर्पस, ३, पृ० २२८ अ०; सरकार, जे० आई० एच०, ४२, पृ० १२७ अ०; गोयल, एस० आर०, जर्नल ऑव दि एपिग्रेफीकल सोसायटी ऑव इण्डिया, ५, १९७८, पृ० ८८-९२; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, नई दिल्ली, १९८५, पृ० १३९-४०।

मूलपाठ

१. ....र् (?)...क्ष् (?) ल (?)गम् ॥
दोर्भ्याम [ा] त्मभुवो धनुः सहभुवा क्षत्त्रेण लब्ध-(ब्ध)ात्मना विस्तारी

२. ....[ृ] दयिनी मुखराणां भूभुजामन्ववाये।
सकलपुरुषशक्तिव्यक्तशार्ङ्ग प्रतापो

३. ....कर्म्मणा
याज्ञं ध [ू] मवितानमेघनिवहः पुण्यं वितेने दिवि ॥

४. ....लक स्रस्तालकाग्रं कुलैः ॥
तस्य दिक्षु [व] ततामलकीर्त्तेरात्मजो नृपतिरीश्वरवर्मा

५. ....[कृ] पा नुरागशमितक्क्रूरागम (?) ोपद्द्रवैर्
लोकानन्दकरैर्गुणैर्गुणवतां को नाम

६. ....[अ] धिष्ठितं क्षितिभुजां सिंहेन सिंहासनं (नम्) ॥
धारामार्ग्गविनिर्गताग्निकणिका

७. ....दम् ॥
विन्ध्याद्द्रेः प्रतिरन्ध्रमन्ध्रपतिना शंकापरेणासितं
यातो रैवतकाचलं

८. ·············सां वारणानां घटासु
व्याप्तेषूत्खातखड्गद्युतिखचितभुजेष्वन्ध्रसेनाभटेषु
९. ·············र प्रपातसलिलैः स्नातं शिलागन्धिभिः
प्रालेयाद्रि भुवश्च शीतपयसः प्रक्षा
१०. ·············रेणुभिर्गिरिसरित्पूरोर्म्मिभङ्गाकुलै
रुत्सर्प्पद्भिरनुप्रगे[ऽ*]पि दिवसो यस्याप
११. ·························य·········

शब्दार्थ

आत्मभू=विष्णु; दिक्षु=दिशाओं; अधिष्ठित=अधिगत; रन्ध्र=कन्दरा; अन्ध्र=आन्ध्र; यातः=गया

अनुवाद

आत्मा (तक) विस्तार पाने वाले (अपने) क्षत्रिय सहज कौशल से (अपनी) भुजाओं में आत्मभू (=विष्णु) का धनुष [धारण करते हुए]·········मुखर नरेशों के वंश में·········याज्ञिक कर्मकाण्ड द्वारा ·········· (और) धूम्रवितान के मेघ समूहन (के रूप में) आकाश में पुण्य वितान······कुलों द्वारा ·····(उनकी) अलकाग्रों को नीचा करते हुए······उनके आत्मज दिशाओं में दूर तक फैली हुई कीर्त्ति वाले नृपति ईश्वरवर्मा (थे)······कृपा और अनुराग से क्रूर (जनों के) आगमन से उत्पन्न उपद्रव को शमित करने वाले (तथा) लोकानन्द उत्पन्न करने वाले (थे); गुणवानों में कौन······; (शत्रु) नरेशों के लिये सिंह स्वरूप उनके द्वारा सिंहासन अधिगत किया गया। धारामार्ग से आने वाली (अर्थात् असि धारा से उत्पन्न) अग्निकणिका······सर्वथा भयभीत अन्ध्रपति ने विन्ध्य पर्वत के रन्ध्रप्रतिरन्ध्र में शरण ली··· रैवतक पर्वत गया······हस्तिसेना में व्याप्त (और) अन्ध्रसेना के खींचे गये खड्गों से खचित भुजाओं वाले भटों (=योद्धाओं) में······शिलागन्ध से सुगन्धित जलधारा के जल से स्नान करते हुए ·····तथा हिमपर्वत के, शीतपय (=शीतल जल) से पूर्ण, भूप्रदेशों को प्रक्षालित करते हुए······पराग धूली द्वारा ·····उद्विग्न गिरिसरिताओं की उर्मियों के टूटने से अस्त-व्यस्त (एवं) आगे प्रवाहित होते हुए······सूर्योदय के बाद की घड़ियों में भी जिसका दिवस············

व्याख्या

(१) **आत्मभू**—यह ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों का विरुद है। परन्तु जैसा कि फ्लीट ने ध्यान दिलाया है यहां धनुष का उल्लेख होने से शाङ्र्गधारी विष्णु का उल्लेख मानना चाहिये।

(२) **मुखराणां भूभुजाम्**—मुखरवंशीय राजा। हड़हा-अभिलेख में मौखरियों को अश्वपति के सौ पुत्रों का वंशज कहा गया है। शायद उनका आदिराज मुखर को भी माना जाता था। बाण ने 'हर्षचरित' में भी मुखर वंश का उल्लेख किया है। मौखरि स्पष्टतः मालवों की एक शाखा थे क्योंकि 'महाभारत' में मालवों को अश्वपति के सौ पुत्रों की सन्तान कहा गया है। अश्वपति मद्र जाति का था जो 'महाभारत' में चन्द्रवंशी बताई गई है। अतः मौखरि भी चन्द्रवंशी माने जाएंगे। द्र०, गोयल, श्रीराम, 'वर दि मौखरिज़ एन ऑफशूट ऑव दि मालवज़', प्रोसीडिंग्ज़ ऑव राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस, अजमेर, १९७२, पृ० १६ अ०।

(३) **क्रूरागमन**—क्रूरजनों, सम्भवतः हूणों, का आगमन अर्थात् आक्रमण।

(४) **धारामार्ग्गविनिर्गताग्निकणिका**—फ्लीट ने यहाँ धारा नगरी की तरफ से आने वाली अग्निकणिका की ओर संकेत माना था। लेकिन शायद छठी शती ई० के पूर्वार्द्ध में धारा नगरी थी ही नहीं। बसाक (हिस्ट्री ऑव नॉर्थ-ईस्टर्न इण्डिया, पृ० १०९) ने यहाँ 'असिधारा से उत्पन्न होने वाली चिंगारी' अर्थ लिया था। सरकार ने भी यही अर्थ लिया है। उ० ना० राय (स्टडीज़ ऑव एन्श्येण्ट हिस्ट्री एण्ड कल्चर, पृ० ६७ अ०) में बसाक अथवा

सरकार का उल्लेख किये बिना यही अर्थ मानते हैं। वी० सी पाण्डेय ने (पी० आई० एच० सी०, १९७३, १, पृ० ३३९) यहाँ 'द्रुतगामी अश्वों के खुरों से उत्पन्न चिंगारी' अर्थ लिया है। हाल ही में आर० सी० मजूमदार ने (कॉम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑव इण्डिया, भाग २, १९८१, पृ० १८२, टि० १३) सुझाव रखा है कि यहाँ रथों के चक्कों से निकलने वाली अग्निकणिकाओं की चर्चा है। थपल्याल ने इस पर अपना कोई मत व्यक्त नहीं किया है।

(५) **अन्ध्रपतिना**—इस आन्ध्र नरेश का नाम नहीं दिया गया है। लेकिन उससे मौखरियों का संघर्ष स्पष्टतः विन्ध्य प्रदेश में हुआ था।

महत्त्व

इस अभिलेख में केवल एक मौखरि राजा, ईश्वरवर्मा, का नाम अवशिष्ट बचा है। चौथी पंक्ति में उपलब्ध भाग के पूर्व उसके पिता का वर्णन था जिसका नाम, शर्ववर्मा की असीरगढ़ मुद्रा के अनुसार, आदित्यवर्मा था। अभिलेख में मात्र ईश्वरवर्मा नाम मिलने के कारण फ्लीट ने इस लेख को 'ईश्वरवर्मा का जौनपुर लेख' नाम दिया था, यद्यपि उन्होंने यह भी लिखा कि लेख इतना क्षत है कि यह कहना कठिन है कि इसमें प्रदत्त ऐतिहासिक सूचनायें ईश्वरवर्मा के बारे में हैं या उसके किसी वंशज के बारे में। थपल्याल ने भी इसे ईश्वरवर्मा का जौनपुर लेख कहकर उद्धृत किया है यद्यपि वह इस विषय में कुछ सन्देहग्रस्त लगते हैं। सरकार के अनुसार इस लेख की ७वीं–८वीं पंक्तियों में आन्ध्रों पर प्राप्त विजय का वर्णन है, और हड़हा-लेख के १३वें श्लोक के अनुसार ईशानवर्मा ने आन्ध्रों को हराने का श्रेय पाया था, इसलिये जौनपुर-लेख या तो ईशानवर्मा का है या उसके किसी वंशज का। हमें सरकार महोदय का यह तर्क सही नहीं लगता। हम यह सम्भव मानते हैं कि यह लेख ईशानवर्मा या उसके किसी उत्तराधिकारी के शासन काल में लिखवाया गया हो, परन्तु हमारा आग्रह है कि इसमें उपलब्ध वर्णन ईश्वरवर्माकालीन सफलताओं का है। एक, यह सही है कि हड़हा-लेख के अनुसार ईशानवर्मा ने आन्ध्रों को हराया था, परन्तु इसके साथ वह यह भी कहता है कि ईशानवर्मा ने आन्ध्रपति को जीतने के बाद (जित्वान्ध्रपतिम्) सिंहासन अधिगत किया था। इसका अर्थ है कि उसने यह सफलता अपने पिता ईश्वरवर्मा के शासन काल में प्राप्त की थी। आन्ध्र इतिहास से इसका समर्थन होता है। आन्ध्र के विष्णुकुण्डी नरेश माधववर्मा जनाश्रय के विषय में पोलामुरु-दानपत्र में कहा गया है कि उसने अपने शासन के ४८ वें वर्ष में नये देशों को जीतने की इच्छा से गोदावरी नदी प्राप्त की। इससे अगली सूचना प्रथम इन्द्रपालपुर-दानपत्र में मिलती है जिसमें कहा गया है कि उसने रेवा या नर्मदा तक विजय पाई थी (रेवासरित्सलिल भूषणायां भुवो भर्त्तुर्माधववर्म्मणः)। इन्द्रपालपुर-दानपत्रों से यह भी सिद्ध है कि माधववर्मा जनाश्रय की मृत्यु ५१८ ई० में हुई। अतः उसकी रेवा तक विजय, जिसके परिणामस्वरूप उसका मौखरियों से संघर्ष हुआ होगा, ५१५ ई० के आस पास रखी जा सकती है। उस समय ईशानवर्मा (ज्ञात तिथि ५५४ ई०) नहीं, उसका पिता ईश्वरवर्मा शासन कर रहा था।

दूसरे, जौनपुर-अभिलेख में मौखरि राजा की अन्य सफलतायें बताई गई हैं। पंक्ति ५ में कहा गया है कि उसने क्रूरजनों के आगमन से उत्पन्न से होने वाले उपद्रव को शमित किया तथा पंक्ति ९–१० में उसकी गिरिसरिताओं और शीतल जल वाले हिमालय प्रदेश में विजय का वर्णन है। 'धारा' शब्द में धारा नगरी का उल्लेख मानने का फ्लीट का सुझाव स्पष्टतः अशुद्ध है (दे०, ऊपर, टि० ४)। लेकिन इस मौखरि नरेश की हिमालय प्रदेश में विजय परवर्ती-गुप्त वंश के नरेश प्रथम जीवितगुप्त के विषय में (जो ईश्वरवर्मा का समकालीन था) आदित्यसेन के अफसड़-लेख के इस कथन का स्मरण दिलाती है कि प्रथम जीवितगुप्त के शत्रु हिमपूर्ण जल से शीतल हिमालय में रहकर भी उससे भयभीत रहते थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम जीवितगुप्त ने समुद्राश्रयी शत्रुओं को भी परास्त किया था और हड़हा-लेख के अनुसार ईशानवर्मा ने भी सिंहासनासीन होने के पहिले गौडों को हराया था और उन्हें सूखी भूमि छोड़कर समुद्र का सहारा लेने को बाध्य कर दिया था। इस प्रकार ईश्वरवर्मा के काल में मौखरियों की और प्रथम जीवितगुप्त के काल में परवर्ती-गुप्तों की सामारिक सफलताओं में बड़ी सादृश्यता है। लेकिन बात यही समाप्त नहीं होती। ठीक इसी युग में मन्दसौर-नरेश यशोधर्मा-विष्णुवर्द्धन (ज्ञात तिथि ५३२ ई०) भी हूणों को हराने (जो

जौनपुर अभिलेख के क्रूरजन हो सकते हैं) तथा हिमालय से पश्चिमी समुद्र तक तथा लौहित्य से महेन्द्र पर्वत तक (जिसके बीच में गौड देश पड़ेगा) विजय प्राप्ति का दावा करता है। इसलिये यह मानना सम्भव ही नहीं उचित भी है कि प्रथम जीवितगुप्त और ईश्वरवर्मा ने (जो स्वतन्त्र नरेश नहीं थे) सम्राट् राजाधिराज विष्णुवर्द्धन-यशोधर्मा के अभियानों में उसके अधीन नरेशों के रूप में भाग लेते समय ये सफलतायें पाई होंगी जिनको जौनपुर तथा अफसड़ लेखों में उनकी अपनी-अपनी स्वतन्त्र सफलतायें बता दिया गया है। हमारे विचार से यह कल्पना करना न सम्भव है और न उचित कि परवर्ती-गुप्त नरेश जीवितगुप्त और मौखरि-नरेश ईश्वरवर्मा यशोधर्मा-विष्णुवर्द्धन के, जो स्पष्टतः समस्त उत्तर भारत का विजेता था, अधीन नहीं थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आन्ध्रों का उल्लेख केवल जौनपुर-लेख में है, अफसड़ और मन्दसौर-लेखों में नहीं। उन पर ईशानवर्मा ने कुछ बाद में सफलता पाई होगी (दे०, गोयल, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, अध्याय २ तथा ३, मेरठ, १९८६)।

इस प्रकार जौनपुर-अभिलेख में ऐसी कोई बात नहीं कही कई है जिसकी व्याख्या यह मानकर न की जा सके कि इसमें वर्णित युद्ध ईश्वरवर्मा के शासन काल में लड़े गये थे यद्यपि उनका वास्तविक विजेता उसका पुत्र ईशानवर्मा था चाहे यह अभिलेख ईश्वरवर्मा के शासन काल में लिखा गया हो या ईशानवर्मा के और या ईशानवर्मा के भी बाद में। इस प्रकार किसी अधीन राजा द्वारा अपने स्वामी के अभियान में प्राप्त सफलता को उसकी स्वतन्त्र सफलता बता दिये जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे 'पृथिवीराजविजय' के अनुसार दुर्लभराज चाहमान ने अपनी तलवार को गंगा और समुद्र के संगम पर धोया था, जबकि वास्तव में उसने यह सफलता प्रतिहार सम्राट् वत्सराज के सामन्त रूप में पाई थी (दे०, दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डायनेस्टीज़, पृ० २५२ अ०)।

५

ईशानवर्मा मौखरि का हड़हा पाषाण-लेख

मालव सं० ६११ (=५५४ ई०)

प्राप्तिस्थल : उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले का हड़हा स्थल।

लिपि : उत्तरी वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी।

भाषा : संस्कृत। मंगल चिह्न व अन्त के 'उत्कीर्ण्ण मिहिरवर्म्मणा' पद को छोड़कर सम्पूर्णतः पद्यमय।

छन्द : १, २, ४, ८, १०-१४, १६-१९ : शार्दूलविक्रीडित; ३ : गाथा; ५ : उपजाति; ६ : इन्द्रवज्रा; ७ : मालिनी; ९ : स्रग्धरा; १५ : द्रुतविलम्बित; २० : वसन्ततिलक; २१-३ : अनुष्टुभ्।

लेखक : कुमारशान्ति का पुत्र एवं गर्ग्गराकट का निवासी रविशान्ति।

उद्देश्य : ईशानवर्मा के पुत्र सूर्यवर्मा द्वारा सं० ६११ में (=५५४ ई०) भगवान् शूलपाणि के मन्दिर के निर्माण कराये जाने का उल्लेख।

महत्त्व : इस अभिलेख का महत्त्व कई दृष्टि से है। एक, इससे ज्ञात होता है कि मौखरि अपने को अश्वपति नामक राजा को वैवस्वत (=यम) के वर से प्राप्त सौ पुत्रों का वंशज मानते थे। यही बात 'महाभारत' के वनपर्व में सावित्री-उपाख्यान में मालवों के विषय में कही गई है। इससे मौखरि जन मालवों की शाखा सिद्ध होते हैं। दूसरे, 'महाभारत' के आदिपर्व से ज्ञात होता है कि मद्र जाति, जिसमें अश्वपति उत्पन्न हुआ था, पुरुवंश (=चन्द्रवंश) से सम्बन्धित थी। इससे मौखरि भी चन्द्रवंशी सिद्ध होते हैं। यह प्रचलित धारणा कि वे सूर्यवंशी थे अशुद्ध है। वे वैवस्वत के वरदान से अश्वपति को प्राप्त पुत्रों के वंशज थे, न कि स्वयं वैवस्वत की सन्तान। तीसरे, इस लेख से ईशानवर्मा के पूर्वगामी हरिवर्मा, आदित्यवर्मा तथा ईश्वरवर्मा के विषय में कुछ सूचनायें मिलती हैं। इससे ज्ञात होता है कि मौखरि राजा यज्ञधर्म में विश्वास करते थे और वर्णधर्म-स्थापन में लगे रहते थे। चौथे, इससे ज्ञात होता है कि ईशानवर्मा आन्ध्रपति, गौडों तथा शूलिकों को हराकर गद्दी पर बैठा था। दूसरे शब्दों में ये संग्राम उसके पिता ईश्वरवर्मा के जीवन काल में ही लड़े गये थे। इससे जौनपुर-अभिलेख का साक्ष्य स्पष्टतर होता है (दे०, जौनपुर-अभिलेख)। पाँचवें, इसमें ईशानवर्मा के सूर्यवर्मा नामक पुत्र का उल्लेख मिलता है। उसको पाण्डुवंशीय नरेशों के सिरपुर लक्ष्मण मन्दिर-लेख (इ० आई०, ११, पृ० १९० अ०) में मगध पर आधिपत्य के कारण महान् वर्मा वंश में उत्पन्न कहा गया है (निष्पङ्के मगधाधिपत्यमहतां जातः कुले वर्म्मणां······श्री सूर्यवर्मानृपः)। छठे, इस लेख में अनेक बार कलियुग के अनाचारों का वर्णन है। इससे लगता है कि उस समय हूण आक्रमण के कारण सामान्य जनों में यह भावना बलवत्तर हो उठी थी कि वे घोर अवनतिशील युग में रह रहे हैं। स्मरणीय है कि कलि युग की बुराइयों का पुराणों में प्रदत्त वर्णन लगभग इसी युग का है (यशोधर्मा का मन्दसौर स्तम्भ-लेख भी देखें—गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, १९८४, पृ० ३६६-७)।

महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ-ग्रन्थ : मजूमदार, एन० जी०, आई० ए०, ४६, पृ० १२५ अ०; दिस्कलकर, डी० बी०, सेलेक्शन्स, पृ० ९६-१०५; मजूमदार, आर० सी०, आई० सी०, ११, पृ० १२३-४; शास्त्री, हीरानन्द, इ० आई०, १४,

१९१७–१८, पृ० ११०–२०; सरकार, स० इ०, १, पृ० ३८५–८९; जे० आर० ए० एस० बी०, एल०, ११, १९४५, पृ० ६७, टि० ४; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, नई दिल्ली, १९८५, पृ० १४१–६।

मूलपाठ

१. १॰ लोकाविष्कृति-संक्षय-स्थितिकृतां यः कारणं वेधसाम् (सां)
ध्वस्त-ध्वान्त-चयाः परास्त-रजसा ध्यायन्ति यं योगिनः।
यस्यार्द्ध-स्थित-योषितो(ऽ*) पि हृदये ना स्थायि चेतोभुवा
भूतात्मा त्रिपुरान्तकः स

२. जयति श्रेयःप्रसूतिर्भवः ॥१
आशोणां फणिनः फणोपल-रुचा सैह्वीं(सैंहीं) वसानं त्वचं
शुभ्रां लोचन-जन्मना कपिशयद्भासा कपालावलीम् (।*)
तन्वीं ध्वान्त-नुदं मृगाकृतिभृतो वि(बि)भ्रत्कलां मौलिना
दिश्यादन्ध-

३. क-विद्विषः स्फुरदहि स्थेयः पदं वो वपुः ॥ २
सुत-शतं लेभे नृपो (ऽ*) श्वपतिर्व्वैवस्वताद्यद्गुणोदितम्।
तत्प्रसूता दुरित-वृत्ति-रुधो मुखराः क्षितशाः क्षतारयः ॥ ३
तेष्वादौ हरिवर्म्मणो (ऽ*)वनिभुजो भूतिर्भु

४. वो भूतये।
रुद्धाशेषदिगन्तराल-यशसा रुणारि-सम्पत्त्विषा।
सङ्ग्रामे हुतभुक्प्रभा-कपिशितं वक्त्रं समीक्ष्यारिभि-
र्यो भीतैः (तैः) प्रणतस्ततश्च भुवने ज्वालामुखाख्यां गतः ॥ ४
लोक-स्थितीनां स्थितये स्थि-

५. तस्य
मनोरिवाचार-विवेक-मार्ग्गे।
जगाहिरे यस्य जगन्ति रम्याः
सत्कीर्त्तयः कीर्त्तयितव्य नाम्नः ॥ ५
तस्मात्पयोधेरिव शीतरश्मि-
रादित्यवर्म्मा नृपतिर्ब्बभूव।
वर्णाश्रमाचार-विधि-प्रणोते-
र्यं प्राप्य

६. साफल्यमियाय धाता ॥ ६
हुतभुजि मखमध्यासङ्गिनि ध्वान्त-नीलम्(लं)
वियति पवन-जन्म-भ्रान्ति-विक्षेप-भूयः।
मुखरयति समन्तादुत्पतद्धूम-जालम् (लं)
शिखिकुल-मरुमेघाशङ्कि

७. यस्य प्रसक्तम् ॥ ७
तेनापीश्वरवर्म्मण: क्षितिपते: क्षत्र-प्रभावाप्तये ।
जन्माकारि कृतात्मन: क्रतु-गणेष्वाहूत-वृत्रद्विप: ।
यस्योत्खात-कलि-स्वभाव-चरितस्याचार-मार्ग्गं नृपा
यत्नेनापि ययाति-
८. तुल्य-यशसो नान्ये(ऽ*) नुगन्तुं क्षमा: ॥ ८
नीत्या शौर्य्यं विशालं सुहृदमकुठिने (टिले)नो[त्त*]मेच्छाङ्कुलेन ।
त्यागं पात्रेण वित्तप्रभवमपि ह्रया (ह्रिया) यौवनं संयमेन (।*)
वाचं सत्येन चेष्टां श्रुति-पथ-विधिना प्रश्रये-
९. णोत्तमर्द्धिम्(द्धिं)
यो वध्नंनै(ध्नन्नै)व खदं व्रजति कलिमये ध्वान्त-मग्ने(ऽ*)पि लोके ॥ ९
यस्येज्यास्वनिशं यथाविधि हुतज्योतिर्ज्वलज्जन्मना ।
धूमेनाञ्जनभङ्ग-मेचक-रुचा दिक्चक्रवाले तते ।
आयाता नव-
१०. वारि-भार-विनमन्मेघावली प्रावृडि-
त्युन्मादोद्धत-चेतस: शिखिगणा वाचालतामाययु: ॥ १०
तस्मात्सूर्य्य इवोदयाद्रिशिरसो धातुर्म्मरुत्वानिव
क्षीरोदादिव तर्जितेन्दुकिरण: कान्तप्रभ: कौस्तुभ: ।
११. भूतानामुदपद्यत स्थितिकर: स्थेष्ठं महिम्न: पदम्(दं)
राजन्राजक-मण्डलाम्बर-शशी श्रीशानवर्मा नृप: ॥ ११
लोकानामुपकारिणारि-कुमुद-व्यालुप्त-कान्ति श्रिया ।
मित्रास्याम्बुरुहाग (क)र-द्युतिकृता भूरि-
१२. प्रताप-त्विषा ।
येनाच्छादित-सत्पथं कलियुग-ध्वान्तावमग्नञ्जग-
त्सूर्य्येणेव समुद्यता कृतमिदं भूय: प्रवृत्त-क्रियम् ॥ १२
जित्वान्ध्राधिपतिं सहस्रगणित-त्रेधा-क्षरद्वारणम् (णं)
व्यवल्गन्नियुताति-
१३. संख्य-तुरगान्भङ्क्त्वा रणे सूलिकाम् (कान्) ।
कृत्वा चायति-मो(मौ)चित-स्थलभुवो गौडान्समुद्राश्रया-
नध्यासिष्ट नत-क्षितीश-चरण: सिंहासनं यो जिती ॥ १३
प्रस्थानेषु-बलार्ण्णवाभिगमन-क्षोभ-स्फुटद्भूतल-
१४. प्रोद्भूत-स्थगितार्क्क-मण्डल-रुचा दिग्व्यापिना रेणुना ।
यस्यामूढदिनादिमध्य-विरतौ लोके (ऽ*)न्धकारीकृते ।
व्यक्तिं नाडिकयैव यान्ति जयिनो यामास्त्रियामास्विव ॥ १४
प्रविशती कलि-मारुत-घट्टिता
१५. क्षितिरलक्ष्य-रसातल-वारिधौ ।
गुणशतैरवबध्य समन्तत:

स्फुटित-नौरिव येन बलाद्धि (द्ध) ता ।। १५
ज्याघात-व्रण-रूढ़ि-कर्कश-भुजा-व्याकृष्ट-शार्ङ्ग-च्युता-
न्यस्यावाप्य पतत्त्रिणो रणमुखे प्राणानमुञ्च-
१६. न्द्विषः ।
यस्मिन्शासति च क्षितिं क्षितिपतौ जातेव भूयस्त्रयी ।
तेन ध्वस्त-कलि प्रवृत्ति-तिमिरः श्री-सूर्य्यवर्म्माजनि ।। १६
यो बालेन्दु सकान्ति कृत्स्न-भुवन-प्रेयो दधद्यौवनम् (नं)
शान्तः शास्त्र-विचारणा-
१७. हित-मनाः पारङ्कलानाङ्गतः ।
लक्ष्मी-कीर्त्ति-सरस्वती-प्रभृतयो यं स्पर्धयेवाश्रिता
लोके कामित-कामि-भाव-रसिकः कान्ता-जनो-भूयसा ।। १७
सद्वृत्तेन बलात्कलेरवनति(तं) तावत्प्रवृद्धात्मनो
बाणै-
१८. स्तावदवस्थितं स्मृतिभुवः कान्ता-शरीर-क्षतौ ।
लक्ष्म्या तावदकाण्ड-भङ्गज-भयं त्यक्तम्परापाश्रयम्(यं) ।
यावन्नाविरकारि यस्य जनता-कान्तं वपुर्व्वेधसा ।। १८
लक्ष्म्यः शत्रुभुवः कुच-ग्रह-भयावेश-भ्रम-
१९. ल्लोचना ।
येनाकृष्य भुजेन विस्फुरदसि-ज्योतिः -कलासङ्गिना ।
कान्ता मन्मथिनेव कामित-विदा गाढं निपीड्योरसा ।
प्रायेणान्यमनुष्य-संश्रय-कृतं भावं परित्याजिता ।। १९
तेनानतोन्नतिकृता
२०. मृगया-गतेन
दृष्ट्वाद्यमन्धकभिदो भवनं विशीर्ण्णम् (।*)
स्वेच्छा-समुन्नतमकारि ललाम भूमेः
क्षेमेश्वर प्रथित-नाम शशाङ्क-शुभ्रम् ।(।*) २०
एकादशातिरिक्तेषु षट्षु शातित-विद्विषि ।
शतेषु शरदां
२१. पत्यौ भुवः श्रीशानवर्म्मणि ।। २१
यस्मिन्काले(ऽ*)म्बुवाहा नव-गवल-रुचः प्रान्त-लग्नेन्द्रचापा-
स्तन्वन्त्याशा-वितानं स्फुरदुरु-तडितः सान्द्र-धीरं क्वणन्तः ।
वाताश्च वान्ति नीपान्नव-कुसुम-चयानम्र-मूर्ध्नो
२२. धुनाना-
स्तस्मिन्मुक्ताम्बुमेघ-द्युति भवनमदो निर्म्मितं शूलपाणेः ।। २२
कुमारशान्तेः पुत्रेण गर्ग्गराकट-वासिना ।
नृपानुरागात्पूर्व्वेयमकारि रविशान्तिना ।। २३
उत्कीर्ण्णा मिहिरवर्म्मणा (।।*)

अनुवाद

श्लोक १ : त्रिपुर (नामक राक्षस) का विनाश करने वाले, सम्पूर्ण भूतों (अर्थात् प्राणियों) की आत्मा एवं कल्याण के कारक भव (=शिव) विजयी हों, जिनकी अर्द्धांग एक नारी (=पार्वती) होने के बावजूद जिनके हृदय में मनोज (=कामदेव) को कोई स्थान नहीं मिल सका; जो विश्व की सृष्टि, स्थिति एवं लय के कारण रूप देवताओं को भी जन्म देने वाले हैं और जिनके ध्यान में अज्ञान-समूहों एवं दुर्भावनाओं के विनाशक योगी भी मग्न रहते हैं।

श्लोक २ : अन्धक-विद्विष वह (शिव) आपको अमरत्व प्रदान करें जिनके अंग पर सर्प सुशोभित हैं, जिनके ललाट पर मृगाकृति को धारण करने वाली तन्वी चन्द्रकला अलंकृत है, जो अपने नेत्रों से उत्पन्न आभा के कारण कपिश वर्ण हो जाने वाली शुभ्र कपालावली धारण करते हैं, जो फणियों के मस्तक में छिपी मणियों की प्रभा से आभासित सिंह त्वचा धारण करते हैं।

श्लोक ३ : अपने गुण-गणों के कारण देदीप्यमान, अश्वपति नामक नृप को वैवस्वत के वर से प्राप्त सौ पुत्रों के वंशज मुखर (=मौखरि) नरेश थे जो शत्रुओं का विनाश करने वाले एवं पापाचार के विनाशक थे।

श्लोक ४ : उनसे सर्वप्रथम हरिवर्मा नामक नरेश हुआ जो प्राणियों के कल्याण के निमित्त उत्पन्न हुआ था। वह ज्वालामुख नाम से विख्यात हुआ क्योंकि युद्ध क्षेत्र में अंगार-सदृश उसके लालमुख को देखकर उसके शत्रु भयभीत हो जाते थे एवं उसके समक्ष नतमस्तक होते थे। उसकी प्रभा ने शत्रु-सम्पति का विनाश किया और उसका यश दिग्दिगन्त में फैला।

श्लोक ५ : जिसका नाम प्रशंसनीय था, जिसकी सुरम्य कीर्त्ति जगत्-व्यापिनी थी, जो नैतिक विधानों को स्थिर करने में संलग्न था तथा जो मनु के सदृश आचार एवं विवेक के मार्ग पर सुदृढ़ रहता था।

श्लोक ६ : जिस प्रकार समुद्र से शीत-रश्मि (=चन्द्रमा) का जन्म हुआ, उसी प्रकार उस राजा से उस आदित्यवर्मा का जन्म हुआ जिसे पाकर विधाता ने मानों वर्णाश्रम-व्यवस्था की आचार-विधि के प्रणयन को सफल किया।

श्लोक ७ : उसके यज्ञों में अग्निशाला से उठते हुए घने अन्धकार के तुल्य धूम्र-जाल पवन के वेग से आकाश में चारों दिशाओं में फैल जाते थे। उन्हें देखने पर बादलों का भ्रम हो जाने के कारण मोर मुखरित हो उठते थे।

श्लोक ८ : क्षेत्र-प्रभाव की अभिवृद्धि के हेतु उसने ईश्वरवर्मा नामक राजा को जन्म दिया था। उस पुण्यात्मा ने अपने कई यज्ञों में वृत्रद्विप (=इन्द्र) को भी निमन्त्रित किया था। उसने अपने सदाचार के द्वारा कलियुग के स्वभाव को विनष्ट कर दिया था। उसका यश ययाति के समान था और विविध प्रत्यन करके भी अन्य राजा उसकी तुलना नहीं कर सके थे।

श्लोक ९ : वह अपनी नीति द्वारा विशाल शौर्य, सरसता द्वारा मैत्री, सद्वंश द्वारा महत्त्वाकांक्षा, पात्र चयन द्वारा त्याग, विनम्रता द्वारा वित्तप्रभव, संयम द्वारा यौवन, सत्य द्वारा वाणी, वेद-विहित मार्ग के अवलम्बन द्वारा प्रयत्न तथा प्रणति द्वारा उत्थान को चरितार्थ करता था। यद्यपि लोक कलियुग के अन्धकार में निमग्न हो रहा था, तथापि वह परिश्रम से कभी नहीं थकता था।

श्लोक १० : उसके यज्ञों में यथाविधि प्रज्वलित अग्नि की लपटों से निरन्तर निकलती हुई धूम्रराशियां, जो अञ्जन की लकीर के सदृश कृष्ण वर्ण की थीं, चहुंदिश प्रसरित हो जाती थीं। उनको देखकर मयूर नये जल से झुके हुए बादलों से युक्त वर्षा काल के आगमन की सम्भावना से भ्रमित होकर वाचाल हो जाते थे।

श्लोक ११ : जिस प्रकार उदयाचल से सूर्य उदित होते हैं, विधाता से इन्द्र का प्रादुर्भाव हुआ है, क्षीर-सागर से चन्द्र किरणों के तुल्य धवल प्रभा वाली कौस्तुभ मणि का आविर्भाव हुआ है, उसी भांति ईश्वरवर्मा से ईशानवर्मा नामक राजा उत्पन्न हुआ। उसने सभी प्राणियों को स्थैर्य प्रदान किया। वह महिमा का श्रेष्ठ आधार तथा राजमण्डल रूपी आकाश में शशि तुल्य था।

श्लोक १२ : वह प्रताप से युक्त, उदीयमान सूर्य की भांति विश्व का कल्याण करने वाला, अपनी कान्ति-श्री द्वारा शत्रु रूपी कुमुद को नष्ट करने वाला एवं मित्र रूपी कमलों को प्रस्फुटित करने वाला था। उसने भूमण्डल को, जहां सत्य का पथ आच्छादित हो गया है, कलियुग के अन्धकार में मग्न होने से बचा कर उचित मार्ग पर संलग्न किया।

श्लोक १३ : उस जयशील ने, जिसके चरणों में अन्य नृपति अपने मस्तकों को झुकाते हैं, आन्ध्राधिपति को—जिसकी सेना में सहस्रों तिहरे मदस्रावी गज सम्मिलित थे—जीतकर, शूलिकों को—जिनकी सेना में छलांग मारने वाले असंख्य तुरग थे—युद्ध क्षेत्र में परास्त करके, तथा गौडों को—उनका स्थल-भूमि (पृथ्वी) के साथ सम्बन्ध छुड़ाकर और भविष्य में समुद्राश्रयी होने के निमित्त बाध्य करके, सिंहासन को अधिकृत किया।

श्लोक १४ : जिस समय उसकी समुद्र के तुल्य विशाल सेनाएं विजय के निमित्त प्रस्थान करती थीं, उस समय उनकी पदचाप के कारण युद्धक्षेत्र से उठी हुई धूल दिशाओं में व्याप्त हो जाती थी एवं सूर्य-मण्डल को ढक देती थी मानों समस्त संसार अंधकार-मग्न हो गया हो। ऐसे समय दिन के आदि, मध्य एवं अन्त का कोई भी ज्ञान नहीं रह जाता था; रात्रि वेला के समान समय का ज्ञान केवल जलघड़ी द्वारा ही होता था।

श्लोक १५ : जिस समय कलियुग के मारुत-वेग के कारण पृथ्वी भग्न नौका की भांति अलक्ष्य रसातल रूपी वारिधि में मग्न होने जा रही थी, उस समय ईशानवर्मा ने ही उसे अपने गुण रूपी सैकड़ों रस्सियों से बांध दिया था।

श्लोक १६ : उसने प्रत्यञ्चा के आघात से कठोर हो गई अपनी भुजाओं से धनुष को तान कर बाणों के कर्कश आघात द्वारा शत्रुओं को घायल कर दिया और उन्हें रणरूपी यज्ञ में बलि कर दिया। उस नरेश के शासन करते समय तीनों वेद पुन: अवतरित हो उठे। उस राजा (ईशानवर्मा) ने सूर्यवर्मा नामक पुत्र को जन्म दिया जिसने कलि (युग) के अन्धकार को विदीर्ण किया।

श्लोक १७ : वह (सूर्यवर्मा) बालेन्दु की भांति सम्पूर्ण विश्व के लिए अत्यन्त प्रिय यौवन को धारण करता है, (और) शान्त चित्त, शास्त्रों में विचक्षण, परोपकार में संलग्न एवं विभिन्न कलाओं में पारंगत है। उसमें लक्ष्मी, कीर्त्ति एवं सरस्वती आदि ईर्ष्यापूर्वक उसी भांति निवास करती हैं जिस प्रकार रसिक प्रेमी के लिए प्रियाङ्गनाएं अत्यन्त अभिलाषा दिखाती हैं।

श्लोक १८ : जब तक प्रवृद्ध कलियुग अपने बल के द्वारा सदाचार को दबा लेता था, कामदेव अपने बाणों के द्वारा कान्ताओं के शरीर को घायल कर देता था, असमय भंग के डर से लक्ष्मी अन्य व्यक्तियों का आश्रय नहीं लेती थी, उस समय तक विधाता ने उसके लोकप्रिय वपु का निर्माण नहीं किया था।

श्लोक १९ : उसने शत्रुदेश की कुच-ग्रहण के भय से भ्रमित नयन वाली लक्ष्मी को तलवार की ज्योति से सुशोभित अपनी बाहों के द्वारा अपने वक्षस्थल से उसी प्रकार आवेश पूर्वक लगा लिया था, जिस तरह चतुर प्रेमी भ्रमित लोचना कान्ताओं के मनोभाव को जान कर उनका प्रगाढ़ आलिंगन करता है जिससे वे अन्य व्यक्तियों के पास कामभाव से जाने की इच्छा का परित्याग कर दें।

श्लोक २० : मृगया पर निकले हुए उस नरेश ने, जो अवनत व्यक्तियों को उन्नति प्रदान करता है, अन्धक का विनाश करने वाले शिव का एक जीर्ण मन्दिर देखा। अपनी इच्छा के अनुसार उसने उसे द्विगुणित करवाया और चन्द्रमा के तुल्य शुभ्र एवं जगत् का आभूषण बना दिया। यह (देवालय) क्षेमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्लोक २१ : जब छः सौ ग्यारह शरद-ऋतुएं व्यतीत हो गईं और जिस समय क्षितिपति ईशानवर्मा राज्य कर रहा है—

श्लोक २२ : जिस काल में इन्द्रधनुष से सुशोभित काले जलधर वितान-तुल्य छा जाते हैं तथा जिसमें विद्युत् जोरों से कड़कने एवं चमकने लगती है, उस काल में भगवान् शूलपाणि के इस देवालय का निर्माण किया गया, जो बिना जल वाले बादलों की द्युति को धारण करने वाला है।

श्लोक २३ : इस प्रशस्ति की रचना नृप के प्रति अनुराग के कारण रविशान्ति नामक कवि ने की जो कुमारशान्ति का पुत्र एवं गर्गराकट का निवासी है। मिहिरवर्मा ने इसे उत्कीर्ण किया।

६

शर्ववर्मा मौखरि का असीरगढ़ ताम्र मुहर-लेख

लेख-परिचय—यह ताम्र मुहर किसी ताम्रनिर्मित दानपत्र से संलग्न रही होगी जो अब अप्राप्त है। मूल मुहर भी फ्लीट के जमाने में ही अनुपलब्ध हो चुकी थी। इसका **प्राप्तिस्थल** असीरगढ़ था। मुहर अण्डाकार थी। इसके ऊपरी भाग में पुष्पमालाओं से अलंकृत वृषभ है जिसके ऊपर एक छत्र बना है। वृषभ के आगे एक मनुष्य है जिसके दाहिने हाथ में परशु है और बायें में चक्र या सूर्य-ध्वज। वृषभ के पीछे भी एक मानवाकृति है जिसके बायें हाथ में परशु है और दाहिने में चौरी। लेख की **भाषा** संस्कृत है और **लिपि** उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी।

महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ-ग्रन्थ—फ्लीट, कॉर्पस, ३, सं० ४७; भाण्डारकर, सूची सं० १६०२; थपल्याल, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्यभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, १९८५, पृ० १४७-८; सोहोनी, एस० वी०, मौखरि एण्ड वर्द्धन सील्स, आई० एन० सी०, १२, १९७४, पृ० ५४-६६।

मूलपाठ

१. चतुस्समुद्रातिक्क्रान्तकार्त्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजा (जो) वर्णाश्रम व्यवस्था-
२. पनप्रवृत्तचक्कश्चक्कधर इव प्रजानामर्त्तिहर [:*] श्रि (श्री) महाराजहरिवर्म्मा [॥*] तस्य
३. पुत्रस्तत्पादानुद्ध्य [।*] तो जयस्वामिनीभट्टारिकादेव्य [।*]मुत्पन्नः श्रीमहाराजादित्यव-
४. र्म्मा [॥*] तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्यातो हर्षगुप्ताभट्टारिकादेव्यामुत्पन्नः श्रीमह [।*] रा-
५. जेश्वरवर्म्मा [॥*] तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्यात उपगुप्ता भट्टारिकादेव्यामुत्पन्नो-
६. मह [।*] राजाधिराजश्रि (श्री) ईशान(श्रीशान)वर्म्मा [॥*] तस्यपुत्रस्तत्पादानुद्ध्यातो ल (?) क्ष[म]ीव-
७. [त]ीभट्टारिकामह [।*] देव्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरा (रो) र-(म-)
८. हाराजाधिराज श्री शर्व्ववर्म्मा मौखरिः[॥*]

पाठ-टिप्पणी—लेख में आठ पंक्तियाँ हैं। फ्लीट के 'कॉर्पस' के हिन्दी अनुवादक गि० शं० मिश्र ने असावधानी से ७वीं-८वीं पंक्तियों को एक मान लिया है। पंक्ति ५ : चार्ल्स विल्किन्स ने 'उपगुप्ता' को 'उमागुप्ता' पढ़ा था। पंक्ति ६-७ : विल्किन्स ने 'लक्ष्मी' को 'हर्षिणी' पढ़ा था। पंक्ति ७ : फ्लीट ने अन्तिम अक्षर 'म' पढ़ा था पर यह स्पष्टतः 'र' है यद्यपि होना 'म' ही चाहिये था।

शब्दार्थ

अतिक्रान्त=अतिक्रमण करने वाली; उपनत=अधीन; चक्र=सेना, बल, प्रभुता; चक्रधर=विष्णु; अर्त्तिहर= दुखों को दूर करने वाला

अनुवाद

चारों समुद्रों का अतिक्रमण करने वाली कीर्त्ति वाले, अन्य राजाओं को अपने प्रताप और अनुराग (अर्थात् प्रेम) से अपने अधीन करने वाले, अपने चक्र (अर्थात् सेना या प्रभुता) द्वारा वर्ण और आश्रम संस्थाओं के व्यवस्थापन में

में प्रवृत्त (तथा) प्रजा के कष्टों को (भगवान्) चक्रधर (=विष्णु) के समान दूर वाले श्री महाराज हरिवर्म्मा (थे)। उनके पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले, भट्टारिका देवी जयस्वामिनी (के गर्भ) से उत्पन्न **श्री** महाराज आदित्य-वर्मा (थे)। उनके पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले भट्टारिका देवी हर्षगुप्ता (के गर्भ) से उत्पन्न श्री महाराज ईश्वरवर्मा (थे)। उनके पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले भट्टारिका देवी उपगुप्ता (के गर्भ) से उत्पन्न महा-राजाधिराज श्री ईशानवर्मा (थे)। उनके पुत्र उनके चरणों का ध्यान करने वाले भट्टारिका महादेवी लक्ष्मीवती (के गर्भ) से उत्पन्न परममाहेश्वर (=शिव के परम भक्त) महाराजाधिराज श्री शर्ववर्मा मौखरि (हैं)।

व्याख्या

(१) महाराज हरिवर्मा का प्रथम पंक्तियों में प्रदत्त वर्णन हर्ष के बांसखेड़ा–दानपत्र में प्रभाकरवर्द्धन के वर्णन से सादृश्य रखता है। इससे हमारे इस अनुमान को कुछ अतिरिक्त आधार मिलता है कि पुष्यभूतियों ने मौखरियों के अधीन शासन करना प्रारम्भ किया था (दे०, पृ० ६)।

(२) **वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत्तचक्रः**—मौखरि राजाओं ने वर्णाश्रम व्यवस्था की पुनर्स्थापना पर बहुत बल दिया। दे०, हड़हा-लेख, पृ० ५६। हो सकता है हूण आक्रमण से फैली सामाजिक अव्यवस्था को दूर करना वे अपना कर्त्तव्य मानते रहे हों। स्मरणीय है कलियुग की बुराइयों का पुराणों में प्रदत्त वर्णन गुप्तोत्तरयुगीन ही है। यशोधर्मा भी तत्कालीन युग के अनाचार की निन्दा करता है।

(३) **भट्टारिका देवी जयस्वामिनी**—'स्वामिनी' नामान्त प्रायः शक राजकुमारियों में मिलते हैं। अतः सम्भावना मानी जा सकती है कि हरिवर्मा की पत्नी कोई शक राजकुमारी रही होगी।

(४) **हर्षगुप्ता**—अफसड़-लेख के अनुसार परवर्ती-गुप्त नरेश हर्षगुप्त कुमारगुप्त का पितामह था और कुमार-गुप्त ईशानवर्मा का समकालीन था। इसलिये हर्षगुप्त आदित्यवर्मा का समकालीन रहा होगा। अतएव हो सकता है यह हर्षगुप्ता हर्षगुप्त की बहिन रही हो क्योंकि उस युग में भाई-बहिन के एक से नाम रखने की प्रथा भी थी (यथा, महासेनगुप्त और महासेनगुप्ता)।

(५) **उपगुप्ता**—नाम से यह भी गुप्तवंशोत्पन्ना लगती है। क्योंकि भगवान् विष्णु को 'उपेन्द्र' भी कहते हैं, इस-लिये अनुमान किया गया है कि वह अन्तिम गुप्त सम्राट् विष्णुगुप्त की बहिन रही होगी। परन्तु यह अनुमान असम्भव न होते हुए भी नितान्त कल्पना पर आधृत है।

(६) **'भट्टारिका' 'महादेवी'**—ध्यातव्य है कि महाराजाओं की पत्नियों को 'देवी' कहा गया है और महाराजा-धिराजाओं की पत्नियों को 'महादेवी'। परन्तु महाराजाओं की पत्नियों की भट्टारिका उपाधि को परिवर्तित कर 'परम-भट्टारिका' नहीं किया गया है। भट्टारिका' 'भट्टारक' का स्त्रीलिंग रूप है। इसका अर्थ है 'पूजा या सम्मान की अधिकारिणी'।

(७) इस लेख के अन्त में शर्ववर्मा को 'मौखरि' कहा गया है। इससे पहिले यह अनुमान किया गया था कि 'मौखरि' विशेष रूप से शर्ववर्मा की उपाधि थी। परन्तु अब अवन्तिवर्मा की सोहनाग मृत्तिका-मुहर उपलब्ध है (इ० आई०, २७, पृ० ६३-५; आगे) जिसमें ठीक यही वंशावली दी गई—सिवाय इस अन्तर के कि उसमें शर्ववर्मा के बाद उसकी पत्नी इन्द्रभट्टारिका देवी के गर्भ से उत्पन्न अवन्तिवर्मा का उल्लेख भी है। उस मुहर में अन्त में 'मौखरि' शब्द का प्रयोग अवन्तिवर्मा के लिये हुआ है, शर्ववर्मा के लिये नहीं। इससे स्पष्ट है कि 'मौखरि' विशेषण मुहर में उल्लिखित अन्तिम राजा के नाम के साथ जोड़ा जाता था।

अभिलेख का महत्त्व

प्रस्तुत मुहर-लेख से मौखरि राजाओं की पांच पीढ़ियों का परिचय मिलता है तथा प्रथम चार नरेशों की पत्नियों के नाम ज्ञात होते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है इस वंश के प्रथम तीन राजा मात्र 'महाराज' थे जबकि चौथे राजा ईशानवर्मा ने 'महाराजाधिराज' उपाधि धारण की थी। ईशानवर्मा के ५५४ ई० के हड़हा-लेख में उसके लिये यह

उपाधि प्रयुक्त नहीं मिलती। परन्तु वह लेख पद्य में है जिससे यह निश्चितरूपेण नहीं कहा जा सकता कि उसने तब तक यह पदवी धारण कर ली थी या नहीं। क्योंकि साम्राज्यिक गुप्त वंश, यशोधर्मा वाले साम्राज्यिक औलिकर वंश तथा हूण—ये तीनों ही छठी शती ई० के मध्य अपनी-अपनी साम्राज्यिक शक्ति और प्रतिष्ठा खो चुके थे इसलिये ईशानवर्मा ५५० ई० के कुछ पहिले या बाद में 'महाराजाधिराज' बन सकता था। उसके पूर्वज पहिले गुप्तों के अधीन रहे होंगे, लेकिन बाद में उन्हें हूणों या मालवा के औलिकर सम्राटों का प्रभुत्व मानना पड़ा होगा। स्पष्ट है जब तोरमाण मगध और गौड तक बढ़ा और यशोधर्मा लौहित्य तक गया तब मौखरि राजाओं को भी उनका आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा होगा।

मौखरि नरेश शैव थे। शर्ववर्मा भी शैव था जैसा कि उसकी 'परममाहेश्वर' उपाधि और मुहर पर बनी नन्दी-मूर्त्ति से स्पष्ट है।

प्रस्तुत मुहर की छाप असीरगढ़ से मिली थी। पर इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि असीरगढ़ मौखरियों के अधीन था। परन्तु शर्ववर्मा के पिता ईशानवर्मा ने आन्ध्रों और शूलिकों के विरुद्ध युद्ध लड़े थे जिससे मौखरियों का दक्षिण से राजनीतिक-सामरिक सम्बन्ध सिद्ध है।

७

शर्ववर्मा का सिरौली (चमोली)-शिलालेख

प्राप्तिस्थल : उत्तर प्रदेश के उत्तराखण्ड भूखण्ड में चमोली तहसील के सिरोली ग्राम से अनुसूया देवी के मन्दिर को जाने वाले मार्ग में यह शिला १९६६ ई० में मिली।

लिपि : छठी शती ई० के मध्य की उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी।

भाषा : संस्कृत।

उद्देश्य : किसी क्षत्रिय नरवर्मा द्वारा, जिसने महालय-वृद्धेश्वर के मन्दिर का निर्माण भी करवाया था, अपने और अपने माता-पिता के पुण्य की वृद्धि के हेतु महाराजाधिराज श्री परमेश्वर शर्ववर्मा के काल में पानीय-संग्रह (जलागार) के निर्माण करवाये जाने का उल्लेख।

महत्त्व : इसमें शर्ववर्मा के वंश का उल्लेख नहीं है परन्तु लेख के समय एवं शासक राजा की 'परमेश्वर' तथा 'महाराजाधिराज' उपाधियों को ध्यान में रखते हुये उसे मौखरि शर्ववर्मा माना जा सकता है। इस अभिलेख से यह प्रमाणित तो नहीं होता पर सम्भावना सबल जरूर हो जाती है कि शर्ववर्मा का साम्राज्य उत्तराखण्ड तक विस्तृत था। गायि के अनुसार यह लेख किसी राजा का उल्लेख करने वाला उत्तराखण्ड से प्राप्त प्राचीनतम लेख है।

सन्दर्भ-निबन्ध : गायि, जी० एस०, इ० आई०, ३८, पृ० ५७-८।

मूलपाठ

१. महाराजाधिराज-श्रि (श्री)-पर-
२. मेश्वर-श्व (श) र्व्ववर्म्म-पादानुध्यात-
३. श्री-महालय-वृद्धिकेश्वर-दे [व]-
४. कुल-कारापक-क्षत्रिय-न-
५. रवर्म्म [णा *] माता-पित्रोरात्मन-
६. श्च पुण्याप्यायनाय स्वित-
७. पानि (नी) य-संग्रह कृत ॥

८

शर्ववर्मा का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य के पटना जिले का नालन्दा स्थल ।

भाषा : संस्कृत । सम्पूर्णतः गद्य में है ।

लिपि : उत्तर भारतीय वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : हीरानन्द शास्त्री, ए० एस० आई० ए० आर०, १९२७-२८, पृ० १३९; इ० आई०, २१, पृ० ७३-७४; एम० ए० एस० आई०, ६६, पृ० ६७-८; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, १९८५, पृ० १४९ ।

मूलपाठ

(असीरगढ़ मुहर-लेख के मूल पाठ के सदृश)

६

अवन्तिवर्मा का सोहनाग मुहर-लेख

प्राप्तिस्थल : उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले का सोहनाग स्थल।

भाषा :संस्कृत। गद्यात्मक।

लिपि : छठी शती के उत्तरार्द्ध की उत्तर भारतीय ब्राह्मी।

विशेष चर्चा : अन्य मौखरि लेखों में आदित्यवर्मा की मां का नाम जयस्वामिनी तथा रानी का नाम हर्षगुप्ता दिया गया है। इस लेख में लिपिक ने गलती से दोनों का नाम जयस्वामिनी उकेर दिया है। दूसरे, इस लेख में मौखरि विशेषण शर्ववर्मा के लिये प्रयुक्त न होकर मुहर के जारीकर्त्ता अवन्तिवर्मा के लिये प्रयुक्त है, उसी प्रकार जैसे असीरगढ़-मुहर में यह उस मुहर के जारीकर्त्ता शर्ववर्मा के लिये प्रयुक्त है। स्पष्टतः इस विशेषण का प्रयोग वंशावली में उल्लिखित अन्तिम मौखरि राजा के लिये होता था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : वत्स, एम० एस०, इ० आई०, २७, पृ० ६२-६५; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, नई दिल्ली, १९८५, पृ० १५०।

मूलपाठ

१. चतुस्समुद्रातिक्क्रान्तकीर्त्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजा (जो) वर्णाश्रमव्यवस्थापन-प्रवृत्त-

२. चक्क्रश्चक्क्रधर इव प्रजानामर्त्तिहरः श्रीमह [ा] राजहरिवर्म्म [ा] [।।*] तस्य पुत्रस्त-त्पादानुद्ध्यातोज-

३. यस्वामिनीभट्टारिकादेव्यानुत्पन्नः श्रीमहाराजादित्यवर्म्म [ा] [।।*] तस्यपुत्रस्तत्पादानुद्ध-यातो जयस्वामिनी-

४. भट्टारिकादेव्यामुत्पन्नः श्रीमहाराजेश्वरवर्म्मा [।।*] तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्यात उपगुप्ताभट्टा-रिका-

५. देव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराजश्रीईशानवर्मा [।।*] तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातो

६. लक्ष्मीवतीभट्टारिका देव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराजश्रीशर्ववर्म्मा [।।*]

७. तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्यात इन्द्रभट्टारिकामहादेव्यामुत्पन्न [:*] परममाहेश्वरो

८. महाराजाधिराजश्रीअवन्तिवर्म्मा मौखरिः [।।*]

अनुवाद

(शर्ववर्मा की असीरगढ़—मुहर के सदृश-सिवाय इसके कि इसमें (१) आदित्यवर्मा की रानी का नाम गलती से जयस्वामिनी लिख दिया गया है, (२) शर्ववर्मा को मौखरि नहीं कहा गया है तथा (३) उसके पुत्र का 'परममाहेश्वर महाराजाधिराज श्री अवन्तिवर्मा मौखरि' रूप में उल्लेख है)।

१०

अवन्तिवर्मा का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य के पटना जिले का नालन्दा स्थल ।

भाषा : संस्कृत । सम्पूर्णतः गद्य में ।

लिपि : उत्तर भारतीय वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : घोष, ए०, इ० आई०, २४, पृ० २८३ अ०; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, नई दिल्ली, १९८५, पृ० १५३ ।

मूलपाठ

१. चतुस्समुद्रातिक्क्रान्तक [ो] [र्ि] त्तः प्रत [ा] प [ा] नुर [ा] गोप···
२. चक्क्रश्चक्क्रधर इव प्रजानामर्त्तिहरः श्री·········
३. स्व [ा] मिनीभट्टारिकादेव्यामुत्पन्नः श्री·········
४. भट्टारिकादेव्यामुत्पन्नः श्रीमहाराज [ॆ]·········
५. देव्यामुत्पन्न [ो] श्रीमहाराजाधिरा [जश्री*] ईशानवर्म्मा [।।*] तस्य पुत्रस्त·········
६. लक्ष्मीवतीभट्टारिकाम [हादेव्या] मुत्पन्नो महाराजाधिराजश्रीशर्व्ववर्म्मा [।।*]
७. तस्य पुत्रस्तत्पादा [नुध्यात इन्द्र*] भट्टारिकामहादेव्यामुत्पन्नः परममाहेश्वर [ो]
८. [महारा*] जाधिराजश्री अवन्तिवर्म्मा मौखरिः [।।*]

अनुवाद

इस मुहर-लेख का अवशिष्ट भाग अवन्तिवर्मा के सोहनाग मुहर-लेख के समान है । अतः इसके अनुवाद के के लिये सोहनाग मुहर-लेख का अनुवाद देखें ।

११

अवन्तिवर्मा (?) का कन्नौज मृत्तिका सांचा-मुहर-लेख

प्राप्तिस्थल : उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले का कन्नौज शहर ।

भाषा : संस्कृत । सम्पूर्णतः गद्य में ।

लिपि : उत्तर भारतीय परवर्ती ब्राह्मी ।

विशेष चर्चा : यह एक मुहर-लेख का साँचा है जिसमें अक्षर उल्टे उत्कीर्ण किये गये हैं । इसमें मौखरि राजाओं के नाम वस्तुतः केवल ईश्वरवर्मा तक मिलते हैं, उसके बाद का अंश टूट कर खो चुका है । लेकिन जैसा कि थपल्याल ने आग्रह किया है इसके आकार से लुप्तांश का अन्दाज लगाया जा सकता है और उससे निश्चित-सा लगता है कि इसमें उल्लिखित अन्तिम राजा अवन्तिवर्मा था ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, १९८५, पृ० १५३ ।

मूलपाठ

१. [चतुस्समुद्रातिक्क्रान्त कीर्त्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यरा*] जो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्त

२. [चक्क्रश्चक्क्रधर इव प्रजानामर्त्तिहरः श्रीमहाराजह*] रिवर्म्मा [।।*] तस्य पुत्त्रस्तत्पादानुध्यातो जय

३. [स्वामिनीभट्टारिकादेव्यामुत्पन्नः श्रीमहाराजादित्यवर्म्मा [।।*] तस्य पुत्त्रस्तत्पादानुध्यातो हर्षगुप्ता

४. [भट्टारिकादेव्यामुत्पन्नः श्रीमहाराजेश्वरवर्म्मा [।।*] तस्य पुत्त्रस्तत्पादानुध्यातो उपगुप्ता*] भट्टारिका

१२

महाराजाधिराज सु- का नालन्दा मृत्तिका मुहर-लेख

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य के पटना जिले का नालन्दा स्थल।

भाषा : संस्कृत। गद्यात्मक।

लिपि : उत्तर भारतीय परवर्ती ब्राह्मी।

महत्त्व : मौखरि इतिहास के पुनर्निर्माण में इस मुहर-लेख का विशेष महत्त्व है। बाण के 'हर्षचरित' से ज्ञात होता है कि प्रभाकरवर्द्धन की पुत्री राज्यश्री का विवाह जिस मौखरि नरेश ग्रहवर्मा से हुआ था वह अवन्ति-वर्मा का ज्येष्ठ पुत्र था। परन्तु प्रस्तुत मुहर में अवन्तिवर्मा के बाद उसके एक अन्य पुत्र का नाम है। उसके नाम का केवल प्रथम अक्षर 'सु' बचा है। दूसरे अक्षर को 'व' या 'च' पढ़ा जा सकता है, शेष टूटे गये हैं। स्पष्टतः वह ग्रहवर्मा का अनुज रहा होगा। उसकी पहिचान 'आर्यमञ्जुश्रीमूलकल्प' के 'सुव्र' से अनायास की जा सकती है जिसने इस ग्रन्थ के अनुसार ग्रहवर्मा के बाद शासन किया, यद्यपि एन० पी० चक्रवर्ती ने उसका पूरा नाम सुचन्द्रवर्मा सुझाया है। इस प्रकार इस अभिलेख से स्पष्ट होता है कि ग्रहवर्मा की हत्या के बाद मौखरि राजवंश में उसके अनुज के रूप में सिंहासन का एक दावेदार मौजूद था जिसने हर्ष के द्वारा कन्नौज के हस्तगत किये जाने का विरोध ही नहीं किया होगा वरन् किसी समय 'महाराजाधिराज' रूप में शासन भी किया। यहाँ यह स्मरणीय है कि ग्रहवर्मा पुत्रहीन मरा था (हर्षचरित) इसलिये 'सु' का दावा वैधानिक रूप से सही था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : घोष, ए०, इ० आई०, २४, पृ० २८३ अ०; थपल्याल, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १५४-५।

मूलपाठ

१. ······व्यामुत्प[न्] नः ······
२. ......ट्टा [रि] रक [ा] देव्यामुत्पन्नः श्री महाराजे······
३. उपगुप्ताभट्टारिकादेव्यामुत्पन्नो महाराजाधि·········
४. त्पादानुध्यातो लक्ष्मीवतीभट्टारिकामहादेव्या·········
५. शर्व्ववर्म्मा [।।*]तस्य[पु]त्रस्तत्पादानुध्यात इन्द्रभट्टा···
६. [महाराजाधिराज] श्री अवन्तिवर्म्मा [।।*]तस्य पु···
७. [वती?]भट्टारिकामहादेव्यामुत्पन्नः पर······
८. राजा[धि]राजश्रीसु······

१३

मनोरथवर्म्मदेव (मौखरि) ? का तिथिविहीन इलिया-अभिलेख

प्राप्तिस्थल : उत्तर प्रदेश के वाराणसी जिले की चकिया तहसील का इलिया ग्राम ।

अभिलेख-वर्णन : अभिलेख ११$\frac{१}{२}$″ × ३$\frac{१}{२}$″ क्षेत्रफल में तीन पंक्तियों में एक पाषाण खण्ड पर लिखा है ।

लिपि : सातवीं-आठवीं शती की उत्तर भारतीय (सिद्धमातृका) लिपि ।

भाषा : संस्कृत । 'सिद्धम्' के निर्देशक प्रतीक को छोड़कर सम्पूर्णतः गद्यमय ।

सार और महत्त्व : अभिलेख में श्री मनोरथवर्म्मदेव नामक किसी राजा के प्रवर्द्धमानविजय राज्य का कोई तिथि दिये बिना उल्लेख है । उसके शासन काल में उसके पादानुध्यात श्री भारति (?) वर्मा ने महादेव के नाम पर कुछ निर्माण-कार्य (=कीर्त्ति) करवाया था । यद्यपि अभिलेख में मनोरथवर्मा का वंशनाम नहीं दिया गया है परन्तु, जैसा कि अभिलेख के सम्पादक दि०च० सरकार ने कहा है, परिस्थिति से लगता है कि वह मौखरि वंशोत्पन्न था । उसका सम्बन्ध उस मौखरि भोगवर्मा से रहा होगा जिसका चर्चा एक नेपाली अभिलेख में मिलती है ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, दि० च०, इ० आई०, ३४, पृ० २४६-७ ।

मूलपाठ

१. सिद्धम् [॥*] श्रीमनोरथवर्म्मदेवस्य प्रव–

२. [र्द्ध] मान-विजय-राज्ये तत्पादानु[द्ध्या]–

३. [त-श्री-भा] रतिवम्[र्मदेवस्यक] ीर् ि [त्तः][॥*]

१४

यशोवर्मा (मौखरि नृपति ?) का तिथिविहीन नालन्दा पाषाण-अभिलेख

प्राप्तिस्थल : बिहार के पटना जिले का नालन्दा स्थल ।

भाषा : संस्कृत । प्रारम्भ में 'सिद्धम्' के चिह्न और नवीं पंक्ति के 'अपि च' शब्दों को छोड़कर समस्त लेख पद्यमय ।

लिपि : उत्तरी वर्ग की आठवीं शती की परवर्ती ब्राह्मी ।

छन्द : १,३-६,८,१० : शार्दूलविक्रीडित; २,७,९,१२-१५ : स्रग्धरा; ११ : वसन्ततिलका ।

लेखक : शीलचन्द्र तथा करणिक स्वामिदत्त ।

अभिलेख-वर्णन : यह अभिलेख बुद्ध की स्तुति से प्रारम्भ होता है जिन्हें इन्द्रादि देवता भी नमस्कार करते बताये गये हैं । इसके उपरान्त यशोवर्मा की प्रशंसा है । उसे सुन्दर, शत्रुओं का विजेता और यशस्वी बताया गया है । इसके उपरान्त मालाद का वर्णन है जो यशोवर्मा का प्रिय और उसके एक उच्च पदाधिकारी का, जिसे मन्त्री, मार्गपति (सीमापाल), उदीचीपति तथा प्रतीत-तिकिन कहा गया है, पुत्र था । मालाद ने नालन्दा में स्थित और बालादित्यराज (गुप्त सम्राट् नरसिंहगुप्त बालादित्य) द्वारा निर्मित विहार को अपने गुरु भिक्षु पूर्णेन्द्रसेन की प्रेरणा से, भगवान् बुद्ध के प्रति भक्ति भाव के कारण तथा अपने माता-पिता, निकट सम्बन्धियों, मित्रों एवं स्वयं की दीर्घायु एवं समृद्धि के लिये अभिलेख में वर्णित दान दिया था । लेख की रचना शीलचन्द्र तथा करणिक स्वामिदत्त ने संघ के आदेश से मिलकर की थी । दान में दी गई वस्तुयें, चीवरों को छोड़कर, मालाद ने संघ से खरीदी थीं ।

महत्त्व : इस अभिलेख में गुप्त सम्राट् बालादित्य का एवं उसके द्वारा निर्मित विशाल महाविहार का उल्लेख है । इस प्रकार यह लेख उस परम्परा को सही प्रमाणित करता है जिसके अनुसार बालादित्यराज एक निष्ठावान् बौद्ध था । बालादित्यराज द्वारा निर्मित इस भवन के ऊंचे और भव्य चैत्यों और विहारों का इसमें प्रदत्त वर्णन शुआन-च्वांग के साक्ष्य को समर्थित करता है । अभिलेख में नालन्दा के महान् विद्वानों की भी चर्चा है । इस प्रसंग में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि स्वयं यशोवर्मा की रुचि सम्भवतः बौद्ध धर्म में भी थी क्योंकि घोस्रावन्वा-अभिलेख में (नवीं-दसवीं शती ई०) यशोवर्म्मपुरविहार का उल्लेख मिलता है जिसका निर्माण इसी यशोवर्मा ने कराया होगा (दे०, इ० आई०, २०, पृ० ४३ अ०) ।

प्रस्तुत अभिलेख को इसको प्रकाश में लाने वाले जे० ए० पेज तथा प्रथम सम्पादक हीरानन्द शास्त्री ने कन्नौज के यशोवर्मा का बताया था । बाद में हीरानन्द शास्त्री ने इसको मालवा के यशोधर्मा का बताया और ए० के० मृत्युञ्जयन् ने उनका समर्थन किया । लेकिन बाद में मजूमदार ने सिद्ध कर दिया कि यह अभिलेख कन्नौज के यशोवर्मा का ही है : (१)प्रस्तुत अभिलेख के राजा का नाम यशोवर्मा है, यशोधर्मा नहीं । (२) इसकी लिपि छठी शती के पूर्वार्द्ध की नहीं हो सकती । (३) यशोधर्मा की उपाधियां—'जनेन्द्र', 'राजाधिराज', 'परमेश्वर' और 'सम्राट्'—इस अभिलेख में उल्लिखित नहीं मिलती । (४) यशोधर्मा कट्टर शैव था जबकि यशोवर्मा की रुचि शैव धर्म में अनुल्लिखित है ।

इस तरह इस अभिलेख का यशोवर्मा स्पष्टतः वाक्पति के 'गौडवहो' का यशोवर्मा था। वाक्पति ने उसे चन्द्रवंशोत्पन्न बताया है। उसके नाम, चन्द्रवंश में उसकी उत्पत्ति तथा उसके पहिले कन्नौज पर मौखरि-आधिपत्य की सम्भावना को ध्यान में रखकर स्वयं यशोवर्मा के भी मौखरि होने की सम्भावना अनायास मानी जा सकती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : शास्त्री, ही० न०, ए० एस० आई० ए० आर०, १९२५-६, पृ० १३१, १५८-९; इ० आई०, २०, पृ० २८, ४०-४१; मृत्युञ्जयन्, आई० एच० क्यु०, ७, पृ० २२७-३०, ६१५-१७; मजूमदार, आई० एच० क्यु०, ७, पृ० ६६४; ८, पृ० ३७१; इद्रीस बनर्जी, आई० सी०, १५, पृ० २०३-१३; पायर्स, पूर्वो०, पृ० १४४-५; त्रिपाठी, हि० क०, पृ० २०५-७; सिनहा, डे० कि० म०, पृ० ११०-१२; मिश्र, श्याम मनोहर, यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० २७ अ०; के० ए० एस० अय्यर फेलिसिटेशन वॉल्यूम, पृ० ६३-७; जे० इ० एस० आई०, ३, १०८-१५; एम० ए०एस० आई०, ६६; थपल्याल, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १८९ अ०।

मूलपाठ

१. सिद्धम् (।।*)
संसारस्थिरव (ब) न्धात्कृतमतिर्मोक्षाय यो देहिनां
कारुण्यात्प्रसभं शरीरमपि यो दत्वा तुतोषार्थिने [।*]
सेन्द्रैर्यः स्वशिरः किरीटमकरी घृष्टांह्रि-
२. पद्मः सुरै-
स्तस्मै सर्व्वपदार्थतत्व (त्त्व) विदुषे वु (बु) द्धाय नित्यं नमः ।। [१।।*]
सर्व्वेषां मूर्ध्नि दत्वा पदमवनिभृतामुद्गतो भूरिधामा
निस्त्रिंशांशुप्रतानप्रदलितनिखिलारातिघो-
३. रान्धकारः [।*]
ख्यातो यो लोकपालः सकलवसुमतीपद्मिनीवो (बो) धहेतुः
श्रीमान्भास्वानिवोच्चैस्तपति दिशिदिशि श्रीयशोवर्म्मदेवः ।। [२।।*]
तस्यासौ परमप्रसादम-
४. हितः श्रीमानुदाराशयः
पुत्रो मार्गपतेः प्रतीततिकिनोदीचीपतेर्मन्त्रिणः [।*]
मालादो भुवि नन्दनो [ऽ*]रिदमनो यो व (ब) न्धुमत्यास्सुधी-
र्दीनाशापरिपूरणै-
५. कचतुरो धीरो विशुद्धान्वयः ।।[३।।*]
यासावूर्जितवैरिभूप्रविगलद्दानाम्वु (म्बु) पानोल्लस-
न्माद्यद्भृङ्गकरीन्द्र कुम्भदलनप्राप्तश्रियाम्भूभुजाम्[।*]
नालन्दा ह-
६. सतीव सर्व्वनगरीः शुभ्राभ्रगौरस्फुर-
च्चैत्यांशुप्रकरैस्सदागमकलाविख्यातविद्वज्जना ।। [४।।*]
यस्यामम्वु (म्बु) धरावलेहिशिखरश्रेणीवि-

७. हारावली
मालेवोर्ध्वविराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञा भुवः[।*]
नानारत्नमयूखजालखचितप्रासाददेवालया
सद्विद्याधरसङ्घ-
८. रम्यवसतिर्धत्ते सुमेरोः श्रियम् ॥[५॥*]
अत्रास [ह्य]पराक्रमप्रणयिना जित्वाखिलान्विद्विषो
वा (बा) लादित्यमहानृपेण सकलम्भुक्त्वा च भूमण्डलम् [।*]
९. प्रासादः सुमहानयम्भगवतः शौद्धोदनेरद्भुतः
कैलासाभिभवेच्छयेव धवलो मन्ये समुत्थापितः ॥[६॥*]
अपिच ॥
न्यक्कुर्व्वन्निन्दुकान्तिन्तुहि नगि-
१०. रिशिरः श्रेणिशोभान्निरस्यन्
शुभ्रामाकाशगङ्गान्तदनु मलिनयन्मूकयन्वादिसिन्धून् ।
मन्ये जेतव्यशून्ये भुवन इह वृथा भ्रान्तिरित्याक-
११. लय्य
भ्रान्त्वा क्षोणीमशेषाञ्जितविपुलयशस्तम्भ उच्चैस्स्थितो वा ॥[७॥*]
अत्रादायि निवेद्यमाज्यदधिमद्दीपस्तथा भासुर-
श्चातुर्जातकरेणुमिश्रममल-
१२. न्तोयं सुधाशीतलं (लम्) ।
साध्वी चाक्षयनीविका भगवते बु (बु)द्धाय शुद्धात्मने
मालादेन यथोक्तवंशयशसा तेनातिभक्त्या स्वयं (यम्)॥[८॥*]
आदेशात्स्फीतशीलश्रुतधवलधि-
१३. यो भिक्षु सङ्घस्य भूयो
दत्तन्तेनैव सम्यग्व (ग्ब)हुघृतदधिभिर्व्यञ्जनैर्युक्तर्म (म)न्नं (न्नम्) ।
भिक्षुभ्यस्तच्चतुर्भ्योव (ब) हुसुरभि चतुर्जातकामोदि नित्यं
तोयं स [त्रे] विभक्त पुनरपि
१४. विमलं भिक्षुसङ्घाय दत्तम् ॥[९॥*]
तेनैवाद्भुतकर्म्मणा निजमिहक्रीत्वा [र्य]सङ्क्रान्तिकान्मुक्त्वा
चीवरिकां प्रदाय विधिना सामान्यमेकन्तथा । कालम्प्रेरयितुं सुखे-
१५. न लयनन्दत्तं स्वदेशम्वि (शंवि) ना
तेभ्यो नर्द्दरिकावधेश्च परतः शाक्यात्मजेभ्यः पुनः ॥[१०॥*]
दानं यदेतदमलङ्गुणशालिभिक्षु-पूर्णेन्द्रसेनवचनप्रतिवो (बो)
धितेन । तेन प्रतीत-
१६. यशसा भुवि निर्म्मलाया
भ्रात्रा व्यधायि शरदिन्दुनिभाननायाः ॥[११॥*]
पित्रोर्भ्रातुः कलत्रस्वसृसुतसुहृदान्तस्य धर्म्मैकधाम्नो
दत्तं दानं यदेतत्सकलमतिरसेनायुरा-

१७. रोग्यहतोः ।

सर्व्वेषाञ्जन्मभाजां भवभयजलधेः पारसन्तारणार्थं
श्रीमत्सम्वो(म्बो)धिकल्पद्रुमविपुलफलप्राप्तये चानुमोद्यम् ।।[१२।।*]
चन्द्रो यावच्चकास्ति स्फुरदुरुकिरणो लो-

१८. कदीपश्च भास्वान्

एषा यावच्च धात्री सजलधिवलया द्यौश्च दत्तावकाशा ।
यावच्चैते महान्तो भुवनभरधुरान्धारयन्तो महीध्रा-
स्तावच्चन्द्रावदाता धवलयतु दिशाम्म-

१९. ण्डलं कीर्त्तिरेषा ।।[१३।।*]

यो दानस्यास्य कश्चित्कृतजगदवधेरन्तरायं विदध्या
त्साक्षाद्वज्रासनस्थो जिन इह भगवानन्तरस्थः सदास्ते ।
वा (बा) लादित्येन राज्ञा प्रदलितरि-

२०. पुणा स्थापितश्चैष शास्ता

पञ्चानन्त [र्य] कर्तुर्ग्गतिमतिविषमान्धर्म्महीनः स यायात् ।।[१४।।*]
इत्येवं शीलचन्द्रप्रथितकरणिकस्वामिदत्तावलङ्घ्यां
संङ्घाज्ञां मूर्ध्नि कृत्वा श्रुतलव-

२१. विभवावप्यनालोच्य भारं (रम्) ।

हृद्यामेताम्मुदारां त्वरितमकुरुतामप्रञ्चां प्रशस्तिं
वाञ्छेतां किन्न पंगू शिखरितरुफलावाप्तिमुच्चैः करेण ।।[१५।।*]

शशाङ्क के अभिलेख

१. शशाङ्कदेव का रोहितासगढ़ मुहर सांचा-लेख

२. शशाङ्क के शासन काल का गञ्जाम-दानपत्र

३. शशाङ्क के काल का मिदनापुर-दानपत्र : वर्ष ८

४. शशाङ्क के काल का मिदनापुर-दानपत्र : वर्ष १९

१५

शशाङ्कदेव का रोहितासगढ़ मुहर सांचा-लेख

प्राप्तिस्थल : शाहाबाद जिले में सहसराम से चौबीस मील दक्षिण-पूर्व स्थित रोहतासगढ़ के पहाड़ी दुर्ग की एक चट्टान में ।

सांचा वर्णन : ऊपर दाहिने ओर मुख किये वृषभ अंकित है । इसके नीचे ३/१६″ चौड़ी रेखा से पृथक् किया गया लेख दो पंक्तियों में लिखा है । इसके अक्षरों का औसत आकार ६/१६″ है । यह सभी कुछ ४½″ की परिधि वाले वृत्त के अन्दर है जिसके चारों ओर १/८″ से लेकर १/४″ तक की पट्टी है । शिला पर सांचे का अंकन उल्टा है, अर्थात् वृषभ नीचे है, लेख ऊपर । इस सांचे से दानपत्रों के साथ संलग्न की जाने वाली ताम्र मुहरों को ढाला जाता होगा ।

भाषा : संस्कृत । गद्य में है ।

लिपि : छठी शती के अन्त की उत्तर भारतीय ब्राह्मी ।

विशेष चर्चा : लेख में केवल महासामन्त शशांकदेव की चर्चा है । उसकी पहिचान उस शशांक से प्रायः की जाती है और की जानी चाहिये जिसका उल्लेख शुआन-च्वांग ने शी-शाङ्ग-किया (=शशांक) नाम से कर्णसुवर्ण के राजा के रूप में किया है और राज्यवर्द्धन का हत्यारा बताया है (बील, रिकार्ड्स, १, पृ० २१०) । बाद में वह एक विशाल साम्राज्य का अधिपति बना । बौद्ध ग्रन्थ उसे बौद्ध धर्म का उत्पीड़क बताते हैं । उसके गञ्जाम और मिदनापुर से लेख मिलते हैं । गञ्जाम-लेख में उसके लिये 'महाराजाधिराज' उपाधि एवं गु० सं० ३०० तिथि उल्लिखित हैं ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कार्पस, हिन्दी, पृ० ३६३-६ ।

मूलपाठ

१. श्री महासामन्त

२. शशाङ्कदेवस्य

अनुवाद

श्री महासामन्त शशाङ्कदेव का

१६

शशाङ्क के शासन काल का गञ्जाम-दानपत्र

गु० स० ३००(=६१६ ई०)

प्राप्तिस्थल : उड़ीसा का गञ्जाम नामक स्थान ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : उत्तरी वर्ग की सातवीं शती के पूर्वार्द्ध की कीलशीर्षक ब्राह्मी ।

विशेष महत्त्व : इससे राजनीतिक इतिहास के लिये कई महत्त्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होते हैं । एक, इससे गु० स० के प्रथम वर्ष को स्थिर करने में सहायता मिली है । इससे ज्ञात होता है कि शशांक (जो हर्ष का समकालीन था) ३०० गु० स० में शासन कर रहा था । इसलिये यह मत कि गु० स० ३१९ ई० प्रारम्भ हुआ था ५७ ई० पू० या २०० ई० के आस-पास नहीं (जैसा कि कुछ इतिहासकार पहिले मानते थे) सही सिद्ध हो गया है । दूसरे, यह अभिलेख प्रमाणित करता है कि शशांक, जो पहिले मात्र महासामन्त था, 'महाराजाधिराज' बना था । तीसरे, इससे सिद्ध होता है कि शशांक ६१९ ई० में भी शासन कर रहा था और इसलिये यह मानना अनिवार्य हो जाता है कि इस तिथि तक हर्ष ६०६ ई० में की गई अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा नहीं कर पाया था कि वह 'कुछ ही दिनों में' गौड नरेश को उखाड़ फेकेंगा । चौथे, इस लेख से शशांक की उड़ीसा-विजय सिद्ध होती है और उड़ीसा के इतिहास पर प्रकाश मिलता है (शशांक के विस्तृत इतिहास के लिये दे०, गोयल, श्रीराम, मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग, मेरठ, १९८६) ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : हूल्त्ज़, इ० आई०, ६, पृ० १४३ अ०; पाण्डेय, रा० ब०, हि० लि० इ०, पृ० १४७ अ० ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओं स्वस्ति । चतुरुदधिसलिलवीचीमेखलानिलीनायां सद्वीपा—
२. गरपत्तनवत्या वसुन्धरायां गौप्ताब्दे वर्षशतत्रये वर्त्तमाने
३. महाराजाधिराजश्रीशशाङ्कराज्ये शासति गगनतल—
४. विनि [:] सृतभगीरथावतारिताया हिमवद्गिरेरुपरि-
५. पतनादनेकशिलासंहातविभिन्नवहि‿पातालात्तर्ज्ज लोघै:
६. सुरसरित इव विविधतरुवरकुसुमसञ्छन्नोभयतटा-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

७. न्त विनिपतितजलाशयायाः श [ा] लिमासरितः कुला [प] कण्ठा-
८. द्वेजयकोङ्ग दात्महाराजमहासामन्तश्रीमाधवराजस्य प्रियतनयो
९. महाराज यशोभीतस्तस्यापि प्रियसूनुः स्वगुण [म] रीचिनिकर-
१०. प्रबोधित शिलोद्भवकुलकमलो विकोशनीलोत्पल-
११. प्रतिस्पर्द्धि (नीं) खड्गधारानिशि तनिश्शेषप्रतिहतरिपु

१२. वलो दीनानाथकृपणवनीपकोपभुज्यमानविभवः स्वभु-
१३. जपरिघयुगलोपार्ज्जितनृपश्री [:] कमलविमलरुथर

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१४. तनुर्ज्जगन्म [ण्ड] लमण्डनश्च तशौर्यधैर्यगुणान्वितो महावृषभपर्यङ्क-
१५. ककुधोपधानविन्यस्तवाहोर्व्वलिचन्द्रोद्योतित जटाकलापैकदे
१६. शस्य भगवतस्स्थित्युत्पत्तिप्रलयसृष्टिसंहार कारणस्य
१७. तृ(त्रि)भुवन गुरो⌒पादभक्तः परमब्रह्मण्यो महाराजमहासा-
१८. मन्तश्रीमाधवराजः कुशली कृष्ण गिरिविपयसंवद्धच्छबलः
१९ स्वयग्रामे वर्त्तमानभविष्य त्कुमारामात्योपरिकतदायुक्तकानन्याश्च
२०. यथाहि पूजयति मानयति च [।] विदितमस्तु भवतामयं ग्रामो-

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

२१. स्माभिरद्यैण मातापित्रोरातमनश्च पुण्याभिवृद्धये सलिलधारापुर-
२२. स्सरेणा चन्द्रार्क्कसमकालीनाक्षय नीयेभरद्वाजसगोत्त्रायाङ्गि
२३. रसवार्हस्पत्य प्रवराय छरम्पस्वामिने सूर्योपरागे प्रतिपादित [:] ॥
२४. उक्तञ्च स्मृतिशास्त्रे ।
वहुर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभिः [।]
२५. यस्य यस्य यदा भूमितस्य तस्य तदा फलं ।
षष्टि वर्षसहस्रा—
२६.   णि स्वर्गे मोदति भूमिदः [।]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके
२७.   वसे [त्] ॥
स्वदत्तां परदत्ताम्वा (।) यो हरेत वसुन्धरा [म् ।]
स विष्ठायां

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२८. [कृमि] र्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ॥
मा भुत फलशङ्का व [:] परदत्ते–
२९. ति पार्थिव [ाः] ॥ स्वदाना [त्] फलमानन्त्य (॥) परद
[त्तानुपालने] ॥ ....
३०. ....
३१. [प्र] यच्छति ॥

१७

शशाङ्क के काल का मिदनापुर-दानपत्र

वर्ष ८

प्राप्तिस्थल : पश्चिमी बंगाल के मिदनापुर जिला। सही प्राप्ति स्थल अज्ञात। मिदनापुर के कलक्टर श्री बी० आर० सेन को १९३७ में किसी व्यक्ति से प्राप्त।

भाषा : संस्कृत। तिथि को छोड़ कर सम्पूर्णतः पद्यमय।

लिपि : सिद्धमातृका।

छन्द : १-१० : अनुष्टुम् (श्लोक)।

सार : जब शशांक पृथिवी पर शासन कर रहा था अर्थात् महाराजाधिराज था और महाप्रतिहार शुभकीर्त्ति दण्डभुक्ति का प्रशासन सम्भाले हुए था, तब तावीर के करण (=अधिकरण, स्थानीय कार्यालय) ने अपने वर्तमान और भावी आधियों (=आधिकरणिकों, पदाधिकारियों) को सूचित किया कि शुभकीर्त्ति ने उससे केचकपद्रिका उद्देश में कुम्भारपद्रक स्थान पर स्थित २० द्रोण (=द्रोणवाप) सामान्य भूमि तथा १ द्रोणवाप वास्तुभूमि खरीदी है और भारद्वाज गोत्र के माध्यनन्दी शाखा के ब्राह्मण धाम्यस्वामी को दान दी है।

तिथि : इसमें शशांक के शासन के आठवें वर्ष के पौष मास के बारहवें दिवस का उल्लेख है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : बसु, एम० एन०, माधवी, व० सं० १३४५, पृ० ३० अ०; मजूमदार, जे० आर० ए० एस० बी०, एल०, ११, पृ० ९ अ०; सरकार, स० इ०, भाग २, पृ० २४–५।

मूलपाठ

पुरोभाग

१. [सम्व (संव)] त् ८ पौष-दि १० (+*) २ अस्मिन् दिवस-मास-सम्व-
(संव) त्सरे
विष्णोः पोत्ताग्र-विक्षे–

२. प-क्षणभावित-साध्वसां (साम्)
शेषाशेष-शिरो-मध्यमध्यासीन-महातनुं (नुम्) ॥ [१*]
कामारा—

३. ति-शिरोभ्रष्ट-गङ्गौघ-ध्व (स्त*)-कलमषां (षाम्) (।*)
श्री-शशाङ्के महीम्पाति चतुर्ज्जलधि-मेखलां (लाम्) ॥ [२*]

४. यस्य गाम्भीर्य-लावण्य-व (ब) हुरत्नतयानया (।*)
न समः क्षारकालुष्याव्यालोपेय

५. तयोदधि (:*) ॥ [३*]
तस्य पाद-नख ज्योत्स्ना-विभूषित-शिरोमणौ (।*)
श्रीमान्महाप्रति-

६. हारे शुभकीर्त्तौ विचक्षणेः ।। [४*]
दण्डभुक्तिमिमां पाति पितृवत्पापवर्जिते (।*)
७. धर्मशास्त्रानुरोधेन न्यायान्यायं विचेतरि ।। [५*]
अस्यां तावीर-करणं विप्र-प्र-
८. धान-सङ्गतं (तम्) (।*)
भविष्यद्वर्त्तमानाधीन्विज्ञापयति सूनृतं (तम्) ।। [६*]
क्रीत्वास्मत्तो
९. यथान्यायं शुभकीर्त्तिरे (र) यं वु (बु) धः (।*)
चत्वारिङ्श (रिंश) द्दौ द्रोणान् द्रोणवापं च
१०. वास्तुनः ।। [७*]
केचकपद्रिकोद्देशे ग्रामे कुम्मारपद्रके ।
भरद्वाज-सगोत्रा-
११. य माध्यनन्दिनाय धीमते (।।*) [८*]
धाम्यस्वामिन एतस्मैं पित्त्रो (:*) पुण्याभिवृद्धये (।।*) [९*]
१२. तद्यो वास्मत्कुले जातो मोहादन्यो (ऽ*) पि वा नरः (।*)
पापं प्रकुरुते मोहान्महा—

पृष्ठभाग

[पा*] तकवान्भवेत् ।। [१०*]

१८

शशाङ्क के काल का मिदनापुर-दानपत्र

वर्ष १६

प्राप्तिस्थल : पश्चिम बंगाल का मिदनापुर ज़िला। सही स्थल अज्ञात। मिदनापुर के कलक्टर श्री० बी० आर० सेन को किसी व्यक्ति से मिला।

भाषा : संस्कृत। तिथि को छोड़कर सम्पूर्णतः पद्यमय।

लिपि : सिद्धमातृका।

छन्द : १-२ : अनुष्टुम् (श्लोक)।

सार : जब शशांक पृथिवी पर शासन कर रहा था और उसका सामन्त महाराज सोमदत्त दण्डभुक्ति और उत्कल देश का प्रशासन सम्भाले हुए था, सोमदत्त के अमात्य प्रकीर्णदास ने तावीर के करण (=अधिकरण) को सूचित किया कि सोमदत्त ने महाकुम्भारपद्रक की भूमि को काश्यप गोत्र के ब्राह्मण भट्टेश्वर (अथवा भट्ट ईश्वर) को दान दे दिया है।

तिथि : इसमें दी गई तिथि का पाठ विवादग्रस्त है। मजूमदार ने इसे १६ या गुप्त संवत् ३०३ माना है, देवहूति ने १३ तथा सरकार ने १६।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : वसु, एम० एन०, माधवी, व० सं०, १३४५; मजूमदार, जे० आर० ए० एस० बी०, एल०, ११, पृ० ७-८; सरकार, स० इ०, भाग २, पृ० २६-७।

मूलपाठ

१. [स*]म्व (संव) त् १०(+*)६ भाद्र-दि १० (+*) ६ (।।*)
विष्णोः पोत्ताग्र-विक्षेप-क्षण-भा[वित-साध्वसां(साम्)*] (।*)
[शेषा*]-

२. शेष-शिरोमध्यमध्यासीन-महातनुं (नुम्) ।। [१*]
कामाराति-शिरोभ्रष्ट-[गङ्गौघ-ध्वस्त*]-

३. कल्मषां (षाम्) (।*)
श्री-शशाङ्के महीं पाति चतुर्जलधि-मेखलां (लाम्) ।। [२*]
तस्य पाद-न [ख-ज्योत्स्ना*[-

४. विभूषित-शिरोमणौ (।*)
श्री-सामन्त-महाराज-सोमदत्ते गुणाधिके ।। [३*]
स × × ×

५. गमोत्सन्न-कालेय-ध्वान्त-संहतौ (।*)
सहितामुत्कलदेशेन दण्डभुक्ति प्रशा [सति ।।*] [४*]

६. सत्य-शौर्य-कृतास्त्रत्व-रूप-विद्यादयः पृथक् (।*)
पाण्डवेषु स्थिताः सन्ति य[स्मि]-
७. न्नेकत्र ते गुणाः ॥ [५*]
अमात्यो यस्य गुणवान्प्रकीर्ण्णदास इति श्रुतः (।*)
साधुकारि-
८. तया नित्यं यः पूज्यैः पूज्यते द्विजैः ॥ [६*]
आगामिनो नृपान्सर्व्वान् ज्ञापयित्वा
९. प्रणम्य च (।*) [७*]
प्राह तावीरकं सर्व्वं करणं लोक-सङ्गतं (तम्) ॥
भूमेर्गोचर्म्म-मात्रा[या*]
१०. दाने स्वर्गः फलं स्मृतं (तम्) (।*)
पराशर-सुतस्योच्चैर्व्वाचं श्रुत्वेति भाषितं (तम्) ॥ [८*]
ते[ने][दं च*]
११. समाम्नात (तं) मनु-शास्त्रानुवर्त्तिना (।*)
श्री-सामन्तेन कृतिना सोमदत्ते[न]
१२. धीमता ॥ [९*]
भट्टेश्वराय गुणिने काश्यपायाध्वर्य्यवे ।
मुहाकुम्भारपद्रको
१३. दत्तः सर्व्वमण्डल-वर्ज्जित (:*) ॥ [१०*]
तद्यो (ऽ*)त्रास्मत्कुले जातो मोहादन्यो (ऽ*) पि वा [नरः ।*]
१४. पापं प्रकुरुते लोभान्महापातकवान्भवेत् ॥ [११*]
सुखानामन्ववाये (ऽ*)[स्मन्] ×
× स्यात्यल्पधीमतः (।*)
द्विजदेवस्य भाहेतोः श्लोकाः × × × × सहिता [: कृताः*][॥*][१२*]

पुष्यभूति(=वर्द्धन)-अभिलेख

१. हर्ष का बांसखेड़ा-दानपत्र : (हर्ष) सं० २२(=६२८ ई०)

२. हर्ष का मधुबन-दानपत्र : (हर्ष) सं० २५ (=६३१ ई०)

३. हर्ष की नालन्दा मृत्तिका-मुहर

४. हर्ष की सोनीपत ताम्र-मुहर

१६

हर्ष का बांसखेड़ा-दानपत्र

(हर्ष) सं० २२ (=६२८ ई०)

लेख-परिचय—प्रस्तुत लेख सातवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध में शासन करने वाले पुष्यभूति-वंशोत्पन्न महाराजाधिराज श्री हर्ष (६०६-६४६ ई०) का दानपत्र है। हर्ष के शासन का इतिहास प्रधानतः बाण के 'हर्षचरित' एवं उसके काल में भारत की यात्रा करने वाले चीनी यात्री शुआन-च्वांग के वर्णन से ज्ञात होता है। अभिलेखों से ज्ञात सूचनाएं अत्यल्प हैं, परन्तु साहित्यिक साक्ष्य को जांचने का महत्त्वपूर्ण साधन हैं। हर्ष के मधुबन एवं बांसखेड़ा स्थलों से दो दानशासन मिले हैं और सोनीपत तथा नालन्दा से दो मुहरें। प्रस्तुत दानशासन एक ही ताम्रपत्र पर सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ है। ताम्रपत्र का आकार १६"×१३" है और इस पर १८ पंक्तियां खुदी हैं। इस पर एक अण्डाकार मुहर भी टंकित है परन्तु मुहर पर उत्कीर्ण लेख पूर्णतः अपठ्य हो गया है।

उद्देश्य—यह दानपत्र हर्ष द्वारा अपने माता-पिता व अग्रज के पुण्य और यश की अभिवृद्धि के लिए अहिच्छत्रा भुक्ति के अंगदीय विषय के पश्चिमी पथक में स्थित मर्कटसागर नामक ग्राम को भारद्वाजगोत्र के ऋग्वेदी बालचन्द्र और सामवेदी भद्रस्वामी नामक ब्राह्मणों को दान दिए जाने की आज्ञा के रूप में जारी किया गया था।

लिपि, भाषा व वर्तनी—बांसखेड़ा-दानपत्र सातवीं शती के पूर्वार्द्ध की ब्राह्मी लिपि में लिखा है। इसके अक्षर मधुबन-दानपत्र के अक्षरों से कुछ छोटे तथा कुटिलाकृति के हैं। 'आ,' की 'ई', 'ऐ' तथा 'ओ' की मात्रायें 'शिरोरेखा के ऊपर लगी हैं और असाधारण रूप से अलंकृत हैं। लिपि सुन्दर है पर असामान्य रूप से अलंकृत होने के कारण कृत्रिम लगती है। इसकी भाषा संस्कृत है और मधुबन-दानपत्र की भाषा से बेहतर है। लेखक अज्ञात है। भाषा पर प्राकृत का प्रभाव 'प्रमातार' शब्द में मिलता है। तीन श्लोकों को छोड़कर शेष समस्त भाग गद्य में है। वर्तनी की दृष्टि से 'वर्ण' के स्थान पर 'वर्ण्ण', गोत्र की जगह 'गोत्त्र' और 'पुत्र' की जगह 'पुत्त्र' लिखा जाना उल्लेखनीय है। वस्तुतः 'वर्ण्ण' में उपरिलिखित 'र' 'ण' के बाद लिखा है इसलिए इसका पाठ होगा 'वण्णर'। यह उदाहरण इस बात का प्रमाण है कि सातवीं शती में भी लिपिक सुन्दरता के लिए संयुक्ताक्षरों में अक्षरक्रम बदलने में संकोच नहीं करते थे। इस लेख के प्रथम श्लोक का छन्द शार्दूलविक्रीडित है, दूसरे का वसन्ततिलक तथा तीसरे का अनुष्टुम्। उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय का प्रयोग, जो मधुबन-दानपत्र में नहीं मिलता, इसमें हुआ है—उपध्मानीय का प्रायः तथा जिह्वामूलीय का कम से कम एक बार ('०गुप्तादय' के बाद)।

अध्ययन-इतिहास और सन्दर्भ-ग्रन्थ—यह दानपत्र सितम्बर १८६४ ई० में उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर जिले में शाहजहाँपुर से २५ मील दूर स्थित बांसखेड़ा ग्राम से मिला था। लखनऊ संग्रहालय को इसे ला० किशोरी लाल ने समर्पित किया। इसका सम्पादन ब्यूलर ने एपिग्रेफिया इण्डिका के १८६६ के अंक ४ में किया। (पृ० २०८ अ०)। अन्य सन्दर्भ-ग्रन्थ—पाण्डेय, आर० बी०, हि० लि० इ०, पृ० १४५–७, दिस्कलकर, सेलेक्शन्स, स० ११; चटर्जी, हर्षवर्धन, पृ० ४३३–७; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, १९८५, पृ० १७७ अ०। अन्य सन्दर्भों के लिये दे०, भाण्डारकर सूची सं० १३८५।

मूलपाठ

१. सिद्धम् [।।*]स्वस्ति[।।*]महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धवाराच्छ्रीवर्द्धमानकोट्या महाराजश्रीनरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्न⁀परमादित्यभक्तो महाराजश्रीराज्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानु-

२. ध्यातश्श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्न⁀परमादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्-श्रीमहासे[न]गुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिक्क्रान्तकीर्त्ति⁀प्रतापानुरागोप-

३. नतान्यराजो वर्ण्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्क्र एकचक्क्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहर⁀परमादित्यभक्त⁀ परमभट्टारकमहाराजाधिराज श्रीप्र[भा]करवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पा[दा]-

४. नुध्यातस्सितयश⁀प्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डल⁀परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजास्सत्पथोप-र्ज्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसंप्रीणितार्थिहृदयो-

५. [ऽ*]तिशयितपूर्व्वराजचरितो देव्याममलयशोमतया (त्यां) श्रीयशोमत्यामुत्पन्न⁀परमसौगतस्सुगत इव परहितैकरत⁀परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनः ।[।*]
राजानो युधि दु-

६. ष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादय
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखास्सर्व्वेसमंसंयताः ।
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधाङ्कृत्वा प्रजानां प्रियं
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः । [।१।।*]
तस्या-

७. [नुजस्त]त्पादानुध्यात⁀परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्व्वसत्त्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराज-श्रीहर्षः अहिच्छत्त्राभुक्तावङ्गदीयवैषयिक पश्चिमपथकस-[म्बद्ध]मर्क्कटसा-

८. गरे [स]मुपगतान्महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिकप्रमातारराजस्थानीयकुमारामात्योपरिकविषयपतिभट-चाटसेवकादीन्प्रतिवासिजानपदांश्च समाज्ञापयति[।।*]वि[दि]तम-

९. [स्तु] यथायमुपरिलिखितग्रामस्स्वसीमापर्यन्तस्सोद्रङ्गस्सर्व्वराजकुलाभाव्यप्रत्य[ा] यसमेतस्सर्व्वपरिहृतपरि-हारो विषया[दु]द्धृतपिण्ड⁀पुत्त्रपौत्त्रानुगश्चन्द्रार्क्कक्षितिसमका-

१०. लीनो भूमिच्छिद्रन्यायेन मयापितु⁀परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धनदेवस्य मातुर्भट्टा-रिकामहादेवीराज्ञीश्रीयशोमतीदेव्या ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारक

११. महाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानाञ्चपुण्ययशोभिवृद्धये भरद्वाजसगोत्रव (ब) ह्वृचच्छन्दोगसब्र (ब्र) ह्मचारिभट्टवा (बा) लचन्द्रभद्रस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्म्म(र्म्मे)णाग्रहारत्वेन प्रतिपा-

१२. दितो विदित्वा भवद्भिस्समनुमन्तव्य⁀प्रतिवासि जानपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमेय-भागभोगकरहिरण्यादिप्रत्याया एतयोरेवोपनेयास्सेवोपस्थान[ञ्च]क-

१३. रणीयमित्यपि च ।
अस्मत्कुलक्क्रममुदारमुदाहरद्भि-
रन्यैश्चदानमिदमभ्यनुमोदनीयं (यम्) ।
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलवु(बु)द्वु(द्बु)दचञ्चलाया
दानं फलं परयश⁀परिपालनञ्च ।[।२।।*]
कर्म्मणा म-

१४. नसा वाचा कर्त्तव्य प्राणिभिहि(र्हि)तं(तम्)।

हर्षेणैतत्समाख्यातन्धर्म्मार्ज्जनमनुत्तमं (मम्) [।।३।।*]

दूतको [ऽ*] त्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्तः [।।*] महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत महासामन्तम-

१५. हाराज [भा] न (नु?) समादेशादुत्कीर्ण्णं

१६. ईश्वरेणेदमिति [।।*] सम्व (संव) त् २०(+*)२

१७. कार्त्ति व दि १ [।।*]

१८. स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य [।।*]

पाठ-टिप्पणी—पंक्ति १ : 'सिद्धम्' अथवा 'ओम्' प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त हैं। पंक्ति ३ : 'वर्ण्णाश्रम' को 'वर्णाश्रम' पढ़ें। पंक्ति १३ : 'मित्यपिच' को 'मिति (।।*) अपि च ।।' पढ़ें। पंक्ति १५-१६ : '०त्कीर्ण्णं ईश्वरे' को '०त्कीर्ण्णमीश्वरे' पढ़ें। पंक्ति १७ : कार्त्ति=कार्त्तिक, व=बहुत, दि=दिवस।

शब्दार्थ

पं० १ : स्वस्ति=कल्याण; महानौ=जलपोत; जयस्कन्धावार=सैन्य शिविर; अतिक्रान्त=अतिक्रमण किया हुआ; चक्र=सेना (यहां बल अथवा प्रभुता से आशय है); उपनत=अधीन; एकचक्ररथ=सूर्य; अर्त्तिहर=दुखों को दूर करने वाला

पं० ३ : सित=श्वेत; सितयशः=धवलयश अर्थात् विमल कीर्ति वाला; प्रतानः=तन्तु, वितान; विच्छुरित =ढक दिया, बिखेर दिया; परिगृहीत=धारण किया हुआ; द्रविड=सम्पदा, द्रव्य; संप्रीणित=पूर्णतः सन्तुष्ट; अर्थिन्=मांगने वाले; अतिशयित=और अधिक होना, श्रेष्ठतर होना; अमलयशोमत्यां=विमल यश वाली; सुगत =बुद्ध; परमसौगत=बुद्ध के परमभक्त; युध=युद्ध; युधि=युद्ध में; कशा=कोड़ा, चाबुक; उत्खाय=उखाड़ करके, उच्छेद करके; द्विषतः=शत्रु; उज्झित=छोड़ना, त्यागना; अरातिः=शत्रु; सत्यानुरोधेन=सत्य के अनुरोध के लिये, सत्य के पालन हेतु

पं० ६ : माहेश्वर=शैव, शिव का भक्त; सत्व=प्राणी; भुक्ति=प्रान्त जैसी प्रशासनिक इकाई; विषय=जिले जैसी प्रशासनिक इकाई; पथक=तहसील जैसी प्रशासकीय इकाई; समुपगतान्=एकत्र हुए; प्रतिवासि=जानपदान्=जनपदों के निवासी; समाज्ञापयति=आदेश देते हैं

प० ८ : विदितमस्तु=ज्ञात हो; उद्रंग=एक कर विशेष; प्रत्याय=करों से होने वाली आय; अभाव्य= आय; परिहृत=ले लेना, हटा लेना; परिहार=गांव के आस-पास की सार्वजनिक भूमि, विशेषाधिकार; उद्धृत=अलग किया हुआ; अनुगः=पीछे आने वाला; अर्क=सूर्य; प्रतिग्रह=दान; प्रतिग्रहधर्मणा=प्रतिग्रह के नियमानुसार; अग्रहार=दान रूप में दी गई भूमि के लिये आने वाला एक पारिभाषिक शब्द; बह्वृच=ऋग्वेद; छन्दोगः= सामवेदी; बह्वृच्छन्दोगः=ऋग्वेदी व सामवेदी; राज्यवर्द्धनदेवपादानां=यहां 'पादानां' शब्द परमपूज्य अर्थ में आदर प्रकट करने के लिये आया है; ब्रह्मचारी=ब्राह्मण विद्यार्थी; प्रतिपादित=दान दिया

पं० १२ : विदित्वा=जानकर; भवद्भिः=आप लोगों के द्वारा; समनुमन्तव्यः=मान लेने योग्य; विधेय= आज्ञाकारी; तुल्यमेय=जो तोला और नापा जाय, कर विशेष ?; प्रत्याय=कर, करों से होने वाली आय; उपनयः =पास लाना; क्रम=प्रथा; उदार=उदार या श्रेष्ठ; उदाहृत=घोषित किया, उदाहरण दिया; उदाहरद्भिः= घोषित करने वालों के द्वारा, उदाहरण देने वालों के द्वारा

पं० १३ : लक्ष्म्या+लक्ष्मी का; तडित्=बिजली; प्राणिभिः=प्राणियों द्वारा, मनुष्यों द्वारा; उत्तम=उत्तम (उत्तम उपाय); अधिकरण=कार्यालय; समादेशात्=आज्ञा से

अनुवाद

पं० १ : सिद्धम् ! स्वस्ति ! वर्धमानकोटि में स्थित जलपोतों, हाथियों और अश्वों के सैन्य शिविर से (यह घोषित किया गया) । (एक) महाराज श्री नरवर्द्धन (थे) । उनके पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले, श्री वज्रिणीदेवी (के गर्भ) से उत्पन्न परमादित्यभक्त महाराज श्री राज्यवर्द्धन (थे) । उनके पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले, श्रीमत् अप्सरोदेवी (के गर्भ) से उत्पन्न परमादित्यभक्त महाराज श्रीमत् आदित्यवर्द्धन (थे) । उनके पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले, श्री महासेनगुप्ता देवी (के गर्भ) से उत्पन्न, चारों समुद्रों के पार तक फैली हुई कीर्त्ति वाले, अन्य राजाओं को अपने प्रताप और अनुराग (अर्थात् प्रेम) से अपने अधीन करने वाले, अपने चक्र (अर्थात् सेना, अर्थात् बल या प्रभुता) द्वारा वर्ण और आश्रम संस्थाओं के व्यवस्थापन में प्रवृत्त, प्रजा के कष्टों को सूर्य के समान दूर करने वाले, परमादित्यभक्त, परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्द्धन (थे) ।

पं० ३ : उनके (अर्थात् प्रभाकरवर्द्धन के) पुत्र, विमल यश वाली देवी श्री यशोमती देवी (के गर्भ) से उत्पन्न, परम सौगत (अर्थात् बुद्ध के परम भक्त), बुद्ध के समान परोपकारी, परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री (द्वितीय) राज्यवर्द्धन (थे) जो उसके (अर्थात् प्रभाकरवर्द्धन के) चरणों का ध्यान करने वाले, अपने विमल यश के तन्तुओं को सकल भुवन मण्डल में बिखेरने वाले (अथवा अपने विमल यश के वितान से समस्त भुवन मण्डल को ढकने वाले), कुवेर, वरुण, इन्द्र आदि लोकपालों के तेज को धारण करने वाले, सत्पथ (अर्थात् न्यायोचित ढंग) से उपार्जित अतुल धन और भूमि को दान देकर प्रार्थीजनों के हृदयों को पूर्णत: सन्तुष्ट करने वाले और पूर्वगामी राजाओं से श्रेष्ठतर चरित वाले (थे) ।

जिसके द्वारा शत्रुओं का उच्छेद करके, पृथिवी को जीतकर, प्रजा का प्रिय (अर्थात् हित) करके तथा एक साथ आए श्री देवगुप्त आदि राजाओं को युद्ध में उसी प्रकार विमुख करके जैसे कोड़े के प्रहार से दुष्ट अश्वों को मुख फेर लेने के लिये बाध्य कर दिया जाता है, शत्रु के भवन में सत्य का पालन करने के हेतु (अर्थात् अपना वचन पूरा करने के लिये) प्राण त्याग दिये गये ।।१।।

पं० ६ : उनके (अर्थात् द्वितीय राज्यवर्द्धन के) अनुज परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री हर्ष, जो उनके (अर्थात् राज्यवर्द्धन के) चरणों का ध्यान करने वाले, परममाहेश्वर (और) सब प्राणियों पर शिव के समान अनुकम्पा दिखाने वाले हैं, अहिच्छत्रा भुक्ति में अंगदीय विषय के पश्चिमी पथक में स्थित मर्कटसागर ग्राम में एकत्र हुए महासामन्त, महाराज, दौस्साधसाधनिक, प्रमातार, राजस्थानीय, कुमारामात्य, उपरिक, विषयपति, भट, चाट, सेवक आदि तथा प्रतिवासी जानपदों को आज्ञा देते हैं :—

पं० ८ : विदित हो कि मैंने अपने परमपूज्य पिता परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्द्धनदेव, परमपूज्या माता भट्टारिका महादेवी रानी श्री यशोमती देवी (तथा) परमपूज्य ज्येष्ठभ्राता परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री राज्यवर्द्धन के पुण्य और यश की अभिवृद्धि के लिये ऊपर लिखित गाँव को विषय (अर्थात् जिले से पृथक् करके) उसकी अपनी सीमा तक अग्रहार के रूप में भूमिच्छिद्रन्याय से (और) प्रतिग्रह के नियमानुसार उद्रंग व राजकुल को होने वाली सम्पूर्ण आय सहित (लेकिन) गाँव के आस-पास की सार्वजनिक भूमि को छोड़कर जब तक चन्द्र, सूर्य तथा पृथिवी विद्यमान हैं तब तक के लिये, भरद्वाज गोत्र के ब्राह्मण ऋग्वेदी भट्ट बालचन्द्र तथा सामवेदी भट्ट भद्रस्वामी को (उनके) पुत्रपौत्रादि भावी पीढ़ियों (के भोग करने) के लिये दान दिया;—

पं० १२ : ऐसा जानकर आप लोग इसे स्वीकृत करें। इस जनपद के (अर्थात् ग्राम-क्षेत्र के) निवासियों को चाहिये कि हमारी आज्ञा को शिरोधार्य कर समुचित तुल्य, मेय, भाग, भोग, कर तथा हिरण्य आदि कर इन दोनों (ब्राह्मणों) के पास लायें (अर्थात् इनको दें) । इसके साथ ही उन्हें इनकी सेवा भी करनी चाहिये । हमारे कुल की महान् प्रथा का उदाहरण देने वालों (अर्थात् उसका अनुसरण करने वालों) को और अन्य जनों को भी इस दान का अनुमोदन करना चाहिये ।

पं० १३ : बिजली और जल के बुलबुले के समान चञ्चला लक्ष्मी का फल दान देना और दूसरों के यश की रक्षा करना है ॥२॥ प्राणियों (अर्थात् मनुष्यों) के लिये मन, वचन और कर्म से हित करना कर्त्तव्य है। धर्मार्जन का यह उत्तम (उपाय) हर्ष ने बताया है ॥३॥

पं० १४ : यहां (अर्थात् इस लेख के) दूतक महाप्रमातार, महासामन्त श्री स्कन्दगुप्त हैं (और) (इसे) महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत (अर्थात् महाक्षपटल कार्यालय के प्रमुख अधिकारी) महासामन्त महाराज भान की आज्ञा से ईश्वर ने लिखा। संवत् २२, कार्त्तिक बदी १। मेरे, महाराजाधिराज श्री हर्ष के, अपने हाथ से (अर्थात् हस्ताक्षर महाराजाधिराज श्री हर्ष)।

व्याख्या

(१) **स्वस्ति**—यह कल्याण या मंगल वचन है। ईसवी सन् के प्रारम्भ में अभिलेखों के शुरू में मंगलवचन के रूप में 'सिद्धं' या 'ओ३म्' शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ। बाद में इसके बजाय कभी-कभी 'स्वस्ति' का प्रयोग होने लगा। इसके बाद 'स्वस्ति' के साथ 'सिद्धम्' या 'श्री' शब्द जोड़ने की प्रवृत्ति शुरू हुई।

(२) **महानौ**=जलपोत—द्रष्टव्य है कि इस युग तक भारतीय नरेशों की सेनाओं में जलपोतों का महत्त्व बढ़ गया था। जलसेना का उल्लेख करने वाला प्रथम दानपत्र हर्षवर्धन के काल का नहीं, जैसा कि सरकार ने लिखा है, वरन् वैन्यगुप्त का ५०७ ई० का गुणैघर-लेख है। (गोयल, श्रीराम, गुप्तकालीन अभिलेख, २ रा संस्करण, पृ० ३१२; स० इ०, १, पृ० ३४१)। समुद्रगुप्त के गया- और नालन्दा-दानपत्रों में भी 'महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारात्' पद मिलता है।

(३) **जयस्कन्धावार**—सैन्यशिविर। कभी-कभी यह राजधानी के लिये भी प्रयुक्त होता था। 'स्कन्धावार' का भी यही अर्थ हैं। स्कन्धावार के रोचक वर्णन के लिये 'हर्षचरित'।

(४) **वर्धमानकोटि**—इस स्थल की पहिचान अनिश्चित है। वर्द्धमान नाम का एक स्थान काठियावाड़ में था। उसकी पहिचान आधुनिक बढ़वान से की जाती है। वलभी राज्य की वर्द्धमान भुक्ति का उल्लेख मैत्रक अभिलेखों में हुआ है। इसके अलावा एक वर्द्धमानपुर मालवा में था। सम्भवतः इसी का उल्लेख परमार-नरेश जयवर्मा के एक दानपत्र में हुआ है। एक तीसरा वर्द्धमान बंगाल में था जिसकी पहिचान बंगाल के विभिन्न प्रदेशों से की जाती है। सन्दर्भों के लिये दे०, सिनहा, डेक्लाइन ऑव दि किंग्डम ऑव मगध, पृ० २७२। वर्द्धमान भगवान् महावीर का नाम था। उनके नाम पर बहुत से स्थानों का नामकरण हुआ होगा। बांसखेड़ा-दानपत्र का यह वर्द्धमान सम्भवतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कहीं रहा होगा।

(५) **प्रतापानुरागोपनत**—प्रभाकरवर्द्धन के विषय में आया यह पद समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति के ५ वें और ६ वें श्लोकों का स्मरण दिलाने वाला है। लेकिन पुष्यभूतियों ने इसे मौखरियों की नकल करके अपनाया प्रतीत होता है।

(६) **रकचक्ररथ**=सूर्य, जिसका रथ वर्ष रूपी एक पहिए से युक्त माना गया है।

(७) **परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजाः**—तु०, प्रयाग-प्रशस्ति का पद 'धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्य'। प्रस्तुत लेख का पद प्रयाग-प्रशस्ति के पद से सुन्दरतर है। प्रयाग-प्रशस्ति में चार लोकपालों की चर्चा है। यहाँ शायद आठ लोकपालों की ओर संकेत है। तु०, अष्टानां लोकपालानां वपुर्धारयते नृपः—मनुस्मृति। तु०, 'रघुवंश' (२·७५) जिसमें कहा गया है कि दिलीप की रानी ने वंश चलाने के लिये लोकपालों के समान तेजस्वी पुरुषों के तेज से भरा गर्भ धारण किया (नरपतिकुलभूत्यै गर्भाधत्त राज्ञी गुरुभिरभिनिविष्टं लोकपालानुभावैः)।

(८) **परमसौगत**—सुगत=भलीभांति गया हुआ=बुद्ध। 'परमसौगत' उसी प्रकार साम्प्रदायिक बौद्ध उपाधि है जैसे 'परमभागवत' वैष्णव विरुद है। यह तथ्य कि द्वितीय राज्यवर्द्धन बौद्ध था केवल अभिलेखों से ज्ञात है। बाण इसकी चर्चा नहीं करता यद्यपि वह प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के अनन्तर द्वितीय राज्यवर्द्धन के मुख से भिक्षु जीवन व्यतीत करने की इच्छा व्यक्त करवाता है।

(९) **सुगत इव परहितैकरतः** =बुद्ध के समान परोपकारी। यहां स्पष्टतः बोधिसत्त्व आदर्श का उल्लेख है। अतः हमारा विचार है राज्यवर्द्धन महायान बौद्ध धर्म को मानता था।

(१०) **देवगुप्त**—यह मालवराज था। सम्भवतः यह महासेनगुप्त का कोई सम्बन्धी था। उसके कारण ही महासेनगुप्त के पुत्रों को प्रभाकरवर्द्धन के पास शरण लेनी पड़ी होगी। उसने शशांक के साथ मिल कर कन्नौज पर आक्रमण किया था और हर्ष के बहनोई ग्रहवर्मा को मार डाला था। ग्रहवर्मा की हत्या का समाचार सुनकर द्वितीय राज्यवर्द्धन 'दुष्ट मालवराज' को दण्डित करने के लिये गया। उसने मालवराज अर्थात् देवगुप्त को तो अनायास पराजित कर दिया परन्तु स्वयं देवगुप्त के स्वामी गौडराज शशांक के हाथों मार डाला गया।

(११) प्रस्तुत अभिलेख के अनुसार द्वितीय राज्यवर्द्धन ने 'शत्रु के भवन में सत्य के अनुरोध के हेतु' प्राण त्यागे थे। यहां इस लेख का लेखक हत्यारे का नाम नहीं देता। 'हर्षचरित' में इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया गया है—एक दिन जब हर्ष सभा में बैठे हुए थे कुन्तल नामक अश्वारोही ने आकर यह दुःखद सूचना दी कि राज्यवर्द्धन ने मालव-नरेश को तो बड़ी आसानी से परास्त कर दिया परन्तु गौड-नरेश के झूठे शिष्टाचार के बहकावे में आकर उन्होंने उस पर विश्वास कर लिया जिसके फलस्वरूप गौडराज ने उन्हें अपने भवन में एकाकी एवं निरस्त्र पाकर मार डाला (गौडाधिपेन मिथ्योपचारोपचितविश्वासं मुक्तशस्त्रमेकाकिनं विश्रब्धं स्वभवन एव भ्रातरं व्यापादितमश्रौषीत्, हर्षचरित, पृ० ३२९)। बांसखेड़ा-दानपत्र और 'हर्षचरित' के कथनों में इस सीमा तक समानता है कि राज्यवर्द्धन शत्रु के भवन में मारा गया था। लेकिन 'हर्षचरित' द्वारा वर्णित घटना से अभिलेख में उल्लिखित 'सत्य के अनुरोध' की संगति नहीं बैठती। 'हर्षचरित' के टीकाकार शंकराचार्य का यह कथन कि गौडराज ने राज्यवर्द्धन को भुलावा दिया था कि वह अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर देगा, सर्वथा सम्भव परन्तु अप्रमाणित है।

जो भी रहा हो, 'हर्षचरित' के अनुसार द्वितीय राज्यवर्द्धन की हत्या करने वाला शत्रु गौडराज था। बाण उसका नाम नहीं देता। यह कमी शुआन-च्वांग पूरी करता है। वह बताता है कि राज्यवर्द्धन की हत्या कर्ण सुवर्ण अर्थात् गौड के बौद्ध धर्म विरोधी राजा शशांक ने की थी लेकिन एक स्थल पर वह राज्यवर्द्धन की हत्या के लिये हर्ष के मन्त्रियों को भी उत्तरदायी बताता है। इस प्रकार हमारे तीनों समकालीन साक्ष्य परस्पर अंशतः पूरक हैं और अंशतः विरोधी।

(१२) यह तथ्य अत्यन्त रोचक है कि 'हर्षचरित' में बाण ने प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के बाद घटनाओं का वर्णन जिस क्रम से किया है उसमें द्वितीय राज्यवर्द्धन के अभिषेक और उसके लिये 'महाराजाधिराज' उपाधि के साथ शासन करने के लिये स्थान ही नहीं है। जिस समय राज्यवर्द्धन प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु के बाद भिक्षु-जीवन व्यतीत करने की इच्छा प्रकट करता है, ग्रहवर्मा की हत्या का समाचार आता है और वह तभी शत्रुओं से बदला लेने चला जाता है। वहाँ उसकी हत्या हो जाती है। लेकिन इस लेख से स्पष्ट है कि राज्यवर्द्धन का अभिषेक हुआ था और उसने 'महाराजाधिराज' उपाधि के साथ कुछ समय शासन भी किया था। उसी अवस्था में उसके द्वारा अतुल भूमि और धन के दान दिये जाने, पृथिवी को जीते जाने तथा शत्रुओं का उन्मूलन किये जाने आदि की चर्चा हो सकती थी। बाण ने इस विषय में सत्य को छिपाने की चेष्टा क्यों की है, कहना कठिन है। वि० श० पाठक (एन्श्येण्ट हिस्टोरियन्स ऑव इण्डिया, पृ० ४४ अ०) ने ध्यान दिलाया है कि प्राचीन काल में जो राजा अपने बड़े भाई को किसी प्रकार अपदस्थ करके राज्य हस्तगत करते थे वे अपने अधिकार को न्यायोचित ठहराने के लिये आम तौर पर तीन बातों का प्रचार करवाते थे। एक, ईश्वर ने उन्हें इस पृथिवी पर भेजा ही था शासन करने के लिये। दूसरे, उनके पिता ने उनको अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था। तीसरे, उनका अग्रज या तो राज्य करना नहीं चाहता था अथवा राज्य करने के योग्य नहीं था। पाठक ने 'विक्रमांकदेवचरित' और 'विक्रमांकाभ्युदय' आदि ग्रन्थों से अपनी यह मान्यता स्थापित की है। हमने विशाख के 'देवीचन्द्रगुप्तम्' (गोयल, एस० आर०, ए हिस्ट्री ऑव दि इम्पीरियल गुप्तज़, पृ० २२३-३३) तथा 'रामायण' (गोयल, 'दि प्रॉब्लम ऑव सक्सेशन इन दि वाल्मीकीय रामायण', रीडिंग्स् इन हिस्ट्री, जोधपुर, से प्रकाशित) का इस दृष्टि से

अध्ययन किया है। अब, यह रोचक बात है कि बाण भी हर्ष के लिये इन तीनों प्रतीकों का प्रयोग करता है। वह बताता है कि इस वंश के संस्थापक पुष्यभूति को लक्ष्मी से मिले वरदान के कारण हर्ष इस संसार में राजा बनने के लिये ही जन्मा था। दूसरे, प्रभाकरवर्द्धन हर्ष को (राज्यवर्द्धन के सर्वथा योग्य होने तथा उस समय हर्ष की आयु मुश्किल से १६ वर्ष की होने के बावजूद) अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। और तीसरे, राज्यवर्द्धन राज्य त्यागकर भिक्षु-जीवन व्यतीत करने का इच्छुक था यद्यपि हूणों के विरुद्ध उसके शौर्य-प्रदर्शन तथा ग्रहवर्मा की हत्या का समाचार सुनकर उसके प्रचण्ड क्रोध की संगति उसकी भिक्षु-जीवन व्यतीत करने की इच्छा से नहीं बैठती। इस दृष्टि से देखने पर बाण द्वारा राज्यवर्द्धन के अभिषेक का अनुल्लेख महत्त्वपूर्ण हो जाता है और मन में प्रश्न पैदा होने लगता है कि इन प्रतीकों का प्रयोग बाण ने क्यों किया। क्या हर्ष को भी इस प्रकार का प्रचार करवाने की आवश्यकता पड़ी थी ? और जब हम पाते हैं कि राज्यवर्द्धन स्वाभाविक मौत से नहीं मरा, उसकी एक षडयन्त्र के परिणामस्वरूप हत्या हुई थी, तब यह प्रश्न प्रश्न न रहकर शंका बन जाता है। देवहूति को भी कुछ इस प्रकार की शंका है (देवहूति, हर्ष : ए पोलिटिकल स्टडी, दूसरा संस्करण, पृ० ८२ अ०)। ऐसी स्थिति में शुआन-च्वांग का यह कथन कि राज्यवर्द्धन की हत्या के लिये हर्ष के मन्त्री दोषी थे, इस शंका को काफी सबल कर देता है और हम यह निष्कर्ष निकालने को बाध्य से हो जाते हैं कि यद्यपि राज्यवर्द्धन की हत्या गौड-नरेश ने की थी, लेकिन इसमें सम्भवतः हर्ष का भी कुछ परोक्ष हाथ था जिसके कलुष को धोने के लिये बाण ने तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने की चेष्टा की (दे०, आगे, पृ०९७)। इसीलिये 'हर्षचरित' और बांसखेड़ा आदि दानपत्रों के वर्णन में इतना अन्तर मिलता है।

द्वितीय राज्यवर्द्धन की हत्या में हर्ष का परोक्षरूपेण हाथ होना अभिलेखों में राज्यवर्द्धन की प्रशंसा के साथ असंगत नहीं है। पुलिकेशी के ऐहोले-अभिलेख के श्लोक ११ से १३ तक उसके चाचा मंगलेश की खूब प्रशंसा की गई है जबकि स्वयं पुलिकेशी ने मंगलेश और उसके पुत्र का उन्मूलन किया था। जहां तक हर्ष द्वारा अपने भाई के प्रति प्रेम प्रकट करने का सम्बन्ध है, उसे तभी तक स्वाभाविक माना जा सकता था जब तक इसमें शंका नहीं की गई थी। अब, एक बार हर्ष के ऊपर आरोप लगने के बाद इस अनुरागाभिव्यक्ति को अपने हित के लिये की गई घोषणा (जिसे कानून में 'सेल्फ-सर्विंग डिक्लेरेशन' कहते हैं) से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं माना जा सकता। (दे०, गोयल, हर्षवर्द्धन : नवीन मूल्यांकन', इतिहास-समीक्षा, २, पृ०१३९-४०; मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युग का इतिहास, अध्याय ९, मेरठ, १९८६)।

(१३) **अहिच्छत्रा भुक्ति**—'भुक्ति' का अर्थ था 'प्रान्त', यथा 'तीर भुक्ति', 'पुण्ड्रवर्धन भुक्ति' (दामोदरपुर-दानपत्र)। कभी-कभी 'भुक्ति' के स्थान पर 'देश' शब्द का प्रयोग मिलता है, यथा, सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन-स्कन्दगुप्त का जूनागढ़-लेख। अहिच्छत्रा को अहिक्षेत्र भी लिखा जाता था। यह उत्तरी पञ्चाल की राजधानी था। इसकी पहिचान उत्तर प्रदेश के बरेली जिले के रामनगर से की जाती है (द्र०, लाहा, बी० सी०, हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी, पृ० ६३ अ०)।

(१४) **अंगदीय विषय**—'विषय' भुक्ति का एक भाग होता था। इसको आधुनिक 'जिला' या 'कमिश्नरी' माना जा सकता है। स्कन्दगुप्त के इन्दौर-दानपत्र में शर्वनाग को अन्तर्वेदी का विषयपति कहा गया है (स० इ०, ३१९; गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, पृ० २६१)। अंगदीय की पहिचान अभी नहीं हो सकी है। कभी-कभी 'विषय शब्द का प्रयोग 'राज्य' अर्थ में भी होता था, यथा 'स्वविषयभुक्ति शासन याचन', प्रयाग-प्रशस्ति।

(१५) **पथक**—एक लघु प्रशासकीय इकाई। इसकी तुलना आधुनिक परगने से की जा सकती है। कुछ ग्रामों का समूह पथक कहलाता होगा।

(१६) **मर्कटसागर ग्राम**—ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। मर्कटसागर की पहिचान अभी तक नहीं हो सकी है।

(१७) **महासामन्त······चाट सेवक आदि**—महासामन्त बड़े सामन्तों को कहते थे। सामन्त-प्रथा के लिए दे०, हमारे ग्रन्थ गुप्तकालीन अभिलेख (मेरठ, १९८६) में यशोधर्मा के तिथिविहीन स्तम्भ-लेख की टिप्पणियाँ।

महाराज=अधीन राजा हर्ष के युग तक 'महाराज' उपाधि अति-सामान्य हो गई थी। **दौस्साधसाधनिक** का अर्थ था दुःसाध्य का साधने वाला। यह उन पदाधिकारियों का पदनाम था जो उन भंयकर दस्युओं को पकड़ते थे जिनका बन्दीकरण दुःसाध्य समझा जाता था। दे०, काणे हिस्ट्री ऑव धर्मशास्त्र। दुःसाधसाधनिक, दुस्साध्यसाधक, तथा दौःसाधिक इसी पदनाम के विभिन्न रूप हैं। दे०, इ० आई०, २२, पृ० ६। कोशों में इसका अर्थ प्रायः द्वारपाल दिया गया है। आर० जी० भाण्डारकर ने इस पदाधिकारी को ग्रामों का अधीक्षक माना है। **प्रमातार** का शुद्ध संस्कृत रूप 'प्रमातृ' है। फोगल ने उसे 'सिविल जज' माना है और ब्युलर ने 'आध्यात्मिक मामलों का सलाहकार' बताया है। 'प्रमातृ' का शाब्दिक अर्थ है 'मापक' या 'सर्वेक्षक', इसलिए इसे 'पटवारी' अर्थ में लेना उचित होगा। कुछ लेखों में (इ० आई०, १, पृ० २२) में उपलब्ध इसी अर्थ का बोधक 'प्रमत्तवार' पटवारी शब्द के पर्याप्त निकट है। **राजस्थानीय** का शाब्कि अर्थ है राजा के स्थान पर (अर्थात् राजा के बजाय) शासन करने वाला अर्थात् वायसराय (फ्लीट, कॉर्पस, ३, पृ० १५७) अथवा राजा के निवास-स्थान की देखभाल करने वाला। कभी-कभी यह पदनाम अधीन राजाओं अथवा न्यायधीशों के लिए भी प्रयुक्त हो जाता था। क्षेमेन्द्र के 'लोकप्रकाश' में इसका अर्थ 'प्रजापालनार्थ उद्वहति रक्षयति च स राजस्थानीयः' दिया गया है (दिस्कलकर, सेलेक्शन्स, पृ० १०५-६)। इन्द्रजी (आई० ए०, १२, पृ० १२२, टि० ७६) ने इनका अर्थ 'अन्य राज्यों व राजाओं के साथ सम्बन्धों की देखभाल करने वाला अर्थात् विदेश मन्त्री माना है, परन्तु यह गलत है। इस पद का उल्लेख यशोधर्मा के ५३२ ई० के शिलालेख, द्वितीय धरसेन के मालिया-दानपत्र, द्वितीय जीवितगुप्त के देवबरनार्क अभिलेख तथा नारायणपाल के भागलपुर-दानपत्र आदि में मिलता है। कुमारामात्य के लिए दे०, समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति (गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, १९८६, पृ० ४८)। **उपरिक** का शाब्दिक अर्थ है 'वह जो सबसे ऊपर रखा गया हो।' इसका प्रयोग गर्वनरों के लिए होता था। प्रथम कुमारगुप्त के काल में पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति का गर्वनर चिरातदत्त 'उपरिक' उपाधिकारी था। (पुण्ड्रवर्द्धन-भुक्तावुपरिक चिरातदत्तेन, स० इ०, पृ० २९१; गुप्तकालीन अभिलेख, पृ० १०४)। बाद में 'उपरिक' के साथ 'महाराज' पद भी संयुक्त किया जाने लगा (पुण्ड्रवर्द्धन भुक्तावुपरिक महाराज ब्रह्मदत्तेन, स० इ०, पृ० ३३२-३)। 'याज्ञवैल्क्य-स्मृति' (१·३०७) की टीका करते समय विश्वरूप ने 'बृहस्पति-स्मृति' का एक पद उद्धृत किया है जिसमें उपरिक की अर्हताएं बताई गई हैं। **विषयपति** विषय नामक प्रादेशिक इकाई के अधिकारी को कहते थे। उनकी नियुक्ति प्रायः प्रान्तीय गवर्नर करता था। **चाट और भट** नाम के पदाधिकारियों की सही पहिचान के विषय में मत-भेद है। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में चाटों की गणना जनता को पीड़ित करने वाले चोरों और कायस्थों आदि के साथ की गई है और 'मिताक्षरा' में चाटों को धोखा देकर जनता का धन छीन लेने वाला अर्थात् ठग कहा गया है। 'मृच्छ-कटिक' के पाँचवें अंक में नायक का मित्र कहता है कि जहाँ चाट और गणिकाएं आदि रहती हैं वहाँ कुत्ते भी नहीं जाना चाहते। 'चाट' शब्द का सम्बन्ध चाटुकारिता से भी जोड़ा गया है। इसी प्रकार कुछ विद्वानों ने भट को भाट (=चारण) अर्थ में लिया है। 'भट' शब्द का अर्थ 'भृत्य' या सैनिक हो सकता है, लेकित वस्तुतः यह 'पियादा' या 'बर्कन्दाज' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ लगता है। अभिलेखों में दान में दिए गए गांवों में प्रायः चाटों और भाटों के प्रवेश के लिये, चोरों और द्रोहियों को पकड़ने के उद्देश्य से जाने के अतिरिक्त, निषिद्ध कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि चाट और भट चाहे अलोकप्रिय रहे हों लेकिन वे थे राजकीय पदाधिकारी। हर्ष के अभिलेख में उनका उच्च पदाधिकारियों के साथ उल्लेख होना इसका प्रमाण है। इसलिए चाटों और भटों को आजकल 'नियमित' और 'अनियमित' सैनिक ही माना जाता है (ब्युलर, आई० ए०, ५, पृ० ११५)। फ्लीट ब्युलर के इस मत से सहमत है (कॉर्पस, ३, पृ० ९८, टि० २)।

(१८) **उद्रङ्ग**—एक प्रकार का भूमि कर था। इसका अर्थ 'किसानों द्वारा दिया जाने वाला निश्चित कर', 'भूमिकर' अथवा 'स्थायी रूप से बसे किसानों द्वारा दिया जाने वाला कर' आदि किया गया है। किसी-किसी प्रदेश में यह अनाज के रूप में भी चुकाया जाता था क्योंकि कुछ अभिलेखों में 'औद्रांगिक' (उद्रंग एकत्र करने वाला

अधिकारी) का उल्लेख 'हिरण्य सामुदायिक' के साथ हुआ है (दे०, सरकार, ग्लॉसरी, पृ० ३४६)। नेपाली लेखों में 'उद्रंग' के स्थान पर 'द्रंग' शब्द का प्रयोग मिलता है पर 'राजतरंगिणी' में 'द्रंग' शब्द का प्रयोग 'पुलिस स्टेशन' अर्थ में हुआ है। भाण्डारकर ने 'उद्रंग' को 'द्रंग' के अर्थ में लेकर 'सोद्रंग' का अर्थ 'झोपड़ियों सहित' किया है।

(१९) **सर्वराजकुलाभाव्य प्रत्याय समेतः** —यह पद अभिलेखों में विभिन्न रूपों में मिलता है, यथा : राजभाव्य (अथवा आभाव्य) सर्वप्रत्याय समेत, राजग्राह्य समस्त प्रत्याय समन्वित, अकिञ्चित प्रग्राह्य, अकिञ्चित कर ग्राह्य (सन्दर्भों के लिए दे०, सरकार, ग्लॉसरी)। इसका तात्पर्य था कि दान में दिये गए गांव को राजा, राजकुल के सदस्यों अथवा पदाधिकारियों के आगमन पर किसी प्रकार की सामग्री नहीं देनी होती थी—अर्थात् राजकुल को उस गांव से अब इस प्रकार की आय नहीं हो सकती थी।

(२०) **सर्वपरिहृतपरिहारः** —कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ 'समस्त विशेषाधिकारों से युक्त' किया है। लेकिन हमारे विचार से यहाँ परिहार को 'गांव के निकट स्थित सार्वजनिक भूमि' अर्थ में लेकर इसका आशय 'समस्त सार्वजनिक भूमि को छोड़कर' मानना अधिक उचित होगा।

(२१) **चन्द्रार्कक्षिति समकालीन**—इस पद का अथवा इससे मिलते-जुलते पदों का प्रयोग दान को शाश्वत बताने के लिए किया जाता था।

(२२) **भूमिच्छिद्रन्याय**—इस पद का सही अर्थ विवादग्रस्त है। आर० जी० भाण्डारकर (आई० ए०, १, पृ० ४६) के अनुसार इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार भूमि के छिद्र हमेशा नहीं रहते, अपने आप भर जाते हैं, उसी प्रकार यह दान भी सब प्रकार की उथल-पुथलों के बावजूद स्थायी रहेगा। ब्युलर (आई० ए०, ४, पृ० १०६, टि०) के अनुसार इसका तात्पर्य है कि जिस प्रकार किसी भूमि के अन्दर बने गड्ढे आदि उसका अभिन्न अंग होते हैं उसी प्रकार दाता ने इस भूमि से होने वाली सब प्रकार की उपज और उससे सम्बन्धित सब अधिकार दे दिए हैं। भदकंकर (इ० आई, ९, पृ० १७७) का कहना है कि इस पद के अनुसार राजा उस भूमि में पाई जाने वाली बहुमूल्य धातुओं और खजानों पर अपना अधिकार बनाए रखता था। सरकार (ग्लॉसरी, पृ० ३९३) ने इसका अर्थ किया 'भूमि को प्रथम बार जोतने के सिद्धान्त के अनुसार उसका बिना कर दिए उपभोग करना।' उन्होंने 'छिद्र' को 'जुताई' के अर्थ में लिया है। घोषाल की भी मान्यता है कि इस पद के अनुसार दान पाने वाले का भूमि पर उसी प्रकार अधिकार हो जाता था जिस प्रकार किसी व्यक्ति का उस बंजर भूमि पर माना जाता था जो उसे प्रथम बार जोतता था। इस सिद्धान्त का उल्लेख प्राचीन अभिलेखों में प्रायः मिलता है।

(२३) **अग्रहार**—'ब्राह्मणों को दी गई भूमि अथवा गांव'; 'करमुक्त गांव'। कभी-कभी अग्रहार मन्दिरों और शिक्षा संस्थाओं को भी दिए जाते थे। ऐसी भूमि से उपलब्ध खनिज पदार्थों तथा यकायक मिलने वाले खजानों आदि पर राजा का अधिकार प्रायः बना रहता था।

(२४) **तुल्य मेय भाग भोग कर हिरण्यादि प्रत्याया**—अन्य लेखों में ऐसे स्थानों पर '**प्रत्याया**' के बजाया 'प्रत्यय' पाठ मिलता है। '**तुल्य**' का अर्थ है 'तोला जाने वाला' और 'मेय' का अर्थ है 'मापा जाने वाला'। ये दोनों विशिष्ट प्रकार के कर भी हो सकते हैं और भाग भोगादि का विशेषण भी। '**भाग**' (राजा को मिलने वाली उपज का भाग) तथा '**कर**' के लिए दे०; हमारे ग्रन्थ 'प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह', जयपुर, १९८२, में रुद्रदामा का जूनागढ़-लेख, पंक्तियाँ १४, १५ की टिप्पणियाँ। '**भोग**' शब्द उपभोग के अर्थ में आता है। इसका पारिभाषिक अर्थ 'जागीर' है (यथा, एरण-लेख में समुद्रगुप्त के 'स्वभोग नगर' का उल्लेख)। 'भाग' के साथ इसका उल्लेख एक विशिष्ट कर के लिए होता था जिसे सरकार के अनुसार ग्रामीण जनता राजा को समय-समय पर फलों काष्ठ और फूलों आदि के रूप में चुकाती थी। फ्लीट ने 'भाग भोग' का अर्थ 'भाग का उपभोग' माना था। परन्तु यह गलत है क्योंकि अभिलेखों में कहीं-कहीं 'भाग भोग' के स्थान पर 'भोग भाग' भी लिखा मिलता है जिसका अर्थ फ्लीट के सुझाव को मानने पर 'भोग का भाग' करना होगा जो सर्वथा अग्राह्य है। इसलिए यहाँ 'भाग भोग' का

अर्थ 'भाग और भोग' करना और 'भोग' को ग्रामीण जनता की ओर से दिया जाने वाला कर विशेष मानना अधिक उचित है। **'हिरण्य'**=सूवर्ण। कहीं-कहीं इसे 'सांवत्सरिक हिरण्य' (वार्षिक रूप से दिया जाने वाला हिरण्य) कहा गया है। कौटिल्य ने इसे भाग, विष्टि और पशु कर आदि के साथ गिनाया है लेकिन नियमित रूप से लगाए जाने वाले करों की सूची में छोड़ दिया है। इसके विपरीत मनु ने इसे नियमित करों में गिनाया है और इसकी दर १/५० बताई है। कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ 'सुवर्ण' किया है लेकिन स्मृतियों में इसकी गणना प्रायः फसल, वृक्ष, फल-फूल, घास आदि पर लगाए गए करों के साथ हुई है। अभिलेखों में भी इसका उल्लेख भाग, भोग और धान्य आदि (यथा अहिरण्यधान्यप्रणयप्रदेय, सरकार, ग्लॉसरी, पृ० १२९) के साथ हुआ है। अतः हमें घोषाल और सरकार का यह विचार सही लगता है कि यह कुछ विशेष फसलों पर लगाया जाने वाला परन्तु द्रव्य रूप में चुकाया जाने वाला कर था।

(२५) इस लेख के श्लोक सम्भवतः हर्ष ने स्वयं रचे थे। अगर ये बांसखेड़ा-लेख के लेखक की कृति होते तो सम्भवतः इनका प्रयोग मधुबन-दानपत्र में नहीं मिलता। लगता है कि हर्ष ने स्वयं रचित इन श्लोकों को अपने सभी दानपत्रों में प्रयुक्त करने की आज्ञा दे रखी थी। यद्यपि यह भी असम्भव नहीं है कि ये श्लोक हर्ष के सभी दानपत्रों में प्रयुक्त होने वाले सामान्य श्लोक रहे हों।

(२६) **दूतक**—उस पदाधिकारी को कहते थे जो दान को पारित करने की प्रार्थना राजा तक पहुंचाता था। धर्मपाल के खालिमपुर-दानपत्र में एक महासामन्ताधिपति दान को पारित करने की प्रार्थना सम्राट् तक कुमार त्रिभुवनपाल को दूतक बनाकर पहुंचाता है (इ० आई०, ४, पृ० २५०)। सम्भवतः दूतक का कार्य राजा के आदेश को स्थानीय पदाधिकारियों तक पहुंचाना भी होता था जो दानपत्र तैयार करवा कर उसे दान पाने वाले को दे देते थे। उसके कार्यों में सम्भवतः दान दी गई भूमि को दान पाने वाले के अधिकार में देना भी सम्मिलित था।

(२७) **महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत**=अक्षपटल कार्यालय का प्रमुख अधिकारी। अधिकरण=कार्यालय। अक्षपटलाधिकरण=वह कार्यालय जहाँ राजकीय दस्तावेज़ सुरक्षित रखे जाते थे (=आर्काइव)।

(२८) **स्कन्दगुप्त**—यह स्कन्दगुप्त सम्भवतः वही है जिसका उल्लेख 'हर्षचरित' में 'गजसाधनाधिकृत' रूप में मिलता है। उसने राज्यवर्द्धन की मृत्यूपरान्त हर्ष को समझाया था।

(२९) इस लेख की तिथि हर्ष संवत् की तिथि मानी जाती है (=६२८ ई०)।

(३०) बहुत से विद्वान् मानते हैं कि इस अभिलेख के अन्त में हर्ष ने अपना नाम अपने हाथ से लिखा था। स्मिथ का मत था कि यहाँ हर्ष का नाम उसके असली हस्ताक्षरों के अनुरूप खोदा गया था। लेकिन ध्यान देने की बात है कि इस लेख के शेष भाग की लिपि ठीक वैसी ही है जैसी नाम वाले भाग की, केवल नाम वाला भाग दीर्घाकार—करीब तिगुने बड़े—अक्षरों में लिखा है। चूंकि शेष लेख ईश्वर नाम के लिपिक के हाथ की लिखावट में है, अतः नाम वाले भाग की लिखावट भी ईश्वर की ही मानी जानी चाहिये। अतः हमें चटर्जी का यह मत सही लगता है कि यहाँ 'स्वहस्तो' 'बकलमखुद' के अर्थ में आया है। आजकल जिस प्रकार किसी कागज पर 'बकलम खुद' लिखे होने का अर्थ यह नहीं होता कि उसे स्वयं उसमें उल्लिखित पदाधिकारी ने अपने हाथ से ही लिखा है, उसी प्रकार यहाँ भी 'स्वहस्तो' का यह अनिवार्य अर्थ नहीं है कि इसे स्वयं हर्ष ने अपने हाथ से लिखा था। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि 'स्वहस्तोमम' पदांश मैत्रक एवं अन्य वंशों के अभिलेखों में भी प्रायः मिलता है।

बांसखेड़ा-दानपत्र का महत्त्व

राजनीतिक महत्त्व : वंश-वर्णन की विशेषताएं—हर्ष के शासन काल पर सर्वाधिक प्रकाश बाण के 'हर्षचरित' तथा शुआन-च्वांग की भारत-यात्रा के विवरण से मिलता। लेकिन उसके बांसखेड़ा- व मधुबन-दानपत्र साहित्य से ज्ञात सूचनाओं को परिवर्द्धित और संशोधित करने में बहुत सहायक हुए है। उदाहरणार्थ, 'हर्षचरित' में हर्ष के पूर्वजों में उसके अग्रज और माता-पिता के अलावा केवल उसके वंश के आदिपुरुष पुष्यभूति का ही नाम मिलता है। लेकिन उसके

अभिलेखों में प्रभाकरवर्द्धन के पहिले की तीन पीढ़ियों के राजाओं के नाम और मिल जाते हैं (यद्यपि इनमें आदिपुरुष पुष्यभूति अनुल्लिखित रहता है)। इस वंश-वर्णन को इस प्रकार तालिकाबद्ध किया जा सकता है :—

महाराज नरवर्द्धन = वज्रिणी देवी
|
महाराज (प्रथम) राज्यवर्द्धन = अप्सरो देवी
|
महाराज आदित्यवर्द्धन = महासेनगुप्ता देवी
|
महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन = यशोमती देवी
|
महाराजाधिराज (द्वितीय) राज्यवर्द्धन — महाराजाधिराज हर्ष

इस वंश वर्णन की कुछ विशेषताएं स्पष्ट हैं : (१) इस वंश के प्रथम तीन नरेशों को केवल 'महाराज' उपाधि दी गई है। उनका समय स्थूलतः छठी शती के दूसरे और तीसरे पाद में पड़ेगा। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक पुष्यभूति वंश किसी परमाधीश्वर के अधीन था। (२) रानियों के नाम केवल प्रभाकरवर्द्धन की रानी यशोमती तक ही दिये गये हैं। द्वितीय राज्यवर्द्धन और हर्ष की रानियों के नाम नहीं दिए गए हैं। इसका कारण स्पष्ट है : किसी राजा की रानी का नाम उसके पुत्र और उत्तराधिकारी का उल्लेख करते समय नये राजा की माता के रूप में होता था। अब, द्वितीय राज्यवर्द्धन के उपरान्त शासन किया उसके अनुज हर्ष ने, इसलिये राज्यवर्द्धन की पत्नी के उल्लिखित होने का अवसर ही नहीं आया। स्वयं हर्ष की रानी के उल्लेख का प्रश्न ही नहीं था। अतः इन लेखों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना अनिवार्य नहीं है, जैसा कि कुछ विद्वानों ने किया है, कि राज्यवर्द्धन और हर्षवर्द्धन ने विवाह ही नहीं किया था, हम कम से कम हर्ष के विषय में यह जानते हैं कि उसने अपनी एक पुत्री का विवाह वलभी के मैत्रक नरेश से किया था यद्यपि इसके साथ ही हम यह भी मानते हैं कि ६२०-२५ ई० के मध्य 'हर्षचरित' की रचना हुई और तब तक हर्ष ब्रह्मचारी था (दे०, गोयल, एस० आर०, हर्ष एण्ड बुद्धिज्म मेरठ, १९८६, पृ० १४६-९)। (३) प्रभाकर-वर्द्धन की माता के रूप में महासेनगुप्ता का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। उसके नाम से लगता है कि वह परवर्ती-गुप्त वंश के नरेश महासेनगुप्त की बहिन थी। यह तथ्य परवर्ती-गुप्त और पुष्यभूति वंशों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध का प्रमाण है। शायद इसी कारणवश महासेनगुप्त के पुत्रों, कुमारगुप्त और माधवगुप्त, ने अपने वंश के विपत्तिकाल में प्रभाकरवर्द्धन के पास शरण ली थी।

पुष्यभूति वंश के राजाओं का धर्म—इस अभिलेख के अनुसार इस वंश में नरवर्द्धन के उपरान्त जो तीन राजा हुए वे सूर्योपासक थे। उन्हें स्पष्ट रूप से परमादित्यभक्त कहा गया है। राज्यवर्द्धन का अपने पुत्र को 'आदित्य' वर्द्धन नाम देना और आदित्यवर्द्धन का अपने पुत्र को 'प्रभाकर' वर्द्धन नाम देना भी इसका प्रमाण है। लेकिन इसके उपरान्त शासन करने वाला राजा द्वितीय राज्यवर्द्धन बौद्ध कहा गया है। वह सम्भवतः बोधिसत्त्व आदर्श में विश्वास करता था (दे०, पीछे, पंक्ति ५, टि० ९)। उसके उपरान्त शासन करने वाले हर्ष ने शैव धर्म स्वीकार किया। यहाँ ध्यान देने की बात है कि हर्ष के लिये 'परममाहेश्वर' उपाधि का प्रयोग स्पष्टतः जानबूझ कर किया गया है। इसके प्रयोग को यह कह कर नजरअन्दाज़ नहीं किया जा सकता कि गुप्तों की 'परमभागवत' उपाधि की तरह यह पुष्यभूतियों की परम्परागत उपाधि थी। बांसखेड़ा-लेख के लेखक ने हर राजा की, उसकी विशिष्ट धर्मनिष्ठानुसार, धार्मिक उपाधि लिखी है। यही बात २५वें वर्ष के मधुबन-दानपत्र के साथ भी है। अतः यह निश्चित है कि हर्ष अपने शासन के २५वें वर्ष तक (=६३१ ई०) शैव था, बौद्ध नहीं। उसके बाद भी उसने कभी व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म अपनाया था इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता (दे०, गोयल, हर्ष एण्ड बुद्धिज़्म, मेरठ, १९८६) यद्यपि यह अनायास माना जा सकता है कि इस धर्म के प्रति उसका रुख उदारता का था।

राजनीतिक महत्त्व की अन्य सूचनाएँ—इस लेख में राजनीतिक महत्त्व की कुछ अन्य सूचनायें मिलती हैं। एक, राज्यवर्द्धन ने 'महाराजाधिराज' के रूप में शासन अवश्य ही किया था। यदि ये अभिलेख न मिलते तो सब विद्वान् यही निष्कर्ष निकालते कि द्वितीय राज्यवर्द्धन की मृत्यु उसका अभिषेक हुए बिना ही हो गई थी। दूसरे, इससे द्वितीय राज्यवर्द्धन की हत्या की परिस्थिति पर प्रकाश मिलता है। विस्तृत विचार के लिये दे०, पीछे, पृ० ९१-२। इस प्रसंग में हम यहां 'हर्षचरित' के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कथन की चर्चा करना चाहेंगे जिसकी ओर अभी तक किसी विद्वान् का ध्यान नहीं गया है। सप्तम उच्छ्वास में एक जगह हर्ष का वर्णन करते हुए बाण कहता है: "अग्रज के वध के कारण उत्पन्न कलङ्क को मिटाने के लिये वह इन्द्र के समान व्याकुल थे" (अमरपतिरिवाग्रज वध कलङ्क प्रक्षालनाकुलः, हर्षचरित, पृ० ३७१)। अब, पुराकथाओं में इन्द्र को त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के वध का दोषी बताया गया है और विश्वरूप के ब्राह्मण होने के कारण उसे इन्द्र का अग्रज कहा गया है। इस प्रकार 'हर्षचरित' के इस अंश में यह बात बिल्कुल स्पष्ट रूप से कही गई है कि हर्ष पर अपने अग्रज की हत्या करवाने का दोष लगा था। राजनीतिक महत्त्व की दृष्टि से इस लेख में हर्ष के कम से कम तीन पदाधिकारियों के उल्लेख (स्कन्दगुप्त, भान तथा ईश्वर) की चर्चा भी की जा सकती है। इनमें स्कन्दगुप्त का नाम 'हर्षचरित' में भी मिलता है।

आर्थिक एवं प्रशासनिक महत्त्व की सूचनाएँ—इस लेख में (१) हर्षकालीन अनेक पदनाम आदि मिलते हैं यथा: महासामन्त, महाराज, दौस्साधसाधनिक, प्रमातार, महाप्रमातार, महाक्षपटलाधिकरणाधिपति, राजस्थानीय, उपरिक, विषयपति, भट, चाट, सेवक, प्रतिवासिजानपद आदि। दे०, पीछे सम्बद्ध टिप्पणियाँ। (२) इसमें भुक्ति, विषय, पथक तथा ग्राम नामक प्रशासकीय इकाइयों का उल्लेख मिलता है। (३) इसमें 'तुल्य मेय भाग भोग कर हिरण्यादि' करों का उल्लेख तथा आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित उद्रंग, परिहार, सर्वराजकुलाभाव्य, भूमिच्छिद्रन्याय आदि महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है। दे०, पीछे टिप्पणियां।

साहित्यिक महत्त्व—यह अभिलेख तीन श्लोकों को छोड़कर पूर्णतः गद्य में है। इसका लेखक अज्ञात है। लेकिन इसके श्लोक स्वयं हर्ष की रचना लगते हैं। दे०, पीछे। इस लेख में लम्बे-लम्बे समासों से अलंकृत गद्य शैली का प्रयोग किया गया है जिसका चरमोत्कर्ष बाण के ग्रन्थों में मिलता है। राजाओं के धर्म का वर्णन करते समय इसका लेखक उनकी तुलना उनके उपास्यदेव से करता है यथा, द्वितीय राज्यवर्द्धन को वह 'परमसौगतः सुगत इव परहितैकरतः' कहता है और हर्ष को 'परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी' बताता है। प्रभाकरवर्द्धन की भी, जो परमादित्य भक्त था, वह आदित्य से तुलना करता है, लेकिन वहाँ आदित्य के स्थान पर वह 'एकचक्ररथ' नाम का प्रयोग करता है जिससे 'एकचक्ररथ' और 'प्रवृत्तचक्र' में 'चक्र' की उत्प्रेक्षा हो सके।

२०

हर्ष का मधुबन-दानपत्र

(हर्ष) सं० २५ (=६३१ ई०)

प्राप्तिस्थल : उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले की सगरी तहसील के नाथूपुर परगने का मधुबन स्थान।

भाषा : संस्कृत। तीन श्लोकों को छोड़कर सम्पूर्णतः गद्य में। श्लोक क्रमशः शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलक तथा अनुष्टुभ् छन्दों में हैं।

लिपि : उत्तरी वर्ग की सातवीं शती ई० के द्वितीय पाद की ब्राह्मी।

लेख-वर्णन : यह लेख एक ही ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण है जिसका आकार १′८″×१′३/४″ है। इसमें मूलतः मुहर टंकित थी जो अब अनुपलब्ध है। अक्षरों का आकार ५/१६″ है। वर्तनी की विशेषताओं में 'व' और 'ब' के लिये एक ही चिह्न का प्रयोग तथा 'र' के पूर्व 'क' तथा 'त' का द्वित्व उल्लेख्य हैं। सन्धि नियमों का पालन कभी-कभी नहीं किया गया है।

सार तथा महत्त्व : यह दानपत्र हर्ष के बांसखेड़ा-दानपत्र जैसा ही है—केवल इसके जारी करने का स्थान, दान दी गई भूमि, दान पाने वाले ब्राह्मणों के नाम और तिथि आदि में अन्तर है और अन्त में 'स्वहस्तोमम महाराजाधिराज श्रीहर्षस्य' वाक्य नहीं खुदा है। इसमें उल्लिखित कपित्थिका स्पष्टतः शुआन-च्वांग द्वारा उल्लिखित की-पी-था है (बील, रिकार्ड्स, १, पृ० २०२) जिसकी पहिचान कन्नौज से चालीस मील उत्तर-पश्चिम में स्थित संकिस से की जाती है। इसमें उल्लिखित सोमकुण्डका ग्राम श्रावस्ती (आधुनिक सहेत-महेत, जिला गोण्डा, उत्तर प्रदेश) भुक्ति में स्थित बताया गया है जिससे सिद्ध होता है कि यह प्रदेश ६३१ ई० तक हर्ष के साम्राज्य का अभिन्न अंग बन चुका था। यह लेख सूचित करता है कि दान दी गई भूमि को हर्ष ने वामरथ्य नामक व्यक्ति से लेकर दान दिया था जो इसका उपभोग एक कूट (जाली) शासनपत्र की सहायता से कर रहा था। इससे प्रमाणित है कि प्राचीन काल में जाली ताम्रपत्र बना लिये जाने के उदाहरण ज्ञात थे। लेख के अन्त में उत्कीर्णक के रूप में 'गुर्जर' नाम रोचक है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : ब्युलर, इ० आई०, १, पृ० ६७ अ०; कीलहॉर्न, इ० आई०, ७, पृ० १५५ अ०; भाण्डारकर-सूची, १३८६; थपल्याल, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १८२ अ०; गोयल, एस० आर०, हर्ष एण्ड बुद्धिज़्म, मेरठ, १९८६, पृ० ३-६।

मूलपाठ

१. सिद्धम्[।।*] स्वस्ति[।।*] महानौहस्त्यश्वजयस्कन्धावारात्कपित्थिकायाः (या) महाराजश्रीनरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो

२. महाराजश्रीराज्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीअप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्याभक्तो महाराजश्रीमद (दा) दित्यवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्रीमहा-

३. सेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिक्क्रान्तकीर्त्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजा (जो) वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्क्ररथ इव प्रजानामर्त्तिहरः

४. परमादित्यभक्तः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धनस्तस्य पुत्त्रस्तत्पादानु-ध्यातः सितयशः प्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डलः परिगृहीत-

५. धनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजाः सत्पथोपार्ज्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसम्प्रीणितार्थि-हृदयो [ऽ*] तिशयितपूर्व्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां

६. श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगतः सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारकमहाराजाधि-राजश्रीराज्यवर्द्धनः [।।*]

राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्ता-

७. दयः

कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखाः सर्व्वे समं संयताः [।*]

उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधां कृत्वा प्रजानां प्रियं

प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः [।।१।।*]

तस्यानुज-

८. स्तत्पादानुध्यातः परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्व्वसत्[त्] वानुकम्पी परमभट्टारक-महाराजाधिराजश्रीहर्षः श्रावस्तीभुक्तौ कुण्डधानीवैषयिकसोमकुण्डकाग्रामे

९. समुपगतां (तान्) महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिकप्रमातारराजस्थानीयकुमारा-मात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन्प्रतिवासिजनपदा (दां) श्चसमा-

१०. ज्ञापयत्यस्तु वः सम्वि (संवि) दितं (त) मयं सोमकुण्डकाग्रामो ब्रा (ब्रा) ह्मणवामरथ्येन कूटशासनेन भुक्तक इति विचार्य यतस्तच्छासनं भङ्क्त्वा तस्मादाक्षिप्य च स्वसीमा

११. पर्यन्तः सोद्रङ्गः सर्व्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेतः सर्व्वपरिहृतपरिहारो विषयादुद्धृत-पिण्डः पुत्त्रपौत्त्रानुगः चन्द्रार्क्कक्षितिसमकालीनो

१२. भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितुः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धनदेवस्य मातुः परमभट्टारिकामहादेवीराज्ञीश्रीयशोमतीदेव्याः

१३. ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानां च पुण्ययशोभिवृद्धये सावर्णिसगोत्रच्छन्दोगसब्र (ब्र)ह्मचारिभट्टवातस्वामि-

१४. विष्णुवृद्धसगोत्र व (ब्र) ह्वृचसब्र (ब्र) ह्मचारिभट्टशिवदेवस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्म्म (र्म्मे) णाग्रहारत्वेन प्रतिपादितः विदित्वा भवद्भिः समनुमन्तव्यः प्रति-

१५. वासिजनपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमेयभागभोगकरहिरण्यादि-प्रत्यायाः (या) अनयोरेवोपनेयाः सेवोपस्थानं च करणीयमित्य-

१६. पि च ॥

अस्मत्कुलक्क्रममुदारमुदाहरद्भि-
रन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयं (यम्) ।
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलवु (बु) द्बु(द् बु)दचंचलायाः (या)
दानं फलं परयशः परिपालनं च ।[।२॥*]
कर्मणा

१७. मनसा वाचा कर्त्तव्यं प्राणिने हितं (तम्) [।*]
हर्षेणैतस (त्स) मारख्यातं धर्म्मर्ज्जिनमनुत्तमं (मम्)॥[३॥*]
दूतको [ऽ*]त्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्तः[॥*]
महाक्षपटलाधिकरणाधि-

१८. कृतसामन्तमहाराजेश्वरगुप्तसमादेशाच्चोत्कीर्णं
गुर्ज्जरेण [॥*] सम्व (संव)त् २०(+*)५ मार्ग्गशीर्ष व दि ६ [॥*]

२१

हर्ष की नालन्दा मृत्तिका-मुहर

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य के पटना जिले का नालन्दा स्थल।

भाषा : संस्कृत। पूर्णतः गद्य में।

लिपि : सातवीं शती की उत्तर भारतीय ब्राह्मी।

विशेष चर्चा : यह मुहर दो भागों में विभक्त मिली है। दोनों टुकड़े मिल कर लगभग पूरा लेख प्रस्तुत करते हैं। प्रथम सात पंक्तियों के अक्षर कुछ बड़े हैं। नालन्दा से हर्ष की और कई मुहरों के टुकड़े मिले हैं। मुहर पर ऊपर वृषभ अंकित है। इसमें प्रदत्त वंशावली दानपत्रों की वंशावली के सदृश है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : एच० शास्त्री, इ० आई०, २१, पृ० ७५ अ०; एम० ए० एस० आई०, ६६, पृ० ६८-९; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, १९८५, पृ० १८६-७।

मूलपाठ

१. सिद्धम् [॥*] महाराजश्रीनर [वर्द्धनस्तस्य*] पुत्रस्तत्पादानुध्या [तः*] श्रीवज्रिणी-
२. देव्यामुत्पन्नः परमादित्यभ [क्तो मह*] ाराजश्रीराज्यवर्द्धनः [॥*] तस्य पुत्रस्तत्पा-
३. दानुध्यातः श्रीअप्सरोदेव्यामुत्पन्न [:पर] मादित्यभक्तो महाराजश्रीमदादित्य-
४. वर्द्धनः[॥*] तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः श्री [महा]सेनगुप्तादेव्यामु[त्प] न्नः चतुःसमु-
५. द्रातिक्क्रान्तकीर्त्तिः प्रतापानुरागोप [नतान्य]राजो वर्ण्णाश्रम व्यवस्थापनप्रवृत्त-
६. चक्क्र एकचक्क्ररथ इव प्रजानामर्त्तिह [रः]परमादित्यभक्तः परमभट्टारक-
७. महाराधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धनः[॥*] तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः अतिशयित-
८. पूर्व्वराजचरितो देव्याममलयशोमत्यां श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगतः सुग-
९. [त इ]व परहितानुरतः परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीराज्यवर्द्धन[ः॥*] त-
१०. स्यानुजस्तत्पादानुध्यातः परमभ[ट्टा]रिकामहादेवी श्रीयशोम[त्यां]दे-
११. व्यामेवोत्पन्नः परममा[हे]श्वरः महेश्वर इव सर्व्वस-
१२. त्त्वानुकम्पकः परमभट्टारकमहाराजाधिराज श्रीहर्षः [॥*]

२२

हर्ष की सोनीपत ताम्र-मुहर

प्राप्तिस्थल : हरियाणा राज्य के सोनीपत जिले का इसी नाम का स्थान ।

मुहर-वर्णन : आकार ५ ७/८″×६ ७/८″ अण्डाकार । चारों ओर १/४″ चौड़ी उभरी पट्टी है। ऊपर दक्षिणाभिमुख बैठे वृषभ की आकृति है । यह किसी ताम्रपत्र पर टंकित रही होगी । इसका भार ३ पौण्ड ६ औंस है। अक्षरों का औसत आकार ३/१६″ है । अक्षर बहुत घिसी हुई अवस्था में है और अधिकांशतः अपठ्य हो गये हैं ।

भाषा : संस्कृत । सम्पूर्णतः गद्य में है ।

लिपि : उत्तरी वर्ग की सातवीं शती की ब्राह्मी ।

महत्त्व : इस मुहर की १३ पंक्तियों में प्रथम १२ का पाठ जितना पढ़ा जा सकता है उतना हर्ष की नालन्दा-मुहर के पाठ से मिलता-जुलता है, बस बारहवीं पंक्ति के अन्त में विसर्ग नहीं है । लेकिन १३वीं पंक्ति में अपेक्षया लघु अक्षरों में हर्ष के नाम का दूसरा भाग 'वर्द्धनः' लिखा है । यह तथ्य रोचक है क्योंकि हर्ष के अपने अन्य सभी लेखों में व समकालीन शासकों के लेखों में ही नहीं वरन् समकालीन साहित्य व मुद्राओं पर उसे प्रायः 'हर्ष' या 'हर्षदेव' कहा गया है, हर्षवर्द्धन नहीं । परन्तु डॉ० सच्चिदानन्द मिश्र का यह कथन सही नहीं है कि हर्ष को समकालीन साक्ष्य में हर्षवर्द्धन कहीं कहा ही नहीं गया है । सोनीपत से प्राप्त प्रस्तुत मुहर में उसका नाम हर्षवर्द्धन स्पष्टतः दिया ही गया है । फ्लीट तथा थपल्याल ने भी इसे स्वीकृत किया है। इसके अतिरिक्त युआन-च्वांग ने भी अपनी भारत यात्रा-विवरण में हर्ष को हो-लि-शा-फ-त-न (=हर्षवर्द्धन) कहा है (बील, रिकार्ड्स, १, पृ० २१०) । बील ने इसका चीनी भाषा में अर्थ ही-त्सांग (हर्ष को बढ़ाने वाला) बताकर इस तथ्य को स्पष्टतर कर दिया है । अतः यह मानना चाहिये कि हर्ष का नाम उसके जीवन काल में हर्ष और हर्षवर्द्धन दोनों रूपों में प्रचलित था ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, पृ० २३१-३२; थपल्याल, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १८८ ।

मूलपाठ

(प्रथम १२ पंक्तियां हर्ष की नालन्दा-मुहर की पंक्तियों से मिलती हैं, बारहवीं पंक्ति के अन्त में विसर्ग को छोड़कर । १३वीं पंक्ति में 'वर्द्धनः' शब्द अतिरिक्तरूपेण उत्कीर्ण है) ।

कामरूप के वर्मा (नारक अथवा भौम) नरेशों के अभिलेख

१. भूतिवर्मा का बड़गंगा-शिलालेख
२. सुरेन्द्रवर्मा का उमाचल-शिलालेख
३. भास्करवर्मा का दूबी-दानपत्र
४. भास्करवर्मा का निधानपुर-दानपत्र

२३

भूतिवर्मा का बड़गंगा-शिलालेख

प्राप्तिस्थल : असम के नवगांग जिले में डबोक से १४ मील उत्तर-पूर्व की तरफ स्थित बड़गंगा सरिता के समीपस्थ एक शिला पर उत्कीर्ण मिला।

भाषा : संस्कृत। गद्यात्मक।

लिपि : छठी शती के मध्य की पूर्वी शैली की उत्तर भारतीय ब्राह्मी।

उद्देश्य : महाराजाधिराज भूतिवर्मा के विषयामात्य अवगुण के एक आश्रम का उल्लेख किया जाना।

तिथि : भट्टसाली ने इस अभिलेख की पंक्ति तीन के प्रारम्भ में वर्ष संख्या २३४ पढ़ी थी और इसे गु० स० का वर्ष माना था। परन्तु दि० च० सरकार ने प्रदर्शित किया है कि यहां '२३४' संख्या नहीं 'आयुष्कामं' पाठ है।

महत्व : कामरूप (आधुनिक असम) में समुद्रगुप्त के काल में वर्मा (भौम अथवा नारक) वंश की स्थापना हुई थी। कामरूप समुद्रगुप्त का प्रत्यन्त राज्य बना था और उसी के काल में वर्मा वंश का प्रथम नरेश पुष्यवर्मा (लग० ३५०-७५ ई०) हुआ जिसके पुत्र और पुत्रवधु के नाम समुद्रवर्मा और दत्तदेवी थे। इससे लगता है कि इस वंश की स्थापना समुद्रगुप्त की कृपा से हुई थी। पुष्यवर्मा के उत्तराधिकारी थे—समुद्रवर्मा, बलवर्मा, कल्याणवर्मा, गणपति (या गणेन्द्र) वर्मा, महेन्द्रवर्मा, नारायणवर्मा, भूतिवर्मा (अथवा महाभूतिवर्मा), चन्द्रमुखवर्मा, स्थिरवर्मा, सुस्थितवर्मा तथा सुप्रतिष्ठितवर्मा। इनमें प्रत्येक अपने-अपने पूर्वगामी राजा का पुत्र था। सुप्रतिष्ठितवर्मा का उत्तराधिकारी उसका भाई भास्करवर्मा (लग० ६००-६५० ई०) हर्ष का समकालीन था। भास्कर के दूबी- तथा निधानपुर-दानपत्रों से, जो ६०० ई० के बाद के हैं, इस वंश का इतिहास ज्ञात होता है।

प्रस्तुत अभिलेख में भूतिवर्मा को, जिसे अन्य लेखों में भूतवर्मा या महाभूतवर्मा भी कहा गया है, 'परमदैवत परमभट्टारक महाराजाधिराज' उपाधि दी गई है और अश्वमेध करने का श्रेय दिया गया है। स्मरणीय है कि भास्करवर्मा के मुद्रा लेखों पर भूतिवर्मा को नहीं वरन् उसके पिता नारायणवर्मा तथा पौत्र स्थिरवर्मा को दो-दो अश्वमेध करने का श्रेय दिया गया है। हो सकता है कि अपने पिता नारायणवर्मा के दूसरे अश्वमेध में भूतिवर्मा ने प्रमुख रूप से भाग लिया हो और इसलिये इस लेख में उसे अश्वमेधयाजी कह दिया गया हो। यह भी स्मरणीय है कि कामरूप के भौम-नरेश चौथी शती ई० के मध्य समुद्रगुप्त के प्रभुत्वान्तर्गत आए थे और उसके बाद बराबर गुप्त प्रभुत्व मानते रहे थे। शायद नारायणवर्मा और भूतिवर्मा द्वारा अश्वमेध सम्पादन उनकी स्वतन्त्रता-घोषणा थे।

महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ-ग्रन्थ : भट्टसाली, एन० के०, इ० आई०, २७, पृ० १८-२३; सरकार, वही, ३०, पृ० ६२ अ०; स० इ०, १, पृ० ३८४-५।

मूलपाठ

१. स्वस्ति (।।*) श्रीपरमदैवत-परमभट्टारक-महारा[जा]-

२. धिराजाश्वमेधयाजिन (नः) श्रीभूतिवर्म्मस्य (णः) पादान[ां](नाम्)

३. आयुष्कामं विषयामात्य-अवगुणस्य

४. इदं(दम्) आश्रमं (मम्) (।।*)

२४

सुरेन्द्रवर्मा का उमाचल-शिलालेख

प्राप्तिस्थल : असम में गौहाटी के समीप कामाख्या पहाड़ी के ढाल पर स्थित उमाचल आश्रम के पास १९५५ में प्राप्त एक शिला पर उत्कीर्ण।

लिपि : चौथी से छठी शती ई० के मध्य की पूर्वी शैली की उत्तर भारतीय ब्राह्मी। बड़गंगा-लेख की लिपि के सदृश।

भाषा : संस्कृत।

उद्देश्य : महाराजाधिराज सुरेन्द्रवर्मा द्वारा भगवत्बलभद्रस्वामी के लिये गुहा (या गुहा-मन्दिर) के निर्माण करवाये जाने का उल्लेख।

महत्त्व : महाराजाधिराज सुरेन्द्रवर्मा अन्य साक्ष्य से अज्ञात है। लिपिशास्त्रीय दृष्टि से उसे बड़गंगा-अभिलेख के भूतिवर्मा के निकट (छठी शती ई० का मध्य भाग) रखा जा सकता है, लेकिन भूतिवर्मा से उसका सम्बन्ध अज्ञात है। वह असम के वर्मा (भौम या नारक) वंश का कोई विद्रोही राजकुमार भी हो सकता है, इस वंश के किसी ज्ञात नरेश का दूसरा नाम भी और महेन्द्रवर्मा (भूतिवर्मा का पितामह) का पर्याय (महेन्द्र=सुरेन्द्र) भी इसी प्रकार बलभद्रस्वामी किसी सन्यासी का नाम भी हो सकता है और बलराम (=संकर्षण) का भी।

संदर्भ-निबन्ध : सरकार, दि० च०, इ० आई०, ३१, पृ० ६७–९।

मूलपाठ

१. महाराजाधिराज-श्री
२. सुरेन्द्रवर्म्मणा कृतम्
३. भगवतः व(ब)लभद्र-
४. स्वामिनाय (नः) इदं गुहं (इयं गुहा)[।।*]

२५

भास्करवर्मा का दूबी-दानपत्र

लेख-परिचय—यह दानपत्र असम राज्य के कामरूप जिले के **दूबी** नामक गाँव में परिसरेश्वर देवालय नामक शिव मन्दिर के समीप जमीन खोदते समय एक मजदूर को मिला था। इसमें मूलतः छः ताम्रपट्ट थे जिनमें छठा उसी समय टूट गया था और अब उपलब्ध नहीं है। शेष **पाँच ताम्रपट्ट** आजकल गौहाटी संग्रहालय में रखे हैं। इनमें दूसरा एवं पांचवां ताम्रपट्ट अधिक सुरक्षित अवस्था में हैं। इनसे लगता हैं कि ताम्रपट्टों का आकार ९.३"×४.६" था। लेकिन सभी ताम्रपट्ट इस समय क्षत अवस्था में मिलते हैं। प्रथम ताम्रपट्ट में केवल एक ओर लेख लिखा है और शेष में दोनों ओर। लेख में कुल ११७ पंक्तियाँ हैं। लेख के क्षति ग्रस्त हो जाने के कारण पंक्तियों के प्रारम्भिक व अन्तिम अक्षर पढ़े जाने में कठिनाई होती है। हर ताम्रपट्ट में ऊपरी व अन्तिम पंक्ति के वाक्यांश तो प्रायः अपठ्य हो ही गये हैं। सभी ताम्रपट्ट एक छल्ले से बंधे हैं जिस पर एक **मुहर** टंकित है। मुहर अण्डाकार है और ३.४"×३.१" आकार की है। इस पर सामने की ओर देखता हुआ हाथी बना है और राजवंशावली दी गई है। इसकी एक विशेषता इसमें भास्कर के भाई सुप्रतिष्ठितवर्मा का अनुल्लेख तथा भास्कर की मां का नाम श्यामादेवी के बजाय (जो निधानपुर-दानपत्र में मिलता है) ध्रुवलक्ष्मी दिया जाना है। अन्य नामों की वर्तनी में प्रायः कुछ अन्तर मिलता है। पांचों ताम्रपट्ट का वजन १४९ तोले है तथा मुहर का छल्ले सहित ८७½ तोले।

लेख की **भाषा** संस्कृत है और **लिपि** सिद्धमातृका—छठी-सातवीं शती की पूर्वी शैली की उत्तर भारतीय ब्राह्मी। यह निधानपुर-दानपत्र की लिपि के सदृश है यद्यपि दि० च० सरकार के अनुसार इसके अक्षरों की बनावट निधानपुर-दान पत्र के अक्षरों से कुछ पुरानी है। लेख सम्पूर्णतः पद्य में है, केवल अन्त में दानपाने वाले ब्राह्मणों के नाम गद्य में हैं। लेख का कवि, जो भी वह रहा हो, केवल द्वितीय श्रेणी का कवि कहा जा सकता है। उसने कुल ७६ श्लोकों में निम्न-लिखित छन्दों का प्रयोग किया है:— १, १३, २२ : वंशस्थविल; २, ३७, ५०–५३, ५८, ६२, ६७–६८, ७०, ७५ : शार्दूलविक्रीडित; ३ : उपजाति (इन्द्रवज्रा-वंशस्थविल); ४, ६, ९, ११, १८, २०, २८, ४९, ५७ : उपजाति (इन्द्रवज्रा-उपेन्द्रवज्रा); ५, १५, ४० : उपजाति (इन्द्रवंशा-वंशस्थविल); ७–८, १०, १२, १७, २५, २७, २९, ३२-३६, ४१-४८, ५९, ६१, ६५ : अनुष्टुभ् ; १४, १६, ५६ : इन्द्रवंशा ; १९, २६, ३०, ७६ : इन्द्रवज्रा; २१ : उपेन्द्रवज्रा; २३-२४ : उपजाति (उपेन्द्रवज्रा-इन्द्रवंशा); ३१, ६६, ६९, ७३-७४ : स्रग्धरा ; ३९ : उपजाति (इन्द्रवंशा-इन्द्रवज्रा); ५४ : मन्दाक्रान्ता ; ६०, ६४ : आर्या; ६३, ७१ : वसन्ततिलक ; ७२ : शिखरिणी।

दूबी-दानपत्र में कोई **तिथि** नहीं दी गई है लेकिन जैसा कि हम अन्य साक्ष्य से जानते हैं भास्करवर्मा ६०६ ई० में हर्ष के सिंहासनासीन होने के समय राजा बन चुका था और हर्ष की मृत्यु के बाद भी कुछ समय तक शासन करता रहा था। अतः स्थूलतः उसका समय सातवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। सरकार ने निधानपुर-दानपत्र को भास्कर के अन्तिम दशक के प्रारम्भ का माना है और दूबी-दानपत्र को उससे कुछ पहिले का।

लेख का सार—दूबी-दानपत्र के अनुसार नरक से भगदत्त उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र वज्रदत्त था। वज्रदत्त के वंश में पुष्यवर्मा का आविर्भाव था। पुष्यवर्मा का पुत्र और उत्तराधिकारी समुद्रवर्मा था जिसकी रानी दत्तवती से बल-वर्मा उत्पन्न हुआ। बलवर्मा के बाद सिंहासन उसकी रानी रत्नदेवी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र कल्याणवर्मा को मिला

जिसकी रानी गर्न्ववंवती से गणपतिवर्मा उत्पन्न हुआ। गणपति की रानी यज्ञदेवी ने महेन्द्रवर्मा को जन्म दिया और महेन्द्रवर्मा की रानी सुव्रता से नारायणवर्मा उत्पन्न हुआ। नारायण का उत्तराधिकारी उसकी पत्नी देवमती से उत्पन्न पुत्र महाभूतवर्मा बना। महाभूत का पुत्र उसकी रानी विज्ञानवती के गर्भ से उत्पन्न पुत्र चन्द्रमुखवर्मा था। चन्द्रमुख की रानी भोगवती से स्थिरवर्मा जन्मा जिसने अपनी राजधानी पवित्र नदी (ब्रह्मपुत्र) के तट पर स्थित एक नगर में स्थानान्तरित की। उसकी पत्नी नयनादेवी ने सुस्थितवर्मा को जन्म दिया। सुस्थितवर्मा की पत्नी ध्रुवलक्ष्मी थी जिसने सुप्रतिष्ठितवर्मा और भास्करवर्मा को जन्म दिया। सुस्थितवर्मा की मृत्यु को बहुत समय नहीं बीता था कि गौड सेना ने जो जलयुद्ध में दक्ष थी, कामरूप पर आक्रमण किया। सुप्रतिष्ठित और भास्कर ने एक लघु सैन्य के साथ शत्रु का वीरतापूर्वक सामना किया (श्लोक ६८)। अगले श्लोक में इन दोनों भाइयों की तुलना बलराम व कृष्ण से की गई है और गौडराज की असुरराज बाण के साथ। इसके बाद कहा गया है कि शत्रु सेना को हतोत्साह कर देने के बावजूद सुप्रतिष्ठित और भास्कर घायल होकर बेहोश हो गये (मोहानगतौ) और दुर्भाग्यवश (विधिवशात्) बन्दी बना लिये गये (आसादितौ)। गौडराज उन्हें अपने साथ अपने देश ले गया लेकिन अपने गुणों के कारण (गुणावत्तयैव) शीघ्र ही स्वदेश लौटने में सफल हुए (प्राप्यस्वराज्यमचिरात्पुनरागतौ तौ, श्लोक ७०-७१)।

कुछ समय बाद भाई की मृत्यु हो जाने पर भास्करवर्मा शुद्धि संस्कार करके सिंहासन पर बैठा। एक राजा के रूप में उसने एक पुराने दानशासन का, जो उसके पूर्वज महाभूतवर्मा ने जारी किया था, नवीनीकरण किया जो प्रस्तुत दानपत्र है। उस मूल दानपत्र में दान पाने वाले ब्राह्मण थे भट्टमहत्तर प्रियङ्करघोषस्वामी तथा आवसरिक भट्ट देवघोष स्वामी। नये दानपत्र में दान उन अंशपतियों को दिया गया जो मूल दान पाने वालों की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हो सकते थे।

नारायणवर्मा और स्थिरवर्मा दोनों ने दो-दो अश्वमेध किये थे। यह रोचक तथ्य है कि महाभूतवर्मा को बड़गंगा-लेख में अश्वमेध करने का श्रेय दिया गया हैं, प्रस्तुत लेख में नहीं। शायद नारायणवर्मा के काल का द्वितीय अश्वमेध तब सम्पन्न हुआ जब वह बहुत बूढ़ा हो गया था। इसलिये बड़गंगा-लेख में उसका सम्पन्न करने का श्रेय उसके पुत्र महाभूतवर्मा को दे दिया गया है और प्रस्तुत लेख में स्वयं नारायणवर्मा को। कुछ विद्वान् इन अश्वमेधों का श्रेय महेन्द्रवर्मा को देते हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ—सरकार, इ० आई०, ३०, पृ० २८७ अ०; स० इ०, २, पृ० १ अ०।

मूलपाठ

मुहर-लेख

१. श्रीमान्नरक-तनयो भगदत्त-वज्रदत्तान्वयो महाराजा—
२. धिराज-श्रीप्राग्ज्योतिषेन्द्र-पुष्यवर्म्मा तत्पुत्रो महाराजधिरा—
३. ज-श्रीसमुद्रवर्म्मा तस्य तनयो दत्तदेव्यां महाराजाधिराज—
४. श्रीव (ब) लवर्म्मा तेन जातो देव्यां श्रीरत्नवत्यां महाराजाधिराज—
५. श्रीकल्याणवर्म्मा श्रीगन्धर्व्ववत्यां श्रीगणपतिवर्म्मा श्री य—
६. ज्ञवत्यां श्रीमहेन्द्रो द्विस्तुरगमेधाहर्त्ता श्रीसुव्रतायां श्री नारा—
७. यणवर्म्मा श्रीदेवमत्यां श्रीभूतिवर्म्मा श्रीविज्ञानवत्यां श्री—
८. चन्द्रमुखवर्मा श्रीभोगवत्यां द्विरश्वमेधया-
९. जी श्रीस्थिरवर्म्मा तेन श्रीनयनायां
१०. सुस्थितवर्म्मा तेनय श्री ध्रुवलक्ष्म्यां
११. श्रीभास्करवर्म्मेति (॥*)

प्रथम ताम्रपट्ट

१. प्रण [म्य देवं शशिशेखरं प्रियं
पिनाकिनं भस्मकर्णविभूषितं (तम् ।)
विभूत] ये भूतिम [तां]

२. सुजन्मनां
करो [मि] भूयः स्फुटवाचमुज्व (ज्ज्व) ला (लाम्) ॥ [१*]
येनेयम्व (यं व) सु [धा वराहवपुषा स्थित्यै प्र]-

३. जातां पुरा ।
गुप्तोद्धि (द्धृ) त्य दयालुना प्रियतया पोत्रे च संस्थापिता (।*)
तस्या [भूत्सु]-

४. त उत्तमो (ऽ*) मृतभुजान्तापाय (य) यः शक्तिमा-
न्नाम्नासौ नरकः क्षितौ क्षि-

५. तिभुजान्रा (जां रा) जाधिराजो विभुः ॥ [२*]
दिग्दन्तिहस्त-स्फुटकर्क्कशे [न]
जित्वा [करे] णाहवमूर्द्धिन शक्रं (क्रम्) ।

६. तन्मातृतो यो [वि] जहार कुण्डले
तस्या [त्म] जः श्री-भगदत्त-नामा ॥ [३*]
नृपात्मजो वज्रधर-प्र-

७. भावः
श्री-वज्रदत्तः क्षितिपो महात्मा ।
अधीत्य साङ्गाङ्श्च (ङ्गांश्च) तुरो (ऽ*) थ वेदा-
न्वाक्यं प्रमाणं स [मया]-

८. खिलं यः (।।*) [४*]
[ज्ञात्वा] गजानां विनयोन्नयक्रम-
न्तथा हयानाङ्कु [ल] शीलसौष्ठवं (वम्) ।
[देवासु]-

९. राचार्यमतञ्च तत्व (त्त्व) तः
स वाजिमेधैरयजन्महर्द्धिभिः ॥ [५*]
[तद] न्वये (रा) जसु रा (ज)-

१०. राज-
स्स (स) मानकीर्त्तिष्वमरेन्द्रसद्म (त्वः) (।*)
य (या) तेष्वभूद्भूपतिरिन्द्रकल्पः
श्री-(पुष्य) व [र्म्मा] रि-व (ब) ल-

११. प्रमाथी ॥ [६*]
चञ्चलापि यमासाद्य पतिं विष्णुमिवापरं (रम्) ।
लक्ष्मीः पा [णि-गृहीते] व साद्ध्वी जा-

१२. (ता) निरा (कुला) ।। [७*]
तस्य पुण्योदयोत्थानां कर्म्मणां किन्न पश्यथ ।
फलं तद्वङ्श (वंश)-ज [न्मानो]
१३. भुञ्ज (ते) × ⏑–⏑ × (।।) [८*]
[पुण्यानि ?] [कर्म्मा] णि (ब) हूनि कृत्वा
सुतं स लेभे ⏑ ⏑-⏑

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१४. — — ।
शक्रेण — — ⏑⏑—⏑ — —
यातो नरेन्द्र [स्त्रिदि] वौक [सानाम्] ।। [९*]
× × [नुस्मृत्य] भूपाला विनि-
१५. × × ⏑—⏑ × (।*)
तस्य [ता] दृगभूद्व्रा (द्बा) हुररिनारी-विलापदः ।। [१०*]
गते तु तस्मिन्स्त्रि (स्मिंस्त्रि) दशेश-सख्य-
मभून्नरेन्द्र (:*) पितृ-
१६. (तु) ल्य-विक्रमः (।*)
प्रख्यातिमान्ज्ञा (ञ्ज्ञा) न-गुणोदयोर्जितः
समुद्रतुल्य (:*) स समुद्रवर्म्मा ।। [११*]
अगाध-स्वच्छ-गम्भीरो
१७. व्याल-रत्नोपसेवितः (।*)
महत्वा (त्वा) च्छैत्य-योगाच्च तुल्यो जलधिना नृपः ।। [१२*]
चिरं स भुक्त्वा नृपसङ्घ-पूजितो
गुणान्वितः
१८. शत्रु-तमोपहो वशी ।
क्षितिं समग्रां [शु] भ-रत्न-मण्डितां
जगाम योगाभिरतस्त्रिविष्टपं (पम्) ।। [१३*]
श्री-दत्तवत्यां प्रथि [तो म]-
१९. हाव (ब) लः
श्रीमानभीष्टस्थितिकारणक्रमात् (।*)
धर्म्मानुगः पार्थिवलक्षणैः श्रितः
प्रजागुणैराप नरेन्द्र—
२०. तामसौ ।। [१४*]
शरान्स सोढ्वा ज्वलनोपयान्रणे
जित्वा व (ब) लीयान्स व (ब) लानपि द्विषः (।*)
वु (बु) भोज भौ [मान्व]-
२१. य-भूषणो मही [ं]
यतस्ततो (ऽ*) भूद्व (द्ब) लवर्म्म-संज्ञकः ।। [१५*]

भुक्त्वा महीङ्कु न्ध-रत्नभूषितां (ता)-
मिष्ट्वा च नैकैः
२२. ऋतुभिः सुदक्षिणः (।*)
कृत्वा रिपुणां व (ब) ल-[मान-ख] ण्डन-
[न्ध्या] नेन यातो दिवमेव कामद [:] ॥ [१६*]
तस्या कल्या-
२३. णशेषेण कल्याणचय-संभृतः (।*)
कल्याणवर्मा नृपतिर्भू तः कल्याणकारकः ।। [१७*]
श्री-रत्नदेवी-प्रभ-
२४. वो मनस्वी
भु (भू) तोपकारैक-रस-प्रवृत्त(:*) (।*)
[वृ] त्तारि-शक्तिर्न्निहतारि-पक्षः
क्षपाकराकार-मुखो म [हौजाः] (।।*) [१८*]
२५ कर्म्माणि कृत्वा स शुभानि राजा
हत्वा रिपूणां महता [ङ्कुलानि] ।
[भुक्त्वा] च भो [गान्सु] कृ [तैरु] पात्ता-
न्कालेन
२६. श [क्राति] थिताञ्जगा [म] ॥ [१९*]
‿-‿- -‿‿-‿- -
‿-‿- -‿‿-‿ युग्म [:] (।*)

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२७. गणेन्द्रवर्म्माजनि भूमिनाथो
गान्धर्व्ववत्या [ं] तिमिरारि-कान्तिः ॥ [२०*]
ग [णे] न्द्र-[तुल्य]ः स ग[णे] न्द्र-
२८. वर्म्मा ।
प्रभाव-योगातिशयैरुपेतः (।*)
क्षितिक्षितां क्षारमिव क्षतेषु
द्विषां प्रतापाय
२९. सुतं स लेभे ।। [२१*]
गुणैः पितेवाभवदेष भूतले
क्षितिं स भुक्त्वा जनकोपमो व (ब) ली ।
जनं समाहू-
३०. य गुणान्वितं सुतं
नियोज्य राज्यन्दिवमेव यातवान् ।। [२२*]
स यज्ञदेवी-तनयो जितारि-
र्म्महेन्द्रव-
३१. र्म्मामरराज-विक्क्रमः (।*)
वुभोज राज्य (ं*) रजनीकराभः

पपौ च सम्यक्स्वसु [तामि] व प्रजां (जाम्) ॥ [२३*]
विजि-
३२. त्य गां सागर-मेखलान्तां
द्विषः समानीय वशं व (ब) लेन (।*)
ईजे स राजा क्क्रतुभिर्म्महेन्द्रव-
च्छ्री-
३३. सुव्र (व्र) ताञ्चाप शचीमिव प्रियां (याम्) ॥ [२४*]
आद्या भूपाल-मर्यादा स्थितिर्दर्श्शन-दर्प्पणे ।
तास्मि-
३४. [न्नृ] पेन्द्र-चन्द्रे तु देवी क (का) न्तिरिवाश्रिता ॥ [२५*]
तस्यामदित्यामिव चक्रपाणि-
र्न्नारायणो मानुषत्तां प्रप [द्य] (।*)
३५. तेनेव नाम्ना कलिजान्निहन्तुं
दोषां (षान्) प्रजाया इव पार्थिवो (ऽ*) भूत् ॥ [२६*]
तस्य देवमतिर्द्देवी पत्नीत्वं प्र [त्य]-
३६. पद्यत ।
पद्मा नारायणस्येव श्री-नारायणवर्म्मणः ॥ [२७*]
भूत्यै प्रजानामिव कार्त्तिकेयः
भूताधिप (:*) प-
३७. र्व्वतराज-पुत्र्यां (त्र्याम्)
गुणाधिवासो वसति विभूत्या (:*)
श्री-देवमत्यामुदपीपदत्सः ॥ [२८*]
श्री-महाभूतव (व) र्म्माणं
३८. महाभूतमिवारं (रम्)
तं ख्यात-व (ब) ल-वर्म्माणमभ्यसिञ्चच्च [मा] नदः ॥ [२९*]
भुक्त्वा स भोग (गा) न्प्रचुरान्यथेच्छ-
न्दत्व [ा] (त्वा)
३९. [ज] नेभ्यश्च यथाभिकामं (मम्) ।
सौम्यो (ऽ*) पि राजा भयकृद्रिपूणां
योगेन यातः स्वतनं (नुं) विह (हा) य ॥ [३०*]
पित्र्यं सं-
४०. प्राप्य राज्यं सुरपति-सदृशः ख्यातवीर्यो (ऽ*) मितश्री-
[र्न्निर्ज्जि] त्यारातिचक्क्रं स्वभुज-युग-व (ब) लादात्तशस्त्रं स-

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

४१. [मस्तम्] (।*)
[दे] व्या [म्वि(व्यां वि)ज्ञानवत्यां] श [शि-स] म-वदनं सूनूमुत्पाद्य धीमा·

निष्ट्वासौ वा [जिमेध] न्नरप [ति] रगमच्छ क्क-[वासं]
यशस्वी ॥ [३१*]

४२. ततः क्रमाप्त-विजयः श्रीमद्भूपेन्द्र-भूषितः (।*)
श्री-चन्द्रमुखवर्म्माख्यो व (ब) भूव वसुधाधिपः (॥) [३२*]

४३. स्मर-लीला-चलापाङ्गैर्लोचनैः पुरयोषितां (ताम्) ।
गतवानेकपात्रत्वं परस्परजिहीर्षया ॥ [३३*]
सिङ्हा (सिंहा) स [न]-

४४. गतो राजा रराज सवितेव सः (।*)
रत्नभाभिः स (सु) पटुभिर्न्नयनानन्दकृत्सुधी (ः*) ॥ [३४*]
आनन्दहेतुर्ल्लोकानां स्व [य]-

४५. मानन्दितः सुखी ॥ (।)
जनयामास तनयं द्दे (दे) वीम्भोगवतीम्प्रति ॥ [३५*]
स पूर्व्वोपात्त-धर्म्मेण विद्या-भूति-ज-

४६. यादिभि [ः] (।*)
वर्द्धमानं सुतं दृष्ट्वा र(रा) जागात्परमा (ं*) मुदं (दम्) ॥ [३६*]
कृत्वासौ विधिवद्धुतं व (ब) लवतां

४७. मानापभङ्गं द्विषां
जित्वा सागर-मेखलां वसुमे(म)तीमिष्ट्वा च यज्ञै [र्म्मु]हुः(।*)
दानेनार्थिजनं

४८. श्रिया च सुहृदः सन्तोष्य पृथ्वीपति-
र्यातः शक्र-सलोकतां पृथुव(ब)लः संस्थाप्य पुत्त्रं क्षितौ । (॥)[३७*]

४९. स पुत्त्री तेन मुमुदे लोकान्तर-गतो (ऽ*) पि सन् (।*)
रामेणेव पुरा राज्ञा स्वर्गे दशरथो नृपः ॥ [३८*]
कृत्वा य [था] व-

५०. त् [पि] तृ-देव-तर्प्पणं
पौरान्स सम्यक्परिसान्त्व्य च प्रभुः (।*)
लग्ने [ध्रु] वे सर्व्व-गुणोपपन्ने
सिङ्हा (सिंहा) सनं सिङ्ह (सिंह) इवा-

५१. रुरोह ॥ [३९*]
अप्रच्युतं कर्म्म कृतान्तो द्विजै-
र्द्ध्र ुवाभिषेकं [वि] धिवच्च शान्तिकं (कम् ।)
स-शङ्खनादं सह-

५२. दुन्दुभिः (भि)-स्वनं
सुरेशवत्सो (ऽ*) नुव (ब) भूव भूमिपः ॥ [४०*]
तस्य देवकुलोद्यान-भवनाराम-शोभ [या] (।*)

५३. तिरस्कृत-सुनासीरपुर-क [र्व्व] ट-पत्तने ॥ [४१*]
निर [स्त]-स्तेय-दुर्भिक्ष-मरकोपद्रवादिके ।
नित्य-य

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

५४. × ⏑ – व्यय-स्वलङ्कृत-जनातते ॥ [४२*]
× × × × ⏑ ⏑ – × × × × × × ⏑ — ⏑ × (।*)
× × × × ⏑ – ⏑ ×

५५. स्कन्धावारे सरित्पतिः (।*) [४३*]
नैव वस्तु जगत्यस्ति निर्द्दोषमिति यन्मतं (तम्)
वीत-[दोषानुव (ब) न्धेन]

५६. स्व-गुणैस्तदपाकृत (म्*) ॥ [४४*]
वीतरागेण तेनेह सकलङ्का नृपाः कृताः (।*)
इन्दुनेव महीद्ध्राणां गु [हाः]

५७. स-तमसः कृताः ॥ [४५*]
संख्यात-[कुल]-सारेण सारेण जगतीभृता (म्*) ।
जगदानन्द-चरितैर्द्धात्त्रा कृता इव

५८. क्षितौ ॥ [४६*]
ता (त) त्सङ्ग-विरहे नृणां मरणं जीवतामपि ।
सत्सङ्गमो हि विदुषां भूषा रक्षा च गीयते (॥*) [४७*]

५९. प्रणतानेक-सामन्त-शिरोमणि-शिखारुणो (णौ ।)
स्थलपद्मश्रियं (य) न्धत्तः पादौ यस्य [जि] ता-

६०. त्मन (:*) ॥ [४८*]
श्रीमान्पुरे श्री-स्थिरवर्म्म-नामा
नीत्वा [च त] स्मिन्कतिचिद्दिनानि (।*)
स-पौर-भृत्यैः [सह] व (ब) [न्धु]-

६१. भिश्च
पुण्ये नदे सो (ऽ*) थ पुरीमकार्ष्षीत् ॥ [४९*]
तस्याराति-कुलारविन्द-शशिनो भौमा [न्वय]-

६२. इल (इला) घिनो
नानाशास्त्रपदार्थ-निश्चित-मतेर्व्वे [दे] षु चाधीतिनः (।*)
प्रख्यातान्वय-पौरुष-

६३. स्य नृपतेरापन्नतृष्णाच्छिदो
देवी श्रीरिव रूपिणी [प्रियतमा] कान्ताभवन्मानिनी ॥ [५०*]

६४. पौलोमीव शतक्रतोः पशुपते [दुर्गेव शै] लेन्द्रजा [।]
– – – ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑

६५. ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ –(।*)
– – – ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – ⏑ ⏑ – – – ⏑ – – ⏑ –
– – – ⏑

चतुर्थ ताम्रपट्ट : पुरोभाग

६६. ⏑–⏑–⏑ विपुलोर्व्वीव प्रजाजन्मभूः ॥ [५१*]
त्र्य्यामग्निरिवाद्ध्व [रेषु] विपुलो नी [त्वा] ⏑– –⏑–
६७. [शास्त्राणा] मिव सम्यगद्ध्ययनतः स (ं*) स्कार-राशिर्म्महान् ।
तस्यां सज्जन-सङ्गताविव परो धर्म्म [ा]-
६८. [नु] भावागमो
जातो वङ्श (वंश) धुरा [ं] समुन्नमयितुं पृथ्वीतलाखण्डलः ॥ [५२*]
स्कन्देनेव गिरीन्द्रज (जा) दिति-
६९. [रिव] [त्र्ै] लोक्यभर्त्त्रा भृशं ।
कृष्णेनेव च देवकी भगवता दैत्यारिण (णा) श्रीमता ।
प्रोत्खाताहित-मण्डल (ले) न
७०. [व(ब) लिना] सम्पूर्णचन्द्र-त्विषा
सा श्री-सुस्थितवर्म्मणा गुणवता देवी चि [रं] नन्दिता ॥ [५३*]
य (या) ते स्वर्गं पि—
७१. [तरि] जगतां भर्त्तरि क्ष्मातलेन्द्रे
कालेनेष्टं स्व-सुकृत-फलं भोक्तुमाख [ण्ड] लाभे (।*)
रक्षां पृथ्व्याः पृथुरिव
७२. [गुणैः] स्वैरि (र) यं संविधत्ते
शौर्य्याक्क्रान्त-क्षितिपति-शिरोरत्न-विद्योतिताङ् (तांह्रिः) ॥ [५४*]
येन व्याकर-
७३. णोदको नय-तिमिः साङ्ख्योरु-नक्रो महान्-
[मी] माङ्सा (मांसा)-व (ब) हु-[सा] रसानुरसितः (त) स्तर्क्कोनि-
७४. लावी [जितः] ।
व्याख्यानोर्म्मि-परंपरातिगहनो न्यायार्थ-फेनाकुलः (ल)-
स्तीर्णो (ऽ*) ज्ञेय-सरित्पति-प्रकरणः
७५. [स्रो] तो वि– –⏑—(॥*)[६५*]
(धीरागमैर्भाषण) मर्थवतया
शक्तिर्ज्जयेनोत्तमवङ्श (वंश) ता श्रिया ।
दानेन सम्पद्वि-
७६. न[येन शूरता]
– –⏑– –⏑⏑ –⏑–⏑–[॥*] [६६*]
कृतापकारे(ऽ*) प्युपकारवृत्तो
वशी विजेता प्रभुरि-
७७. [न्द्रियाणां(णाम्)] (।*)
⏑–⏑– –⏑⏑–⏑– –
⏑–⏑– –⏑⏑–⏑– –
⏑–⏑– –[सुरराज]-कल्पः ॥ [६७*]
येनाकृष्ट-पर ⏑–

७८. ‿‿– – –‿– –‿–

– – –‿‿–‿–‿‿– – – –‿– भूयसी (।*)

चतुर्थ ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

७९. – – –‿‿–––‿‿‿लेनापन्न-तृष्णाच्छिदो।

वाग्मित्व[·] पदवाक्य–‿‿‿– – –‿– – –‿–[।।*] [५८*]

८०. शमिताशेषदूरितं लोकेशमिव शङ्करं(रम्)।

चेतसा भक्तिभूतेन तस्याराद्ध्य[·*] नृशङ्करं (रम्) ।। [५९*]

[तस्य] श्री-[द्ध्रु व]-

८१. लक्ष्मीर्लक्ष्मीरिव लक्षिता क्षितौ विष्णोः (।*)

प्रभविष्णोर्भार्य्याभूद्भूत्यै भ्राजिष्णु-चक्रस्य। [६०*]

अनेकोरु-[द्यु]-

८२. मद्रत्न-निकरोपरिचारिणी (।*)

म्वे(वे)लेवोदन्वतस्तस्य साभूद्दर्त्तुर्म्महीभुजां(जाम्) ।। [६१*]

तस्यां तस्य महेश्वरस्य वशि[नो]

८३. देवस्य देव्यां शुभौ।

शम्भोः स्कन्द-विनायकाविव जगत्पूज्यावभूता(·*) सुतौ (।*)

नानादिग्वनितामुखानि ‿‿

८४. यैरन्यैर्गुणानां गणैः

सूर्य्याचं (च)न्द्रव(म)स(सा)विवाङ्शु(वांशु)-विस[रै]रुद्भासि-

तानि स्फुटं(टम्) ।।[६२*]

यत्रैतयोः प्र [थित]–

८५. योः स्वगुणैः पृथिव्या[·]।

व्यालक्षित-क्षितिप-लक्षणयोरिहैक (:*)।

श्रीनानरिद्रमनेन्द्र इति [प्र]-

८६. तोभी

भीमाकृतिर्युधि सुहृत्सु च चन्द्र-चारुः ।। [६३*]

श्रीमानरिदमनेन्द्रश्चन्द्र इवाखण्ड [ल]-

८७. मण्डलो ह्यपर (:*) (।*)

सज्जनकुमुदानन्दो दुर्ज्जन-मनुजाव्ज (ब्ज)-सङ्कोचः ।। [६४*]

सुप्रतिष्ठित–

८८. वर्म्माख्य एकः श्रीमान्स्त(मांस्त) थापर (:*)।

श्रीमद्भास्करवर्म्माख्यो वर्म्म-प(द्ध) तितौ(तः) पि(प्रि) यौ ।। [६५*]

यो ज्ये[ष्ठः]

८९. श्रेष्ठवक्त्रः प्रवर-करि-कराकार-वा(बा) हु[र्म्मृगाक्ष] (:*)

सिङ्ह(सिंह)-स्कन्ध(:*)‿– –‿‿‿‿–स्तम्भ[चा]-

९०. रूरुरुच्चै[:] (।*)

चित्तो रूपेण नानाश्रुत-सुभगसुधा-सार-संपूर्ण–

– – – –‿– –

९१. प्रथितपृथुयशाः‿ – – ‿ – – ॥ [६६*]
येन –‿ ‿–‿–‿–‿ –‿–‿–

पञ्चम ताम्रपट्ट : पुरोभाग

९२. – – –‿– ––लोदित-शशि-प्रस्पर्द्धिकान्तित्विषा ।
स्मृत्युत्तुङ्गित-लोकलोचन-चयस्याग्रे(ऽ*)–
९३. द्य[या]वत्क्षितौ
चेतो-भित्तिषु चारु-रूप-चरितेनात्मात्त चित्त्रीकृतः ॥ [६७*]
यावेतौ प्रथमे वयस्यपि पृथुप्र-
९४. [स्पर्द्धि]-सत्वो(त्त्वो)द्गमौ
शक्राङ्श(क्रांशं) विधिना प्रगत्य पितरि क्ष्मान्तर्न्निलीने क्क्रमात् (।*)
प्राप्ते गौड-व(ब)लेव(ब)[लि]न्यपि
९५. [ज]ले विस्रम्भ-संर (·*) भतः
स्तोकैरेव व(ब)लाच्युताविव व(ब)लैर्य्यौ लीलयोपस्थितौ ॥ [६८*]
तत्त्रोपस्थाय युद्धे
९६. [हरि]-कुलिश-शतैस्तूर्ण्णमाकर्ण्णपूर्ण्णै–
र्व्वा(र्ब्बा) णैर्व्वा(र्ब्बा)णासुराजावजित-भुज-व(ब)लौ ताविवावाप्त–
दर्प्पौ ((।*)
गौडा-
९७. [नां ली]लयैव प्रवर-करिघटाः क्क्रौञ्ज(ञ्च)-शैलावलीव–
द्ब(द्व)त्वीः(त्वी)स्ता(स्ते)षामभेत्तां हत-विविध-रिपू–
९८. [णाञ्च] वा(बा) णैर्यथा तैः ॥ [६९*]
नानासायक-शक्ति-चक्क्र-कनयः(य)-प्रासा[सि]-घातैः शितैः
कृत्वा
९९. [व्याकु]ल-विह्वल(·*) व(ब)लमहो तत्तूर्ण्णमेव द्विषां(षाम्) ।
तिग्मैस्तच्छर-तोमरैः सुव (ब) हुशश्छन्नौ हि मो–
१००. हङ्गतौ
वन्याभिः करिणां घटाभिरहितै[र्व्या]वेष्ट्य चासादितौ ॥ [७०*]
देशं स्वकं विधिवशादुपनीतयोश्च
१०१. तैः शत्रुभिः खलु ययोर्गुणवत्तयैव (।*)
प्राप्य स्वराज्यमचिरात्पुनरागतौ तौ
पित्त्र्यं जगद्भृश–
१०२. मिदन्तु नन[न्दतु]श्च ॥ [७१*]
[त]तो दे[वे ज्येष्ठे]जन-मनसि सेव्ये विधिवशा–
त्तमस्याक्षिप्याशाः शशभृति यथास्तं प्रतिगते (।*)
१०३. ‿तालो – – –‿‿‿– –‿‿‿–
‿– – –यैव [ज्वलि]त उरुरुगभास्कर इह ॥ [७२*]
देवे श्री-भास्करे

१०४. ―◡◡ ◡―― ◡ ――

―――― ―◡―― ―◡◡◡◡―पल्लवे लोकभू[त्यै ।]

पञ्चम ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१०५. ―――― ―◡―― ―◡ ◡ ◡ ◡―― ――◡― [लोत्थं(त्थम्)―] ।

―――― ―◡―― ―◡ ◡ ◡ ◡―― ――◡ आ-

१०६. सीत् समृद्धयैः (द्ध्यै) ॥ [७३*]

नाना-शास्त्रार्थ-तत्व(त्त्व)-श्रुत-वितत-धियो येन वादित्वमुच्चै–

स्तद्वच्चालङ्कृतैः सु[स्फुट–

१०७. ललित-पदं सर्व्व-मार्ग्ग कवित्वं(त्वम्) ।

येन प्राप्य प्रभाभिः प्रतिहत-तमसां साधु संसत्सु सर्व्वं

[स्वेच्छा]–

१०८. घातोच्छृतोच्चैर्न्निज-जय-जनिता स्वा पताके(का) च दिक्षुः(क्षु) ॥ [७४*]

धर्म्मः प्रस्खलितः कलि पुनरपि प्र[ध्वं]–

१०९. स्य संरोपितः

कीर्त्तिर्दुर्ज्जनवागुरोदरगता मुक्त्वा मृगीवोज्झिता ।

लक्ष्मीः क्षीव-विलास-[नीत]–

११०. विधिना संस्कृत्या (त्य) च स्वीकृता

भूयो येन महेश्वराश्रय-नयः स्फायि-प्रतापार्च्चिषा॥ [७५*]

[श्री-भूति]-

१११. वर्म्मा प्रददौ द्विजेभ्यो

येभ्यः परं शासनमाक्षतन्तत् (।*)

भूयः समुज्वा(ज्ज्वा)ल्य ददौ तदर्थे

[श्री-भा]-

११२. स्करः सम्प्रति तेभ्य एव ॥ [७६*]

कौशिको वाजसनेयी भट्ट-महत्तरः प्रियङ्करघोषस्व(स्वा)मी ।

[कौशिको]

११३. वाजसनेयी आवसरिको भट्ट-देवघोषस्वामी (।*) यत्त्राङ्श(त्त्रांश)-

पतयः भट्ट-प्रियङ्कर[घोष]–

११४. स्वामी । भट्ट-पि(प)राशरघोषस्वामी (।*) भट्ट-विष्णुघोषस्वामी ।

भट्ट-यज्ञघोषस्वा[मी] (।*)

११५. भट्ट-रुद्रघो[षस्वा]मी । भट्ट-वाजिघोपस्वामी (।*) भट्ट-द्ध्रुवघोष-

स्वामी (।*) [भट्ट-भू]म[घो]–

११६. षस्वामी । दक्षघोपस्वामी (।*) श्रेयस्करघोषस्वामी (।*) मौद्गल्यो

[वृ(बृ)हस्पति]स्वामी (।*) माण्ड[व्यो]

११७. ······ ···। कौशिकः कभट्टस्वामी । [आ]त्रे[यो]···············

२६

भास्करवर्मा का निधानपुर-दानपत्र

प्राप्तिस्थल : असम राज्य के सिलहट जिले का निधानपुर स्थान ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : सातवीं शती के पूर्वार्द्ध की उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी ।

महत्त्व : इस अभिलेख से भास्करवर्मा का कर्णसुवर्ण पर अधिकार प्रमाणित होता है । यह स्थान कभी शशांक की राजधानी रहा था । इससे स्पष्ट है कि भास्करवर्मा ने, सम्भवतः हर्षोपरान्त, उत्तरी बंगाल को अधिकृत कर लिया था । दूसरे, इसमें भास्करवर्मा के पूर्वजों का इतिहास दिया गया है । असम की सातवीं शती ई० की भूमि, और कर-व्यवस्था के अध्ययन के लिये भी यह दानपत्र महत्त्वपूर्ण है ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : पद्मनाभ भट्टाचार्य, विद्याविनोद, इ० आई०, १२, पृ० ६५ अ; १९, पृ० ११५ अ०; पाण्डेय, रा० ब०, हि० लि० इ०, पृ० २३५ अ० ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. [ओम्]

प्रणम्य देवं शशिशेखरप्रियं

पिनाकिन [·*] भस्मकर्णैर्विभूषित [·*] [।*]

विभूतये भूतिम [तां द्विज]–

२. न्मनां

करोमि भूय स्फुटवाचमु [ज] ज्वलां ॥ [१*]

स्वस्ति महा-नौ-हस्त्यश्वपत्तिसंपत्युपातजयशब्दान्व–

३. र्थ स्कन्धावारात् कर्ण्णसुवर्ण्णवहासकात् ॥

भोगीम्बरकृतपरिकरमीक्षणजितकामरूपम–

४. विमुक्त [।*]

परमेश्वरस्य रूपं निजभूतिविभूषितं जयति ॥ [२*]

जयति जगदेकवन्धुर्लोकद्वित–

५. यस्य सम्पदो हेतु [:] [।*]

परहितमूर्त्तिरदृष्टः फलानुमेयस्थिति [ं] धर्म्म [:] ॥ [३*]

धात्रीमुच्चिक्षिस्यो–

६. रम्बुनिधे-कपटकोलरूपस्य [।*]
चक्रभृत [:] सूनुरभूत् पार्थिववृन्दारको नरक [:] ॥ [४*]
७. तस्मादहष्टनरकान्नरकादजनिष्ट नृपतिरिन्द्रसखः [।*]
भगदत्तः ख्यातजयं विजय [·]
८. युधि यः समाह्वयत ॥ [५*]
तस्यात्मज [:] क्षतारेर्वज्रगतिर्वज्रदत्तनामाभूत् [।*]
शतम–
९. खमखण्डवल गतिरतोषयद्यः सदा संख्ये ॥ [६*]
वंश्येषु तस्य नृपतिषु वर्षसह–
१०. स्त्रत्रयं पदमवाप्य [।*]
यातेषु देवभूयं क्षितीश्वर [:] पुष्यवर्म्मभूत् ॥ [७*]
मात्स [य] न्याय–
११. विरहित [:] प्रकाशरत्न [:] सुतो द्वरथ लघु [:] [।*]
पञ्चम इव हि समुद्र [:] समुद्रवर्म्माभवत् तस्य [॥ ८*]
१२. अविखण्डितवलवर्म्मा वलवर्म्मा तस्य सूनु रजनिष्ट [।*]
क्षितिपस्य दत्तदेव्या [·] सेना य–
१३. स्याभ्यमित्त्रीया ॥ [९*]
तस्यापि रत्नवत्या [·] नृपतिः कल्याणवर्म्मनामाभूत् [।*]
तनयस्तनीयसा–
१४. मपि यो दोषाणामनावासः ॥ [१०*]
गन्धर्ववती तस्माद्गणपतिमिव दानवर्षणमजस्त्रं [।*]
१५. गणपतिमगणितगुणगणमसूत कलिहानये तनयं ॥ [११*]
तन्महिषी यज्ञवती

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१६. यज्ञवतीवारणि [:] सुतम् असूत [।*]
यज्ञविधीनामास्पदमनलमिव महेन्द्रवर्म्माणं ॥ [१२*]
तस्मा [द]–
१७. जनयदात्मजमात्मविदः सुव्रता भुव स्थितये [*]
नारायणवर्म्माणं जनकमिवाधिगतसांख्यार्थं ॥ [१३*]
१८. प्रकृतिरिव तस्य पुंसो देववती स्थिरगुणानुवन्धाय [।]
षष्ठमिव महा भूतंन्दधौ महा–
१९. भूतवर्म्माणं ॥ [१४*]
चन्द्रमुश्चस्तस्य सुतश्चन्द्र इव कलाकलापरमणीयः [।*]
विज्ञानव–
२०. ती द्यौरिव यं सुषुवे ध्वान्तशान्तिकरं ॥ [१५*]
भोगवती भोगवती भूतेः स्थितवर्म्मण [सु]–

२१. ततो हेतु: [।*]
आसीद्भोगिपतेरिव भूमिभृतोनन्तभोगस्य ॥ [१६*[
तस्मदगाध–
२२. मुर्त्तेरकलितरत्नादुपोढलक्ष्मीकात् [।*]
क्षिरोदधेरिव नृपादकलङ्क [:]
२३. श्रीमृगाङ्कोभूत् ॥ [१७*]
उदपादि नयनदेव्या [·] सुनुस्तस्य स्ववाहुधृत–
२४. राज्य: [।*]
देव [:] सुस्थितवर्म्मा य: ख्यात: श्रीमृगाङ्क इति ॥ [१८*]
प्रत्युरसं विलसन्ती [·]
२५. तद्धन इव या [·] मुदा हरिर्वहति [।*]
सा श्रीरर्थिजनेभ्य: क्षितिरिव विश्राणिता येन ॥ [१९*]
२६. कार्त्तयुगीव श्यामादेवी तस्मादजीजन [त्] तनयं [।*]
शशिनमिव सुप्रतिष्ठित–
२७. वर्म्माणमपास्तये त [म] सां [२०*]
यस्योन्नत्ति परार्था विद्याधरचक्रवर्त्तिसेव्यस्य [।*]
सग–
२८. जस्य सुप्रतिष्ठितकटकस्य कुलाचलस्यैव ॥ [२१*]
सैव श्यामादेवी तस्यानुजम–
२९. कलितोदयमसूत [।*]
श्रीभास्करवर्म्माणं भास्करमिव तेजसां निलयं [॥] [२२*]

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

३०. एकोपि हि य: पु [·] सां हृदयेष्वभिलक्षित [:] [स्वभावेन] [।*]
शुद्धेषु दर्पण [`] ष्विव वहु सुष–
३१. मं सन्मुखीनेषु ॥ [२३*]
यस्यार्वे (वि) हतमतनुभिस्तेजोभिर्लक्ष्म नृपतिभवनेपु [।*]
उद–
३२. पात्त्रेष्विव भूरिषु विलोक्यते भाकरस्येव ॥ [२४*]
अव्याल: स्वारोह [:] कल्पद्रुम–
३३. वत्समृद्धिभूरिफल [:] [।*]
च्छायापाश्रित जनतापरिवेष्टितपादमूलो य: [॥] [२५*]
३४. इत्यपि स जगदुदुयं कल्पनास्तमयहेतुना भगवता कमल–
सम्भवेना–
३५. विकीर्ण्णवर्ण्णाश्रमधर्म्मप्रविभागायनिर्म्मितोभुवनपतिरिवोदयानुरक्त-
मृ (म) ण्ड–
३६. लो यथायथमुचितकरनिक [र] वितरणाकुलितकलितिमर सञ्चय–
३७. तय [।] प्रकाशितार्यधर्म्मालोक [:] स्वभुजवल तुलितसकलसाम–

३८. न्तचक्रविक्रम स्थितिविनयं संस्तवोपचितभक्तिषु प्रकृतिषु
परंपारीणासु

३९. निकाममुपकल्प तानेकभोगीनवत्मा्र समरविजितनरपतिशतवहित

४०. विविधनुतिवचनकुसुमरचत रुचिरकीर्त्तिचित्रावतङ्सङ्कः शिविरिव
परो–

४१. पकारविश्राणनाभिरतसत्ववृत्तिर्यथासमयमुदितगुण विधिविभाग-

४२. सम्बन्ध पटुतया सुरगुरुरिवापरे परैरवहितप्रभाव[:] श्रत शौर्यधैर्य-

४३. शौटीर्यसुचरितैरलङ्कृतात्मवृत्तिः प्रतिपक्षसंश्रयनिराकृतैरिव विव-

४४. र्जितो दोषैरचलितनिरन्तरप्रणयरसभराकृष्ट कामरुपलक्ष्मी स्समा

४५. पश्चिमेन गङ्गणिका डुम्बरीच्छेदसम्वेद्या ।। पश्चिमेनाधुना सीमगङ्गिणिका।
पश्चि [मो]-

४६. त्तरेण कुम्भकारगर्त्तस्सैव च गङ्गणिका प्राग्भुज्यमानोत्तरेण वृहज्जाटली ।।
उत्तरपू–

४७. र्वेण व्यवहारिखासोकपुष्करिणी सैव शुष्ककौशिका चेति।। आज्ञाशता
प्रापयिता

४८. प्राप्तपञ्चमहाशब्द श्रीगोपाल[:]। सीमाप्रदाता चन्द्रपुरिनायक [:]
श्रीक्षिकुण्डः

४९. न्यायकरणिक जनार्दनस्वामी व्यवहारिहरदत्तकायस्थदुन्धुनाथप्रभृतयः

५०. शासइता लेखयिता च वसुवर्णभाण्डागाराधिकृतमहासामन्त
दिवाकरप्रभ [:]

५१. उत्खेटयिता दत्तकारपुर्ण्णो। सेक्यकार कालिया।
षष्टिम्बर्षसहस्र–

५२. णि स्वर्गे मोदति भूमिदः [।*]
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् [।।] [२५*]

५३. स्वदत्तां परदताम्वा यो हरेत् वसुन्धरां [।]
स विष्ठायां कृमिर्भू त्वा पितृभ सह पच्यते [।।] [२६*]

५४. शासनदाहादर्वागभिनवलिखितानि भिन्नरूपाणि [।*]
तेभ्यो अक्षराणि यस्मा–

५५. त्तस्मा[न्] नैतानि कूटानि ।। [२८*]

परवर्ती-गुप्त नरेशों के अभिलेख

१. आदित्यसेन का शाहपुर सूर्य प्रतिमा-लेख : वर्ष ६६
२. आदित्यसेन का तिथिविहीन अफसड़-शिलालेख
३-४. आदित्यसेन के दो तिथिविहीन मन्दारगिरि प्रस्तर-लेख
५. विष्णुगुप्त के काल का मंगराव पाषाण-लेख : वर्ष १७
६. विष्णुगुप्त का तिथिविहीन कौलेश्वरी-अभिलेख
७. द्वितीय जीवितगुप्त का तिथिविहीन देवबरनार्क-अभिलेख
८. (परवर्ती-गुप्त नरेश ?) जीवगुप्त का कटरा ताम्रपत्र-अभिलेख

२७

आदित्यसेन का शाहपुर सूर्य प्रतिमा-लेख

(हर्ष संवत्) वर्ष ६६ (=६७२-३ ई०)

लेख-परिचय—यह लेख १८७९-८० में जे० डी० एम० बेगलर को आधुनिक बिहार राज्य के पटना जिले के बिहार नगर से ६ मील दूर सकरी नदी के तट पर स्थित शाहपुर या शाहपुर-तैतरावां गाँव से प्राप्त एक सूर्य प्रतिमा की पीठिका पर अंकित है। यह प्रतिमा जो २′ १०″ ऊँची है, एक खेत से मिली थी। लेख १′ ४½″×४″ क्षेत्रफल में लिखा है। इसकी **भाषा** संस्कृत है और **लिपि** उत्तरी वर्ग की कुटिलाकार ब्राह्मी जो अफसड़-लेख की लिपि से सादृश्य रखती है। लेख पूर्णतः गद्य में है। **वर्तनी** की एक विशेषता 'वलाधिकृत' में 'ब' के स्थान पर 'व' का प्रयोग है। **तिथि** अंकों में लिखी है—वर्ष ६६, मार्ग अर्थात् मार्गशीर्ष माह के शुक्ल पक्ष का सातवां (?) दिन। लेकिन इसमें वर्ष संख्या कनिंघम ने ५५ पढ़ी थी और इन्द्रजी ने ८८। यह निश्चित-प्रायः है कि यह वर्ष हर्ष संवत् का है। लेख का सम्बन्ध सूर्योपासना से है और इसका **उद्देश्य** किसी दान का (इसकी सूचना पंक्ति १ में थी जिसका अधिकांश अब अपठ्य हो गया है) एवं बलाधिकृत सालपक्ष द्वारा स्पष्टतः नालन्दा अग्रहार में इस प्रतिमा की स्थापना का वर्णन करना है। लेख में नालन्दा का उल्लेख सन्दिग्ध है परन्तु इसकी सम्भावना सर्वथा स्वीकार्य है क्योंकि नालन्दा शाहपुर के पास ही है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ—फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २५७-६०; हीरानन्द शास्त्री, एम० ए० एस० आई, ६६, पृ० ८२-३; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १५७-८।

मूलपाठ

१. ·········ख·ल·ढ·ग···चन्द्रक्षिति कालं यावत्(प्र)तिपादितं (तम्) (।।*)
२. सिद्धम् (।।*)सम्व(संव) त् ६० (+*) ६ मार्ग्ग शु दि ७ (?) अस्यान्दिवसमाससम्व (संव) त्सरानुपूर्व्व्यां श्रीआदित्यसेन-
३. (देव)राज[ये] ना (?) लन्द (?) महाग्रहारे साध् (न्) ा व (ब) लाधिकृतसालपक्षेण दे (य*)धर्म्मो (ऽ*)यं प्रतिष्ठितं (तः)
४. (मातापित्रोरा)त्मनश्च पुण्याभिवृद्धये(।।*)

अनुवाद

पं० १:······तथा चन्द्रमा और पृथिवी की स्थिति तक दान दिया गया।

पं० २ : सिद्धम् ! वर्ष ६० (+) ६; (मास) मार्ग (शीर्ष) शुक्ल पक्ष; दिन ७ (?) उपर्युक्त उल्लिखित दिन, मास तथा वर्ष द्वारा (निर्दिष्ट) इस (चान्द्र दिवस) पर, श्री आदित्यसेनदेव के शासनकाल में बलाधिकृत पुण्यात्मा सालपक्ष द्वारा (अपने) माता-पिता तथा स्वयं के पुण्य की अभिवृद्धि के हेतु से यह धर्म दान नालन्दा के महा-अग्रहार में प्रतिष्ठित किया गया।

२८

आदित्यसेन का तिथिविहीन अफसड़-शिलालेख

लेख-परिचय—यह अभिलेख १८५० के कुछ पहिले मेजर मार्खम किट्टो को आधुनिक बिहार राज्य के गया जिले की नवादा तहसील में नवादा से लगभग पन्दरह मील दूर स्थित अफसड़ गांव से (जिसे जफरपुर भी कहते हैं) मिला था। यह एक पाषाण फलक पर उत्कीर्ण था जो अब तक खो चुका है। लेख का क्षेत्रफल २′ ९″×१′ ५३/४″ है। लेख कुछ क्षत हो गया है, परन्तु बहुत अधिक नहीं। इसकी **भाषा** संस्कृत है तथा **लिपि** सातवीं शती के उत्तरार्द्ध की कुटिल अक्षरों वाली उत्तर भारतीय ब्राह्मी। अक्षरों का आकार ५/१६″ से ७/१५″ तक है। लेख सम्पूर्णतः पद्य में है। प्रारम्भ में '**सिद्धम्**' सूचक प्रतीक बना है। इसमें कुल ३० श्लोक हैं जिनके **छन्द** इस प्रकार हैं : १, ५, १४, १६-१९, २०, २५-२६, २८-२९: शार्दूलविक्रीडित; २, ४, ६-६, १२, १५ : आर्या; ३, ८, २१, २४ : स्रग्धरा; ९-१०, १३, २३, २७, ३० : अनुष्टुभ्; ११, १८-१९, २२ : वसन्ततिलक।

यह लेख, जो **तिथिरहित** है, परवर्ती-गुप्त वंशीय नरेश आदित्यसेन का है। इसका **उद्देश्य** आदित्यसेन द्वारा भगवान् विष्णु का मन्दिर बनवाये जाने का उल्लेख करना है। इसके अतिरिक्त यह उसकी माता के द्वारा, जिसका नाम श्रीमती था, एक धार्मिक विद्यालय या विहार के बनवाये जाने तथा पत्नी कोणदेवी द्वारा एक तालाब के उत्खनन करवाये जाने का वर्णन करता है। इसका महत्त्व विशेषतः इसमें परवर्ती-गुप्त वंश के राजाओं का आदित्यसेन तक का इतिहास मिलने के कारण है (दे०, पूर्वपीठिका 'अ', पृ०१२ अ०)। वस्तुतः छठी शती ई० में परवर्ती-गुप्त वंश का इतिहास मात्र इसी लेख से ज्ञात होता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ—फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २४७ अ०; थपल्याल, के० के, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १६० अ०; पाण्डेय, आर० बी०, हि० लि० इ०, १९६२, पृ० १४९-५३; महेश्वरी प्रसाद, भारती, वाराणसी, ५, भाग १, पृ० ६२ अ०।

मूलपाठ

१. सिद्धम् [।।*]

आसीद्दन्तिसहस्रगाढकटको विद्याधराध्यासितः

सद्वंशः स्थिर उन्नतो गिरिरिव श्रीकृष्णगुप्तो नृपः।

दृप्ताराातिमदान्धवारणघटाकुम्भस्थलीः क्षुन्दता

यस्यासंख्य रिपुप्रतापजयिना दोष्णा मृगेन्द्रायितं(तम्) ।। [१।।*]

सकलः कलङ्करहितः

२. क्षततिमिरस्तोयधेः शशाङ्क इव।

तस्मादुदपादि सुतो देवः श्रीहर्षगुप्त इति ।। [२।।*]

यो योग्याकालहेलावनतदृढधनुर्भीमबाणौघपाती

भूर्व]तैः] स्वस्वामिलक्ष्मीवसति विमुखितैरीक्षितः सास्रुपातं (तम्) ।
घोराणामा-

३. हवानां लिखितमिव जयं श्लाघ्यमाविर्द्दधानो
वक्षस्युद्दामशस्त्र-व्रण-कठिनकिणग्रन्थिलेखाच्छलेन ॥ [३॥*]
श्रीजीवितगुप्तो[ऽ*]भूत्क्षितीशचूड़ामणिः सुतस्तस्य ।
यो दृप्तवैरिनारीमुखनलिनवनैकशे(शि) शे (शि) रकरः ॥ [४॥*]

४. मुक्तामुक्तपयः प्रवाहशिशिरासूत्तुङ्गतालीवन-
भ्राम्यद्दन्तिकरावलूनकदलीकाण्डासु वेलास्वपि ।
श्च्योतत्स्फारतुषारनिर्झरपयः शीते[ऽ*]पि शैलेस्थिता-
न्यस्योच्चैर्द्विषतो मुमोच

५. न महाघोरः प्रतापज्वरः ॥ [५॥*]
यस्यातिमानुषं कर्म्म दृश्यते विस्मयाज्जनौघेन ।
अद्यापि कोशवर्द्धनतटा [त्प्लु] तं पवनजस्येव ॥[६॥*[
प्रख्यातशक्तिमाजिषु पुरःसरं श्री कुमा-

६. रगुप्तमिति ।
अजनयदेकं स नृपो हर इव शिखिवाहनं तनयं(यम्) ॥[७॥*]
उत्सर्प्पद्वातहेलाचलितकदलिकावीचिमालावितानः
प्रोद्यद्धूलीजलौघभ्रमितगुरुमहामत्त

७. मातंगशैलः ।
भीमः श्रीशानवर्म्मक्षितिपतिशशिनः सैन्यदुग्धोदसिन्धु-
र्ल्लक्ष्मीसंप्राप्तिहेतुः सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन ॥[८ ॥*]
शौर्यसत्यव्रतधरो यः प्रयागगतो ध-

८. ने ।
अम्भसीव करीषाग्नौ मग्नः स पुष्पपूजितः ॥[९॥*]
श्रीदामोदरगुप्तो [ऽ*] भूत्तनयस्तस्य भूपतेः ।
येन दामोदरेणेव दैत्या इव हता द्विषः ॥[१०॥*]
यो मौखरेः समितिषूद्ध-

९. तहूणसैन्या-
वल्गद्घटा विघटयन्नुरुवारणानां (नाम्) ।
संमूर्च्छितः सुरवधु(धू)र्वरयं (यन्) ममेति
तत्पा [ि]णपङ्कजसुखस्पर्शाद्विबु(बु)द्धः ॥[११॥*]
गुणवद्वि(द्वि)जकन्याना[ं]नानालंकारयौवन-

१०. वतीनां ।
परिणायितवान्स नृपः शतं निसृष्टाग्रहाराणां(णाम्) ॥ [१२॥*]
श्र[ी]महासेनगुप्तो[ऽ*]भूत्तस्माद्वीराग्रणी [:]सुतः ।
सर्व्ववीरसमाजेषु लेभे यो धुरि वीरता[ं] (ताम्) [॥१३॥*]
श्र[ी]मत्सुस्थितवर्म्मयुद्धविजय

११. श्लाघापदाङ्क मुहु-
र्यस्याद्यापि विवु(बु)द्धकुन्दकुमुदक्षुण्णाच्छहार[⌣]त[ं](तम्) ।
लौहित्यस्य तट[े]षु श[ी]तलतल[े]षूत्फ[ु]ल[ल]नागद्र[ु]म
च्छायासुप्तविवु(बु)द्ध[ि]सद्ध[ि]मथुन[ै]: स्फ[ी]तं यशो गीयते ।।[१४।।*]
वसुदेवा-

१२. दिव तस्माच्छ्रीस[े]वन[शो]भ[ो]दितचरणयुगः[।*]
श्री माधवगुप्तो[ऽ*]भून्माधव इव विक्रमैकरस[:][।।१५।।*]
[---⌣अ]नुस्म[ृ]तो धुरि रण[े]श्लाघावतामग्रण[ी]:
सो(सौ)जन्यस्य निधानमर्थनिध(च)-

१३. म त्यागो[द्*]धुराणां धर[:] ।
लक्ष्म[ी]स[त्यस]रस्वतीकुलगृह[ं]धर्मस्य सेतुर्दृढः
पूज्यो(?)ना[ि]स्त स भ[ू]तल[े]⌣⌣⌣---⌣-सद्गुण[ै:]।।]१६।।*]
चक्र[ं]पाणितलेन सो[ऽ*]प्युदवहत्तस्यापि शार्ङ्ग[ं]धनु-

१४. र्नाशायासुहृदा[ं] सुखाय सुहृदां तस्याप्यसिर्नन्दकः ।
प्राप्ते विद्विषतां वधे प्रतिहत[ं]तेनापि[--⌣-
---⌣⌣-⌣-ढ(?)रि(?)म(?)[--]न्याः प्रणेमुर्ज्जनाः ।।[१७।।*]
आजौ मया विनिहता व(ब)-

१५. लिनो द्विषनि[तः]
कृत्य[ं]न म[े*][ऽ*]स्त्यपरमित्यवधार्य वीरः[।]
श्रीहर्षदेवनिजस[ं]गमवाञ्छया च(?)
[--⌣-⌣⌣⌣-⌣⌣⌣-⌣--] [।।१८।।*]
श्र[ी]मान्व(न्ब)भूव दलितारिकरीन्द्रकुम्भ
मुक्तारजः

१६. पटलपांमुलमण्डलाग्रः ।
आदित्यसेन इति तत्तनयः क्षितीश-
चूडाम[ि]णर्द्द[⌣⌣-⌣⌣⌣-⌣--] [।।१९।।*]
[---⌣⌣-⌣]मागतमरिध्वंसोत्थमाप्तं यशः
श्लाघ्यं

१७. सर्व्वधनुष्मतां पुर इति श्लाघं[।]परां वि[बि]भ्रती ।
आशीर्व्वादपरंपरा चिरसक्(?)द्[--⌣--⌣-
---⌣⌣-⌣-⌣⌣⌣---⌣] यामासम(?)।।[२०।।*]
आजौ स्वेदच्छलेन ध्व-

१८. जपटशिखया मार्ज्जतो दानपङ्क
खड्गं क्षुण्णेन मुक्ताशकलसिकतिल[ी?]कृत्य[--⌣--
----⌣--⌣⌣⌣⌣⌣⌣⌣- मत[त]मातंगघातं
तद्गन्धाकृष्टसर्प्पद्व(द्ब)

१९. हलपरिमलभ्रात्त(न्त)मत्तालिजालं(लम्)॥[२१॥*]

आव(ब)द्धभीमविकटभ्रुकुटी कठोर-

स[ं]ग्रा[म][-⏑⏑⏑-⏑⏑-⏑-- ।]

[--⏑-⏑⏑] व वल्लभभृत्य वर्ग्ग

गोष्ठीषु पेश-

२०. लतया परिहासशीलः ॥[२२॥*]

सत्यमत्तृव्रता यस्य मुखोपध[ा]नतापसी ।

प[ि]रहास [-⏑-------⏑-⏑-][॥२३॥*]

[----⏑-]ज्ञः सकलरिपुव(ब)लध्वंसहेत्तु(तु)र्ग्गरी-

२१. या-

न्निस्त्रिंशोत्खातघातश्रमजनितजडो[ऽ*]प्यूर्ज्जितस्वप्रताप. ।

युद्धे मत्तेभकुम्भस्थ [ल⏑⏑⏑⏑--⏑--⏑--]

[--]श्वेतात्पत्त्रस्थगित वसुमतीमण्डलो लो-

२२. कपालः ॥[२४॥*]

आजौ मत्तगजेन्द्रकुम्भदलनस्फीतस्फुरद्दोर्युगो-

ध्वस्ताने(?)क रिपुप्रभाव व[⏑⏑--]यशोमण्डलः ।

न्यस्ताशेषनरेन्द्रमौलिचरणस्फारप्रतापान-

२३. लो

लक्ष्मीवान्समराभिमानविमलप्रख्यातकीर्त्तिर्नृपः ॥[२५॥*]

येनेयं शरदिन्दुविम्वधवला प्रख्यातभूमण्डला

लक्ष्मी संगमकांक्षया सुमहती कीर्त्तिश्चिरं कोपिता ।

याता सा-

२४. गरपारमद्भु त्तमा सापत्न्यवैरादहो

तेनेदं भवनोत्तमं क्षितिभुजा विष्णोः कृते कारितं (तम्) ॥[२६॥*]

तज्जनन्या महादेव्या श्रीमत्या कारितो मठः ।

धार्मिकेभ्यः स्वयं दत्तः सुरलो-

२५. कगृहोपमः ॥[२७॥*]

शंखेन्दुस्फटिकप्रभाप्रतिसमस्फारस्फुरच्छीकरं

नक्रक्रान्तिचलत्तरङ्गविलसत्पक्षिप्रनृत्यत्तिमि ।

राज्ञ्या खानितमद्भु तं सुतपसा पेपीयमानं

२६. जनै-

स्तस्यैव प्रियभार्यया नरपतेः श्रीकोणदेव्या सरः ॥[२८॥*]

यावच्चन्द्रकला हरस्य शिरसि श्री शार्ङ्गिनो वक्षसि

व्र(ब्र)ह्मास्ये च सरस्वती कृत-

२७. [⏑---⏑--⏑-] ।

[भोगे]भूर्भुजगाधिपस्य च तद्धियावद्धनस्योदरे

तावत्कीर्त्तिमिहातनोति धवलामादित्यसेनो नृपः ॥[२९॥*]

सूक्ष्मशिवेन गौडेन प्रशस्तिर्व्विकटाक्षरा ॥(।)

२८. [- - -]मा(?)मिता सम्यग्धार्म्मिकेण सुधीमता ॥[३०॥*]

अनुवाद

श्लोक १ ! सिद्धम् : श्री कृष्णगुप्त नाम के एक राजा हुए जो उत्तुंग एवं स्थिर पर्वत के सदृश थे क्योंकि (उनके) नगर पर्वत की ढलानों के समान सहस्रों हाथियों के झुण्ड से भरे रहते थे (और) जैसे पर्वत विद्याधरों से सेवित एवं अच्छे वंश (=बांसों) से शोभित होता है वैसे ही वह भी विद्वानों द्वारा सेवित एवं सद्वंश युक्त थे। वह पर्वत के सदृश दृढ़ (तथा) उन्नत भी थे (तथा) (अपने) गर्वीले शत्रुओं के मत्त हाथियों के समूहों के कुम्भस्थलों को आहत करने में (एवं) (अपने) बल से असंख्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में उनकी भुजा सिंह की भूमिका का निर्वहन करती थी।

श्लोक २ : जिस प्रकार समुद्र से तिमिरविनाशक निष्कलंक पूर्णचन्द्र उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार उस (राजा) से देवश्री हर्षगुप्त नामक पुत्र हुआ।

श्लोक ३ : जो (अर्थात् वह हर्षगुप्त) उचित समय पर सरलतापूर्वक अवनत किये हुए (अपने) दृढ़ धनुष से घोर बाण-वर्षा करता था; जिसे पति के रूप में वरणकर साक्षात् लक्ष्मी उसके साथ रहती थी; जो लक्ष्मी के वासस्थान से पराङ्मुख एवं विमूढ़ (शत्रुओं) द्वारा अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा जाता था; जिसके वक्षस्थल पर अनेक शस्त्रों के घावों से बने ग्रन्थि-समूहों की पंक्तियों के रूप में भयंकर युद्धों में भाग लेने से प्राप्त श्लाघ्य यश-सा लिखा प्रतीत होता था।

श्लोक ४ : उसका पुत्र क्षितीश चूड़ामणि श्री जीवितगुप्त हुआ जो (अपने) गर्वीले शत्रुओं की पत्नियों के मुखरूपी कमलों के लिए अत्यन्त शीतल किरणों वाले (चन्द्रमा) के समान था।

श्लोक ५ : (उसके) अभिमानी शत्रुओं को उसके प्रताप के (भय का) भयंकर तीव्र ज्वर नहीं छोड़ता था चाहे वे स्वच्छन्द जल के प्रवाह से शीतल हुए तथा उन्नत ताल वृक्षों के बीच विचरण करते हुए हाथियों द्वारा तोड़ी गई कदली वृक्षों की शाखाओं से आवृत्त समुद्रतटों पर रहते थे (अथवा) हिमयुक्त, तीव्र बहती हुई एवं लहरों वाली जलधाराओं से शीतल पर्वत (=हिमालय) पर निवास करते थे।

श्लोक ६ : जिसके अतिमानवीय कर्म आज भी मनुष्य जाति द्वारा कोशवर्धन (पर्वत) के तट से पवनपुत्र के द्वारा लगाई गई छलांग के समान विस्मय से देखे जाते हैं।

श्लोक ७ : जिस प्रकार (भगवान्) हर (=शिव) को शिखिवाहन कार्त्तिकेय उत्पन्न हुए थे, उसी प्रकार उस राजा को प्रसिद्ध शक्तिवाला, युद्धाग्रणी श्री कुमारगुप्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

श्लोक ८ : जिस (कुमारगुप्त) ने राजाओं में चन्द्रमा के समान श्री ईशानवर्मा की सेना रूपी दुग्ध-समुद्र को, जो लक्ष्मी (=राज्यलक्ष्मी) सम्प्राप्ति का हेतु थी (और) (जिसके प्रयाण से उत्पन्न) गर्जन करती हुई पवन द्वारा आगे-पीछे चलायमान होते हुए कदली वृक्ष जिसकी बढ़ती हुई उर्मिमाला के समान थे (तथा) (सैनिकों द्वारा उद्वेलित) उठती धूलि रूपी जल-समूह द्वारा भ्रमित (शत्रुओं के) विशालकाय तथा शक्तिशाली मदमत्त गजराज जिसकी शिलाओं के समान थे, शीघ्रतापूर्वक उसी प्रकार मथ दिया जैसे क्षीरसागर मन्दर पर्वत द्वारा मथ दिया गया था।

श्लोक ९ : धन (का स्वामित्व) होने पर (भी) शौर्य संपन्न तथा सत्यव्रत वह (कुमारगुप्त) प्रयाग गया (तथा वहाँ) पुष्पों से अलंकृत होकर मानों जल में (केवल स्नान करने के लिए गोता लगा रहा हो ऐसे) करीषाग्नि (=गोबर के उपलों से जलाई गई अग्नि) में प्रविष्ट हो गया।

श्लोक १० : उस भूपति का पुत्र श्री दामोदरगुप्त था जिसके द्वारा (उसके) शत्रु उसी प्रकार मारे गये जैसे (भगवान्) दामोदर द्वारा दैत्य मारे गये थे।

श्लोक ११ : जो (अर्थात् दामोदरगुप्त) युद्ध में मौखरि (नरेश) के, हूणों की सेनाओं को ऊपर फेंकने वाले आगे बढ़ते मदमत्त हुए शक्तिमान हाथियों की घटा का विघटन करते हुए मूर्च्छित हो गया (अर्थात् मृत्यु को प्राप्त

हुआ); (तथा पुन: स्वर्ग में जागकर तथा) "(अमुक अथवा अमुक) मेरी है," यह कहते हुए सुरवधुओं के बीच चयन करते हुए उनके पाणिपंकजों के सुखद् स्पर्श द्वारा चेतन हुआ।

श्लोक १२ : उस नृप ने गुणवान् ब्राह्मणों की आभूषणों से अलंकृत सैकड़ों युवती कन्याओं का विवाह करवाया (तथा) उन्हें अग्रहारों का दान दिया।

श्लोक १३ : उनसे वीराग्रणी पुत्र श्री महासेनगुप्त उत्पन्न हुआ जिसने सर्ववीर समाज में उच्चतम श्रेणी की वीरता (की ख्याति) अर्जित की।

श्लोक १४ : श्री सुस्थितवर्मा के ऊपर प्राप्त श्लाघ्य विजय से चिहि्नत, (तथा) पूर्ण प्रस्फुटित कमल अथवा कुन्दपुष्प के समान (धवल वर्ण वाला) जिसका महान् यश पूर्ण विकसित पान में पादपों की छाया में सोकर उठे सिद्ध-मिथुनों द्वारा आज भी शीतल तल वाले लौहित्य (नदी) के तटों पर गाया जाता है।

श्लोक १५ : जिस प्रकार वसुदेव से श्री (लक्ष्मी) की सेवा से सुशोभित चरणों वाले (भगवान्) माधव (उत्पन्न हुये थे), उसी प्रकार उनसे (अर्थात् महासेनगुप्त से) एक मात्र पराक्रम में ही रस लेने वाला श्री माधवगुप्त (पुत्र रूप मे) उत्पन्न हुआ।

श्लोक १६ : वह (अर्थात् माधवगुप्त) ·····की प्रथम श्रेणी में अनुस्मृत, रण में यश-लाभ करने वालों में अग्रणी, सौजन्य का निधान, धन के संग्रह तथा दान में उत्कृष्ट लोगों में श्रेष्ठ, लक्ष्मी, सत्य तथा सरस्वती का कुलगृह एवं धर्म का दृढ़ सेतु था। पृथ्वी पर ऐसा कोई भी नहीं है········जो सद्‌गुणों से युक्त जनों द्वारा (इतना) पूजनीय हो (जितना कि वह था)।

श्लोक १७ : (भगवान्) के समान वह भी (अपने) पाणितल (हाथ की हथेली) पर चक्र का वहन करता था; उसके पास भी (अपने) शत्रुओं के विनाश के लिये (तथा) अपने मित्रों की प्रसन्नता के लिये (प्रयुक्त होने वाला) शार्ङ्ग (सींग निर्मित धनुष) तथा नन्दक तलवार थी; (तथा) (अपने) शत्रुओं का हनन संपन्न हो चुकने पर उनके द्वारा······हटाया गया; लोगों ने प्रणमन किया ·····।

श्लोक १८ : "(मेरे) बलवान शत्रुओं का युद्ध में मेरे द्वारा संहार हो चुका है, मेरे लिये और कुछ भी करना शेष नहीं है"—उस वीर ने मन में ऐसा निश्चय किया (और पुन:) श्री हर्षदेव से अपना सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा से ······।

श्लोक १९ : उनका (अर्थात् माधवगुप्त) का पुत्र क्षितीश चूड़ामणि श्री आदित्यसेन है, जिसका मण्डलाग्र (उसके द्वारा) दलित शत्रुओं के श्रेष्ठ हाथियों के कुम्भस्थलों से प्राप्त होने वाली मुक्ताओं रूपी धूलि के मोटे लेप से मलिन रहता है।

श्लोक २० : वह उत्कृष्टतम प्रसिद्धि का पात्र है।······से प्राप्त (तथा) (अपने) शत्रुओं के विनाश से उत्पन्न उसकी श्रेष्ठ प्रशंसा सभी धनुर्धरों के सम्मुख श्लाघ्य है। आशीर्वाद की एक अनवरत श्रृंखला······।

श्लोक २१ : युद्ध में पसीना (पोंछने) के बहाने (प्रयुक्त होने वाली) अपनी ध्वजा के रेशमी वस्त्र के किनारे से (अपने द्वारा मारे गये) हाथियों के मद पंक से सनी हुई (तथा) (उनके कुम्भ स्थलों से निकली हुई) मुक्ताकणों रूपी रेत से बालुकामयी हुई तलवार को मार्जित करते हुये······जो खण्ड-खण्ड टूट गया था······मदमत्त हाथियों के वध की प्रक्रिया में प्रभूत मात्रा में बहते हुये सुगन्धिपूर्ण मद से विभ्रान्त अलिसमूह सुगन्धि से आकृष्ट होते थे······।

श्लोक २२ : युद्ध क्षेत्र में भयंकर, विकट एवं कठोर भृकुटि से (अपने) प्रियजनों तथा अनुचरों के समाज में रुचिर प्रकार से हंसने वाला है।

श्लोक २३ : (अपने) स्वामी के प्रति सत्यरूपेण पतिव्रता (अपने) मुख (?) के उत्कृष्ट गुणों से तापसी, ह्रास······जिसकी पत्नी······।

श्लोक २४ : जो (अपने) सभी शत्रुओं के विनाश का कारण था (तथा) (अपनी) तलवार को (इसके कोश से) खींचने तथा (इससे) प्रहार (करने) की मेहनत से थकित होने पर भी प्रबल प्रताप का स्वामी······। युद्ध में उन्मत्त गजों के कुम्भस्थलों,······वे सत्य ही विश्व के संरक्षक हैं जिनके शुभ क्षत्र से सम्पूर्ण वसुन्धरा आवृत है।

श्लोक २५ : युद्ध में मत गजेन्द्रों के कुम्भस्थलों के विदारण से उस नृपति की दोनों प्रकाशमान भुजायें परिपुष्ट हैं; वह बहुसंख्यक शत्रुओं की शक्ति के विनाश द्वारा (अधिगत) यश मण्डल से सम्पन्न हैं; (उसके) चरण की प्रबल प्रताप रूपी अनल (अन्य) नरेन्द्रों के मस्तकों की चूड़ाओं से न्यस्त है; वह श्री सम्पन्न है (तथा) वह युद्ध में सम्मानपूर्ण व्यवहार द्वारा (अधिगत) विमल प्रख्यात कीर्त्ति से युक्त हैं।

श्लोक २६ : उस नरेश के द्वारा विष्णु का यह सर्वोत्कृष्ट मन्दिर निर्मित करवाया गया है जिसके द्वारा शरद चन्द्र के मण्डल के सदृश धवल (तथा) (समस्त) भूमण्डल में प्रख्यात यह सुकीर्त्ति उसके लक्ष्मी के साथ सहवास की इच्छा के कारण, दीर्घकाल तक कुपित हो गई और फिर, और भी विलक्षण होती हुई, मानों सापत्न्य-द्वेष के कारण (दूर रहने के उद्देश्य से) सागर-पार चली गई।

श्लोक २७ : उनकी माता महादेवी श्रीमती द्वारा सुरलोक के वर के सदृश यह मठ बनवाया गया (तथा) स्वयं उनके द्वारा धार्मिक जनों को दिया गया।

श्लोक २८ : उन्हीं नरेश की प्रिय भार्या श्री कोणदेवी द्वारा उत्कृष्ट तपस्या के सम्पादन में एक अद्भुत सरोवर खुदवाया गया है जिसका जल—जो शंख, चन्द्रमा अथवा स्फटिक की प्रभा के समान चंचल तथा चमकीली प्रभावाला है, जिसमें मकर की गति से आगे-पीछे होने वाली तरंगों में पक्षी क्रीड़ा करते हैं तथा बड़ी मछलियाँ नर्तन करती हैं—लोग अभिरुचि के साथ पीते हैं।

श्लोक २९ : जब तक चन्द्रकला (भगवान्) हर (=शिव) के मस्तक पर (सुशोभित है) (तथा) लक्ष्मी विष्णु के वक्ष स्थल पर (तथा) सरस्वती ब्रह्मा के मुख में······जब तक वसुन्धरा नागराज (शेष) के फण पर (स्थिर है) तथा जब तक मेघ के उदर में विद्युत् विद्यमान है—तब तक नृप आदित्यसेन (इन कार्यों में) (अपनी) धवल कीर्त्ति प्रकाशित करते रहेंगे।

श्लोक ३० : विकट अक्षरों (में लिखी गई) (यह) प्रशस्ति······धर्मनिष्ठ (तथा) बुद्धिमान, गौड (देशवासी) सूक्ष्मशिव द्वारा लिखी गई (अथवा उत्कीर्ण की गई) है।

२९-३०

आदित्यसेन के दो तिथिविहीन मन्दारगिरि प्रस्तर-लेख

लेख-परिचय—ये दो लेख आधुनिक बिहार राज्य के भागलपुर जिले की बांका तहसील में बांका से सात मील दक्षिण-पूर्व की ओर स्थित मन्दार या **मन्दारगिरि** नाम से पुकारी जाने वाली पहाड़ी पर स्थित एक तालाब में लगे पत्थरों पर उत्कीर्ण मिले हैं। दोनों लेख समान हैं, सिवाय इसके कि प्रथम में चार पंक्तियाँ हैं और दूसरे में केवल दो। दोनों की **भाषा संस्कृत** है और **लिपि** अफसड़-लेख जैसी। दोनों लेख **तिथिविहीन** हैं और दोनों का **उद्देश्य** आदित्यसेन की रानी कोणदेवी द्वारा एक तालाब बनवाये जाने का उल्लेख करना है। इनका **महत्त्व** विशेषत: इस तथ्य में है कि इनमें आदित्यसेन को 'परमभट्टारक महाराजाधिराज' कहा गया है। क्योंकि ये उपाधियां उसके अफसड़ व शाहपुर-लेखों में प्रयुक्त नहीं हैं इसलिये इन्हें उन दोनों लेखों से बाद का माना जा सकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ—फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २६१-३; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १६७।

मूलपाठ

[१]

१. सिद्धम् [।।*] परमभट्टारकमह [ा]र[ा]जा[ि]धर[ा]ज-
२. श्रीआदित्यसेनदेवदयित [ा] परम-
३. भट्टारिक [ा]र[ा] ज्ञी] मह[ा]द[े]व[ी]श्री[को]णद[े]व[ी]
४. पुष्करिणीकीर्त्तिमिम[ा]ङ्क[ा] [ि]रतव[ती][।।*]

(२)

१. सिद्धम् (।।*)परमभट्टारकमह(ा)र[ा)ज(ा)धिराजश्री आदित्यसेनदेव द(ि)यता
२. परमभट्टारिक [ा [र] ा [ज्ञीमहाद[े]वीश्रीक [े]वी पुष्करिणीकीर्त्तिमि-
म[ा]ङ्कारितवती [।।*[

अनुवाद

सिद्धम्! परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री आदित्यसेन की प्रिय पत्नी परमभट्टारिक राज्ञी महादेवी श्री कोणदेवी ने सरोवर की इस कीर्त्ति (=यशदायक कार्य) को सम्पन्न कराया।

३१

विष्णुगुप्त के काल का मंगराव पाषाण-लेख

(शासन) वर्ष १७

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य के शाहाबाद जिले का मंगराव स्थल ।

भाषा : संस्कृत । एक श्लोक छोड़कर शेष भाग गद्य में ।

लिपि : उत्तरी वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी ।

छन्द : श्लोक १ : अनुष्टुभ् ।

महत्त्व : इसमें विष्णुगुप्त का उल्लेख 'महाराजाधिराज परमेश्वर' रूप में है और उसके शासन काल का वर्ष दिया गया है, न कि हर्ष संवत् का ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : अल्तेकर, ए० एस०, इ० आई०, २६, पृ० २४१-४६; बनर्जी, पी०, जे० बी० आर० एस०, ३०, १९४४, पृ० १९९-२०२; थपल्याल, के० के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १६८-९ ।

मूलपाठ

१. सिद्धम् [।।*] महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविष्णुगुप्तदेव प्रवर्द्धमानविजयराज्य-

२. सम्व (संव)त्सरे सप्तदशे सम्व (संव) त् १०(+ *)७ श्रावण शुदि २ चुन्दस्कीलातपोवन-

३. प्रतिष्ठितश्रीभित्रकेशवदेवप्रतिव (ब) द्धपुष्पपट्टे स्वसिद्धान्ताभिरत् अने-

४. कशिवसिद्धायतनतीर्थावगाह्य पवित्रीकृततनुः कुटुक्कदेशी-

५. य अविमुक्तज्जः अङ्गारग्रामके सकलकुटुम्वि(म्बि) नां सकाशादाचन्द्रा-

६. र्कक्षितिसमकालीनं तैलस्य पलमेकमुपक्रीय भगवतः

७. श्रीसुभद्रेश्वरदेवस्य प्रदीपार्थं प्रतिपादितवान् ।। एवं यो [ऽ*]न्यथा

८. करोति यदत्त्रापयंस्तनदवाप्नोतीति ।।

लिखिना देवदत्तेन

९. संक्षिप्ता क्रयचीरिका ।

उत्कीर्णा सूत्रधारेण कुलादित्येन धीमता ।। (१।।*)

३२

विष्णुगुप्त का तिथिविहीन कौलेश्वरी-अभिलेख

प्राप्तिस्थल : बिहार राज्य के हज़ारीबाग जिले की कौलेश्वरी पहाड़ी।

भाषा : संस्कृत। सम्पूर्णतः गद्य में।

लिपि : सातवीं शती के अन्त या आठवीं शती के प्रारम्भ की उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी।

महत्त्व : यह बिहार के हज़ारीबाग जिले से प्राप्त होने वाला प्रथम परवर्ती-गुप्त लेख है और विष्णुगुप्त का कुल मिलाकर दूसरा। कौलेश्वरी पहाड़ी पर, जहां से यह लेख मिला है प्राचीन कलाकृतियां खूब मिलती हैं। इस लेख से उनकी तिथि निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, दि० च०, इ० आई०, ३०, पृ० ८४ अ०; थपल्याल, के०के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १७०।

मूलपाठ

१. सिद्धम् ! [।*] परमभट्टारकमहारा (जाधिराज) परमेश्वर श्रीविष्णुगु········
२. व्ये पोयराजस [त्र] (त्रम्) [।।*]

अनुवाद

१. सिद्धम् ! परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णुगु·········
२. पोयराज का सत्र ·····।

३३

द्वितीय जीवितगुप्त का तिथिविहीन देवबरनार्क-अभिलेख

अभिलेख-परिचय—यह अभिलेख बिहार राज्य के शाहाबाद जिले के आरा नगर से पच्चीस मील दक्षिण-पश्चिम की ओर स्थित **देवबरनार्क गांव** से मिला था। यह ग्राम निश्चय ही इस लेख में उल्लिखित वारुणिका स्थल से अभिन्न है। यह एक मन्दिर के प्रवेश-मण्डल के एक स्तम्भ के दो पक्षों पर लिखा हुआ है। लेख २″ ३३⁄४′×१′४″ क्षेत्रफल में लिखा है और ऋतु प्रभाव से काफी क्षतिग्रस्त है। इसकी **भाषा** संस्कृत है और **लिपि** आठवीं शती ई० के प्रारम्भ की उत्तर भारतीय वर्ग की ब्राह्मी। लेख का **उद्देश्य** वरुणवासी नाम से ज्ञात सूर्य के लिये वारुणिका नामक ग्राम के दान की निरन्तरता का लेखन है। फ्लीट को शक था कि इसकी दसवीं पंक्ति में 'किशोरवाटक' नामक ग्राम का उल्लेख है और वह यह निश्चित नहीं कर पाए थे कि जीवितगुप्त ने जिस ग्राम के दान का पुनः अनुमोदन किया था वह किशोर-वाटक था या वारुणिका। लेकिन कीलहॉर्न, सरकार और उनका समर्थन करते हुए बी० पी० सिनहा ने माना है कि लेख में किशोरवाटक ग्राम का उल्लेख है ही नहीं। उन्होंने उन अक्षरों को जिनके संदिग्ध पाठ के आधार पर फ्लीट ने 'किशोरवाटक' ग्राम का उल्लेख माना था 'किशोरवडवागोमहिष्याधिकृत' पदनाम के अक्षर माने हैं। देवबरनार्क-लेख "शक्ति के तीनों घटकों द्वारा अधिगत विजयनाद से युक्त तथा अपने जलपोतों, हाथियों, अश्वों एवं पदातियों से युक्त होने के कारण अजेय (तथा) गोमतिकोट्टक दुर्ग के निकट स्थित जयस्कन्धावार" से जारी किया गया था। सिनहा के अनुसार इससे जीवितगुप्त का बनारस के पश्चिम में गोमती तक अधिकार प्रमाणित होता है। वहां उसके स्कन्धावार की स्थापना से लगता है कि वह उस समय किसी शत्रु के विरुद्ध लड़ने के लिए निकला हुआ था। लेख **तिथिविहीन** है और इसका महत्त्व विशेषतः इसमें परवर्ती-गुप्त वंश की माधवगुप्त से लेकर (जिसके नाम के प्रथम तीन अक्षर क्षत हो गये हैं पर अनायास नियोजित किये जा सकते है) द्वितीय जीवितगुप्त तक पूरी वंशावली मिलने के कारण है। दूसरे, यह उन कुछ प्राचीन राजाओं के नाम देता है जिन्होंने इसमें उल्लिखित दान का अनुमोदन किया था। ये राजा हैं परमेश्वर बालादित्य (जो स्पष्टतः गुप्त सम्राट् नरसिंहगुप्त बालादित्य माना जाना चाहिये) तथा परमेश्वर शर्ववर्मा और परमेश्वर अवन्तिवर्मा (जो निश्चय ही इस नाम के मौखरि सम्राट् थे)। इसमें बहुत से ऐसे पदाधिकारियों के नाम भी आये हैं जो अन्य लेखों में कम मिलते हैं या नहीं मिलते।

सन्दर्भ-ग्रन्थ—फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २६५ अ०; कनिंघम, ए० एस० आर०, १६, पृ० ६८ तथा ७३ अ०; मजूमदार, आर० सी०, आई० सी०, ११ (१९४४-५), पृ० १२३ अ०; सरकार, जे० आर० ए० एस० बी०, एल०, ११, पृ० ६९ अ०; थपल्याल, के०के०, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज, लेटर गुप्तज, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १७१; पाण्डेय, हि० लि० इ०, पृ० १५३-५।

मूलपाठ

१.········[न]मः[।।*] स्वस्ति शक्तित्रयोपात्तजयशब्दान्महानौहा (ह) स्त्यश्वपत्तिसम्भार

दुर्निवाराज्जयस्कन्धावारात् गोमतिकोट्टकसमीपवास-

२. [कात्]········ [श्रीमाधव]गुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः परभमट्टारिकायां राज्ञां महादेव्यां श्रीश्रीमत्यामुत्पन्नः परमभागवतः श्रीआदित्य [से]-

३. [नदेवस्तस्य]पु[त्र]स्तत्पादानुध्यातः परमभट्टारिकायां राज्ञ्यां महादेव्यां श्रीकोण द[े]व्यामुत्पन्नः परममाहेश्वरपरमभट्टारकमहार[ा]ज[ा]-

४. [धिराजपरमेश्वर]श्रीद[े]वगुप्तद[े] वस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः परमभट्टारिकाया[ं*]राज्ञ्या[ं*]महादेव्या[ं*]श्रीकमलदेव्यामुत्पन्नः परममाहे-

५. [श्वरपरमभट्टारकम]हाराजा[धि]राजपरमेश्वरश्रीविष्णुगुप्तदेवस्तस्यपुत्रस्तत्पादा-नुध्यातः परमभट्टारिकाया[ं*] राज्ञ्या[ं*]महादेव्या[ं*]श्रीइज्जादे[व्या]-

६. [मुत्पन्नः परम······परम] भट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीजीवितगुप्तदेव[ः*] कुशली नगरभ[ु]क्तौ वालवीवैषयिकश्रीवा (?वो)···

७. ············पद्र (?) लिक्ष(?)न्तष्पातिव[ा*]रुणिकाग्रामगोष्ठ [ा]न(?)कुलतला-वाटकदूतसीमकर्मकरमद्या (?)

८. ······[समुपागतान्सर्व्वानेव*][राजराजा]नकराजपुत्रराजामत्र (मात्य) महा [कार्त्ता*] कृतिकमहादण्डनायकमहाप्रतीहारमहासा-

९. [मन्तमहादौःसाधसाधनिक*] प्रमातृसर[मङ्ग*]कुमारामात्यराजस्थानीयोपरिक··· ···[दाशापरा*]धिकचौरोद्धरणिकदाण्डिकद[ा*]ण्ड-

१०. [पाशिक*]·········[तदायुक्तकविनियुक्त*]क[हस्त्यश्वो]ष्ट्रबलव्यापृत[क*]किशोर-वडवागोमहि[ष्य][धिकृत*]दूत[प्रैष*]णिकग[मा*]गमिकअ-

११. [भित्वरमान][विषय*]पति[चाटभट*]सेवका[दीनन्यांश्चाकीर्त्ति]ता[न*]स्मत्पा-दप्रसादोपजीविनश्च प्रतिवासिनश्च ब्राह्मणोत्तरा [न्*]महत्तरकुटुम्बिपुरो-

१२. [गान् मानयति बोधयति समादिशति च मतमस्तु भवतां*]विज्ञापितं श्रीवरुणवासि-भट्टारकप्रतिबद्धभोजकश्रीसूर्य्यमित्रेण उपरिलिखि-

१३. [त]···ग्रामादिसंयुतं परमेश्वरश्रीवा (बा) लादित्यदेवेन स्वशासनेन भगवश्रीवरुण-वासिभट्टारक···

१४. ······क···वपरिवा(?)हक·· भोजकहन्स (हंस) मित्रस्य समापत[त*]मा यथाकालाध्या-सिभिश्च एवं परमेश्वर

१५. श्रीशर्व्ववर्म्म······भोजकरि (ऋ) षिमित्र······यतकं एवं परमेश्वरश्री[म*] दवन्ति-वर्म्मणा पूर्व्वदत्तकमवल-

१६. [म्ब्य]······एवं मह[ा*]रा[जाधिरा*]जपरमेश्वर·········शासनदानेन भोजकदुर्द्ध (?)र(?) मित्रस्यानुमो-

१७. [दित]·········ते(?)न(?)भु(?) ज्यते (?) [॥*] तदहम्कि (हंकि) मपि (?)······ एवं···मतिमान्···अनुषा (मो) दितमिति स (?) र्व्वसमाज्ञाप(?)ना(!)[।*]एता···

१८. ············पयु············वरुणवास्यायतनं तदनु दत्तं······

१९. ············त्यक्ष············सोद्रङ्ग सोपरिकरं सदशापराधपञ्च···

२०. ············[॥*]

अनुवाद

पं० १ : ······को नमस्कार ! स्वस्ति ! शक्ति के तीन घटकों द्वारा अधिगत, विजयनादयुक्त, जलपोतों, हाथियों अश्वों एवं पदातियों से युक्त होने के कारण दुर्निवार (तथा) गोमतिकोट्टक दुर्ग के समीप स्थित जयस्कन्धावार से :—

पं० २ : ······श्री माधवगुप्त (थे)। उनके पादानुध्यात उनके पुत्र परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी श्रीमती श्रीमतीदेवी से उत्पन्न परमभागवत श्री आदित्यसेनदेव (हुए)।

पं० ३ : उनके (आदित्यसेन के) पादानुध्यात उनके पुत्र परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी श्रीमती कोणदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री देवगुप्तदेव (हुए)।

पं० ४ : उनके (अर्थात् देवगुप्त के) पादानुध्यात उनके पुत्र परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी श्रीमती कमलदेवी से उत्पन्न परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णुगुप्तदेव (हुए)।

पं० ५ : उनके (अर्थात् देवगुप्त के) पादानुध्यात उनके पुत्र परमभट्टारिका राज्ञी महादेवी श्रीमती इज्जादेवी (से उत्पन्न)···के परमभक्त परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री (द्वितीय) जीवितगुप्तदेव कुशली नगर भुक्ति में (तथा) वालवी विषय के अन्तर्गत···में स्थित वारुणिका नामक गांव के गोष्ठानकुलों (सरकारी पशुपालकों ?), तलावाटकों (निचली भूमि की देखभाल करने वाले पदाधिकारी ?), दूतों, सीमकर्मकरों (भूमि की सीमा स्थिर करने वालों), सब ही आए हुए राजाओं, राजानकों (सामन्त राजाओं), राजपुत्रों, राजामात्यों, महाकार्ताकृतिकों, महादण्डनायकों, महाप्रतिहारों, महासामन्तों, महादौःसाधसाधनिकों, प्रमातृओं, सरभंगों, कुमारामात्यों, राजस्थानीयों, उपरिकों, दशापराधिकों, चौरोद्धरणिकों (चोरों को दण्डित करने वाले पदाधिकारियों), दाण्डिकों, दाण्डपाशिकों, तदायुक्तों, विनियुक्तों, हस्त्यश्वोष्ट्रबलव्यापृतकों (राजकीय हाथियों,अश्वों तथा ऊँटों की देखभाल करने वाले पदाधिकारियों), किशोरवडवागोमहिष्यधिकृतों (खच्चरों, गायों व भैंसों के निरीक्षकों), दूत प्रैषणिकों (दूत भेजने वाले पदाधिकारियों), गमागमिकों (नगरों में आने-जाने वाले लोगों की देखभाल के लिये नियुक्त पदाधिकारियों, विषयपतियों, चाटभटों, सेवकों तथा हमारे चरणों के अनुग्रह पर जीविकोपार्जन करने वालों, तथा ऐसे पड़ोसियों के प्रति जिनमें ब्राह्मण अग्रणी हैं (तथा) महत्तरों के प्रति···(यह आदेश जारी करते हैं):—

पं० १२ : ···द्वारा विज्ञापित भगवान् परमपावन वरुणवासी (के स्थल) से संबद्ध भोजक सूर्यमित्र द्वारा··· ऊपर उल्लिखित (गांव)···गांव इत्यादि के साथ परमेश्वर श्री बालादित्यदेव द्वारा (स्वयं) अपने राजपत्र द्वारा दिया गया···भगवान् परमपावन वरुणवासी···भोजक हंसमित्र के प्रति पुनर्स्थापित द्वारा, तथा उनके द्वारा जिन्होंने समय-समय पर आधिपत्य किया अर्थात् परमेश्वर श्री शर्ववर्मा···भोजक ऋषिमित्र (के प्रति)···परमेश्वर अवन्तिवर्मा द्वारा ···इस व्यवहार-विधि के अनुसार···महाराजाधिराज तथा परमेश्वर···के शासनदान द्वारा भोजक दुर्धरमित्र द्वारा इसके भोग की अनुमति···तथा संप्रति उनके द्वारा भोग किया जा रहा है।

पं० १७ : अतएव मैं (अब घोषित करता हूं) कि···के प्रति यह अनुमोदित किया जा रहा है; सभी लोगों के लिए यह (मेरी) (आज्ञा) है।

···(भगवान्) वरुणवासी का आयतन तत्पश्चात्···उद्रंग तथा उपरिकर के साथ, दश अपराधों तथा पांच··· (पर लगाए गए दण्ड-शुल्क) के साथ···दिया गया।

३४

(परवर्ती-गुप्त नरेश ?) जीवगुप्त का कटरा ताम्रपत्र-अभिलेख

प्राप्तिस्थल : बिहार के मुजफ्फरपुर जिले का कटरा स्थान।

भाषा : संस्कृत। तीन श्लोकों को छोड़कर गद्य में।

लिपि : आठवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध की सिद्धमातृका।

छन्द : १–३ : अनुष्टुभ्।

महत्त्व : सिनहा का विचार है कि परवर्ती-गुप्त वंश तथा द्वितीय जीवितगुप्त के जीवन का अन्त कन्नोज के यशोवर्मा ने किया था। वह उसकी पहिचान उस गौडराज से करते हैं जो यशोवर्मा के हाथों मार डाला गया था और जिसके वध के कारण वाक्पति ने यशोवर्मा के जीवन पर लिखित ग्रन्थ का नाम 'गौडवहो' रखा था। वाक्पति के वर्णन से यह भी स्पष्ट ही है कि इस गौडराज का अधिकार मगध पर भी था। इसके विपरीत मजूमदार का आग्रह है कि क्योंकि यशोवर्मा का यह शत्रु प्रधानतः गौड का नरेश था, इसलिए उसकी पहिचान बंगाल के किसी नरेश से करनी चाहिए, द्वितीय जीवितगुप्त से नहीं जो प्रधानतः 'मगधराज' था। प्रस्तुत लेख से इस समस्या को नया आयाम मिला है। इस लेख में दो राजाओं का उल्लेख है—तारा भट्टारिका के गर्भ से उत्पन्न 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' रामगुप्तदेव और रामगुप्त की पत्नी रामा भट्टारिका के गर्भ से उत्पन्न 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' जीवगुप्तदेव। रामगुप्त के पिता का नाम नहीं दिया गया है परन्तु दि० च० सरकार का कहना है कि क्योंकि रामगुप्त के पुत्र जीवगुप्त को 'लघु जीवगुप्त' कहा गया है, इसलिए उसके अर्थात् जीवगुप्त के पितामह का नाम भी जीवगुप्त (=वृद्ध जीवगुप्त) रहा होगा। इस प्रकार की परम्परा प्राचीन काल में प्रचलित थी, जैसे (द्वितीय) चन्द्रगुप्त के पितामह का नाम (प्रथम) चन्द्रगुप्त ही था। रामगुप्त और जीवगुप्त दोनों ही 'परममाहेश्वर' कहे गए हैं। प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये राजा किस वंश के थे। दि०च० सरकार ने उनको परवर्ती-गुप्त वंश का माना है। उनका अनुमान है कि रामगुप्त का पिता वृद्ध जीवगुप्त, हो सकता है, द्वितीय जीवितगुप्त से अभिन्न रहा हो। इस लेख का प्राप्तिस्थल और लिपि इस अनुमान के अविरुद्ध हैं। उस अवस्था में अनुमान किया जा सकता है कि प्रथम जीवगुप्त (=द्वितीय जीवितगुप्त) के बाद मगध या दक्षिणी बिहार से परवर्ती-गुप्तों की सत्ता समाप्त हो गई होगी और वहां किसी गौड़ राजा ने अधिकार कर लिया होगा। उस अज्ञात गौडराज को कन्नौज के यशोवर्मा ने मारा होगा। परन्तु मगध हाथ से निकल जाने से परवर्ती-गुप्तों का शासन समाप्त नहीं हो गया यद्यपि अब वे उत्तरी बिहार तक सीमित रह गए जहां उसकी दो पीढ़ियों के राजाओं—रामगुप्त और जीवगुप्त—ने, जो इस दानपत्र में उल्लिखित हैं, शासन किया। सरकार का यह अनुमान सही हो सकता है, परन्तु स्मरणीय है कि इन राजाओं का आदित्यसेन के वंश से सम्बन्ध निश्चित रूप से प्रमाणित नहीं है। हमें यह अधिक सम्भव लगता है कि ये दोनों उत्तर बिहार के स्थानीय राजा मात्र थे।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, इ० आई०, ३५, पृ० १२५ अ०; थपल्याल, इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरिज़, लेटर गुप्तज़, पुष्पभूतिज़ एण्ड यशोवर्मा ऑव कन्नौज, पृ० १७४–७६।

मूलपाठ

१. सिद्धम् [।।*]स्वस्ति [।।*]तारा वासितश्रीजयस्कन्ध[ा]वारात्परममाहेश्वरस्य श्रीमत्ता[रा]-
२. भट्टारिकायामुत्पन्नस्य परमभट्टारकमहाराजाधिराजप-
३. रमेश्वरश्री रामगुप्तदेवस्य पुत्रः परममाहेश्वरः श्रीरामाभ-
४. ट्टारिकायामुत्पन्नः परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्री-
५. जीवगुप्तदेवो लघुः कुशली[।।]

यद्यशो विमलम्वी(लंवी)क्ष्य स्वकम्व(कं व)पुरय[*]

६. शशी[।*]

संपूर्ण शनकैर्द्धते लज्य(ज्य)येवार्जुन(नो)वीवु [।१।।*]

तीरभुक्तौ चामुण्ड[ा]

७. विषये पूर्व्वोत्तररतिषि[ट]हलपाटके सुरभाक्रे याम[या]यां हरिग्रामके[च*]
८. महासान्धिविग्रहिकाक्षपटलिकसर्व्वाधिकारिकप्रतीह(हा)र-
९. सेनापतिमहासामन्तप्रभृतीन्निवासिनश्च जनपदान्वो(न्बो)धय-
१०. ति समाज्ञापयति[च ।।*] विदितमस्तुभवतां यथोपरिलिखितग्राम[ा][:*]
११. सजलस्थल(लाः)साम्रमधूक(काः)सगर्त्व(र्त्तो)षर(राः) स्वसीमापर्यन्त(न्ताः) स
१२. स[स्सु(र्व)]पल्लिक(काः) सलोहलवणाकर(राः)सोद्दे ङ्ग(ङ्गाः) सोद्देश(शाः) समस्त[रा]-
१३. जप्रत्यादायसमेता [याव*]दाचन्द्रार्क्कक्षितिममकालमस्माभि[:]स्ना-
१४. त्वा विष[षु]वति पित्रोः पुण्ययशोविवृद्धये चामुण्डाभट्टारिका
१५. ....प्रतिष्ठापितको[ऽ*][त्र]प्रतिवा[स]न्यास्सण[र][भा]
१६. ....पूज[ा]स[ं]स्क[ा][रा][र्थे]
१७. ....सनत्वेन प्रदत्त (त्ता)इति ।[।*]
१८. ....सिभिश्च प्रत्यादाया
१९. ....ादेशः [।।*] सं २ चैत्र[सु]दि...
२०. व(ब)हुभिर्व्वसुधा[भुक्ता]राजभिः सगरादिभि[:*]

र्य(य)[स्य]यस्य यदा भूमिस्तस्य त-

२१. स्य तदा फलं(लम्)।[।२।।*]

स्वदत्ता[म]परदत्ताम्वा(त्तां वा) यो हरेत वसुन्धरां(राम् ।)

स विष्ठायां

२२. [क्रि]मिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ।[।३।।*]

मौखरि-पुष्यभूतियुगीन उत्तर भारत के अन्य अभिलेख

(अ) पूर्वी प्रदेश (बंगाल, बिहार, उड़ीसा)

१. महानाम का बोधगया प्रस्तर फलक-लेख : (गुप्त) सं० २६९
२. लोकनाथ का तिपेरा-दानपत्र : (गुप्त)वर्ष[३*]४४
३. श्री धारणरात का कैलान-दानपत्र : वर्ष ८
४. देवखड्ग का अशरफपुर-ताम्रपत्र अभिलेख : वर्ष १३
५. पृथिवीविग्रह भट्टारक का सुमण्डल-दानपत्र : गुप्त सं० २५०

परिशिष्ट

(अ) नालन्दा से प्राप्त कुछ लघु मुहर-लेख
(आ) वैशाली से प्राप्त कुछ लघु मुहर-लेख

(आ) उत्तर प्रदेश, पंजाब और उत्तराखण्ड

१. मथुरा से प्राप्त एक तिथिविहीन मौर्य-अभिलेख
२. पौरव-नरेश द्युतिवर्मा का तालेश्वर-दानपत्र : वर्ष ५
३. महासामन्त महाराज समुद्रसेन का निर्मण्ड-दानपत्र : वर्ष ६

(इ) राजस्थान : गुहिलों के अभिलेख

१. शीलादित्य के काल का सामोली पाषाण-लेख : (विक्रम)सं० ७०३
२. अपराजित का उदयपुर पाषाण-लेख : (विक्रम)सं० ७१८
३. पड्ड (गुहिल ?) के काल का तिथिविहीन कल्याणपुर पाषाण-लेख
४. भाविहित का डूंगरपुर-दानपत्र : (हर्ष)सं० ४८
५. भेत्तिका धुलेव-दानपत्र : (हर्ष)सं० ७३
६. माभट का डूंगरपुर-दानपत्र : (हर्ष)सं० ८३
७. कदच्छिदेव के काल का तिथिविहीन कल्याणपुर पाषाण-लेख

(ई) गुजरात : मैत्रकों के अभिलेख

१. द्वितीय धरसेन का मालिया-दानपत्र : (गुप्त-वलभी)सं० २५२
२. द्वितीय धरसेन का वलभी-दानपत्र : (गुप्त-वलभी)सं० २६९
३. सप्तम शीलादित्य का अलीना-दानपत्र : (गुप्त-वलभी)सं० ४४७
४.विष्णुसेन का स्थिति-व्यवस्था-ताम्रपत्र : (विक्रम)सं० ६४९

(उ) लाट के गुर्जरों के अभिलेख

१. नान्दीपुर के गुर्जर-नरेश द्वितीय दद्दप्रशान्तराग का संखेड़ा-दानपत्र : (कल्चुरि)सं० ३९२

३५

महानाम का बोधगया प्रस्तर फलक-लेख

(गुप्त) वर्ष २६९ (=५८८ई०)

प्राप्तिस्थल : बोधगया से उत्खनन में प्राप्त।

लिपि : उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी; अफसड़-लेख की लिपि से प्राचीनतर।

भाषा : संस्कृत ।

उद्देश्य : लंका के महानाम नामक किसी व्यक्ति द्वारा (इस नाम का एक प्राचीनतर व्यक्ति इस लेख में और उल्लिखित है) बोधगया में एक बुद्ध-भवन अथवा बुद्ध-मन्दिर या विहार के निर्माण करवाये जाने का उल्लेख।

तिथि : वर्ष २६९। तिथि में संवत् का नाम नहीं दिया गया है।

महत्त्व : इस लेख में लंका द्वीप की एक भिक्षु-परम्परा का वर्णन है जिसमें वह द्वितीय महानाम हुआ जिसने इस लेख में उल्लिखित भवन बनवाया और लेख लिखवाया। इसमें लंका को आम्रद्वीप भी कहा गया है, शायद इसलिये कि उसका आकार आम के समान है। इस लेख का महत्त्व इस सम्भावना में है कि इसमें उल्लिखित द्वितीम महानाम वही महानाम है जिसने पालि 'महावंस' या लंका के इतिहास का प्राचीनतर भाग लिखा। लेकिन इस अभिलेख में प्रयुक्त संवत् लगभग निश्चित रूप से गुप्त संवत् है, इसलिये इस महानाम का समय ५८८-९ ई० होगा जबकि 'महावंस' के लेखक महानाम का समय टर्नर ने पाँचवीं शती का तृतीय पाद बताया है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, पृ० ३५१-४।

मूलपाठ

१. ओम् [।।*] व्याप्तो येनाप्रमेयः सकलशशिरुचा सर्व्वतः सत् [त्*] वधातुः क्षुण्णः पाषण्ड-
योधास्सुगतिपथरुधस्तर्क्कशस्त्राभियुक्ताः सम्पूर्णो

२. धर्म्मकोशः प्रकृतिरिपुहतः साधितो लोकभूत्यै। शास्तुः शाक्यैकव(ब)न्धोर्ज्जयति चिरतरं
तद्यशस्सारतन्त्रम् ।।नैरोधीं शुभभावना—

३. मनुसृतः संसारसंक्लेशजिन्मैत्रेयस्य करे विमुक्तिवशिता यस्याद्भुता व्याकृता। निर्व्वाणावसरे च
येन चरणौ दृष्टौ मुनेः

४. पावनौ। पायाद्वः स मुनीन्द्रशासनधरःस्तुत्यो महाकाश्यप :।। संयुक्तागमिनो विशुद्धरजसः सत्-
[त्]वानुकम्पोद्यताः शिष्या

५. यस्य सकृद्धिचेरुरमलं लंकाचलोपत्यकाम् तेभ्यः शीलगुणान्विताश्च शतशः शिष्यप्रशिष्याः
क्रमाज्जातास्तुङ्गनरेन्द्र—

६. वंशतिलकः प्रोत्सृज्य राज्यश्रियम्।। ध्यानो दयाहितहितः शुभाशुभविवेककृद्धिहतमोहः सद्धर्म्मातुल-
विभवो भवो व(ब)भूव

७. श्रमणस्ततः ॥ राहुला ख्याश्च तच्छिश्य उपसेनो यतिर्यंतः महानामा क्रमादेवमुपसेनस्ततो परः ॥ वात्सल्यं शरणा—

८. गतस्य सततं दीनस्य वैशेषिकं व्यापत्सायकसन्ततिक्षतघृतेरार्त्तस्य चापत्यकं । क्रूरस्याहितकारिणः प्रविततं व(ब)न्धोर्यथा—

९. भावतः एवं सच्चरितोद्भवेन यशसायस्याचितं भूतलं ॥ आम्रद्वीपाधिवासी पृथुकुलजलधि-स्तस्य शिष्यो महीयान्

१०. लंङ्काद्वीपप्रसूतः परहितनिरतः सन्महानामनामा । तेनोच्चैर्व्वो(ब्बो)धिमण्डे शशिकरधवलः सर्व्वतो मण्डपेन ।

११. कान्तः प्रासाद एष स्मरव(ब)लजयिनः कारितो लोकशास्तुः ॥ व्यपगत विषयस्नेहो हततिमिर-दशः प्रदीपवदसङ्गः

१२. कुशलेनानेन जनो वो(बो)धिसुखमनुत्तरं भजताम् ॥ दावद्ध्वान्तापहारी प्रविततकिरणः सर्व्वतो भाति भास्वानयावत्पूर्णोऽम्वु(म्बु)—

१३. राशिः फणिफणकुटिलैरूर्म्मिचक्रैस्समन्तात् यावच्चेन्द्राधिवासो विविधमणिशिलाचारुशृङ्गः सुमेरुः शोभाढ्यम्

१४. तावदेतद्भवनमुरुमुनेः शाश्वतत्वम्प्रयातु ॥ सम्वत् २००(+*)६०(+*)९ चैत्र शु दि ७ ॥

३६

लोकनाथ का तिपेरा-दानपत्र

(गुप्त) सं० [३*] ४४ (=६६४ ई०)

प्राप्तिस्थल : बांगला देश का तिपेरा स्थान।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : सिद्धमातृका।

छन्द : १, ३, ६-८ : शार्दूलविक्रीडित; २ : स्रग्धरा; ४-५, ९ : वसन्ततिलका; १०-१२ : अनुष्टुभ् (श्लोक)।

तिथि : (गुप्त) वर्ष [३*]४४(=६६४ ई०) का फाल्गुन मास।

लेख-सार : भारद्वाज-गोत्र में उत्पन्न एक ब्राह्मण अधिमहाराज थे। उनका पुत्र सामन्त श्रीनाथ था। उसके सबसे बड़े पुत्र भवनाथ ने सिंहासन अपने भतीजे को दे दिया और स्वयं ऋषि जीवन अपनाया। उस राजा का उसकी रानी गोत्रदेवी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र लोकनाथ था। उसने जयतुंगवर्ष से युद्ध लड़ा और सम्भवतः गौडराज के सेनापति के रूप में रातवंश के जीवधारण से (दे०, अभिलेख ३७) कुछ प्रदेश छीने। उसने अपने ब्राह्मण महासामन्त प्रदोषवर्मा को सुव्वुङ्ग विषय नामक वन्य प्रदेश में कुछ भूमि अनन्तनारायण की पूजा के निमित्त दान दी जिसके लिये प्रदोषवर्मा ने दूतक राजपुत्र लक्ष्मीनाथ के माध्यम से प्रार्थना की थी। प्रदोषवर्मा की प्रार्थना पर कई भूमि खण्ड, जिनमें हरेक कई पाटकों और द्रोणों के बराबर था, बलि, चरु और सत्र के हेतु एवं ब्राह्मणों के आवास के निमित्त दिये गये। इसकी सूचना कुमारामात्यों, महासामन्तों तथा विषयपतियों तथा उनके अधिकरणों को दी गई। इस लेख को सान्धिविग्रहिक प्रशान्तदेव ने तैयार किया था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : बसाक, इ० आई०, १५, पृ० ३०६ अ०; दि० च० सरकार, आई० एच० क्यु०, २३, पृ० २२३ अ०; स० इ०, २, पृ० २८-३५।

मूलपाठ

मुहर

कुमारामात्याधिकरणस्य (।*)

लोकनाथस्य (।*)

पुरोभाग

१. – – – – – ात्कुमारामात्या अधिकरणञ्च सुव्वुङ्ग–विषये
ब्रा (ब्रा)ह्मणार्य-पुरस्सरान्वर्त्तमानान्भाविनश्च श्री-सामन्त-म······

२. ·········[वि*]षय-पतीन्साधिकरणान्स[प्र[धान-व्यवहारि-ज [।*]

नपदान्वो (न्बो) धयन्त्यस्तु वो विदितमिह हि ॥
य[स्याशेष-विधि] ⏑–⏑

३. ⏑ ⏑ – – – [ध]रो विग्रहो
येनायं भुवनत्रय-[स्थि]ति-सुख-प्राप्त्यर्थमान्माष्टधा (।*)
प्रत्येक[ं] प्रभूतादि-तुल्यमहिमा – –⏑ – –⏑–

४. [कायेनो]ज्झित-मन्मथः स जय[ति] ध्वस्ताशुभः शङ्करः ॥ [१*]
शम्भोः पादाव्ज(ब्ज)-रेणु-प्रकर-कृत-शिरः-पूत-दिव्याभिषेक(:*)
प्राप्ताचन्द्रा ⏑– – ⏑⏑⏑

५. [मु]नि-भरद्वाज-सद्वङ्श-जातः (।*)
श्रीमान्प्रख्यातकीर्त्तिः प्रभवदधिमहार(।*)ज-शव्दा(ब्दा) धिकारः ।
संसारोच्छित्ति-हेतुः प्रशमितदुरितो–⏑ णा[थो]

६. (ऽ*)वनीशः ॥ [२*] ।
सूनुस्तस्य महात्मनो गुणनिधेः प्रख्यात-वीर्यो महा-
न्सामन्तो युधि लव्ध(ब्ध)-पौरुष-धनो धर्म्य-क्रियैका श्र[यः] (।*)
[श्रीणा]-

७. थो भगवानिव प्रतिहत-[व्या]पत्स्य-शक्त्यास्पदै-
र्वीरो(ऽ*)भूदवनीतल-प्रकटित-प्राप्तव्य-यावत्क्रियः ॥ [३*]
तस्या[त्म]जो(ऽ*) पि गुन्वान्भ[व]-

८. नाथ-नामा ।
संसार-सा[ग]र-जलोत्तरणैक-चित्तः (।*)
भ्रातुः सुते गुणवति प्रतिपाद्य राज्यं
श्रीमानभूदृषि-समो वि[धि-पूत-स*]-

९. त्वः ॥ [+*]
तेनोदपादि कुलसन्ततये सदृश्या–
म्वि(म्बि)भ्रत्पतिव्रत-गुणाभरणोज्वलायाम (।*)
गोत्रश्रियामिव महौजसि गोत्रदे[व्या]-
[म]–

१०. ष्टायिका-विहित-जन्मनि पुत्रवर्यः ॥ [५*]
यस्था स्थावर-संज्ञको द्विजवरः प्रार्यो जनन्याः पितु-
[र्वी]राख्यो द्विजसत्तमो [विधिविदा*]–

११. म्मान्यः प्रमातामहः (।*)
प्रख्यातो नृपगोचरा वल-गन-प्राप्ताधिकारः कृती
साधुः पारशवः सतामभिमतो मा[तामहः]

१२. केश[वः] ॥ [६*]
दौहित्रस्स तु के[व]शस्य गुणवान्सत्यैक-व(ब)न्धुस्सदा

दोर्दण्ड-ज्वलितोत्तमासि-सिचिव-प्रज्ञा-जयत्साधनः (।*)
नि[र्व्या]-
१३. जोर्ज्जित-सत्व-सार-तुरगः श्री-लोकनाथो [नृ]पो
यस्मिञ्छ्री-परमेश्वरस्य व(ब)हुशो यातं क्षयम् सैनिकम् ॥
दुर्लङ्घ्यो
१४. जयतुङ्गवर्ष-स (म*)रे सद्यः-[प्रयो]गो(ऽ*)र्थिनां
नीतौ नीतिविधानतनिचतुरो नित्यप्रहृष्ट-प्रजः(।*)
मैत्र्यापादित-निर्वृ [ति*]र्व(र्ब)हु-[गु]-
१५. णो विद्व[त्प्रि]य[स्स]र्वदा
सार्वःसा [धु]-समाश्रयः पटुमतिर्लव्ध(ब्ध)-प्रतापोदयः ॥ [८*]
इत्याप्त-मन्त्र-सुविनिच्श्रि-कृत्य-वस्तुः
श्री-जीव-
१६. धारण-नृप[स्त][नुतामु*][पेत्य] (।*)
यस्मै ददौ स-विषयं सह साधनेन
श्री-पट्ट-प्राप्त-करणाय विहाय युद्धं(द्धम्) ॥ [९*]
तत्सुत-राजपु[त्र]-
१७. लक्ष्मीनाथ-[दूत]केना[ज्ञा](।*) [अ]गस्त्य-सगोत्रस्य व्रा (ब्रा)ह्मणस्य
देवशर्मणः प्रपौत्रेण जयशर्मस्वामिनः पौत्रेण द्विज-गुरु-[ज]-
१८. नताती तोषस्य [तो]षशर्मणो विप्रस्य पुत्रेण यथाविधि-हुताग्न्य-
ग्न्याहित-वु(बु)धस्वामिन(:*) प्रमातामहस्य सूनोः प्रथित-गु-
१९. ण-गणस्य धर्मार्ज[नतया ?]वृ(बृ)हस्पतिस्वा[मि]नो दुहितरि यथार्थि-
जनाभ्यर्थितार्थ-दत्त-सुवचनायां सुवचनायां व्रा (ब्रा) ह्मण्यामुत्प–
२०. न्नेन यथाचाराचरण-प्रतिष्ठितोभय-कुल-[प्रा]प्त-[जन्म]ना विदित-
[भुज]-व(ब)ल-वीर्येण द्विज-साधुजनतोपभुज्यमान-विभवेनोदारान्वयिना
द्विजन्मना [वि]-
२१. [लुप्ता]शेष-दोषेण महासामन्त-प्रदोषशर्मणा विज्ञापिता वयं(यम् ।)
सु[व्वु]ङ्ग-विषये मृग-महिष-वराह-व्याघ्र-सरिसृपादिभिर्यथेच्छमनु-
भूयमान-गृ[ह?]-
२२. सम्भोग-गहन-गुल्म-लता-विताने कृताकृताविरुद्धाटवी-भूखण्डो
म[या?] देवावसथं(थ)ङ्कारयित्वा भगवानविदितान्तो(ऽ*) नन्त-
नारायण स्थापयित·········
२३. [दि ?] ममोपरि कृत-प्रसादा(:*) पादस्तत्र भगवतो(ऽ*)मरवरासुर-
दिनकर-शशधर-कुवेर-किन्नर-विद्याधर-महोरग-गन्धर्व-वरुण-य[क्ष]···
२४. ···भिष्टुत-वपुषो(ऽ*)नन्तनारायणस्य सततमष्टपुष्पिका-व(ब)लि-
चरु-सत्र(त्र)-प्रवृत्तये तत्र कृत-सामान्यानाञ्च चातुर्विद्य-व्रा(ब्रा)ह्मणा-
[र्या]णां ·····

२५. ···[कृताकृ*]ताविरुद्धाटवी-भू-खण्ड(:*) ताम्र(ऽ*)भिलिख्य माता-
पित्रोर्मम च पुण्य-प्रवृ[द्धये] सर्वतो(?)भोगेना[ग्र]हार·········
२६. ······[लोक?]नाथेण(न)······प्रतिपा[दितः?]·········
परम– – – –

पृष्ठभाग

२७. ····················
२८. ·····················
२९. ··· धिके चतुश्चत्वारिङ्शत्संवत्सरे फालगु[न-मा]से– – – –
क–व(ब)बन्ध-दर्शनैकस्य– – –
३०. ···[अ]त्र पूर्वेण कणामोटिका-पर्वतो दक्षिणेन पङ्ग-वापि(?)-
कोभय-ग्राम-[सी]मा पश्चिमेन जयेश्वर-ताम्र-पथ(प्रस्त)र-खण्ड···
३१. ···व(ब)ल-मण्डलिका उत्तरेण महत्तर-रणशुभ-पुष्पकरिणी इत्येवमव-
धृत-चतु(:*)सीमक-सुवुङ्ग-कृताकृताविरुद्धाटवी-भूख[ण्ड]···
३२. ···पट्टा[रोपितो] महासामन्त-प्रदोषशर्मणो मातापित्रोरस्य च
पुण्योपचयाय एतदीय-मठे भगवतो(ऽ*)नन्तनारायणस्य पूजा-विधि-
सम्पत्तये······
३३. [द]त्त(:।*)प्रत्येक-पाटकभोगोद्यमकृद्वैरि(दि)क(काः।)भट्टानन्तदेव-
स्वामि-पाटक ६ भट्ट-धर्मदास-पाटक १ भट्ट-नागदत्त-पाटक १ भट्ट-केशव-
पाटक १ भट्ट-गद(?)-
३४. नन्दि-पाटक १ भट्ट-मेधसोम-पाटक १ उदयचन्द्र-पाटक १ भट्ट-मनोज्ञ-
देव-पाटक १ खलिष-कर्मा(र्ि*)न्तक-प्रभ-प्रापि-भट्ट-जयसोम-
३५. स्वामि-अर्द्धपाटक भट्ट-पूर्णदाम-द्रो २० भ[ट्ट] -विदेश-द्रो २०
भट्ट-यज्ञदेव-द्रो २० भट्टामरदेव-द्रो २० ला[द्र?]-स्वामि-[द्रो१०]
[भट्ट]-पूर्ण-
३६. घोष-द्रो १० भट्ट-उग्रसोम-द्रो २० मनोरथ-साधारणं(ण)-[र]वि ×
ल-रासञ्श्चाल-मिक्षत-भ्रात(तृ)-पाटक-द्वय २ हरिशर्म-द्रो १०
(+*) ७ जनसोम-द्रो १० (+*)५(?)
३७. विन्द-द्रो १०(+*) ५(?)भट्ट-भानु······[द्रो-१०] [कण-विश्व-
खड्ग-वद]र-विचक्षण-णप(?)ति-गोवर्द्धर(न)-प्रभावरिष-विष्णु-अन्दसूरि-
पितृकेशिवरन्तचर-
३८. त(?)-हर्षभूति-सु[भ्रा]त-मण्ड-अर्द्ध-हर्ष-मा[द्र-ख]लिश······ज्ञद्वृद्धि-
द्रो ह (१०)अटव्यांमस्यैव द्रो २० विदग्ध-प्रमख-पाटक १कव क-[द्रो]
२० महे[श?]-
३९. तेजसोम-जनार्दनान्द-नृ[ग ?] — — — — सदेश(?)-[श]ङ्कर-द्रो २०
रुद्र-विकसित-दिवाकर-हरिश-विजय-वामन-गोपिशर्म-आनन्द-[द्रो २०?]
४०. सुतोष(?)-लच्छूका[म्या(ं*)]पाटक १ (?) न······सूक्ष्मभूतेः
पाटक १ रुद्र-दामोदराभ्यां पाटक (१*) आन्द-नृसोम-विदग्ध-जनार्दन-[उप?]-

४१. ति-स्कन्द-इ(ई)शा[न]······न······पति-कृष्ण-भव-रुद्र-सुरट-जन-
सोम-विदग्ध-वप्प(?)-घुति-अवलिप्त-[द्रो ?] १० वु(बु)द्धदत्तशर्म-

४२. वप्प(?)शर्म······धाम-नव-च[क्र]···जय-शिव-विष्णु-सुजात-
शर्मदो २० व (ब)न्धु-वेदजु-लव्वु-धृति–जयामित्र-देव-श्र(?)घु-विदेश-
जीवमहासक-

४३. विहि-सु(?)यत-उग्र-[प्रतोषक]— — — — अर्थ-अद्भु(त*)-सन्तोष-
दैतगण-रु(रू)प-सन्तु(?)-विष्णुमित्र-निस्तारण-गोविन्द-[द्रो ?]
१० कणादुग्ध-प ×-

४४. वप्प(?)-सुषेण-लव्वु············[लिङ्ग]-शोक-हम्बो-शुभ-
गुणतोष-वप्प(?)-शोक-वप्प(?)-अतिथि-भानु-क्षीर-गण्ड-निधि···

४५. भद्र-जनार्द्दन-भास्कर-[वप्प?]······[द्रो] २० देवदत्त-द्रो २० धनङ्कर-
भट्ट-व्र(ब्र)ह्मदत्त-द्रो २० भट्ट-अपदत्त-द्रो २० स्वामिदत्त-वप्प (?)-चन्द्र-
पन···

४६. कृष्ण-हरिष-विकसित-म[नोरथ]-वृकश-नयन-चित्र-विपश्चित-यज्ञ-सुकृत-
तोष-चन्द्र-वप्प(?)णि-अहि-मर्कट-चन्द्र-प्राण-नन्द-स(ा*)धारण···

४७. भट्ट-साधारण-द्रो २० क्षेमभूति-पाटक-द्वय वप्प(?)-देव-प्रशान्त-
दुधुस्वामि-प्रकाश-गौण-पाटक (१*) राजि-पूयदाम-द्रो २० आनन्द-
इन्द्रस्वामि-द्रो [२०]······

४८. नारायण-हरिदेव-चन्द्रकेश-पाटक १ भट्ट-सूत-द्रो १० भट्ट-पिञ्छदेवस्य
पाटक १ नन्दगोप-वन[मा]लि-तृ(त्रि)लोचन-ख[न्य]···

४९. सत्रोपयोगाय पाटक(१*) पूजिष्णु-[अहि]···[स्वा]मि-पाटक ६
समृध-सङ्घ-सन्तोप-जयशर्म-दैदव-इवष्टि(ष्णि?)-नरविजय-शम्भुविजय-
गुप्तजय···

५०. ···भटात्सुरि-द्रो- ६ प्रिय-द्रो १० मधु(?)वा···लक्ष्मण-धननन्द-
पराशा(?)···इन्द्र-हरि-धृति-इच्छदेव-गुणज-महाराज-ददिभट-सरप···
वक—

५१. [कृ]ता भूमयस्ताम्रपटे समारोपिता अस्य मातापित्रोरात्मनश्च
पुण्य-प्रसवार्थम्भगवद(न*)न्तनारायणाय (य*)था-लिखिय-व्रा(ब्रा)-
ह्मणेभ्यश्च सर्वते(तो)-भोगेनाग्र···

५२. ······षा सङ्ग्वतिर्थ-[पू]जनोपचीयमान-सं[स्का]रत्वान्नृप-गौरवा-
दातिथेय-पृयत्वाच्च सततमनुमन्तव्याः पालनियाश्च (।*) दानाच्छ्रेयो-
(ऽ*)नु-पाल[नं]······

५३. ···दोष-दर्श[ना]य भगवता [व्या]सेन गीता(ः*) श्लोकाः (।*)
षष्टिम्वर्ष-सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद(ः।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्ये[व] [नरके वसेत्*] (॥*) [१०*]

५४. [पूर्व-दत्तां द्विजाति*]भ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
मही[ं*] महिमता ञ्छ्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालनं(नम् ॥) [११*]

ब(ब) हुभिर्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभि(:*) (।*)
यस्य यस्य [यदा भूमिस्त*]-

५५. [स्य तस्य तदा*] फलमिति (।।*) [१२*]
क्रुत [सा]न्धिविग्रहिक-प्रशान्त[दे]वेन (।।*) भोगि-भवदासस्य द्रो २०
पाचक-वसु-द्रो २० म···[द्र २०]···

५६. ······वाचकत्वेन सुधाम(?)-द्रो २० धिर(?)ह-द्रो १० (+*) ६
उत्खात-कामन-नरदत्तस्य द्रो १०(+*)६ प्रकृताय-पादमूल-[य]— — —

५७. — — — — — रक अविष— — —ततया— — — — — — — सित
— — — — —

३७

श्री धरणीरात (लग० ६६५-७५ ई०) का कैलान-दानपत्र

वर्ष ८

प्राप्तिस्थल : बांगला देश का तिपेरा (कोमिल्ला) जिले का कैलान स्थल ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : सिद्धमातृका ।

छन्द : १-२ : आर्या; ३ : वसन्ततिलक; ४-६ : अनुष्टुभ् (श्लोक) ।

तिथि : आठवें वर्ष के श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी ।

लेख-सार : समतट के स्वामी प्राप्तपञ्चमहाशब्द श्री धारणरात के, जो जीवधारणरात की अग्रमहिषी बन्धुदेवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जिसका भाई युवराज पञ्चमहाशब्दप्राप्त श्रीबलधारणरात था, शासन के आठवें वर्ष में राजा द्वारा दिये गये १५ पाटक भूमिदान का एक आदेश गुप्तीनाटन और पाटलायिका विषयों के विषयपतियों तथा उनके अधिकरणों को देवपर्वत (समतट की राजधानी) में स्थित कुमारामात्यों और उनके अधिकरणों द्वारा प्रेषित किया गया । यह दान महासान्धिविग्रहिक जयनाथ की प्रार्थना पर भगवत् तथागतरत्न (बुद्ध) या रत्नत्रय के नाम पर बुद्ध की उपासना, बौद्ध धर्म ग्रन्थों के अध्ययन और आर्य संघ की भोजन, वस्त्र तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के हेतु तथा कुछ ब्राह्मणों को पञ्चमहायज्ञ करने के लिये दिया गया था । बौद्ध और ब्राह्मण धर्मावलम्बियों को एक साथ दान दिया जाना रोचक है ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, आई०एच०क्यु०, २३, पृ० २२१ अ०; स०इ०, २, पृ० ३६-४० ।

मुहर

(अ)

१. श्रीमत्समत[टेश्व]र-पादानुध्या[तस्य]

२. कुमारामा[त्याधिक]रण[स्य] (।।*)

(आ)

श्री-श्रीधारणरातस्य (।।*)

पुरोभाग

१. सिद्धम् स्वस्ति (।।*)
विलसन्ति यस्य शश्वद्दितिसुत-दमनेन विक्रमोद्गाराः (।*)
स्स(स) जयति हरिरेकार्ण्णवमध्योद्धृत-मेदिनी-भारः ।।
प्रज्ञातिशय-विशो-

२. धित-गुणराशी दुग्धसिन्धुवद्धौता (।*)
यस्य श्रीरपिः(पि) सश्रीः स श्री-श्रीधारणो जयति ।। [२*]
अथ मत्तमातङ्ग-शत-सुख-विगाह्यमान-विविध-तीर्थया नौभि-

३. रपरिमिताभिरुपरचितकुलया परिकृतादभिमतनिम्नगामिन्या क्षीरोदया
सर्व्वतोभद्रकाद्देवपर्व्वताच्छ्रीमत्समतटेश्वर-पादानु-

४. ध्याताः कुमारामात्या अधिकरणञ्च गुप्तीनाटन-पटलायिक[यो]-
र्व्विषयपती अधिकरणञ्च वो(बो)धयन्ति (।*)विदितम-

५. स्तु वो निरुपमगुणगणौघशालिनि जगा(ग)दुदय-स्थिति-निरोध-विवि-
धप्रपञ्च-धामनि विवु(बु)ध-सत्तमे शतमख-शत्रु-शातन-व्यस-

६. नविलसितायतौ भगवति पुरुषोत्तमे परमया विनिवेशिताशय-श्रद्धया
शव्द(ब्द)विद्यादि-विविध-समय-परिगम-जनित-स्वक(:*)

७. स्वकगुण-विशेष-घन-घटित-वु(बु)द्धिरविकल-शक्ति-त्रितय-सम्पदुद्गतो
यथारुचि-प्रवर्त्तित-षाड्गुण्य-गोचरश्चापचक्र-विक्री-

८. डित इव गतः कलासु कौशलमनतिशय-सुन्दरमतिमधुर-चित्रगीतेरुत्पाद-
यिता कविरपरिमित-गो-हिरण्य-भूमि-प्र-

९. दान-पुण्यकीर्त्तेरसम-सम-प्रतापोपनत-सामन्त-चक्रस्य सुगृहीत-
नाम्नो देवस्य समतटेश्वर-श्री-जीवधारणरातभट्टा-

१०. रकस्य सूनुरुदितोदितकुलायामपरिमित-प्रजाधारिण्यां साक्षादिव वसुन्ध-
रायामग्रमहिष्यामुत्पन्नः श्रीव(ब)न्धुदेव्यां प्रसादा-

११. तिशय-सुमुखेन पित्रा स्वयमर्प्पिताधिराज्यः पितेव पालयिता[प]गतो
वु(बु)द्धिनिग्रहादनभिमत-प्राण-निग्रहे मनुरपर इ-

१२. व परमकरुणाश्रयः कुलवसतिरिव सत्व(त्त्व)-सम्पदो जन्मभूमिरिव
प्रियवचन-जातस्य गज-तुरग-सतत-पीडन–

१३. क्रमोचित-श्रम-वलित-तनुविभागरम्यत(द)र्शनः परमवैष्णवो(ऽ*)-
नेकप्राणि-कोटीशतसहस्र-जीवितस्य प्रदायकतया

१४. परमकारुणिको मातापितृपादानुध्यातः प्राप्त-पञ्च-महाशव्दः(ब्दः)
समतटेश्वरः श्री-श्रीधारणरातदेवः कुशली ।

१५. पितृचरण-शुश्रूषणैकशीलस्य विजित-चक्षुरादि-करणारामतया विनयस्येव
मूर्तिमतो हस्त्यश्व-प्रहरण-विद्या–

१६. भिरनुगत-शव्द(ब्द)विद्या-पा(प) रिश्रमस्यापयापितृ-पितामहाक्रामोचित-
प्रवयसः श्री(श्रि)येव नायक-गुणसम्पदा स(सु)–

१७. समापूर्यमाण-सन्ततेराज्ञाशत-प्रापिणो युवराज-प्राप्तपञ्चमहा–
शव्द(ब्द)-श्री-बलधारणरातभट्टारकस्य

१८. मुखेन स्फुट-चित्र-वल्गु-भाषिणा समादिशतिस्म ।। विज्ञापितम्महा-
सन्धिविग्रहाधिकृत-श्री-जयनाथेन यत्किञ्चि–

१९. ल्लोक-द्वितय-सुख-निव(ब)न्धनङ्कर्म्म कर्त्तव्यमस्मादु(द्)शैस्तत्सर्व्वम्प्र-
सा(दाद्*) देवपादानामेतन्मूलत्वादाशयाच विदितो वत्सलः पादी-

२०. यो यथा जन्मशतमप्युनुग्रहीतुमिच्छति लोकमनुजीविनमतो वन्द-
(विज्ञा)प्यते पादीय-संविधान(ं*) सव्यपेक्षणम्पुण्यक्रिया-

२१. णान्तेनार्हसि भूम्यास्तोकया प्रसादङ्कर्त्तुन्तामहमवाप्य प्रीतप्रीतवु(बु)द्धि-
रपगत-सा(सं)सार-दोषनिर्मलस्यासंसक्तस्या-

२२. पि संसक्तस्य जगति महाकरुणया सर्वज्ञस्य भगवतस्तथागतरत्नस्य
गन्ध-धूप-दीप-माल्यानुलेपनार्थन्तदुपदिष्ट-

२३. मार्ग्गस्य धर्म्मस्य लेखनवाचनार्थमार्यसङ्घस्य च चीवर-पिण्डपातादि-वि-
विधोपचारार्थमधिगत-विद्यानामपि व्रा(ब्रा)ह्मणार्या-

२४. णाम्पञ्च-महायज्ञ-प्रवर्त्तनार्थं मातापित्रोरात्मनः पुत्त्र-पौत्त्र-सन्ततेर्जगतश्च
पुण्योपचयार्थम्वि(र्थं वि)भज्य प्र(द*)दामि(इ*)ति(।*) विज्ञापन-

२५. यानया युक्ततरमावेदितमिति प्रसन्नमानसैः पञ्चविंशतिरस्माभिरस्य-
क्षेत्तं(त्र)-पाटकाः प्रसादीकृतास्ते यूयमस्मत्कटक-

२६. शासन-सनाथमारोप्य श्रीतापताम्रम्प्रयच्छत तानिति(।*)पितृचरण-
प्रसादादवाप्तस्य समतटाद्यनेक-देशाधिराज्यस्याष्ट-

२७. मे सम्ब(संव)त्सरे श्रावण-मासस्य तिथौ सित-सप्तम्यां श्रावित-
निर्जानायामाज्ञायां सीम-लिङ्गानि दातुं लिखिते विषयपतावधिकरणे च

२८. तत्प्रतिलिखितकदर्शनेन भवन्ति सीमलिङ्गानि यत्त्र ॥
गुप्तीनाटने खडोव्वा(ब्बा)लिका-[त्रतुवापाटकोरखल्लाष्टदण्डाना]-

पृष्ठभाग

२९. म्प्रापिणामष्टादशानाम्पाटकानां सीम-लिङ्गानि यत्र पूर्वेण दशग्रामे
नायविड्डिक-विल्ल-भङ्गेन नौपृ-

३०. थ्वी श्रीक्षेत्रं निष्क्रान्तक-प्रविष्टक-भङ्गेन नौपृथ्वी श्री-डङ्केल्ल-नौस्थिरवेगा
क्षेत्त्राणि दक्षिणेन नौस्थिरवेगा प-

३१. श्चिमेन म्वि(द्वि)ष्खलिका नदी उत्तरेणापि द्विष्खलिका नदी नाय-
वड्डिक-विल्लश्च ॥ निधानीखाडोव्वा(ब्बा)-रङ्कुपोत्तके वप्प-

३२. यशः-प्रापिणां पचञानाम्पाटकानां प्रथमखण्डे पूर्व्वेण तीरदेशीय-ताम्रं
दक्षिणेन नौशिवभोगा पश्चिमेन

३३. स्वताम्रं(म्रम्) उत्तरेणार्द्धत्रिक-शत-कुलपुत्रकानां क्षेत्रं द्वितीये पूर्व्वेण
स्व-ताम्रं दक्षिणेन दण्ड-जयसेन-क्षेत्रं प-

३४. श्चिमेनाङ्वागङ्गा उत्तरेणार्द्धत्रिक-शत-कुलपुत्रकानां क्षेत्रं(त्रम्) ॥
पटलायिका-करलकोटं(ऽ*)पि व(ब)हिःक्षेत्रपाटक-

३५. द्वयस्य पू(र्वे*)ण देवीम[ठ-ताम्रम्प्रयिष्टेन युक्तञ्च?] वेलोञ्चम-
पश्चिमाली स-व्यजनेन मित्रव(ब)लविहार-तत्व-

३६. मादित्यमण्डपो नौदण्डकश्च दक्षिणेन कञ्चीरक-पुष्करिणी नौदण्डकश्च
पश्चिमेन नौदण्डक:
३७. प्रविश्य ईषद्व्यजनेन गाण्डिदेव-लेटोञ्चम पूर्व्वाली-निष्क्रान्तक-व्यजनेन
वेन्धनादी (नां*) मल्लकर्म्म-
३८. काराणां क्षेत्रं स-व्यजनेन निष्क्रम्य महाकायस्थ-भास्करचन्द्र-ताम्र-
मुत्तरेण करलविहार-नौ[दण्डकः क्षे ?]-
३९. त्र-भ[ङ्गे]न च स-व्यज(ने*)न-श्री-तापस-धनदेव-क्षेत्रञ्चेति (।*)
एवमवधृत-सीमानः पञ्चविंशति-पाटका इति पूरि-
४०. ते महति भान(गे) विभज्य प्रतिपादित इति गौर[वात्]
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलमिति स्व-[दान-फ]-
४१. लापेक्षयाप्युपरिलिखितैरिमे
दानानुमोदनविधैः [परि]पालनीया
— — ⏑ — ⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ —[विभावा:](।*)
श्लो-
४२. का मुनेरपि पराशरवंश-केतो-
र्व्भा(र्ब्भा)व्या(:*)भुवन-रक्षण-[व(ब)न्धकर्त्रेति] (।।*)[३*]
व(ब)हुभिर्वसुधा दत्ता राजभिस्सगार(गरा)दिभि(:*) (।*)
४३. यं(य)स्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं(लम्) ।। [४*]
षष्टिम्व(ष्टिं व)र्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद(:*) (।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता
४४. च तान्येव नरके वसेत् ।। [५*]
स्व-दत्ताम्पर-(द*)त्ताम्वा(त्तां वा) यो हरेत वसुन्धरां(राम्) ।
४५. स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ।। [६*]
विभागश्चायं भगवतो रत्नत्रयस्य रङ्कुपोत्तकस्तत्त्रार्द्ध-पाटको
भिक्षदस्य (।*) खडोव्वा(ब्बा)लिका व्रा(ब्रा)ह्मणार्य्याणां भिक्ष-
४६. दस्य तत्त्रापि पञ्चपाटकाः करलकोट्ट(ट्टे) पाटक-द्वयञ्च (।*)
भोक्तृणाम्व्रा(म्ब्रा)ह्मणानान्नामानि पदानि च(।*)भट्ट-दिवाकर(:*) ।
४७. तस्य पञ्चपदानि ।। भट्ट-भवः प ५ ।। भट्ट-वत्सः प ५ ।।
वलीवर्द्द यशाः वृषभयशास्तयोः प ५ ।। भट्ट-भद्रः प ५ (।।*)
४८. भट्ट-ललितः प ५ ।। नारायणः प ५ ।। आलोकः प ५ ।।
वलीवर्द्द चन्द्रः प ३ ।। चन्द्रस्वामिनः प २ ।। साधारणघो-
४९. षः प २ ।। पशुपतेः प ५ ।।

३८

देवखड्ग (लग० ६७०-८५ ई०) का अशरफपुर ताम्रपत्र-अभिलेख

वर्ष १३

प्राप्तिस्थल : बांगला देश के ढाका जिले का अशरफपुर स्थल ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : सिद्धमातृका ।

छन्द : १–२ : उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा); ३ : वसन्ततिलक ।

तिथि : देवखड्ग के शासन के तेरहवें वर्ष के वैशाख मास की त्रियोदशी ।

लेख-सार : इस लेख में, जो मुनीन्द्र (=बुद्ध) की स्तुति से प्रारम्भ होता है, भिक्षु संघमित्र द्वारा विनिर्मित एक विहार की ९ पाटक और १० द्रोण भूमि, जो कई टुकड़ों में विभाजित थी, देवखड्ग नामक नरेश द्वारा राजभट नामक राजकुमार की दीर्घायु हेतु दान दिये जाने का उल्लेख है । एक भूखण्ड रानी प्रभावती की जागीर में स्थित बताया गया है और दूसरा सामन्त वण्टियोक की जागीर में। लेख को पूरदास नामक बौद्ध ने कर्मान्त के वासक में लिखा था । कर्मान्त की पहिचान एन०के० भट्टसाली ने कोमिल्ला के पास स्थित बड़कान्ता से की है ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : मजूमदार, जे० पी० ए० एस० बी०, १९, पृ० ३७५ अ०; सरकार, स० इ०, २, पृ० ४१–३ ।

मूलपाठ

१. स्वस्ति ।
जयत्यविद्या-हति-हेतु-भूत(:*)
संतीर्ण्ण-संसार-महाम्वु(म्बु)-राशि(:*) (।*)
अनुत्तरावाप्ति* ⏑ — ⏑ — —

२. — — ⏑ — — भगवा(न्*) मुनीन्द्र(:*) ॥ [१*]
जयत्यशेष-क्षितिपाल-मूलि-
मालामणि-द्योतित-पादपीठ(:*) (।*)
⏑ — ⏑

३. [पाद]-प्रणतोत्तमांग(:*)
श्री-देवखड्गो नृपतिर्ज्जितारि: ॥ [२*]
ज्ञाटल्योद्यानिका-तरला-सं[व(ब)द्ध*] — — — —

४. [महा]देवी-श्री-प्रभावत्या भुज्यमानक-पाटक-द्वयं मन्तरीको-
[शु]भं सुका(क) या भुज्य(मानक*) — —

५. [ट*]क(:*) कोदारवोरके श्रीमित्रावल्यां सामन्त-वण्टियोकेन भुज्य-
मानकद्व्यर्ध-[पाटक:*] – –

६. [रे]लतलके श्री-नेत्रभटेन भुज्यमानक-द्व्यर्ध-हाटक(:*) परानाटन-
नादर्वमि – – –

७. त्पल-गर्भे(र्भे) दश-द्रोणवापा शिवह्लदिका शोग्गवर्गे नर्तकी अर्धपाटक,
– – –

८. ······ श्रीमेते श्रीमणान्तरेण भुज्यमानक(:*) महत्तर-शिखरादिभिः
कृष्यमा[णक*]–

९. [प*]ाटक(:*) विहार-वास्तु-द्वयञ्च रोल्लवायिका-उग्रवोरके वन्द्य
ज्ञानमतिना – – –

१०. क-पाटक(:*) सीसनाद-जयदत्त-कटके द्रोणिमठिकायां पाटक(:*)।
इ[त्येते*]–

११. षु पाटकेषु वंश-द्रोणाधिकेषु समुपगत-विषयपती[न्]कुटुम्वि(म्बि)नश्च
समा[ज्ञापयति ।*]

१२. [वि]दितमस्तु भवतां(ताम्) (।*) एते दशद्रोणाधिक-नव-पाटका यथा–
भुञ्जनाद[पनीय*]

१३. राजराजभट्ट(ट)स्यायुष्क मार्थ(र्थम्) आचार्य-वन्द्य-संघमित्र–पादै(:*)
कारि[त*]

१४. – – विहार-विहारिका-चतुष्टयमेकगण्डीकृतं तद्विषय–
पत्यादिभिः [कुटम्बभिश्च]

१५. [निर्विवादै*]र्मवितव्यमिति (।।*) सम्वत् १०(+*)३ वैशाख-दि १०
(+*)३(।।*)

आयुश्चलं

१६. ⏑⏑⏑–⏑⏑–⏑––

पुण्यं च सर्वंगति-दुःख-भयापहारि (।*)

भूमेश्च दानमि ⏑–⏑⏑–⏑

१७ वुध्वा(बुद्ध्वा)

भोगीश्वरैः सकरुणैः प्रतिपालनीयम् ।। [३*]

दूतको(ऽ*)त्र परम[सौ][गत*] – – –

१८. [लि]खितं जय-कर्मान्त-वासके परमसौगतोपासक-पूरदासे[ने][ति*](।।*)

३९

पृथिवीविग्रह भट्टारक का सुमण्डल-दानपत्र

गुप्त सं० २५० (=५६९ ई०)

प्राप्तिस्थल : उड़ीसा के गञ्जाम जिले का सुमण्डल नामक स्थल ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : उत्तरी वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी ।

छन्द : १-४ : श्लोक (अनुष्टुभ्) ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, इ० आई०, २८, पृ० ७९ अ०; स० इ०, पृ० ४९० अ० ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१. १॰ स्वस्ति (।*)चतुरुदधिमेखलायां सप्तद्वीप-पर्व्वत-सरित्पत्त[न*]—
२. भूषणायाम्व(यां व)सुन्धरायाम्व(या व)र्त्तमान-गुप्त राज्ये वर्ष शत-द्वये
३. पञ्चाशदुत्तरे कलिङ्गराष्ट्रमनुशासति श्री-पृथिवीविग्रह-
४. भट्टारके तत्पादानुध्यातः पद्मखोल्यां महाराजोभयान्वयो
५. व (ब) प्पदेव्यामुत्पन्न-तनुः सहस्ररश्मि-पाद-भक्तो महाराज-धर्म्मरा-
६. जः कुशली परक्खलमार्ग्ग-विषये वर्त्तमान-भविष्यत्साम[न्त]-
७. महाराज-राजपुत्र-कुमारामात्त्यरोपरिक-तदायुक्तक-दाण्डवासिक-स्थान[ा]-
८. न्तरिकानन्याङ्श्च(न्यांश्च)वल्लभजातीयान्राज-पादोपजीविनो व्य[व]
ङ्श्च
हारिविषे(ष)
९. यिकाङ्श्च(कांश्च) यथार्हम्मानयत्यादिशति च (।*) विदितमस्तु वो य[थ]ा
१०. स्माभिः माघ-कृष्णस्यैकादश्यामुत्तरायने एतद्विषय-सं
११. [ट्टिव्टा द्धी]कमुण्डाकग्रामश्चन्दनवाटक-सहितो(ऽ*)ग्रहारीकृत्य होम्व
(म्ब)काग्र-
१२. हारीय-ब्राह्मणोपाध्याय-मटूस्वामि-प्रमुखानां नाना-गोत्र-चरणा-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१३. नां वृत्ताद्ध्ययनवतां ब्राह्मणानां(ना)माचन्द्रार्क्क-सम-काल-स्थित्या
ताम्र-[प]-

१४. ट्टाभिलिखितः सर्व्व-कर-पीडा-वर्ज्जितः सोद्देशः सोपरिकरः मा[ता]-
१५. पित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये प्रतिग्रहेण प्रतिपादितः (।*)
१६. तदेषास्मद्दत्तिर्द्धर्म्म-गौरवात्परिपालनीयेति । उक्तञ्च धर्म्म-
१७. शास्त्रे ।

व(ब)हुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभिः (।*)
यस्य यस्य य-
दा भूमिस्तस्य तस्यतदा फलं(लम् ।)

१८. षष्टिम्व(ष्टिं व)र्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१९. भूमिदः (।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरकं(के) वसेत् ।(।*) २
मा भूदफ-
ल-शङ्का वः पर-दत्तेति पार्थिवाः (।*)

२०. स्व-दानात्फलमानन्त्यं पर-दा-
नानुपालनं(ने) ।(।*) ३

२१. स्वदत्तां पर-दत्ताम्बा(त्तां वा) यो हरेत वसुन्धरां(राम्) ।
स्व-विष्ठा-

२२. यां कृमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ।(।*) ४
लिखिताधिकरणि-

२३. क-द[ा]सुकेन । लक्षणस्वामिना

२४. तापितमिति ॥

परिशिष्ट (अ)

नालन्दा से प्राप्त कुछ लघु मुहर-लेख

नालन्दा-स्थल

आधुनिक बिहार राज्य के नालन्दा नामक सुप्रतिथ प्राचीन बौद्ध स्थल पर कुछ सर्वेक्षण कार्य कनिंघम ने १९वीं शती में किया था। तदुपरान्त इसके उत्खनन में, जो विशेष रूप से १९१५-३७ ई० में क्रमशः स्पूनर तथा हीरानन्द शास्त्री आदि के निर्देशन में किया गया, सहस्रों मुहर-छापें तथा अनेक अभिलेख मिले। नालन्दा बिहार-शरीफ नामक स्थान से सात मील दक्षिण-पूर्व की ओर है। इसकी पहिचान आधुनिक बड़गांव नामक ग्राम से की जाती है क्योंकि १५०८ ई० में पण्डित हंससोम द्वारा लिखित 'पूर्वदेश चैत्य परिपाटी' नामक ग्रन्थ में बड़गांव को नालन्दा का तत्कालीन नाम बताया गया है। नालन्दा का उल्लेख प्राचीन बौद्ध और जैन साहित्य में मिलता है।[1] 'महासुदस्सन जातक' में नालग्राम (नालन्दा) को बुद्ध के शिष्य सारिपुत्त की जन्मभूमि बताया गया है। आनुषंगिक रूप से ध्यान दिलाया जा सकता है कि नालन्दा का सही नाम 'नालन्दा' ही है। पी० एल० गुप्त (गुप्त साम्राज्य, सर्वत्र) आदि कुछ इतिहासकार इसे 'नालन्द' लिखते हैं, परन्तु यहाँ से प्राप्त मुहरों पर इसे स्पष्टतः नालन्दा कहा गया है और 'नालन्दायाम्' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि इसका नाम आकारान्त था।

फा-शियेन (फा-हियेन) नामक चीनी यात्री ने, जो पांचवीं शती ई० के आरम्भ में भारत आया था, नालन्दा को 'नाल' कह कर पुकारा है और मात्र एक गांव बताया है। स्पष्टतः उस समय तक नालन्दा की ख्याति एक शिक्षा-केन्द्र के रूप में नहीं हुई थी। इसके उत्खनन से भी ऐसी पुरातात्त्विक सामग्री तथा कोई ऐसा अभिलेख नहीं मिला है जिसे प्रथम कुमारगुप्त से प्राचीनतर माना जा सके। अतः डी० आर० पाटिल[2], जे० एन० समद्दार[3] आदि मानते हैं कि नालन्दा महाविहार का निर्माण पांचवीं शती ई० के मध्य ही प्रारम्भ हुआ था। एस० सी० रे[4] तो इसे गुप्तकाल में भी महत्त्वपूर्ण स्थल नहीं मानते। इसकी महानता का सर्वोत्तम युग सातवीं शती ई० से लेकर (जब युआन-च्वांग ने इसे एक विशाल विश्वविद्यालय के रूप में पाया) देवपाल तक माना का सकता है। इसके बाद यह बारहवीं शती तक—जब इसे मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने विनष्ट किया—फलती-फूलती अवस्था में रहा।

नालन्दा से प्राप्त मुहरें तथा अभिलेख

नालन्दा से सहस्रों की सख्या में मुहरें तथा अभिलेख मिले हैं। यहां से प्राप्त कुछ महत्त्वपूर्ण अभिलेखों का (जैसे, समुद्रगुप्त का नालन्दा-दानपत्र) अध्ययन हमने अपने ग्रन्थ 'गुप्तकालीन अभिलेख' (मेरठ, १९८४) में किया है तथा

---

१. सन्दर्भों के लिये दे०, डी० आर० पाटिल, एण्टिक्वेरियन रिमेन्स ऑव बिहार, पटना, पृ० ३००-३५; द्र०, जे० बी० आर० एस०, ३०, १९४४, 'दि यूनिवर्सिटी ऑव नालन्दा' नाम का लेख, पृ० १२६-५९; 'सिग्नीफिकेन्स ऑव नालन्दा सीलस', आई० एन० सी०, ४, भाग २, पृ० १३५-४६; भरतसिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भूगोल, पृ० २२५-८।

२. पूर्वो०, पृ० ३०२।

३. ग्लोरीज़ ऑव मगध, पृ० ९९।

४. पी० आई० एच० सी, १९५४, पृ० ७८ अ०।

यशोवर्मा के लेख का इसी ग्रन्थ में अन्यत्र। पालयुगीन नालन्दा अभिलेख इस ग्रन्थ की काल सीमा से परे हैं। जहाँ तक लघु मुहरों का प्रश्न है, वे वस्तुतः मुहर छापें हैं—मुहरों के सांचे या ठप्पे केवल दो ही मिले है। पर हम इन्हें भी सुविधा के लिये मुहरें ही कहेंगे। ये गुप्तकालीन भी हैं, गुप्तोत्तर काल की भी तथा पाल आदि नरेशों की समय की भी। लेकिन इनको कालक्रमानुसार अलग-अलग वर्गीकृत करना सम्भव नहीं है क्योंकि ये प्रायः इतनी छोटी हैं कि इनकी तिथि का निर्धारण सिवाय लिपि के किसी अन्य आधार पर नहीं किया जा सकता—केवल उन राजकीय मुहरों को छोड़ कर जिन पर राजाओं के नाम लिखे हैं—परन्तु लिपि के आधार पर इन सब की तिथियाँ निर्धारित करना असम्भव है क्योंकि इन मुहरों में कुछ के ही चित्र उपलब्ध हैं, शेष का केवल मूलपाठ ही अब तक प्रकाशित हुआ है। दूसरे, मात्र लिपि की सहायता से यह निश्चित करना असम्भव है कि कोई मुहर छठी शती की है या सातवीं की, अथवा यशोवर्मा के समय की है या गोपाल के समय की। इसलिये हमने यहां कुछ महत्त्वपूर्ण मुहरों को उसके विषय के अनुसार वर्गीकृत कर दिया है—केवल राजाओं की मुहरों को उनके अभिलेखों के साथ रखा है।

नालन्दा बौद्ध धर्म तथा शिक्षा का एक महान् केन्द्र था, इसलिये यहां से प्राप्त बहुसंख्यक मुहरें बौद्ध संघ से सम्बन्धित हैं। शेष में कुछ ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं, कुछ धर्म-निरपेक्ष हैं, कुछ जानपद मुहरें हैं, कुछ ग्रामों की हैं, कुछ व्यक्तिगत हैं, कुछ विभिन्न अधिकरणों और कुछ अधिकारियों की हैं तथा कुछ राजकीय है। बौद्ध मुहरों पर प्रायः धर्मचक्र तथा हिरण आदि बने मिलते हैं और बौद्धेतर मुहरों पर गजलक्ष्मी, मंगलकलश, पादुका, शंख, त्रिशूल, वेदी, ध्वज, वृषभ, सिंह, सूर्य, चन्द्र आदि। राजकीय मुहरों में गुप्त सम्राटों (नरसिंहगुप्त, द्वितीय कुमारगुप्त, बुध-गुप्त, वैन्यगुप्त तथा विष्णुगुप्त) की मुहरों के अतिरिक्त बंगाल के समाचारदेव, चन्द्रवंशी नरेशों तथा पाल सम्राट् देवपाल की, कन्नौज के मौखरियों की एवं कामरूप के भौम नरेशों की मुहरें सम्मिलित हैं। प्राक्-गुप्तयुग की न तो कोई मुहर मिली है और न अभिलेख। इस सभी में संस्कृत भाषा तथा उत्तरी वर्ग की ब्राह्मी अथवा प्रारम्भिक नागरी लिपि का प्रयोग हुआ है। इन्हें पृष्ठभाग पर मजबूत धागे से बांधा जाता था जिसके चिह्न अब तक प्रायः मिलते हैं। कुछ पर कपड़े या ताड़पत्रों से बांधे जाने के चिह्न भी हैं।

नालन्दा से प्राप्त लघु मुहरें हीरानन्द शास्त्री ने एम० ए० एस० आई०, ६६ (१९४२) में प्रकाशित की हैं। राजकीय मुहरें इस ग्रन्थ में भी प्रकाशित हैं और कुछ का पुनर्प्रकाशन अथवा प्रथम बार प्रकाशन आई० एच० क्यु० तथा इ० आई० जैसी पत्रिकाओं में हुआ है। उनका निर्देश यथास्थान कर दिया गया है।

बौद्ध संघ से सम्बन्धित मुहरें

नालन्दा से प्राप्त मृत्तिका मुहरों में बौद्ध संघ से सम्बन्धित मुहरों की संख्या सर्वाधिक है। अकेले विहार सं० ९ के एक कमरे से ६९० मुहरें मिली थीं। ये नालन्दा के विभिन्न विहारों और संघों की हैं। इन पर प्रायः धर्मचक्र और हिरण का अंकन मिलता है। बहुतों पर लिखे लेख अतीव सुन्दर लिपि में हैं। कुछ पर अति सूक्ष्म आकार में मन्त्रादि लिखे हैं। कुछ पर बोधिसत्वों की प्रतिमायें बनी हैं। शायद इन्हें यात्रियों को प्रसाद रूप में वितरित किया जाता था। महाविहार की मुहरों के कुछ नमूने इस प्रकार हैं (कोष्ठ में शास्त्री द्वारा प्रदत्त संख्या दी गई है):—

१. (एस० आई० १००५, फलक २ सी)

१. श्री नालन्दा-मूल-नव-

२. कर्म्मवारिक-भिक्षूणाम्

२. (एस० आई० ३१०)

१. श्री नालन्दा-महाविहार

२. [गुणाकर]-बौद्ध भिक्षूणाम्

३. (एस० आई० ६१६)
१. श्री नालन्दा-च-
२. तुर्भगवत् (द्) [आ]
३. सन-वारि
४. क भिक्षूणाम्

४. (एस० आई० ६७५, फलक ३ ए)
१. श्री नालन्दाय (यां)-श्री
२. बालादित्य-गन्धकु-
३. ड़ी-भिक्षूणाम्
(यह विहार नरसिंहगुप्त बालादित्य द्वारा निर्मित विहार रहा होगा)

५. (एस० आई० ६३८)
१. श्री-नालन्दा-चातु-
२. र्दिर्दशिक-समवारिक-
३. भिक्षु-संघस्य

६. (एस० आई० १०४६)
१. श्री-नालन्दा-महा-
२. विहारिकार्य-भि-
३. क्षु संघस्य

७. (एस० ६, आर० १५)
१. श्री हरिवर्म्म-महावि-
२. हारीय-आर्यभिक्षू स-
३. ङ्घस्य

(क्या यह विहार हरिवर्मा मौखरि ने बनवाया था ?)

कुछ मुहरें दो छापों के रूप में हैं। दूसरी छापे में किसी देवी या देवता की मूर्त्ति के साथ प्रायः किसी ग्राम का नाम है । यथा—

८. (एस० आई० ३४८ फलक ३ एफ)
दाहिनी ओर
१. श्री-नालन्दा-महाविहारे-च-
२. तुर्द्दिदशार्यभिक्षु संघ-
३. स्य
बांई ओर
१. पादपाग्रामस्य

(अन्य कुछ मुहरों में दूसरी छाप में 'सेवथिक ग्रामस्य,' 'नन्दन ग्रामस्य', 'तटाक ग्रामस्य,' 'वेताल 'ग्रामस्य,' 'कालवीनाक ग्रामस्य' आदि लेख हैं।

जानपद मुहरें

नालन्दा से १३ जानपद मुहरें मिली हैं। इनमें जानपद को ग्राम से उच्चतर संस्था माना गया है तथा दो में

इनका नालन्दा से सम्बन्ध बताया गया है। क्योंकि इनमें एक में जानपद को विहार में स्थित कहा गया है, इसलिये जानपद से आशय किसी संस्था से होगा न कि ग्रामवासियों से।

६. (एस० ६, आर १६, फलक ४ आई०)
१. श्री-नालन्दा-प्रतिव (ब) द्ध-मं
२. नयिका-ग्राम-जानपद–
३. स्य

१०. (एस० ६, आर० १४४, फलक ५ ए)
१. श्री-नालन्दा-प्रतिबद्ध-आ
२. ङ्गामि-ग्राम-विहार-
३. स्य-जानपदस्य

(इस मुहर से स्पष्ट है कि आङ्गामि ग्राम का जानपद विहार में स्थित था, इसलिये यहां जानपद का तात्पर्य निगम या पंचायत जैसी संस्था से होना चाहिये। एन० पी० चक्रवर्ती ने आङ्गामि नाम को 'भूतिका' पढ़ा है)।

११. (एस० ६, आर० ६२, फलक ५ सी)
१. पञ्चमुटिका-
२. जानपदस्य

(अन्य जानपद मुहरों पर पञ्चमुटिका के स्थान पर पुरिका, उदुम्बस्थान, दण्ड, चान्दकेय, अलीकपृष्ठ, नवाको आदि ग्रामों के नाम लिखे हैं)।

अधिकरणों तथा अधिकारियों की मुहरें

नालन्दा से अनेक अधिकरणों(=कार्यालयों या न्यायालयों) और अधिष्ठानों (=नगर-केन्द्रों) की मुहरें प्राप्त हुई हैं जिनमें ग्राम, नय (=परगने जैसे प्रशासनिक इकाई), विषय (=जिले जैसी प्रशासनिक इकाई), मण्डल (सम्भवतः विषय से बड़ी इकाई), और भुक्ति (=प्रान्त जैसी इकाई) के अधिकरण सम्मिलित हैं। 'अधिकरण' शब्द गुप्त काल में कार्यालय अर्थ में भी प्रयुक्त होता था और न्यायालय अर्थ में भी (दे०, 'मृच्छकटिकम्')। नालन्दा से निगमों, श्रेष्ठियों, सार्थवाहों तथा कुलिकों की मुहरें नहीं मिली हैं। इस वर्ग की यहां से प्राप्त मुहरों में राजवैश्यों और 'हट्टमहाजनों' की मुहरें उल्लेख्य हैं। 'युवराज', 'तरवर' तथा 'बलाधिकृत' का उल्लेख भी नालन्दा मुहरों में नहीं हुआ है, लेकिन 'कुमारामात्य' का हुआ है। अधिकरणों और अधिकारियों की कुछ उदाहरणीय मुहरें निम्नलिखित हैं :—

१२. राजगृहे विषयाधिकरणस्य (एस० आई० ७६४)
१३. संघ-नय-प्रतिष्ठित-राजगृह विषयस्य (एस० आई० ६८७)
१४. राजगृह विषये पिलिपिन्का नयस्य (एस० आई० ८२३)
१५. गया विषयाधिकरणस्य (एस० आई० ८२६)
१६. गया विषयस्य (एस० आई० ८२५)
१७. गयाधिष्ठानस्य (एस० आई० ८२८)
१८. शोणान्तराल विषय अधिकरणस्य (एस० आई० ६० (यहाँ शोणान्तराल से तात्पर्य गंगा और सोन के मध्य स्थित विषय से लगता है। तु०: आधुनिक शब्द 'सरयूपार')
१६. मगधभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य (एस० आई ७६८)
२०. नगरभुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य (एस० आई ७६७)
२१. धर्माधिकरणस्य (एस० आई० ६६६)

२२. श्री शीलादित्य धर्माधिकरणस्य (एस० आई० ६४४)
२३. दक्षिणगिरौ पश्चिम स्कन्धे सप्रधान विषयस्य (एस० आई० ८००)
२४. कुमिला विषये कावा (अथवा चा ?) ल ग्रामे विषय महत्तम नरस्वामिनः (एस० आई० ८२४)
२५. कुमिला विषये सप्रधानस्य (एस० आई० ३४६)
२६. वल्लादिधीय-हट्ट-महाजनस्य
२७. वल्लादिधीय ग्रामस्य
२८. वल्लादिधीय ब्राह्मणानाम्
२९. वल्लादिधीय अग्रहारस्य (एस० आई० ८३०)
३०. वल्लादिधीय राजवैश्यानाम् (एस० आई० ६७३)
३१. श्रीमान्—नव—कर्मठानाम् (?) त्रैविद्यस्य
३२. वण्टाग्रहार-वटक-ग्रामाग्रहार-त्रैविद्यस्य (एस० आई० ८०६)
३३. सुचण्डादकीय ग्राम मुद्रेयम् (एस० ९, आर० ६)
(इससे सिद्ध है कि ग्रामों की अपनी पृथक् मुद्रायें भी होती थीं)
३४. श्रावस्ती भुक्तौ-नयाधिकरणस्य (एस० आई० ८२१)
३५. महाभाण्डारिक-श्री-भद्रभानोः (एस० आई० ९३८)
३६. – – – धिकारि-ग्रामे-वशिष्ठ-स्थानस्य (एस० ६, आर० १८)
(हीरानन्द शास्त्री ने यहाँ 'स्थान' को 'पुलिस थाना' अर्थ में लिया है)
३७. श्री पुरिकाग्रहारे श्रीमत्-त्रैविद्यस्य

नालन्दा से तीन मुहरें ऐसी भी मिली हैं जिनमें उच्चपदाधिकारियों का नाम से उल्लेख है। इनमें दो में उस मुद्रा को लक्ष्म कहा गया है:—

३८. विजितारातिगणस्य न्यायवतो राजवृत्ति निपुणस्य।
स्वगुणाभरणस्य श्री पशुपतिसिंहस्य लक्ष्मेदम्॥
(शत्रुगण का विनाश करने वाले, न्यायशील, राजवृत्ति में निपुण, अपने गुणों से अलंकृत श्री पशुपतिसिंह की यह मुद्रा है—एस० आई० ६८७, ८४२ तथा ८४०)।
३९. श्री सागरसिंहस्य
(शास्त्री ने इसे 'श्री सागरामात्यः' पढ़ा है)।
४०. विजितारातिगणस्य न्यायवतो राजवृत्ति निपुणस्य।
स्वगुणाभरणस्य श्री देवसिंहस्य लक्ष्मेदम्॥
(एस० आई० ७९५, ८१५)

व्यक्तिगत मुहरें

नालन्दा से बहुत से नागरिकों की व्यक्तिगत मुहरें भी मिली हैं। इनमें कुछ पर एक से अधिक नाम भी मिले हैं। किसी-किसी छाप पर पाँच-पांच नाम भी हैं। इनमें बहुतों को शोभा-प्रतीकों से अलंकृत किया गया है। ऐसी मुहरों की संख्या बहुत अधिक है। नीचे कुछ उदाहरणस्वरूप उल्लिखित हैं:—

४१. उदयेन्द्रकविः (एस० आई० ३३७)
४२. अमरसेनस्य (एस० आई० ३७८)
४३. श्री कुमारसेन (एस० आई० १०१)

४४. श्री शक्रायुधदेव (एस० आई० ६८७)

४५. स्थ भानुदेवस्य (स्थ=स्थविर)

४६. श्री यशोवर्म्मदेवः (एस० आई० ६८१, फलक ७ आई०—क्या यह कन्नौज-नरेश यशोवर्मा की मुहर है ?)

४७. श्री आदित्यसेन (७६६; इस नाम का नरेश परवर्ती-गुप्त वंश में मिलता है)।

४८. श्री इज्जादेवी (एस० आई० ७०१ ए, फलक ७ जे०—यह मुहर किसी स्त्री की होने के कारण उल्लेखनीय है क्योंकि स्त्रियों की मुहरें विरलतः ही मिलती हैं)।

परिशिष्ट (आ)

वैशाली से प्राप्त कुछ लघु मुहर-लेख

प्राचीन उत्तरी बिहार के सुप्रसिद्ध नगर वैशाली (आधुनिक बसाढ़) से गुप्त तथा गुप्तोत्तर कालों की अनेक मुहरें प्राप्त हुई हैं। ये प्रायः सभी गोलाकार हैं। इनमें उपरले भाग में प्रायः कोई प्रतीक बना मिलता है (जैसे चक्र, पूर्णकलश, शंख, वेदिका, विष्णुपद, गजलक्ष्मी आदि)। बौद्ध प्रतीकों का अभाव-सा है। मुहरों के निचले भाग में लेख लिखे हैं। इन मुहरों से स्पष्ट है कि गुप्तकाल व गुप्तोत्तर काल में यह प्रदेश तीरभुक्ति कहलाता था। उसी से परवर्ती तिरहुत नाम बना। वैशाली इसका प्रधान नगर था। वैशाली की मुहरें ज्यादातर प्रशासनिक हैं। कुमारामात्याधिकरण, बलाधिकरण, रणभाण्डागाराधिकरण आदि कार्यालयों तथा बड़े-बड़े पदाधिकारियों का इनमें प्रायः उल्लेख मिलता है। इनके अलावा वैशाली से व्यापारियों, श्रेष्ठियों, कुलिकों, सार्थवाहों, निगमों आदि की मुहरें भी मिली हैं। इस दृष्टि से वैशाली से प्राप्त मुहरें नालन्दा मुहरों से भिन्न हैं तथा अनेक दृष्टि से उनकी पूरक मानी जा सकती हैं। वैशाली से राजकीय मुहरें केवल दो मिली हैं––घटोत्कचगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी की। उनकी चर्चा हमने अपने ग्रन्थ 'गुप्तकालीन अभिलेख' में की है।

वैशाली की मुहरें ए० एस० आई० ए० आर० १९०३-४ तथा १९१३–१४ आदि में एवं वा० उपाध्याय के गु० अ० में पृ० २३५-८ पर प्रकाशित हैं। इनके विस्तृत विवेचन के लिये वी० आर० आर० दीक्षितार द्वारा लिखित 'गुप्त पोलिटी' ग्रन्थ भी देखें।

अधिकारियों और अधिकरणों की मुहरें

१. कुमारामात्याधिकरणस्य (३) नं०३
२. युवराजपादीय कुमारामात्याधिकरण (२८) नं०४
३. श्री युवराज-भट्टारक–पादीय कुमारामात्याधिकरणस्य (१२) नं०६
४. श्री परमभट्टारकपादीय कुमारामात्याधिकरण (१) नं० ८
५. युवराज भट्टारकपादीय बलाधिकरणस्य (१) नं० १२
६. श्री रणभाण्डागाराधिकरणस्य (३) नं० १३
७. दण्डपाशाधिकरणस्य (३) नं० १३
८. महाप्रतिहार तरवर विनयशूरस्य (१) नं० १६
९. महादण्डनायक अग्निगुप्तस्य (१) नं० १७
१०. भटाश्वपति यक्षवत्सस्य (१) नं० १८
११. तीर-कुमारामात्याधिकरणस्य (६) नं० २२
१२. वैशाली नाम-कुण्डे कुमारामात्याधिकरणस्य
१३. तीर भुक्त्युपरिकाधिकरणस्य (२) नं० २०
१४. तीरभुक्तौ विनय स्थिति स्थापकधिकरणस्य (२) नं० २१

श्रेणियों, परिषदों तथा निगमों की मुहरें

१५. श्रेष्ठि–सार्थवाह–कुलिक–निगम (२७४) नं० २९
(निगम की मुहर के साथ निम्नलिखित व्यक्तियों की छापें मिली हैं जो निगम के पदाधिकारी रहे होंगे)।

१६. ईशानदासस्य (७५)

१७. मातृदास (३८)

१८. गोस्वामि (३७)
(ये बड़े-बड़े जगहों में निगम के पदाधिकारी रहे होंगे। घोष, हरिगुप्त, भवसेन आदि की मुहरों की छापें कम संख्या में मिली हैं, वे अनुमानतः छोटे पदाधिकारी रहे होंगें)।

१९. श्रेष्ठि-कुलिक-निगम
(एक निगम-मुहर के साथ युवराजपादीय कुमारामात्याधिकरण की मुहर लगी है।)

२०. उदनकूपे परिषदः (३) सं० २४

धार्मिक मुहरें

२१. श्री विष्णुपद स्वामिनारायण (नं० ३१)

२२. जितं भगवता (नं० ३३)

२३. नमः पशुपतेः (नं० ३९)

२४. अम्रताकेश्वर (नं० ३०)

व्यक्तिगत मुहरें

२५. कुलिक भगदत्तस्य
(ऐसी २८ मुहरें मिली हैं जिन पर गौरीदास, अग्रसेन आदि कुलिकों के नाम लिखे हैं)

२६. श्रेष्ठि सार्थवाह (सहित ५० व्यक्तिगत नाम)

२७. कुलिक सार्थवाह (सहित २७ व्यक्तिगत नाम)

२८. वैशाल्याधिष्ठानाधिकरणस्य (सहित १५ व्यक्तिगत नाम)

२९. श्रेष्ठि कुलिक निगम (३) नं० २८

३०. कुछ मुहरें ऐसी हैं जिन पर किसी व्यक्ति का मात्र नाम लिखा है, उसके पेशे या पद का उल्लेख नहीं है। यथा—अजपाल, आर्यभट, आर्यनन्दि, भवदेव, हरिदास, चक्रदास, हरिगुप्त, आदि।

४०

मथुरा से प्राप्त एक तिथिविहीन खण्डित मौर्य-अभिलेख

प्राप्तिस्थल : मथुरा नगर के कटरा केशवदेव में १९५४ ई० में प्राप्त।

भाषा : संस्कृत। मंगलवचन व उत्कीर्णक के नाम को छोड़कर सम्पूर्णतः पद्य में।

लिपि : सातवीं शती के उत्तरार्द्ध या आठवीं शती ई० की ब्राह्मी जो उत्तरी भारत के पश्चिमी प्रदेशों में प्रचलित थी।

छन्द : १, ५ : अनुष्टुभ्; २–४ : शार्दूलविक्रीडित।

लेख-सार : यह लेख एक खण्डित पाषाण पर, जो २३ ३/४" ऊँचा है और दोनों ओर से टूटा हुआ है, लिखा है। पाषाण खण्ड की चौड़ाई अनियमित है। लेख के उपलब्ध भाग में १५ पंक्तियाँ हैं। लेख के शुरु में किसी देवता की स्तुति थी। दूसरे श्लोक में उस राजकीय व्यक्ति का उल्लेख था जिसके धर्म-कार्य को लेखबद्ध करना इस अभिलेख का उद्देश्य है। इसमें एक मौर्यवंशोत्पन्न नरेश कृष्णराज की चर्चा है और तदनन्तर चन्द्रगुप्त के पुत्र आर्यराज की। लेख के उपलब्धांश में यह स्पष्टतः तो नहीं कहा गया है परन्तु ऐसा लगता है कि यहां चन्द्रगुप्त को कृष्णराज के वंश में उत्पन्न बताया गया है। इसके बाद डिण्डिराज उर्फ कर्क का उल्लेख है जिसे सम्भवतः आर्यराज का पुत्र कहा गया है। डिण्डिराज को ही सम्भवतः कान्यकुब्ज को जलाने का श्रेय दिया गया है। तीसरे श्लोक में शायद डिण्डिराज के पुण्यकार्य का वर्णन था। चौथे श्लोक में स्तुति है और पाँचवें में प्रशस्ति के रचयिता का नाम (शायद बालसेन) दिया गया है। अन्त में लेख के उत्कीर्णक का नाम था जिसका 'करणिक' अंश पढ़ा जा सकता है।

महत्त्व : इस अभिलेख का महत्त्व इसमें अब तक अज्ञात एक मौर्य वंश के उल्लेख के कारण है। इसके उपर्युक्त राजा अन्य किसी साक्ष्य में चर्चित नहीं मिलते। इन राजाओं में एक का नाम चन्द्रगुप्त होना रोचक है और साम्राज्यिक मौर्य वंश के संस्थापक के नाम का स्मरण दिलाता है। मौर्यों की एक अन्य शाखा तत्कालीन युग में कोंकण में मिलती है (दे०, द्वितीय पुलिकेशी का ऐहोले-लेख और अनिर्जितवर्मा मौर्य का बण्डोरा-अभिलेख) और तीसरी राजस्थान में जिसमें सुप्रसिद्ध राजा धवलात्मन हुआ (दे०, पूर्वपीठिका 'अ')।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, इ० आई०, ३२, पृ० २०७–१२।

मूलपाठ

१. ··········॥सिद्धम् न [मः।] कालाञ्जन-रजः-पुञ्ज-द्युत [ये]···

२. ··········[।*] [म*] हावराह-रूपाय जङ्गमा [य]···

३. ··········[॥१*] [आस्*] [ो]न्मौर्य नृपान्वये नरपतिः श्री कृष्णराज् [ो]—

४. ··········दार्यराज-नृपतिः श्री चन्द्रगुप्तात् [म्] ा–[।*]

५. ··········[तु] ि[ड]ण्डिराज इति यः कर्क्कः प्र– –

६. ··········ह्य [च] कान्याकुब्ज (ब्ज) मजयं यो भाणि–

७. ··········[॥२*]··········निर्म्मल-महापुण्याव्यवच्छि [त]– –

८. ········ [त्त] महता मूल्येन यत्-कारितं (तम्) ।
स्या [द]– – –

९. ·········[शौ] रेः शिरो वेष्टितुं मालाका·········

१०. ·········[ल]ब्ध (ब्ध) व्यमव्याहतं (तम्) । [।३*]
भास्वान् याव [द] – –

११. ·········शिरोभूतिर्भूषयितुं भवत्यति सिता य [ा]······

१२. ··· ···व (ब) [न्ध] नं महदिद [ं] स्व
[श्रेय] से नि·········

१३. ··· ···[ति] दिनं तावत्समारो ·····[।।४*]·····

१४. ·········ल्लक स् [ ] न् [ ] ना [।*] रचिता
वा (बा) ल [से] ·····

१५. ·········[।।५*] [उत्कीर्ण्णा] करणिक······[।।*]

४१

पौरव-नरेश द्युतिवर्मा का तालेश्वर-दानपत्र

वर्ष : ५

प्राप्तिस्थल : उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जिले का तालेश्वर स्थल।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : छठी शती की उत्तर भारतीय परवर्ती ब्राह्मी।

तिथि : पाँचवें वर्ष के पौष मास का तीसवां दिवस।

लेख-सार : पौरव वंश में जो सूर्य और चन्द्र से आविर्भूत हुआ, अग्निवर्मा का जन्म हुआ जो नागदेवता वीरणेश्वर स्वामी का पादानुध्यात था। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी द्युतिवर्मा ने ब्रह्मपुर से दण्ड (=दण्डनायक), उपरिक, प्रमातार, प्रतिहार, कुमारामात्य, पीलूपति, अश्वपति, जयनपति, गञ्जपति, सूपकारपति, तगरपति (=नगरपति), विषयपति, भोगिक, भागिक, दण्डपाशिक, कटुक, विषयप्रधान, कुटुम्बी आदि को पर्वताकर राज्य में सूचित किया कि देवद्रोण्यधिकृत, महासत्रपति त्रातैकाकिस्वामी और अन्य जनों ने उससे अनुरोध किया है कि देवनिकाय को उसके पूर्वज राजाओं से मिले दानशासन, जो ताम्रपट्टों, वस्त्रपटों तथा वृषताप (ताम्र और अन्य धातुओं का मिश्रण) पट्टों पर लिखे हुए थे, आग में जल गये हैं। अतः उनकी नकल जारी करने की कृपा की जाये। इस प्रार्थना को स्वीकार कर यह वृषतापपट्ट जारी किया गया। अभिलेख में उन बहुत से स्थानों का उल्लेख है जो देवनिकाय को दान में प्राप्त थे, परन्तु उनकी सीमा नहीं बताई गई है। दान का दूतक सान्धिविग्रहिक प्रमातार सूर्यदत्त था, इसे दिविरपति विष्णुदास ने रचा था तथा सौवर्णिक अनन्त ने उत्कीर्ण किया था। इस लेख में पौरव वंश का उदय सूर्य और चन्द्र दोनों से बताया जाना रोचक है। यह लेख तत्कालीन युग में दानपत्रों के लेखन, उनके लिये विविध धातुओं के पट्टों के प्रयोग तथा इस दानपत्र का उत्कीर्णन एक सुनार द्वारा किये जाने की चर्चा करने के कारण भी रोचक है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : गुप्ते, इ० आई०, १३, पृ० १०६ अ०; सरकार, स० इ०, २, पृ० २१७-२०।

मूलपाठ

१. स्वस्ति(।।*) पुरन्दरपुर-प्रतिमाद्व्र (द्ब्र) ह्मपुरात्सकलजगन्मूलो [र्व्वी] चक्क्र-महाभार-वहन-[गुणवमन-फणासहस्रस्यानन्त]मूर्त्तेर्भगव[द्वी]र-[णेश्वरस्वामिनश्चरण]-

२. कमलानुध्यातः सोम-दिवाकरान्वयो गो-व्रा (ब्रा)ह्मण-हितैषी श्री-पुरूरवः-प्रभृत्यविच्छिद्यमान-शौ (पौ) रव-राजवंशो (ऽ*)ग्निरिव वैपक्ष-कक्षदहनो [भू]······

३. श्र्यग्निवर्म्मा (।*) तस्य पुत्रस्तत्पाद-प्रसादादवाप्त-राज्य-महिमा-द्युतिमदहितपक्ष-द्युतिहरो विवस्वानिव द्वितीयः परमभट्टारक-महाराजाधि[रा]ज-श्री-

४. द्युतिवर्म्मा कुशली पर्व्वताकरराज्ये (ऽ*) स्मद्वंश्यान्महाराजविशेषान्प्रति-
मान्य दण्डोपरिक-प्रमातार-प्रतीहार-कुमारामात्य-पीलुपत्यश्वपति- ।

५. जयनपति-गञ्जपति-सूपकारपति-तगरपति-विषयपति-भोगिक-भागिक-दा-
ण्डवा(पा)शिक-कटुक-प्रभृत्यनुजीविवर्गं सर्व्व-विषयप्रधानादींश्च

६. प्रतिवासि-कुटुम्वि(म्बि)नः कुशलं पृष्ट्वा समाज्ञापयति विदितमिदमस्तु
वो देवद्रोण्यधिकृत-महासत्त्रपति-त्त्रातंकाकिस्वामिना नय-विनय-श्रुत-वृत्त-

७. सम्पन्नेन परिव्राड्व्र(ड्ब्र)ह्मचारि-गौग्गुलिक-परिषत्सहितेन राज-
दौवारिकाग्निस्वामि-कारङ्किक-वोटा (कोट्टा)धिकरणिकामात्य-भद्रविष्णु-
पुरस्सरेण च

८. देवनिकायेन विज्ञापितं भगवतां सुरासुर-जनद्वन्द्यानन्तमूर्त्ति-वीरणेश्वर-
स्मा(स्वा)मिनाथपादानां व (ब) लि-चरुक-सत्त्र-प्रवर्तन-दधिक्षीरघृत-

९. स्नपन-गन्ध-धूप-प्रदीपपुष्पा (ष्पा)र्च्चन-प्रकार-सम्मार्ज्जनोपलेपन-कृषि-
कर्म्मानुष्ठान-खण्ड-स्फुटितावचटित-पतित-संस्कारार्थं परहितानुष्ठान-

१०. चरितव्रतैर्युष्मत्पूर्व्वजैर्म्महाराजभिरन्यैश्चावनिपतिभिस्तथानेक -धर्म्म-
प्रसव-हेतुभूतैर्द्दत्तिदायकैः स्व-श्रेयसे भूमि-पल्लिका-ग्राम-

११. कर्म्मान्त-विषयास्ताम्रपट्ट-पट-वृषतापपत्रैः अभिलिख्याग्रहाराः प्रतिपा-
दितास्तानि च शासनान्यादीप्तकेन दग्धानि (।*)

१२. कालेन च गच्छता लुब्धाः (ब्धाः) कलिदोषग्रहाविष्टाः केचिदसत्पुरुषा
लेख्यैर्व्विनाक्षेपं कुर्युरिति (।*) तदर्हन्ति भट्टारकपादाः शासना-

१३. नुमतिदानेन यथाभुज्यमान-स्थान-परिमाण-नामान्यभिलेखयितुमिति (।*)
यतो मया देवभक्त्या पूर्व्वराजर्षीणा यशो (ऽ*) र्थ-

१४. मात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये वृषतापशासनमिदं दत्तम् (।।*) यत्र पशुकुला-
वदार-कर्म्मान्त-कोणकलिका-गङ्गाग्रामे गुणेश्वरा

१५ वलदीपकः क्रयकरण-भूमिभाग-सहितश्चोरकटको जम्वू (म्बू)शालिका-
पटल्यन्तर-पर्व्वतक-भाविलान-करवीरकोष्ठा

१६. गक्षीचरणग्रामो (मे) महासालो वुरासिका दन्तवनिकां ज्योराणायां चोर-
पानीयं भग्नानूप-मोड्भायां पुटवनकः

१७. कर्क्कटस्थूणा वञ्जाल्युत्तरगङ्गा कपिलगर्त्ता कोटरवञ्जःशिवमुषीच्या-
पुरी दाडिमिका शिंशपिका दक्षिणं (ण)-पा[र्श्वे]

१८. शरठा-विषयस्ता (स्था) पल्ली करवीरगर्त्ता कोल्लपुरी भेलमस्तकः
कक्कोतायां खण्डाकपल्लिका मम्मदत्तो राजक्यतोली

१९. सृगालखोणको भूतपल्लिका गोग्गपल्लिका वारुणाश्रमः प्रमिलापल्लिका
देवदासतोली नारायण-देवकुलक-मा [ला]-

२०. खानकः श्रीभाचर्प्पटो नङ्गालगर्त्तोत्तर-वासो व्र(ब्र) ह्मपुरे कार्त्तिकेयपुर-
ग्रामकस्समज्जाव्यस्ता(स्था)च भूस्त्र्यम्व (म्ब)पुरे सुवर्ण्णकारपल्लिका[द]-

२१. णुण्णा वृद्धपल्लिका चन्द्रपल्लिका वि (बि) ल्वके जयभटपल्लिका वचा-
करणग्रामो दीपपुर्या वृद्धतरीपल्लिका क्रोडशूर्प्यां वर्द्धकिपल्लिकोष्ट्रल-

२२. मकः कटकमृष्ठी डिण्डिकपल्लिका चतुश्शालो रोहालागलपल्लिका ।
झोरायां माहिरण्यपल्लिका चन्दुलाकपल्लिका भट्टिपल्लिका

२३. कार्त्तिकेयपुरे अतिवलाकपल्लिका विशाखिलपल्लिका अरिष्टाश्रमः
अवलीनकः सकिन्नरायां कोट्टतले पल्लिवाटकस्तुङ्गुल-कर्म्मान्तः

२४. पितृगङ्गातटे शीर्षारण्यः कण्ठारपार्श्वः राजपुत्त्रक ओद्दालकर्व्वटको व (ब)-
हुग्राम-सहित उत्तरापथः पश्चिमद्रोण्यां उदुम्ब (म्ब) र-वासः

२५. गोहट्टवाटकः पुष्पदन्तिका वासन्तीवनकः करवीरिका खोह्णावनको
मल्लवस्तुको मल्लिका शिबककरा मशालिका दण्डवाशिवतो

२६. गोलथलकाश्चेति । तद्युष्माभिरमीषां प्रक्षेप-प्रतिषेधौ न करणीयौ न
चोपद्रवः कुटुम्बि(म्बि)नां कारुकाणाञ्च कर्त्तव्यो य × कुर्यात्स पञ्चमहा-
पातक-[संयु*]-

२७. क्तः स्यादिति । दूतकः सन्धिविग्रहिकः प्रमातार-सूर्यदत्तः (।*) लिखितं
दिविरपति-विष्णुदासे [न] (।*)

२८. उत्कीर्ण्णान्यक्षराणि सौवर्ण्णिकानन्तेनेति । राज्य-सं ५ पौष-दि ३० (॥*)

४२

महासामन्त महाराज समुद्रसेन का निर्मण्ड-दानपत्र

वर्ष : ६

प्राप्तिस्थल : कांगड़ा जिले के कुल्लू क्षेत्र में प्लाच स्थान से इक्कीस मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित निर्मण्ड नामक गांव।

ताम्रपट्ट-वर्णन : एक ही ओर अंकित यह ताम्रपट्ट, जो निर्मण्ड गांव के मन्दिर के परशुराम नामक देवता की सम्पत्ति है, अनियमित आकार का है। इसका सबसे लम्बा भाग १' ६ ३/८" है और सबसे चौड़ा ८ ५/८"। इसके तीन कोने न्यूनाधिक रूप से क्षतिग्रस्त है। ताम्रपट्ट बहुत पतला है और अक्षर गहरे खुदे हैं। ऊपर के भाग में बीच में एक सुराख है जिसमें पहिले छल्ला और उससे टंकित मुहर रहे होंगे। ये अब अप्राप्त हैं।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : उत्तरी वर्ग की सातवीं शती ई० की ब्राह्मी।

तिथि : वर्ष छः, वैशाख मास के शुक्ल पक्ष का ग्यारहवाँ सौर दिवस।

लेख-सार व महत्त्व : यह लेख समुद्रसेन नामक 'महासामन्त महाराज' का है। इसमें उसके इसी उपाधि को धारण करने वाले तीन पूर्वजों—प्रपितामह वरुणसेन, पितामह संजयसेन तथा पिता रविषेण—का उल्लेख है। समुद्रसेन अन्य साक्ष्य से अज्ञात है। उसके द्वारा प्रयुक्त तिथि किसी संवत् की है या उसके अथवा उसके प्रभु के शासन काल का वर्ष, कहना असम्भव है। लेख का उद्देश्य कुछ ब्राह्मणों को, जिन्होंने निर्मण्ड के अग्रहार में अथर्ववेद का अध्ययन किया था, भगवान् मिहिरेश्वर (=शिव) की सेवा के लिये सूलिसग्राम दिये जाने की घोषणा है। मिहिरेश्वर की स्थापना मिहिरलक्ष्मी (समुद्रसेन की माता) द्वारा कपालेश्वर नाम से उसी देवता के पहिले से स्थापित मन्दिर में की गई थी। हमें फ्लीट का यह विचार सही नहीं जान पड़ता कि शिव के मिहिरेश्वर नाम से शिवपूजा का मिहिर (=सूर्य) पूजा से सम्बन्ध संकेतित है क्योंकि यहाँ मिहिरेश्वर नाम 'मिहिरलक्ष्मी के उपास्य देवता' का बोधक है। लेख का महत्त्व इसमें शिव के कपालेश्वर नाम के उल्लेख (जिससे तान्त्रिक शैव धर्म की ओर संकेत मिलता है), इसमें हर्ष संवत् के प्रयोग की सम्भावना तथा इसमें महाराज शर्ववर्मा के उल्लेख (जिसने कपालेश्वर मन्दिर को भूमिदान दी थी) के कारण है। अगर इसका शर्ववर्मा इस नाम का मौखरि नरेश था तो मौखरियों का अधिकार कुल्लू क्षेत्र तक मानना पड़ेगा।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, सं० ८०।

मूलपाठ

१. ·········भिख्यातनरपतिवङ्शजस्समभवच्चतुरूदधिसमतिक्रान्तकीर्त्तिरनेकसामन्तोत्तमाङ्गा-
वनतमुकुटमणिमयूखविच्छुरितचरणारविन्द—

२. युगलः ऋतुयाजी महासामन्तमहाराजश्रीवरुणसेनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः परमदेव्याप् (म्)-
प्रवा (बा) लिकाभट् [ट्*]ारिकायामुत्पन्नः पित्रैव तुल्यो गुणैर्म्म—

३. हासामन्तमहाराजश्रीसञ्जयसेनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातः परमदेव्या शिखरस्वामिनीभट् [ट्*]-
रिकायामुत्पन्नस्समरशतलब्ध (ब्ध) जयस्त्यागी म—

४. हासामन्तमहाराजश्रीरविशेणस्तस्य पुत्रस्तत्प् [ा*]दानुध्यातः परमदेव्यां श्रीमिहिरलक्ष्मीभट्-
[ट्*]ारिकायामुत्पन्नश्शरदमलसकलरजनिकर इव प्राणि—

५. नां समाह्लादनकरस्समुत्खाताशेषरिपुराश्वावतामप्रार्त्थितफलप्रदो दीनानाथातुरदयालुः परममाहे-
श्वरोऽतिव्र (ब्र) ह्मण्यःपरार्त्थ्य् (र्थ्) करतो महासामन्त—

६. महाराजश्रीसमुद्रसेनो जननीश्रीमिहिरलक्ष्म्या धर्म्मार्त्थं भगवतस्त्रिपुरान्तकस्य लोकालोककरस्य-
प्रणतानुकम्पिनस्सर्व्वदुःखत्रयकरो कपाले—

७. श्वरे जननीप्रतिष्ठितस्य श्रीमिहिरेश्वरस्य कपालेश्वरव्व(ब)लिचरुसत् [त्*]रस्नग्धूपदीपि (प)-
दानाय सततं शीर्ण्णखण्डस्फुटितसाधनाय च नि—

८. र्म्मण्डाग्रहाराथर्व्वणव्रा(ब्रा) ह्मणस्तोमाय सूलिसग्रामनववैदिलकर्म्मान्तिवक्खलिककुटुम्वि (बि)-
ना द्वैसभूमीपर्यन्तापरिभूतनाम्ना फक्कश्च तालापुर—

९. ककुटुम्वि (बि) ना द्वैसभूमी सोद्रङ्गा ससीमान्तपर्यन्तासुलभककुटुम्व (ब) दिन्नकुटुम्व (म्ब)श्च ।
कपालेश्वरदेवस्य पूर्व्वप्रतिष्ठायां महाराजशर्व्ववर्म्मेण भूमी दत्ता सूलिसग्रामस्य श्रीमिहि—

१०. रलम्क्ष्या दत्तस्य समौदकजङ्गलभूमीसमेतशेषं सप्रतिवासिजनसमेतं सोद्रङ्ग [*] स्वसीमातृण-
काष्ठप्रस्रवणयूती (ति) पर्यन्तं देवाग्राहारत्वेनाच—

११. न्द्राार्क्कतारासमकालीनं प्रतिपादयति स्म [।।*] विदित्वैतद्राजभिरस्तदाश्र (श्रि) तजनेना-
धिकृतानधिकृतेनहितमिच्छता प्रतिपालनीया [।*] योऽन्यथा कुर्यात्परिपन्थममपह—

१२. रणपीडोपद्रवं वा स पञ्चभिर्म्महापातकैरुपपातकैश्च संयुक्तस्स्यात् ।। उक्तञ्च [।*] वहुभिर्व्वं-
सुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभि [ः*] यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा

१३. फलं [।।*] षष्टि वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः आच्छेता चानुमन्ता च तान्येव नरके
वसेत् [।।*] स्वदत्तां परदत्ताम्वा यो हरेत वसुन्धरां षष्ठिवर्ष—

१४. सहस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमिरिति ।। दूतोऽत्र निहिलपति कुशलप्रकाशश्च । लेखकोऽत्र उद्योत-
र्क्कश्च गणस्रोस्थ [।।*] संवत् ६ खे शु दि १० [।।*]

१५. राष्ट्रसमेतस्या (ये) यं दत्ति [ः*] परिपाल्या ।। ऐ(?)ङ्गि(?)कात्र उद्या (?) न (?) स्थावर-
वादित्रक (?) विश्वस (?) हद्र उपलव

१६. कगललञ्च (?)टिक द्व य (?) मिही(हि)रलक्ष्मि (क्ष्मी) प्रतिपा(ि*)द्त इति [।।*]

४३

शीलादित्य (गुहिल) के काल का सामोली पाषाण-लेख

(विक्रम) सं० ७०३ (=६४६ ई०)

प्राप्तिस्थल : राजस्थान के उदयपुर प्रदेश के भोमट जिले का सामोली स्थान।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : सिद्धमातृका।

छन्द : १ : विषमवृत्त; २, ४-७ : अनिश्चित; ३ : उद्गीति।

अभिलेख-सार : एक महाजन (सामाजिक वर्ग) ने, जिसका नेता जेन्तक था और जो वटनगर से आकर बसा था, अरण्यकूपगिरि में एक आगार (=धर्मशाला जैसा कोई भवन) का निर्माण कराया। महाजन के आदेश पर महत्तर जेन्तक ने वहां अरण्यवासिनी (=दुर्गा) का एक मन्दिर बनवाया। अपनी मृत्यु सन्निकट देखकर जेन्तक ने देवकुल के समीप अग्नि में प्रवेश कर प्राणोत्सर्ग किया।

तिथि : इसमें सं० ७०३ के कार्त्तिक मास का उल्लेख है। दिवस संख्या मिट गई है।

महत्त्व : इस लेख में शील (=शीलादित्य) के शासन का उल्लेख है। वह निश्चय ही गुहिल शीलादित्य है, हर्ष शीलादित्य नहीं। इस लेख से लगता है कि हर्ष के अन्तिम दिनों में मेवाड़ के गुहिल उसके प्रभुत्व से स्वतन्त्र हो गये थे।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : ह्राल्डेर, आर० आर०, इ० आई०, २०, पृ० ९९; सरकार, सं० इ०, २, पृ० ३६०-१; गुहिलज़, ऑव किष्किन्धा, पृ० २७, ३०, ४८-४९।

मूलपाठ

१. १ ॅ नमः ।
पुनातु दिनकृमरीचि-विच्छुरित-पद्म-
पं (प) त्रच्छवि दुरितमाशु श्चण्डिका-पाद-द्व-

२. यं (यम्) ।।
हरे शिखि-शिखाभ-केसर-स्थितमपास्त-
रज[ो] नूपुरामयाः च्छुरित-दिविभाव स-

३. दाः (।।*) [१*]
असुरोर-स्थल (*) शूल-
विनिर्भिन मुद्गिरत्रुधिर-निवहं।
[समा] लोक्य केसरि वहति ति-

४. रश्च(ां*)
चापलमपप्येव भयमुद्विजनिव: ।। [२*]
जयति विजयी रिपूनां देव-द्विज-गुरु
५. जणानन्दी: (।*)
श्री-शीलादित्यो नरपति(:*) स्वकुला(·*)बर-चन्द्रमा(:*)पृथ्वी: ।। [३*]
जयति वट-
६. नगर-विनिर्गत-
महाजनं(नो) जे (न्त*)क-प्रमुखं : ।
येनास्य लोक-जीवनं आगर-
७. मुप्तादितं मारण्य-कू[प]गिरौ: । (।*) [४*]
नाना-दिदेशमागत अष्टादश-वैतालि (क*)-लेक-विख्यात: ।।
८. धन-धान्य हृष्ट-तुष्ट(प्र*) विष्ट-जन-नित्य-संबोधं(धम्) ।। [५*]
एभिर्गुणै युतं तत्र [जेन्त]-
९. क-महतर
श्री-अरण्यवासिन्या देवकुलं चक्रे महाजनादिष्ट (:*) ।।
देवी च प्र[ति]-
१०. ष्ठाप्यं मनुपालयतु [चि] रं:
स च जेन्तक-महतर: आस– –(।।*) [६*]
११. वस्वत-दूता समवे[क्ष्य]
देवुवके सिधायत[ने]······
१२. लनं प्रविष्ट (:*) ।। [७*]
७०० (+*) ३ ।। क[ा]ति[क]-f [दने*]···(।।*)

४४

अपराजित का उदयपुर पाषाण-अभिलेख

(वि० सं०) ७१८ (=६६१ ई०)

प्राप्तिस्थल : मेवाड़ प्रदेश के नागदा स्थल के समीप स्थित कुन्देश्वर मन्दिर से प्राप्त एक पाषाण फलक पर उत्कीर्ण जो अब विक्टोरिया हाल उदयपुर में रखा है।

भाषा : संस्कृत। अन्तिम पद 'नमः पुरुषोत्तमाय' को छोड़कर सम्पूर्ण लेख १३ श्लोकों के रूप में है।

छन्द : १ तथा ३: शार्दूलविक्रीडित; २, ९ तथा १०: स्रग्धरा; ४ : उपजाति; ५ : द्रुतविलंबित; ६ : रथोद्धता; ७ : इन्द्रवज्रा; ८ : शिखरिणी; ११ तथा १२ : श्लोक (अनुष्टुभ्); १४ : आर्या।

लिपि : सातवीं शती ई० की कुटिल अक्षरों वाली उत्तर भारतीय ब्राह्मी।

महत्त्व : यह अभिलेख मेवाड़ के गुहिल वंश के राजा अपराजित के शासन काल का है। अपराजित शील या शीलादित्य (लेख ४२) का उत्तराधिकारी था। इस लेख के प्रथम दो श्लोकों में हरि और शौरि नाम से विष्णु की स्तुति है, तीसरे में गुहिल वंश में अपराजित के जन्म का उल्लेख है तथा चौथे-पांचवें श्लोकों में बताया गया है कि उसने शिव के पुत्र वराहसिंह को अपना सेनापति उसी प्रकार नियुक्त किया जैसे इन्द्र ने शिव-पुत्र स्कन्द को अपना सेनापति बनाया था। छठे से आठवें श्लोकों में उसकी पत्नी यशोमती की चर्चा है जिसने एक विष्णु-मन्दिर बनवाया था। नवें श्लोक में वर्षा ऋतु का वर्णन है तथा दसवें में मन्दिर के शाश्वत रहने की प्रार्थना। ग्यारहवें से तेरहवें श्लोकों में प्रशस्ति के लेखक दामोदर (जो दामोदर नामके ही व्यक्ति का पौत्र बताया गया है) तथा उत्कीर्णक यशोभट की चर्चा है और तिथि दी गई है। के० जी० शंकर का मत था कि इस प्रशस्ति के रचयिता दामोदर के दामोदर ही नाम वाले पितामह को सुविख्यात कवि भारवि के मित्र दामोदर से अभिन्न माना जा सकता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : कीलहॉर्न, एफ०, इ० आई०, ४, पृ० २९; दिसकलकर, सलेक्शन्स फ्रॉम संस्कृत इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १५९-६४।

मूलपाठ

स्पृष्टा वक्षसि लीलया कररुहैः काचित्कचाकर्षणा-
दन्या कामपरेण पादपतनैः कण्ठग्रहेणापरा।
धन्यास्ता भुवने सुरेन्द्रतनवो याः प्रापित निर्वृतिं
स्मृत्वेत्थं स्पृहयन्ति गोपवनिता यस्मै स पायाद्धरिः ॥ १ ॥
लक्ष्मीलीलोपधानं प्रलयजलनिधिस्थायिनो गण्डशैला
दर्पोद्वृत्तासुरेन्द्रद्रुमगहनवनच्छेददक्षाः कुठाराः।
ससारापारवारिप्रसररयसमुत्तारणे बद्धकक्ष्या

दोर्दण्डाः पान्तु शौरेस्त्रिभुवनभवनोत्तम्भनस्तम्भभूयाः ॥ २ ॥
राजा श्री गुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरद्दीधिति-
ध्वस्तध्वान्तसमूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृत् ।
श्रीमानित्यपराजितः क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्द्धभि-
र्वृत्तस्वच्छतयैव कौस्तुभमणिर्जातो जगद्भूषणम् ॥ ३ ॥
शिवात्मजोऽखण्डितशक्तिसंप-
द्धुर्यःसमाक्रान्तभुजङ्गशत्रुः ।
तेनेन्द्रवत्स्कन्द इव प्रणेता
वृतो महाराजवराहसिंहः ॥ ४ ॥
जनगृहीतमपि क्षयवर्जितं
धवलमप्यनुरञ्जितभूतलम् ।
स्थिरमपि प्रविकामि दिशो दश
भ्रमति यस्य यशो गुणवेष्टितम ॥ ५ ॥
तस्य नाम दधती यशोमती
गेहिनी प्रणयिनी यशोमती ।
चित्तमुत्पथगतं निरुन्धती
सा बभूव विनयादरुन्धती ॥ ६ ॥
श्रीर्बन्धकी स्थाणुरता च गौरी
वैधव्यदुःखोपहता रतिश्च ।
बाला त्रिलोक्यामतुलोपमाना
सीमन्तिनीनां धुरि सैव जाता ॥ ७ ॥
विलोक्यासौ लक्ष्मीं स्वनयननिमेषप्रतिसमां
वयोवित्तं रङ्गत्तनुतरतरङ्गतरलाम्
तरन्संसाराब्धि विषमविषयग्राहकलिलं
स्थिरं पोताकारं भवनमकरोत्कैटभरिपोः ॥ ८ ॥
सूचीर्विस्फोटयन्तः स्फुटितपुटरजोसधूसराः केतकीना-
माधुन्वन्तः कलापान्मदकलवचसां नृत्यतां बर्हिणानाम् ।
मेघालीर्विक्षिपन्तः सलिलकणभृतो वायवः प्रावृषेण्या
वान्त्युच्चैर्यत्र तस्मिन्पुरनरकरिपोर्मन्दिरं संनिविष्टम् ॥ ९ ॥
यावद्भूदानोः खुराग्रव्रणितजलमुचस्तुङ्गरङ्गास्तुरङ्गा
यावत्क्रामन्ति पृथ्वीतलमतुलजला नो समुद्राः समुद्राः ।
यावन्मेरोर्नमेरुप्रसवसुरभयो भान्ति भागाः शुभागाः
शौरेर्धामास्तु तावत्कृतनियमनमद्विप्रसिद्धं प्रसिद्धम् ॥ १० ॥

दामोदरस्य पौत्रेण सूनुना ब्रह्मचारिणः ।
नाम्ना दामोदरेणैव कृता काव्यविडम्बना ॥ ११ ॥
बालेनाजितपौत्रेण स्फुटा वत्सस्य सूनुना ।
यशोभटेन पूर्वेयमुत्कीर्णा विकटाक्षरा ॥ १२ ॥
संवत्सरशतेषु सप्तस्वष्टादशाधिकेषु ।
मार्गशीर्षशुद्धपञ्चम्यां प्रतिष्ठा वासुदेवस्य ॥ १३ ॥
नमः पुरुषोत्तमाय ।

४५

(गुहिल वंशीय ?) पड्ड का तिथिविहीन कल्याणपुर पाषाण-लेख

प्राप्तिस्थल : कल्याणपुर, राजस्थान। अब उदयपुर के विक्टोरिया हाल संग्रहालय में रखा है।

भाषा : संस्कृत। एक श्लोक को छोड़कर गद्य में है।

लिपि : सातवीं शती ई० के प्रारम्भ की ब्राह्मी।

छन्द : अनुष्टुभ्।

अभिलेख-सार : आम्नाय नामक व्यक्ति ने महाराज पड्ड के राज्य में अपनी धर्मतः अर्जित आय से शंकर को प्राणिपात करके शिव सायुज्य प्राप्त करने के लिये भगवान् शूली (=शिव) का एक मन्दिर शास्त्रोक्त विधि से बनवाया।

महत्त्व : इस लेख में महाराज पड्ड को गुहिल नहीं कहा गया है। परन्तु सरकार का अनुमान है कि वह किष्किन्धा के गुहिल वंश का सदस्य था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, इ० आई०, ३५, पृ० ५५ अ०; दि गुहिलज़ ऑव किष्किन्धा, पृ० ५७, ६०, ७१; अग्रवाल, आर० सी०, जे० आई० एच०, ३५, अंक १, पृ० ७३-४।

मूलपाठ

१. सिद्ध स्वस्ति (।।*) प्रणम्य शङ्करं करचरणमनः (न)

२. शिरोभिः ।।

३. आम्नायेन यथाम्नायं वि-

त्तमादाय धर्म्मतः (।*)

कारितं शूलिनो

वेश्म शिवसायो (यु) ज्यसिद्धये ।।

४. श्रीमहाराजपड्डराज्ये ।।

४६

भाविहित का डूंगरपुर-दानपत्र

(हर्ष) सं० ४८ (=६५४ ई०)

प्राप्तिस्थल : डूंगरपुर, राजस्थान । मूल दानपत्र कभी नहीं मिला, केवल इसकी छाप दि० च० सरकार को मिली थी ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : सातवीं शती के मध्य की सिद्धमातृका ।

अभिलेख-सार : लेख में पहिले किष्किन्धापुर का उल्लेख है जहां से दानशासन जारी हुआ था और फिर क्रमशः अवाप्ताशेष महाशब्द देवगण (जो गुहिलपुत्रों के वंश में उत्पन्न बताया गया है) और उसके पादानुध्यात समधिगत पञ्चमहाशब्द भाविहित का, जो दान का दाता था । आगे देवगण को भाविहित का पितृव्य कहा गया है । अभिलेख में राजन्, राजपुत्र, राजस्थानीय, प्रतिहार, प्रमातृ, बलाधिकृत, चौरोद्धरणिक, दण्डपाशिक, शौल्किक, प्रातिसारक, गमागमिक, चाट, भट तथा सेवक आदि पदनाम आये हैं ।

तिथि : वर्ष ४८, भाद्रपद सुदि का दिवस १२ ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, दि गुहिलज़ ऑव किष्किन्धा, पृ० ५६, ६१-२, ७१-३ ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१. सिद्धं स्वस्ति (।*) [किष्कि]न्धिपुराच्छरदिन्दुकिरणावदातविपुलयशसि प्रणि-
पतितजनार्त्तिच्छेदकारिणि निरव-

२. शेषितामित्त्रमहिम्नि गुहिलपुत्त्रान्वये सकलजनमनोहरया चन्द्रिकयेव कीर्त्या भुवनम[ण्ड]-

३. लं विकासयन्निव सन्मना एव कलङ्कदोषरहितः कुलकुमुदवनलक्ष्मीविवो-
(बो)धनश्चन्द्रमा इवापरो य

४. ....श्रयविशेषलोभादिव सकलैराभिकामि[कै]रितरैश्च गुणैरुपेतः समर-
विधि-विशारदः रिपु-

५. [वर्ग्गै]रपीडितधर्म्मार्थकामनिषेवी सम्यक्प्रजापालनाभिरतस्त्रिलोचन इव
परपुरग्रहणदक्ष⁐परम-

६. [मा]हेश्वरोवाप्ताशेषमहाशब्द[:] (ब्दः)श्रीदेवणस्तत्पादकमलयुगलानुद्ध्यातो
रविरिवोदयकाला[दे]-

७. वानुरक्तसकलमण्डलः प्रविहतरिपुतम॒प्रसरो विविधविमलगुणगणाभि रामर्मूत्तिर्मू र्त्त इव

८. कामदेवो बोधिसत्व इव यथाभिलषितार्थसम्पादनप्रीणितार्थिवर्ग्गः समधिगत-पञ्चमहाशब्दः श्रीभा-

९. विहित × कुशली सर्व्वानेव राजराजपुत्रराजस्थानीयोपरिककुमारामात्यप्रतीहार-प्रमातृबलाधिकृ-

१०. तचौरोद्धरणिकदाण्डपाशिकशौल्किकप्रातिसारकगमागमिकचाटभटसेवकादीन्समनु-बोधयत्यस्तु

११. वः संविदितं यथो (था) मया स्वपितृव्यश्रीदेवगणा (ण) पादीयशासनाद्ब्र (द् ब्र) ह्मदायमपेक्ष्य तस्यैव य-

१२. शःपुण्याभिवृद्धये उज्जयनीविनिर्गत-कूरगिरिकासामान्य-दौ(दा)ण्डायनसगोत्त्र-वाजसनेयस-

१३. [ब्रह्मचारिणे] माद्धयनन्दिनाय ब्राह्मणेन्द्रशर्म्मपुत्त्र-ब्राह्मणासङ्गशर्म्मणे। पुरपट्ट-विषयान्तर्ग्गत···

१४. ···ग्रामः स्वसीमापरि[च्छिन्नः] सोपरिकरः सभूतवातातित(दि) प्रत्यायः सभोगभाग-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१५. ···सदशा[पराधः] अचाटभटप्रावेश्यो बलिचरुसत्तूवैश्वदेवाग्निहो-

१६. [त्र]···णार्थं पूर्व्वदत्तदेवब्रह्मदायादिरहित आचन्द्रार्क्कार्णवसरि-

१७. [त्क्षिति]समकालीनः पुत्रपौत्रान्वयक्रमभोग्यतया भूमिच्छिद्रन्यायेनाग्रहारोनु-ज्ञातो यतो-

१८. [वग]म्यास्मद्वङ्श्यै (द्वंश्यै) रन्यैर्व्वागामिनृपतिभिरनिलविधूतकाशतूललवचञ्चलं जीवितमवगच्छ[द्भि]-

१९. ···यशश्चिराय चिचीषुभिरेष दायोनुमन्तव्यः पालयितव्यश्च। यो वाज्ञा-नतिमि-

२०. [रप]टलावृतमतिराच्छिन्द्यादाच्छिद्यमानं वानुमोदेत । स पञ्चभिर्म्महा-पातकैः संयुक्त स्यादु[क्त]-

२१. ञ्च भगवता वेदव्यासेन व्यासेन ॥
षष्टि[र्व्व]र्षसाहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः (।*)
आच्छेत्ता चानु-

२२. मन्ताच तान्येव नरके वसेत् ॥
बहुभिर्व्वसुधा भू(भु)क्ता राजनि(भि)स्सगरादिभिः (।*)

२३. यस्य यस्य य-

[दा] भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं (लम्) ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर ।
महीं महीभुजां
२४. श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनं (नम्) ॥
संव्वत्सरेष्वष्टचत्वारिङ्श(रिंश)त्सु ४०(+*)८ भाद्रपदशुद्धे द्वादश्यां
२५. १० (+*) २ लिखितञ्च तत्स्वमुखाज्ञप्तपूर्ण्णेन ॥'
२६. श्रीभाविहितस्य स्वहस्तः ॥

४७

भेत्ति का धुलेव-दानपत्र

(हर्ष) सं० ७३ (=६७९ ई०)

प्राप्तिस्थल : यह दानपत्र राजस्थान के कल्याणपुर स्थान से मिला था, लेकिन बहुत समय तक कल्याणपुर थे ४ मील दूर स्थित धुलेव स्थान के एक ब्राह्मण के पास रखा रहा था।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : सातवीं शती के उत्तरार्द्ध की ब्राह्मी।

लेख-सार : यह दानपत्र किष्किन्धा से महाराज भेत्ति ने जारी किया था। इसमें आयुक्तक, विनियुक्तक, चाट, भट, कुटुम्बी, महत्तर, द्राङ्गिक आदि पदनाम आये हैं। इसमें कहा गया है कि इस दान को मूलतः उसके पिता (महाराज बप्प) ने दिया था। दान चन्द्रात्रेय गोत्र के ब्राह्मण भट्टिनाग को दिया गया था।

तिथि : अभिलेख में वर्ष ७३ को आश्वयुज वर्ष तथा राज्य प्रतिपत्ति का वर्ष कहा गया है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : मिराशी, इ० आई०, ३०, पृ० १ अ०; सरकार, वही, पृ० ५ अ०; दि गुहिलज़ ऑव किष्किन्धा, पृ० ५५, ६२ अ०।

मूलपाठ

१. सिद्धं नमः ।। स्वस्ति (।।*) किष्किन्धा (याः*)। महाराजभेत्तिः [कुशली] सर्व्वानेव [स्वानायुक्तक] विनियुक्तकच(चा)टभटकुटुम्बिमहत्तरद्राङ्गिकां(कान्) बोधयत्य-

२. [स्तु] वो विदितं यथा मया महाराजवप्पदत्तिः तस्यैव पुण्याप्यायननिमित्त्यर्थ भट्टिनागब्राह्मणाय चन्द्रा-त्रेयसगोत्रायः(य) वाद(ज)सनेय-

३. सगोत्राय [ऊ]ब्बरक्कग्रामाग्रहारे अनुमतिः दत्ता (।*) अस्य कृषतः कर्षापयतो वा परिपंत्थान न करणीया ग्रामे वासिभिश्च समुचि-

४. [त]भागभोगहिरण्यदेयोपनयः कायः (र्यः) (।*) नवत्ति चात्र श्लोकः (।*)

पष्ठि(ष्टि)वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः (।*)

अ(आ)च्छेत्ता चानुमन्ता च

५. तान्येव नरके वसे (त् ।*) ।।

राज्यप्रतिमत्ता(पत्ति)वर्षैः(र्षे) तृ (त्रि)सप्ततिभिः अ(आ)श्वयुजसंव्वत्सरेः(रे) (।*) दु(दू)तको यज्ञदेयः ।। लिखितं चच(च) साम्बभटेनः (स) (।*)

६. महाराजभेत्तिस्वहस्तो (स्त)[:]। भट्टिवडस्य स्वहस्तः ।। तुम्बतालीनिवेशे सामन्तभतृ(र्तृ) बड्डराकाशा (त्*) दु(दू)तकः कर्कभटः ।।

७. श्रीसामन्तभर्तृ पट्ट स्यानुमतिः (।*) दूतकोत्र सामन्तभव्विहितः (।।*)

४८

बाभट का डूंगरपुर-दानपत्र

(हर्ष) सं० ८३ (=६८९ ई०)

प्राप्तिस्थल : यह अभिलेख दि० च० सरकार को डूंगरपुर के एक सज्जन से केवल छाप के रूप में मिला, मूल दानपत्र कभी प्रकाश में नहीं आया।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : सातवीं शती के उत्तरार्द्ध की सिद्धमातृका।

अभिलेख-सार : इसमें बाभट को समुपार्जित पञ्चमहाशब्द और देवगण का पादानुध्यात कहा गया है। उसने भी अपना दानपत्र किष्किन्धापुर से जारी किया था। अभिलेख में नृप, नृपसुत, सन्धिविग्रहाधिकृत, सेनाध्यक्ष, पुरोध, प्रमातृ, मन्त्री, प्रतीहार, राजस्थानीय, कुमारामात्य, विषयभोगपति, चौरोधरणिक, शौल्किक, राजपुरुष, व्यापृतक, दण्डपाशिक, चाट, भट, प्रातिसारक, ग्रामाधिपति, द्रांगिक आदि पदनाम आये हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, इ० आई०, ३४, पृ० १६७ अ०; दि गुहिलज़ ऑव किष्किन्धा, पृ० ५५-६, ६५-६, ७४-५।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१. सिद्धं स्वस्ति (।*) किष्किन्धिपुरात् गुहिलनराधिपवङ्शे(वंशे) गुणमणिगणकिरणरञ्जितदशाशे। सुरपतिधाम्नि स्थेयसि महीयसि प्रवरक ··

२. ···श्रीभाजि समुन्नतिमति भोगिमहासत्वसंश्रयविधौ। दुर्ल्लङ्घ्येतिगरीयस्वाध्व (र*) पूताशेषभूलोके॥ मुदितद्विजगणजुष्टेवशिष्टभूभु-

३. क्ति···तदाये। अनवरतमित्रमंडलपरिगमनोद्भासिनि प्रथिते॥ सच्छायाद्विजवसतिः सुप्रापमहाफलो मनोहारी श्रीमानृजुराश्रितजनतृष्णाक्लमतापविनि-

४. हन्ता। श्रीदेवगणो नृपतिरासीत् (॥*) तच्चरणकमलयुगलानुद्ध्यातस्सज्जननियतावगीतः शारदा-

५. मलसकलमण्डलशशिकरनिकरावदातयशाः उदयादेव जनहितो महामहीभृच्छिरोनिहितचरणः अनुरक्तामलमण्डलविराजितो जिततम(:*)प्रसरः अमलीकृतसर्व्वा[शः]

६. [कु]लकमलाकरविवर्द्धितश्रीकः दोषान्तकरः परबलकुमुदवनविकासहति-हेतुः। सकलभुवनैकतिलकस्समस्ततेजस्वितेजसां हर्ता। आविर्भवत्प्रतापो यो ··

७. भानुरिव ।। चन्दनसुरभिपरिमलः पृथुकटकः उन्नतः स्थिरोक्षोभ्यः मलयमही-
धर इव योनेकमहाभोगिनाम्व(नां व)सतिः । गाम्भीर्यवानल[घु]स्समस्तरत्नाश्रयो महा-

८. सत्वः यः स्थितिपालनपरमो लावण्ययुतः पयोधिरिव भद्रप्रकृतिरुदग्रः सद्वंशश्शक्ति-
मान्भयानकः दिग्गज इव यः सततप्रच्छन्नदाना[म्बुपवित्रकरः]

९. स(सु)प्रथितपुण्यकीर्त्ति × कार्त्तयुगनृपातिरिक्तगुणनिकरः । समुपार्जिजतपं[च]-
महाशब्दः श्रीबाभट × कुशली ।। सर्व्वानेवात्मीयान्नृपनृपसुतसन्धिविग्रहाधि-

१०. कृतान् सेनाद्ध्यक्षपुरोधःप्रमात्रि(तृ)मन्त्रिप्रतीहारान् । राजस्थानीयोपरि-
[ककुमा]रामा[त्य]विषयभोगपतीन् चौरोद्धरणिकशौल्किकराजपुरुषादीन् सर्व्व-

११. पुरुषान्श्च(षांश्च) ।। व्यापृतकदाण्डपाशिकचाटभटप्रातिसारकप्रभृतीन् ग्रामाधि-
पति-द्राङ्गिकप्रतिवासिकुटुम्बिनश्चैव ।। ब्राह्मणवणिक्पुरोगाः प्रकृतीर्जा[नपदान्]

१२. करणिकान्श्चां(कांश्चा)पि । अन्यांश्च यथान्यायं वो(बो)धयतीत्यस्तु वो विदितम् ।।
यथा मया किष्किन्धिपुरविषयान्तर्गतमण्डलाच्छके मित्रापल्लि[काग्रामे]

द्वितीय ताम्रपट्ट

१३. ग्रामस्य पूर्व्वसीम्नि पाहकपाभकाभिधानपांचिकपरिमाणं क्षेत्रं ।। यस्य
पूर्व्वपार्श्वेचानुसंतत एवाधस्तनमित्रापल्लिका[ग्राम]······

१४. सन्धिसै(से)तू(तु)कः पश्चिमे रोङ्गरकपानीयोपावर्त्त‿पाहकतडागिकापाल्येक-
देशश्च ।। उत्तरे शकपालीशोधनस्व(स्थ)वनमार्ग्गस्तथात्रैव गोपा[ल]······

१५. डमात्रभ(भु)क्तिप्रमाण × कूपकच्छो यस्यापि पूर्व्वपार्श्वे लोहकारकच्छसेढको ।
दक्षिणे विषयवर्तन्यभ्यन्तरेस्व(रस्थ)सेढकः पश्चिमे उत्तरे च मण्डला
[च्छकक्षेत्रमि]-

१६. त्येवमेतदुभयमप्यूषरवाहेकमहत्तरसङ्किलकप्रमुखो(खा)दिष्टचतुराघाटन विशुद्धं ।
ससेवरं सभूता(तो)पात्तप्रत्यायं सहिरण्यादेयं सभोगभागं ।

१७. सर्व्वादानसहितं भूमिच्छिद्रन्यायेनाचाटभटप्रावेश्यमाचन्द्रार्क्ककालिकं पुत्रपौत्रा-
न्वयक्रमभोग्यं । क्रूरगिरिसामान्य ब्राह्मणगोपपुत्रेभ्यो ब्राह्म-

१८. णगोपादित्यगोपाढ्यदेभटढोण्ढ । गोपस्वामिप्रभृतिभ्यो वा(दा)ण्डायनसगोत्रवाजि-
(ज)सनेयसब्रह्मचारिमाद्ध्यन्दिनेभ्य‿पञ्चभ्योपि भ्रातृभ्य‿पञ्चमहायज्ञि-
(ज्ञी)या-

१९. नां कर्म्मणामुत्सर्पणार्थं पित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये पूर्व्वप्रत्तदेवब्रह्मदायाभि-
वर्ज्जमुदकातिसर्ग्गेण ब्रह्मदायः प्रतिपादितमि(त इ)त्यवगम्यामीषा-

२०. मिदं(मं)यु(भु)ञ्जतां भोजयतां कृषतां कर्षयतां वास्मद्वंशजैरन्यैर्व्वागामिनृपति-
भिस्समान्यभूप्रदानफलेप्सुभिर्न्न कैश्चिद्व्याघाते प्रवर्त्तितव्यं(व्यम्) ।।

२१. कमलदलनिलीन-
वारि[बिन्दु]-
स्थिरतरमेतमवेत्य जीवलोकं(कम्) (।*)
अनुमेतिरनुपालनं च कार्यं
शशिकरचारुयशश्चिचीषुभिश्च ।।

यस्त्वज्ञानादाच्छिन्द्यादाच्छिद्यमानं वानुमोदेत स

२२. पञ्चभिर्म्महापातकैस्संयुक्तः स्यादुक्तं च ।

षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमदिः (।*)

आच्छेता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥

२३. बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादि-

भिः (।*)

यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्य तस्य तदा फलं(लम्) ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां(राम्) ।

कपिलाशतघातिनामेनस्सम्प्रतिपद्यते ॥

विन्ध्याटवीस्वतोयासु शुष्ककोटर-

२४. वासिनः (।*)

कृष्णाहयोभिजायन्ते ब्रह्मदायापहारका[:] ॥

पूर्व्वदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर ।

मही महीभृतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनमिति(म्।।इति) ॥

किष्किन्धिपुरप्रव·········

२५. ·········संवत्सरे त्र्यशीतितमे कार्त्तिक्यामद्य लिखितमिदं सान्धिविग्रहिक-

पाहेकेन (।*) दूतकश्चात्र राजपुत्र-

२६. घोर्घटस्वामी ॥

२७. श्रीबाभटस्य स्वहस्तः ॥

४६

(गुहिल वंशीय ?) कदछिदेव के काल का तिथिविहीन

कल्याणपुर पाषाण-लेख

प्राप्तिस्थल : कल्याणपुर, राजस्थान।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : आठवीं शती की सिद्धमातृका।

छन्द : १, ४, ८ : आर्या; २, ३, ६ : शार्दूलविक्रीडित; ५ : स्रग्धरा; ७, ९, १०, ११, १३ : अनुष्टुभ्; १२ : इन्द्रवज्रा।

महत्त्व : इस लेख में कदछिदेव को गुहिल नहीं कहा गया है। लेकिन सरकार का यह अनुमान सही हो सकता है कि वह गुहिल-नरेश बाभट का उत्तराधिकारी रहा होगा।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, दि० च०, दि गुहिलज़ ऑव किष्किन्धा, पृ० ५७-८, ६७, ७६-७७।

मूलपाठ

१. सिद्धम् (।*) नमः शिवाय।
सोमोपि निष्कलङ्को हरोपि वरदः स्मृतः शिवो [रौद्रः।]
·········हि विपरीतगुणो भवो ज-
यति ॥१

२. गङ्गान्धारयसीश भस्मशुचिना मूर्द्ध्ना न युक्तं तव
सन्ध्याव[न्दन]–‿–‿‿‿–––‿–त्यावृतं(तम्)।

३. वासो नास्ति ममे-
ह नाथ पितरं श्री(शी)घ्रं नयस्वाद्य मां
गौर्ये(र्यै)वं गदिते वि[हस्य]‿‿ –––[सदा पा]तु वः ॥२
पातालं व्रजतिः (ति) क्षितिः प-

४. दहता क्षुब्धाश्च तोयाशया
दिक्चक्रं भ्रमतीव बाहुविधु[तं]––‿––‿–।
---[स]चराचरं तृ(त्रि)भुवनं [दे]वा गता विस्मयं

५. भी-

ता दैत्यगणाः स्तुवन्ति मुनयो लीलाप्रवृत्ते ह[रे] ॥३

... ...लपादः (।*)

श्रीमां(मान्) कदछि-

६. देवः सकलगुणालं(ल)ङ्कृतो नित्यं(त्यम्) ॥४

बि[म्बो]--‿--‿‿‿‿‿‿‿--‿--‿--

--ग्रीवा सुबाहू कमलदलनि-

७. मा कुचितभ्रूपताका ।

आमूलोत्तुङ्गवृ[त्त]‿‿‿‿‿‿‿--‿--‿--

----‿--सकलगुणगणालङ्कृ-

८. ता धर्म्मशीला ॥५

मत्वा चंचलतां‿-‿‿‿---‿--‿-

---‿‿-‿-‿‿‿---ण्यमप्यध्रुवम् ।

९. मातापुत्रकलत्रबन्धुषु सदा स-‿--[र्युं]तं

---‿‿-‿-‿‿‿---भुवो मण्डनं(नम्) ॥६

सत्यं दानं द-

१०. या दाक्ष्यं दाक्षिण्यं द्विजपूजनं (नम्) ।

दीनानुकंपनं वोण्णा विजा[नाति शुभानना] ॥७

चत्वारिंशद्द्रम्मा दत्ताः कालान्तरोपयोगार्थं (र्थम्) ।

११. खण्डस्फुटितसमारण सन्मा(म्मा) र्ज्जन[गुग्गु]लूनिमित्तं(त्तम्) ॥८

सहायो धर्म्मकार्येस्मिं(स्मिन्) शुचि[र्दक्षो] जितेंद्रियः ॥

कुटुक्काचार्यनामाभूत्सै(च्छै)व-

१२. सिद्धान्तकोविदः ॥९

उत्फुल्लमल्लिकाजाललीनालिकुलज्झ(झ)ङ्कृते ।

एलालवंगकक्कोलतमालकलिकाकुले ॥१०

काले चैत्रस्य पंचम्यां चंद्रे [रो]हि-

णिसंश्रृ(श्रि)ते ।

१३. शुक्लपक्षे शुभे योगे निविष्टं शंभुमं(म)न्दिरं(रम्)॥ ११

यावत्समुद्रेन्द्रनगेन्द्रवेदा-

श्चन्द्रो नरेन्द्रा भुजगेन्द्ररुद्राः ॥

चन्द्रावदातं तुहिना-

१४. द्रिशोमं

शंभोर्गृहं तिष्ठतु तावदत्र ॥१२

भट्टमम्मस्य पुत्रेण झं(झ)ङ्गुना चिंतिता शुभा ॥

उत्कीर्ण्णा हेमकारेण नागादित्येन धीमता ॥१३

५०

द्वितीय धरसेन का मालिया-दानपत्र

(गुप्त-वलभी) सं० २५२ (=५७१ ई०)

प्राप्तिस्थल : गुजरात में भूतपूर्व जूनागढ राज्य की महाल तहसील का मालिया स्थल ।

ताम्रपट्ट वर्णन : संख्या में दो हैं । दोनों ही ११ ३/८"×७ ३/४" आकार के हैं । इनके किनारों की पट्टियां उभड़ी हुई हैं । पत्र पर्याप्त मोटे हैं, पर अक्षर भी काफी गहरे खुदे हैं । पत्र दो छल्लों से जुड़े हैं । उनके किनारे मुहर से जुड़े हैं जो १ ३/४"×२ १/८" नाप की है और अण्डाकार है । इस पर वृषभ की मूर्त्ति उत्कीर्ण है ।

भाषा : संस्कृत । आशीर्वादात्मक व अभिशंसात्मक श्लोकों को छोड़कर पूर्णत: गद्य में है ।

लिपि : उत्तर भारतीय वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी का काठियावाड़ी रूप ।

महत्त्व : यह अभिलेख वलभी (आधुनिक वला) के राजाओं के प्रारम्भिक दानपत्रों का उदाहरण प्रस्तुत करता है । वलभी नरेशों के इतने दानपत्र मिलते हैं कि फ्लीट के समय ही उन पर एक पृथक् ग्रन्थ लिखा जा सकता था (दे०, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २०१, टि० १) । इसमें और अन्य मैत्रक दानपत्रों में गुप्त संवत् का प्रयोग किया गया है, जो कालान्तर में वलभी संवत् नाम से विख्यात हुआ । लेख के अन्त में 'स्वहस्तो मम महाराज श्रीधरसेनस्य' वाक्य है । लेकिन इसकी लिपि वही है जो शेष लेख की । अन्य मैत्रक लेखों में भी ऐसा वाक्य प्राय: मिलता है । इससे स्पष्ट है कि यह वाक्य स्वयं राजा उत्कीर्ण नहीं करते थे । यह निष्कर्ष उस मान्यता का खण्डन करता है जिसके अनुसार बांसखेड़ा-दानपत्र में हर्ष ने अपने हाथ से अपने हस्ताक्षर उकेरे हैं ।

उद्देश्य : द्वितीय धरसेन द्वारा पञ्चमहायज्ञों के लिये रुद्रभूति नामक ब्राह्मण को भूमिदान दिये जाने का वर्णन ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २०१-१०; लक्ष्मीनारायण, पी० आई० एच० सी०, ८, १९४५, पृ० २५-६ ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओम् स्वस्ति वलभीत: प्रसभप्रणतामित्राणां मैत्रकाणामतुलबलस [·*] पन्नमण्डलाभोगसंसक्त संप्रहारशतलब्धप्रताप:

२. प्रतापोपनतदानमानार्ज्जवोपार्जितानुरागानुरक्तमौलभृतमित्रश्रेणीबलावाप्तराज्यश्री: परममाहेश्वर: श्री सेनापति—

३. भटार्क्क: [॥*] तस्य सुतस्तत्पादरजोरुणावनतपवित्रीकृतशिर:शिरोवनतशत्रुचूडामणिप्रभाविच्छु-रितपादनखपंङ्क्तिदीधतिर्दी—

४. नानाथकृपणजनोपजीव्यमानविभवः परममाहेश्वरः श्री सेनापति धरसेनस्तस्यानुजस्तत्पादप्रणाम-प्रशस्ततरविमल—

५. मणि र्म्मन्वादिप्रणीतविधिविधानधर्म्मा धर्म्मराज इव विहितविनयव्यवस्थापद्धतिरखिलभुवन मण्डला-भोगैकस्वामिना परमस्वामिना

६. स्वयमुपहितराज्याभिषेकः महाविश्राणनावपूतराज्यश्रीः परममाहेश्वरो महाराजद्रोणसिंहः सिंह इव [॥*] तस्यानुजःस्वभुज—

७. बलपराक्रमेण परगजघटानीकानामेकविजयी शरणैषिणां शरणमववोब्धा शास्त्रार्थतत्वानां कल्पतरुरिव सुहृत्प्र—

८. णयिनां यथाभिलषितकामफलोपभोगदः परमभागवतः श्रीमहाराजध्रुवसेनस्तस्यानुजस्तच्चरणारविन्द प्रणतिप्र—

९. विधौताशेषकल्मषः सुविशुद्धम्य(स्व)चरितोदकप्रक्षालितसकलकलिकलङ्कः प्रसभनिर्ज्जितराति-पक्षप्रथितमहिमा

१०. परमादित्यभक्तः श्रीमहाराजधरपट्टस्तस्यात्मजस्तत्पादसपर्य्यावाप्तपुण्योदय [:*] शैशवात्प्रभृति खड्ग द्वितीय बाहुरे—

११. व समदपरगजघटास्फोटनप्रकाशितसत् [त्*]वनिकषः तत्प्रभावप्रणतारातिचूडारत्नप्रभासंसक्तसख्य (व्य)पा—

१२. दनखरश्मिसंहति [:*] सकलस्मृतिप्रणीतमार्ग्गसम्यक्परिपालनप्रजाहृदयरञ्जनादन्वर्थराजशब्दो रूपकान्तिस्थैर्य्य—

१३. गाम्भीर्य्यबुद्धिसंपद्भिः स्मरशशाङ्कार्द्रि (द्रि) राजोदधित्रिदशगुरुधने [शा*] नतिशयाना (नो)-ऽभयप्रदान परतया तृणव—

१४. वदपास्त् [ा*] शेषस्वकार्य्यफलः पादचारीव सकलभुवनमण्डलाभोगप्रमोदः परममाहेश्वरः श्रीमहारा—

१५. जगुहसेनः [॥*] तस्य सुतस्तत्पादनखमयूखसंतानिवृत्तजाह्नवीजालो(ै)घविक्षालिताशेषकल्मषः प्रणयिशत—

१६. सहस्रोपजीव्यभोगसंपत् रूपलोभादिवाश्रृ(श्रि)तस्सरसमाभिगामिकैर्गुणै [:*] सहजशक्ति-शिक्षाविशेषविस्मा—

१७. पितारिवलधनुर्धरः प्रथमनरपतिसमतिसृष्टानामनुपालयिता धर्म्म्य(र्म्म)दायानमपाकर्त्ता

१८. प्रजोपघातकारिणामुपप्लवानां दर्शयिता श्रीसरस्वत्योरेकाधिवासस्य संहताराति—

द्वितीय ताम्रपट्ट

१९. पक्षलक्ष्मीपरिक्षोभ दत्तविक्रमः क्रमोपसंप्राप्तविमलपार्थिवश्रीः परममाहेश्वरः महाराज—

२०. श्रि(श्री) धरसेनःकुशली सर्व्वानेवायुक्तकविनियुक्तकद्राङ्गिकमहत्तरचाटभटध्रुवाधिकरणिक दाण्डपाशिक—

२१. राजस्थानीयकुमारामात्यादीनन्यांशच यथासंबध्यमानकान् समाज्ञापयत्यस्तु वः संविदितं यथा मया माता—

२२. पित्रोः पुण्यायप्यानायात्मनश्चैहिकामुष्मिकयथाभिलपितफलावाप्तये अन्तरत्रायां शिवकपद्रके वीरसेन—

२३. दन्तिकप्रत्ययपादावर्त्तशतं एतस्मादपरतः पादावर्त्ताःपञ्चदश तथा अपरसीम्नि स्कम्भसेनप्रत्यय-पादावर्त्तशतं विंशाधिकं

२४. पूर्व्वसीम्नि पादावर्त्ता दशा डोम्भिग्रामे पूर्व्वसीम्नि वर्द्धकि प्रत्ययपादावर्त्ता नवति [:*] वज्र-ग्रामेऽपरसीम्नि ग्रामशिखरपादावर्त्तशतं—

२५. वी(?)कि(?) दिन्नमहत्तरप्रत्यया अष्टाविङ्शतिपादावर्त्तपरिसरा वापि। भुम्भुसपद्रके कुटुम्वि-(म्बि)बोटकप्रत्यया(य)पादावर्त्तशतं

२६. वापि च। एतत्सोद्रङ्ग सोपरिकरं सवातभूतधान्यहिरण्यादेयं सोत्पद्यमानविष्टी(ष्टि)कं समस्त राजकीयानाम—

२७. हस्तप्रक्षेपणीयं भूमिच्छिद्रन्यायेन उन्नतनिवासी(सि)वाजसनेयी(यि)कण्ववत्ससगोत्रब्राह्मणरुद्रभूतये बलिचरुवैश्व—

२८. देवाग्निहोत्रातिथिपंचमहायाज्ञिकानां क्रियाणां समुत्सर्प्पणार्त्थमाचन्द्रार्क्कार्ण्णवसरित्क्षितिस्थिति समकालीनं पुत्रपौ—

२९. त्रान्वयभोग्यं उदकसर्ग्गेण निसृष्टं [।*] यतोऽस्योचितया ब्रह्मदेयस्थित्या भुंजतः कृषतः कर्षयतः प्रतिशतो वा

३०. न कैश्चित्प्रतिषेधे वर्त्तितव्यम् [।*] [आ*]गामिभद्रनृपतिभिश्चास्मद्वंशजैरनित्यान्यैश्वर्य्या—ण्यस्थिरम् मानुष्यं सामान्यं च भूमि—

३१. दानफलमवगच्छद्भिरयमस्मद्दायोऽनुमन्तव्यः परिपालयितव्यश्च [।*] यश्चैनमाच्छिंद्यादाच्छिद्यमानं वानु—

३२. मोदेत स पंचभिर्म्महापातकै [:*] ॥ सोपपातकै [:*] ॥ स [·*] युक्तस्स्यादित्युक्तं च भगवान वेदव्यासेन व्यासेन ॥ (।)

३३. षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे तिष्ठति भूमिदः आच्छेत्ता चानुमन्ता च। तान्येव नरके वसेत् ॥ पूर्व्वदत्तां

३४. द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर ॥ (।) मही [·*] महिमतां श्रेष्ठ ॥ दानाच्छ्रेयोऽनुपालनम् ॥ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता

३५. राजभिस्सगरादिभिः ॥ (।) यस्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलमितिः। (॥) लिखितं स[।*]न्धिविग्रहिकस्कन्दभटेन ॥

३६. स्वहस्तो मम महाराज श्रीधरसेनस्य ॥ दू चिर्ब्बिर [:*]॥ सं २०० (+) ५० (+) २ वैशाख ब १० (+) ५ [॥*]

५१

द्वितीय धरसेन का बलभी-दानपत्र

(गुप्त-वलभी) सं० २६९(=५८८ ई०)

प्राप्तिस्थल : काठियावाड़ में भावनगर से १८ मील उत्तर-पश्चिम की ओर स्थित वल या वला (प्राचीन वलभी) स्थान।

वर्णन : यह दानशासन दो ताम्रपट्टों पर लिखा है। ताम्रपट्टों का आकार ९½"×१६½" है।

भाषा : संस्कृत। आशीर्वादात्मक एवं शापात्मक श्लोकों को छोड़कर पूर्णतः गद्य में।

लिपि : उत्तरी वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी का काठियावाड़ी रूप।

उद्देश्य एवं महत्त्व : इसमें मालिया-दानपत्र के समान, मैत्रक वंश का द्वितीय धरसेन तक का इतिहास दिया गया है। इसमें वलभी राज्य के अनेक पदाधिकारियों के पदनामों का उल्लेख है। लेख का उद्देश्य आचार्य भदन्त स्थिरमति द्वारा निर्मित बप्पपादीय विहार को, जो वलभी में स्थित था, बुद्धपूजा, विहार के संस्कार एवं भिक्षुकों के प्रतिपालनार्थ भूमि दान दिये जाने का वर्णन करना है। लेख के अन्त में द्वितीय धरसेन के हस्ताक्षर की नकल, सामन्त शीलादित्य का दूतक रूप में उल्लेख, सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत दिवरपति स्कन्दभट द्वारा लेख लिखवाये जाने की चर्चा तथा तिथि हैं। साहित्यिक दृष्टि से अन्य सभी मैत्रक लेखों के समान इसकी शैली भी आडम्बर और अतिशयोक्तिपूर्ण है।

संदर्भ-ग्रन्थ : ब्युलर, आई० ए०, ६, पृ० ९ अ०; दिसकल्कर, डी० बी०, सेलेक्शन्स फ्रॉम संस्कृत इन्स्क्रिप्शन्स, पृ० १०६–२१।

मूलपाठ

पं० १. स्वस्ति। विजयस्कन्धावराद्भद्रपत्तनवासकात्प्रसभप्रणतामित्रणां मैत्रकाणामतुलबलसपनमण्डलाभोगसंसक्तसंप्रहारशतलब्धप्रतापः प्रतापोपनतदानमानार्जवोपार्जितानुरागानुरक्तमौलभृतश्रेणि बलावाप्तराज्यश्रीः परममाहेश्वरः श्री सेनापतिभटार्कः,

तस्य सुतस्तत्पादरजोरुणावनतपवित्रीकृतशिराः शिरोवनतशत्रुचूडामणिप्रभाविच्छुरितपादनखपङ्क्तिदीधितिर्दीनानाथकृपणजनोपजीव्यमानविभवः परममाहेश्वरः श्री सेनापतिधरसेनः,

तस्यानुजस्तत्पादप्रणामप्रशस्ततरविमलमणिर्मन्वादिप्रणीतविधिविधानधर्मा धर्मराज इव विनयव्यवस्थापद्धतिरखिलभुवनमण्डलाभोगैकस्वामिना परमस्वामिना स्वयमुपहितराज्याभिषेको महाविश्राणनाबपूतराज्यश्रीः परममाहेश्वरो महाराजश्रीद्रोणसिंहः,

सिंह इव तस्यानुजः स्वभुजबलपराक्रमेण परगजगघटानीकानामेकविजयी शरणैषिणां शरणमवबोद्धा शास्त्रार्थ-तत्त्वानां कल्पतरुरिव सुहृत्प्रणयिनां यथाभिलषितकामफलभोगदः परमभागवतो महाराजश्रीध्रुवसेनः,

तस्यानुजस्तच्चरणारविन्दप्रणातिप्रविधौताशेषकल्मषः सुविशुद्धस्वचरितोदकप्रक्षालिताशेषकलिकलङ्कः प्रसभ-निर्जितारातिपक्षप्रथितमहिमा परमादित्यभक्तः श्रीमहाराजधरपट्टः,

तस्य सुतस्तत्पादसपर्यावाप्तपुण्योदयः शैशवात्प्रभृति खड्गद्वितीयबाहुरेव समदपरगघटास्फोटनप्रकाशितसत्व-निकषस्तत्प्रभावप्रणतारातिचूडारत्नप्रभासंसक्तसव्यपादनखपङ्क्तिदीधितिः सकलस्मृतिप्रणीतमार्गसम्यक्परिपालनप्रजा-हृदयरञ्जनादन्वर्थराजशब्दो रूपकान्तिस्थैर्यधैर्यबुद्धिसम्पद्भिः स्मरशशाङ्काद्रिराजोदधित्रिदशगुरुधनेशानतिशयानः शरणा-गताभयप्रदानपरतया तृणवदपास्ताशेषस्वकार्यफलः प्रार्त्थनाधिकार्थप्रदानन्दितविद्वत्सुहृत्प्रणयिहृदयः पादचारीव सकल-भुवनमण्डलाभोगप्रमोदः परममाहेश्वरो महाराज श्रीगुहसेनः,

तस्य सुतस्तत्पादनखमयूखसन्तानविसृतजाह्नवीजलौघप्रक्षालिताशेषकल्मषः प्रणयिशतसहस्रोपजीव्यमानभोग-सम्पद्रूलोभादिवाश्रितः सरभसमाभिगामिकैर्गुणैः सहजशक्तिशिक्षाविशेषविस्मापिताखिलधनुर्द्धरः प्रथमनरपतिसमतिसृष्टा-नामनुपालयिता धर्मदायानामपाकर्त्ता प्रजोपघातकारिणामुपप्लवानां दर्शयिता श्रीसरस्वत्योरेकाधिवासस्य संहताराति-पक्षलक्ष्मीपरिभोगदक्षविक्रमो विक्रमोपसंप्राप्तविमलपार्थिवश्रीः परमाहेश्वरो महासामन्तमहाराजश्रीधरसेनः कुशली सर्वानेव स्वानायुक्तकद्राङ्गिकमहत्तरचाटभट [शौल्किक] ध्रुवाधिकरणिकविषयपतिराजस्थानीयोपरिककुमारामात्यहस्त्य-श्वारोहादीनन्यांश्च यथासंबध्यमानकान्समाज्ञापयति ।

अस्तु वस्संविदितं यथा मया मातापित्रोः पुण्याप्यायनायात्मनश्चैहिकामुष्मिकयथाभिलषितफलावाप्तये वलभ्यामाचार्यभदन्तस्थिरमतिकारितश्रीबप्पपादीयविहारे भगवतां बुद्धानां पुष्पधूपगन्धदीपतैलादिक्रियोत्सर्पणार्थं नानादि-गभ्यागतार्यभिक्षुसङ्घस्य च चीवरपिण्डपातग्लानभैषज्याद्यर्थं विहारस्य च खण्डस्फुटितविशीर्णप्रतिसंस्करणार्थं हस्तव-प्राहरण्यां महेश्वरदासेनकग्रामो धाराखेटस्थल्यां च देवभद्रिपल्लिकाग्रामः सोद्रङ्गो सोपरिकरो सवातभूतप्रत्यायौ सधान्य-भागभोगहिरण्यादेयौ सोत्पद्यमानविष्टिकौ सदशापराधौ समस्तराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणीयौ भूमिछिद्रन्यायेनाचन्द्रार्काण-वसरिरिक्षितिस्थितिपर्वतसमकालीनौ उदकातिसर्गेण वेवदायौ निसृष्टौ । यत उंचितया देवविहारस्थितया भुञ्जतः कृषतं कर्षयतः प्रतिदिशतो वा न कैश्चिद्व्याघाते वर्तितव्यौ । आगामिभद्रनृपतिभिरस्मद्वंशजैरन्यैर्वानित्यान्यैश्वर्याण्यस्थिरं मानुष्यं सामान्यं च भूमिदानफलमवगच्छद्भि रयमस्मद्दायोऽनुमन्तव्यः परिपालयितव्यश्च । यश्चैनमाच्छिद्याादाच्छिद्यमानं वानुमोदत स पञ्चभिर्महापातकैस्सोपपातकैः संयुक्तः स्यादित्युक्त च भगवता वेदव्यासेन व्यासेन ।

षष्टि वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदतिभूमिदः ।
आच्छेता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् (॥*) [१*]

बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् (॥*) [२*]

अनोदकेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिनः ।
कृष्णसर्पा हि जायन्ते धर्मदायापहारकाः (॥*) [३*]

स्वदत्तां परदत्ता वा यो हरेत वसुन्धरां ।
गवां शतसहस्रस्य हन्तुः प्राप्नोति किल्बिषम् (॥*) [४*]

यानीह दारिद्र्यभयाजरेन्द्रै-
र्वनानि धर्मायतनीकृतानि ।

निर्माल्यवान्तप्रतिमानि तानि
 को नाम साधुः पुनराददीत (॥*) [५*]
लक्ष्मीनिकेतं यदपाश्रयेण
 प्राप्तो नु कोऽभिमंत नृपार्थं ।
तान्येव पुण्यानि विवर्धयेथा
 न हापनीयो ह्युपकारिपक्षः (॥*) [६*]

५२

सप्तम शीलादित्य का अलीना-दानपत्र

(वलभी) संवत् ४४७ (=७६६ ई०)

प्राप्तिस्थल : गुजरात राज्य के खेड़ा जिले के नडियाद तालुके के नडियाद स्थल से चौदह मील उत्तर-पूर्व की ओर स्थित अलीना या अलीणा ग्राम।

दानपत्र वर्णन : यह दो ताम्रपट्टों पर लिखा है जिनमें एक १' २ ५/८"×१' १ १/२" आकार का और दूसरा १' ६ १/८"×१' ७/८" पर अनियमित आकार का है। इनके किनारे लेखांकित स्तरों से अधिक उभड़े हैं। ताम्रपत्र मोटे हैं और काफी भारी (लगभग ८ सेर वजन के) हैं। पत्रों को जोड़ने वाले छल्ले के लिये दो छेद बने हैं परन्तु छल्ला और मुहर अब अप्राप्य हैं।

भाषा : संस्कृत। पं० ५८ से पं० ६२ तक लिखे चार श्लोकों और शाप-आशीर्वादात्मक श्लोकों को छोड़कर शेष लेख गद्य में है।

लिपि : दक्षिणी वर्ग की आठवीं शती ई० की काठियावाड़ी ब्राह्मी। लेख को असावधानी और लापरवाही से उकेरा गया है।

छन्द : १–४ : वसन्ततिलक; ५, ७–८: अनुष्टुभ्; ६ : उपजाति।

महत्त्व : प्रस्तुत लेख वलभी के मैत्रक नरेश सप्तम शीलादित्य का है जिसे ध्रुभट (=ध्रुवभट) कहा गया है। यह परवर्ती मैत्रक लेखों का उदाहरण प्रस्तुत करता है। दि० च० सरकार ने इस शीलादित्य को छठा शीलादित्य माना है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : ब्युलर, आई० ए०, ७, पृ० ७९ अ०; फ्लीट, कॉर्पस, ३, पृ० १७३ अ०; सरकार, स० इ०, २, पृ० ३७७–८५।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. स्वस्ति(।।*)श्रीमदानन्दपुर-सम(ा*)वासित-जयस्कन्धावारे प्रसभ-प्रणतामित्राणां मैत्रकानामतुल-बल-सम्पन्न-मण्डलाभो[ग]-[संस]क्त संप्रहार-शत-लब्ध-प्रतापा-

२. त्प्रतापोपनत- दान- मानार्ज्जवोपार्ज्जितानुरागादनुरक्ता- मौल-भृतः-श्रेणी-बलावाप्त-राज्यश्रियः परममाहेश्वरः-श्री-भटार्क्कादाव्यवच्छिन्न-वंशान्मा-

३. तापितृ-चरणारविन्द-प्रणति-प्रविविक्ताशेष-कल्मषः शैशवात्प्रभृति खड्ग-

द्वितीयः-बाहुरेव समद-पर-गज-घटा[स्फो]टन-प्रकाशित-[सत्त्व-नि]-
कषः तत्प-

४. [भा]व-प्रणताराति-चूडारत्न-प्रभा-स[ं*] सक्त-पाद-नख-रश्मि-संहतिः
सकल-स्मृति-प्रणीति-मार्ग्गः-सम्यक्क्रिया-पालनः - प्रजा-हृदय-रंजना-
(द*) न्वर्त्थ-राज-श[ब्दो] रूप-का-

५. न्ति-स्थैर्य्य-गाम्भीर्य्य-बुद्धि-सम्पद्भिः स्मर-शश[ा]ङ्काधिराजोदाधि-तृ-
ादश गुस-धनेशानतिशयानः शरणागताभय-प्रदानः -परतया-तृणवउ
(द)-पास्ता[शेष-स्व]-वीर्य्य-

६. फलः प्रार्त्थनाधिकार्त्थ-प्रद[ाना]नन्दित-विद्वत्सुहृत्प्रणयि-हृदय(:*) पाद
चारीव सकल-भुवनमण्डलाभोग-प्रमद[:]परम-

७. माहेश्वरः श्री-गुहसेनः (।।*) तस्य सुतः तत्पाद-नख-(मयूख*)-
संतान-विसृज-जाह्नवी-जलौघ-प्रक्षालिताशेष-कल्मषः प्रणयि-
शत-स-

८. हस्रोपजीव्यमान-संपद्रूप-लोभादि[वा]शृतः-स-रभा समाभिगामिकैः-गुणैः
सहजशक्तिः -शिक्षा-विशेष-विस्मापित-लब्ध-धनुर्द्धरः प्रथम[न]-

९. रपति-समतिसृष्टानामनुपालयिता धर्म्म[दाया]नामपि(पा)कर्त्ता
प्रजोपघात-कारिणां उपप्लावानां शमयिता श्री-सरस्वत्योरेकाधिवासस्य
सहोपपति-प-

१०. क्ष-लक्ष्मी-परिभोग-दक्ष-विक्रमः विक्रमोप(क*)म-संप्राप्त-विमल-पार्त्थिव-
श्रीः परममाहेश्वरः श्री-धरसेनः (।।*) तस्य सुतः तत्पादानुद्ध्यातः
सकल-जगदानन्दनात्याद्भु-

११. त-गुण-समुद्र-स्थगित-समग्र-दिग्मण्डलः समर-शत-विजय-शोभा-सनाथ-
मण्डलाग्र-द्युति-भासुरान्स-पीठोव्यूढ- गुरु-मनोरथ-महाभावः सर्व्व-
विद्या-पार-परम-

१२. भागाधिगम-विमल-मतिरपि सर्व्वतः- सुभाषित-लवेनापि स्वो पपादनी-
य-पर-(रि)तोषः समग्र-लोकागाध-गांभीर्य्य-हृदयो(ऽ*) पि सच्च-
रितातिशय-सुव्यक्त-परम-

१३. कल्याण-स्वभावः ख(खि)लीभूत-कृतयुग-नृपति-पथ-विशोधनाधिगतोदग्र-
कीर्त्तिः धर्मानुगाधाज्जलतरी-कृतार्त्थ-सुख-स[ं] पदु (प*) सेवा-निरहढ़-
वर्ग्मादित्य-त्वितीय-नामा

१४. पारममहश्वरः श्री-गीलादित्य[:](।।*)तस्य सुतः तत्पादानुद्ध्यातः
स्वय वुपेन्द्र-गुरुणेप गुरुः गुरुणात्यादरवता समभिलक्षणीयाणा मपि
राजलक्ष्मी(ं*)

१५. स्कन्धासक्त[ां]परम-भद्राणां घृय्य स्तदाजा-सपादनेक- रसतयोद्वाहन
खेद-सुख-रतिभ्यां अनायासित-(सत्त्व*)-संपत्ति(:*) प्रभाव-सा-
पद्वाशीकृत-नृपति-शत-शिरो-

१६. रत्ना-च्नायोपगूह-पादपीठो(ऽ*)पि परामावज्ञाभिमान-सहसा-नालि-

(ङ्गि*)त-मनोवृत्तिः प्रणतीरोका **परित्यज्य प्रख्यात-पौरूषाभि-**
मानैराप्याराति भिरनासा[दि]-
१७. त-प्रकृतयोपाय[:] कृत-निखल-भुवना माद-विमल-गुण-स[ं]हृतिः प्रसभ-
विघटित-सकल-कलि-विलस(सि)त-गतिर्मत्त्र- जनाभिद्रोहिभिराशपैः
दोषैरनामृ-
१८. (ष्टा*)त्युन्नत-हृदय(:*) प्रख्यात-पौरुषः शास्त्र-कोटलातिशय(ो*)
गुण-गणतिथ-विपक्ष-क्षितिपति-लक्ष्मी-स्वयं स्वयंग्राहे-प्रकाशित-प्रवि-
रि-पुरुष-प्रथमः- [संख्या]-
१९. धिगमः यरम (ा*)हेश्वरः श्री-खरग्रहः(।।*)तस्य सुतः तत्पाद (ा*)-नु-
द्ध्यातः सव्व-[ि*]वद्याधिगमः -पहित-निखिल-विद्वज्जन-मनः परितोषि-
तातिषय सत्व-(त्व)-
२०. स(ं*)पत्त्यागैः शौर्य्येण च विगतानुस(ं*)धान-समाहिताराति-पक्ष-
मनोरथ-रथाक्ष-भंगः सम्यगुपलक्षितानेक-शास्त्रकला-लोकचरित-गह्वर-वि-
२१. भागो(ऽ*)पि परम-भद्र-प्राकृतिरकृत्रिम-प्रश्रयो(ऽ*)पि विभय-शोभा-
विभूषनाः(णः)समर-शत-जयपताकाहरण-प्रत्ययोदग्र-बाहु-दण्ड-विध्वंसित-
प्र[तिप]क्ष-
२२. दर्प्पोदयः स्व-धनु(:*)-प्राभाव-(परि*)भूतास्त्र-कौशलाभिमान-सकल-
नृपति-मण्ड(ला*)भिनन्दित-शासनाः पर[ममा]हेश्वरः श्री-धरसानः
(।।*)तस्यानुजः त[त्पादानु]-
२३. द्ध्यातः सच्चरिततिरुयित-सकल-पूर्व्व-नरपतिः दुस्साधना(ना*)मपि
प्रसाधयिता विषय(ा*)णां भू[र्त्ति]म(ा*)निव पुरुषकारः परिवृद्ध-गु[णा]-
नुराग-[निर्ब्भ]
२४. र-चित्त-वृत्तिः मनुरिव स्वायमभ्युपपन्नः प्रकृतिभिरविगत-कला-
कलाप(:*) कान्ति-तिरस्कृत-सला छनः -कुमुदा(द)-नाथ(:*) प्राज्य-
प्रताप-स्थगित-दिग[न्त]राल[:]
२५. प्रध्वंसित-ध्वान्त-राशिः सततोदित-सविता प्रकृतिभ्य(:*)पर(ं*) प्रत्यय-
मर्त्थवन्तमतिपहुतिथ-प्रयोजनानुबंधममगम-परि भूर्ण्ण विदधामः
सन्धि-विग्रह-
२६. समास-निश्चय-निपुण(:*)स्थानमनुपदेशं ददंतं गुणवृद्धि-राज दिनित-
सस्क(संस्का) र-साधूनां राज्य-शालातुरीय-तन्त्रयोरुभयोरपि निष्णातः
प्रकृ-
२७. ति-विक्रमो(ऽ*)पि करुणा-मृदु-हृदयः श्रुतवानप्यिगर्व्वतः कान्तो(ऽ*)पि
प्रशमि शिर-सौह(ा*)र्द्दे(ऽ*)पि निरसिता दोष-दोषवतामुदय-समु-
पज[ि]न-
२८. त-जनानुराग-परिवृ(ं*)हित-भुवन-समर्त्थित-प्रथित-बालादित्य-द्वितीय-
नाम (ा*) परम माहेश्वरः श्री-धरसनः (।।*) तस्य सुतः तत्पादरदेल-
प्रणा-

२९. म-धरणि-कषण-दिनित-किण-लांछन-ललाट-चन्द्र-सकल- शिशुभाव एव श्रवण-निहित-मौक्तिकालंकार-विभ्रमामल-श्रुत-विशोप प्रदान-स-

३०. लिल-क्षालिताग्रहस्तारविन्दः व्यास इव मृदु-कर-ग्रहणादमन्दीकृता-नन्द-विधिः वसुधरायाः रार्म्मुरा-धनुर्व्वेद इव सभाविनाशप्र-लक्ष्य-कलाप(:*) प्र-

३१. णत-समस्त-सामन्त-मण्डलाममो निर्भृत-चूडामणनियमन-शासनः परम-(माहे*)श्वरः परमभट्टारक महार(ा*)जाधिराज-परमशवर-चक्रवर्त्ति-श्री-ध-

३२. रसेनः(।।*)तत्पितामह-भातृ-श्री-शीलादित्यस्य वार्ङ्ग पाणेरिवाग्रजन्मनो भक्ति-बन्धुरावयव-[कल्पित-प्रणते]रति-धवलया तत्पादारविन्द-प्रपृतया चरण-नख-मणि-

३३. [रु]चा मन्दाकिन्येव नित्या ममलितोत्तमांवदेशस्यावस्त्यस्यव राज-क्चोः दक्षिण्य मानतन्वानस्य प्रबल-धवलिव्नो यगसां वलयन म-

३४. [ण्डित]-ककुभा नवयाथरलिताशेपिः खड्ग-परिवम-मण्डलस्य पयेद-श्याम-शिखर-चूचुर-कचि-सम-त्रिन्यस्त-स्तन-युगायाः क्षि[ते]:प[त्यु]: श्री-[देरम]ट-

३५. स्याग्रजः क्षिति(प*)-स[ं]हृतेः चरुविभागस्य गुचिर्य्यगोङ्ग दु-भृतः स्वयंवलभिलाषिणोमिव रा[ज्य] श्रियम र्पयन्द्रयाः कृत-पर(रि)ग्रह-[:] [शौर्य्यमप्रतिह]-

३६. त-प्रतापा नमित-प्रचण्ड-रिपु-मण्डलं मण्डलाग्रमपालं पध्रुयानः शरदि प्रसभम(ा*)कृष्ट-शिलीमुख-पाणासना पादित-प्रसाध[नानां]

३७. पर-भुवां विधिवदाचरित-कर-ग्रहणः पूर्व्वमव विविध-वर्नोज्वलेन ग्रुतातिशयनो[द्भा]सित-श्रवण-युगलः पुनः [:-पुनरुक्तेनेव] [रत्ना]-

३८. [लङ्क]ारेणालङ्कृ त-ग्रोत्रा परिस्फुरत्काटक-विकट-कीट-पक्ष-रत्न-किरणमिपच्छिन्न-प्रदान-सलिल-निवहानवसे[क]- [विलसन्नवशै-वलां]-

३९. कुरमपाग्रपाणिमुद्वह(न्*) धृत- विश(ा*)ल- रत्न-पलय-जलधि- वेल(ा*)-तटायम(ा*)न-भुज-परिष्वक्त-विश्व[म्भ]रः पर-मम(ा*)हेश्वरः श्री-ध्रुवसेनस्तस्याग्र-

द्वितीय ताम्रपट्ट

४०. [जो (ऽ*)पर]-म[हीप] ति-स्पर्द्ध-दोप-नागन [धिये]द लक्ष्म्या स्वयमतिस्पष्टचेष्टमाश्लिष्टाङ्ग-य[ष्टिरतिरुचि रतर-चरित-गरिम-परिक-लित-सकल-न]रप[ति]रति-

४१. प्रकृष्टानुराग- (स*)रभस-वशीकृत-प्रणत-समस्त-सामन्त-चक्र-चूडामणि-मयूख-[खचित-चरण-कमल-युगलः] प्रोद्दा[मोदार]-दो[र्दण्ड] - दलित-द्विषद्व-

४२. ग्गं-दर्प्पः प्रहृप्पंत्पटीयः-प्रताप-प्लोषिताशेष-शत्रु-व(वं)शः प्रणयि-पक्ष-नि[क्षिप्त-लक्ष्मीकः] [प्रेरित-गदोक्षि]प्त-सु[दर्शन-चक्र]: परिहृत-

४३. [बाल-क्री]डो(ऽ*)नधःकृत-द्विजातिरेक-विक्रम-प्रसाधित-धरित्रीतलो-(ऽ*) नंगीकृत-जलश[य्यो] (ऽ*)[पूर्व्व-पुरुषोत्त]मः [साक्षाद्धर्म्म इव सम्यग्व्य]वस्था-

४४. पित-वर्ण्णाश्रमाचारः पूर्व्वैरप्युर्व्वि(र्व्वी)पतिभिः तृष्णा-लव-लुब्धैः यान्यपहृता[नि] [देव-ब्रह्म-दे]या[नि] [ते]षामप्य[तिसरल]-मनः-प्र-

४५. [स]रमुत्स[ङ्क]ल[नानु]मोदनाभ्यां परिमुदित-तृभुवनाभिनन्दितो-च्छ्रितोत्कृष्ट-धवल-ध[र्म्म-ध्वज]: [प्रकाशित-नि]जवङ्शः (वंशः)[दे]व-द्विज-गुरु[न्प्रतिपूज्या] [यथार्ह]मनवरत-

४६. प्रवर्त्तित-महोद्रङ्ग[ा]दि-दान-व्यवसनानुपजात- संतोषोपात्तोदार-कीर्त्तिः -[परं]परा-[दन्तुरित-नि]खिल-दिक्चक्रवालः [स्पष्टमेव] [य]-थार्त्थं[] धर्म्मादित्यि-

४७. [द्वि]तीय-नामा पर (म*)माहेश्वरः श्री-खरग्रहः (।।*) तस्याग्र-जन्मनः कुमुद-षण्ड-श्री-[विकसिन्या] [कलावतश्चन्द्रिकयेव] [कीर्त्या] [धवलित-स]कल-दिग्मण्ड-

४८. लस्य खंडितागुरु-[वि]लेपन-विड-श्यामल-विन्ध्य- [शै]ल-विपुल-पयोधरायाः क्षि[तेः] [पत्यु]: श्री-शीलादित्यस्य सूनु[र्नव-प्रालेयकिरण] [इ]व

४९. प्रतिदिन-संवर्द्धमान-हृदय-कला-चन्द्रवालः[केसर]ीन्द्र- शि]शुरिव-राजलक्ष्मीं सकल-वन[स्थलीमि]वालंकुर्व्वाणः [शिख]ण्डिकेतन इव रुचि[मच्चूडा]-म[ण्डनः]

५०. प्रचण्ड-शक्ति-प्रभावश्च शरदागम इव द्विषतां परममाहेश्वरः परम भट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्री-बप्प-पादानुद्ध्यातः परमभ [ट्टा]रक-[महारा]-

५१. जाधिराज-परमेश्वरः श्री-शीलादित्यदेवस्तस्य सुतः पारमैश्वर्य्य(ः*) कोपाकृष्ट-निस्तृङ्श-पात-विदलितारातिकरि-कुम्भस्थलोल्लसत्प्र[सृत-म]हाप्रतापानलः प्रा[कार]-

५२. (परिगत*)-जगन्मण्डल-लब्ध-स्थितिः विकट-निज-दोर्द्दण्डावलम्बिना-सकल-भुवनाभोग-भाजा मन्थास्फालन-विधु[त-दुग्ध-सि]न्धु-फे[न-पिण्ड-पा]ण्डुर-यशो-विता[नेन]

५३. विहितातपत्रः परम(माहे*)श्वरः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमे-श्वर-श्री-बप्प-पादानुद्ध्यातः परमभट्टारक-महारा[जाधि]राज-पर[मेश्व]र-[श्री]-शीलादित्य[देवः] (।।*) [तत्पुत्रः]

५४. प्रतापानुराग-प्रणत-समस्त-सामन्त - चूडाभारि-नख - मयूख-निचित-रं[ञ्ज]त-पादारविन्दः परम(मा*)हेश्वरः परमभट्टारक-महाराजा-धिराज-परमेश्वर-श्री-[बप्प]-पादा-

५५. नुद्ध्यातः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्री-शीलादित्यदेव[:]
(॥*) तस्यात्मजः प्रशमित-[रिपु]-बल-दर्प्पः विपुल-जय-मंगलाश्रयः
श्री-समालिं[गन-लालि]त-
५६. वक्षा(:*) समपोढ-नारसिङ्ह-विग्रहोर्ज्जितोधुर-शक्तिः समुद्धात-
विपक्ष-भूभृत्कृत-निखिल-गोमण्डल-रक्षः पुरुषोत्तम(:*) प्रणत-नाभूत-
पार्त्थिव-किरीट-
५७. [मा]णिक्य-[म]सृणित-चरण-नख-मयूख- रंजितागेजा- दिग्वधू-मुखः
परममाहेश्वरः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-श्री-बप्प-पा
५८. [दा]नुद्ध्यातः परम भट्टारां-महारलधिराज-परमेश्वर-श्री - शीला-
दित्यदेवः परममाहेश्वरः (॥*)
तस्यात्मजः प्रथित-दुस्सह-वीर्य्य-चक्रो
लक्ष्म्याल[यो]
५९. [न] रक-नाश-कृत-प्रयत्नः (।*)
पृथ्वी-समुद्धरण-कार्य्य-कृतैक-निष्ठः
संपूर्ण्ण-चन्द्र-कर-निम्मल-जात-कीर्त्तिः (॥*) [१*]
ज्ञात-[त्रयी-गु]ण-मयो जित-वै[रि]-पक्षः
संप[न्न]-
६०. धर्म्मज(?)-मुखः सुखदः सदैव (।*)
ज्ञानालय(:*) सकल-वन्दित-लोकपालो
विद्याधरैरनुगतः प्रथितः प्रिथिव्यां (॥*) [२*]
रत्नोज्वलो वरतनु-
६१. [र्गु]ण-रत्न-राशि (शि)-
ऐ(रै)श्वर्य्य-विक्रम-गुणैः परमैरुपेतः(।*)
सत्वोपकार-करणे सततं प्रवृत्तः
सक्षाजनार्द्दना इवार्द्दित-दुष्ट-दर्प्पः (।*) [३*]
६२. युद्धाः सकृद्गाज-धटा-धटनैक-दक्षः
पुण्यालयो जगति गीत-महाप्रतापः (।*)
राजाधिराज-मरमश्वर-वङ्श-जन्मा
श्री-ध्रूमटो जयति जात-
६३. महाप्रमोदां(॥*) [४*]
(स च*) परमेश्वरः परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परामेश्वर-श्री-
पप्प-पादानुद्ध्यातः परामभट्टारन-महाराजा-
६४. धिराज-परमेश्वर-श्री-शीलादित्यदेवः सर्व्वानेव समाज्ञापयत्यस्तु वः
संविदित(*)यथा मया म(ा*)ता-पित्रोरात्मनश्च पुण्य-यशो(ऽ*) भिवृ-
६५. द्धये ऐहिकामुष्मिक-फलावाप्त्यर्थं श्रीमदानन्दपुर-वास्तव्य-तच्चातुर्व्विद्य-
सामान्य-शर्क्कराक्षि-सगोत्र-बह्वृ च-सब्रह्मचारि-

६६. भट्टाखण्डलमित्राये भट्ट-विष्णु-पुत्राय बलि-चरु-वैश्वदेवाग्निहोत्र-ऋतु-क्रुयाद्युत्सर्प्पणात्थे ग्री-खेटकाहारे उप्पलहेट-
६७. पथके महिलबली-न(ा*)म-ग्रामः सोद्रङ्ग(ः*)सपरिकारः सोत्पद्यामान-विष्टिकः स-भूत-पात-प्रत्यादोयः स-दशापराधः स-
६८. भोग-भागः स-धान्य-हिरण्यादयः सर्व्व-राजकीयानः अ-हस्त-प्रक्षोपशीयः पूर्व्व-प्रदत्त-दोपदाय-प्रहादाय-वर्ज्जा भूमिच्छिद्र-न्यायनाच-[न्द्र]ाक्का-
६९. र्ण्णव-क्षिति-पर्व्वत-समकालीनः पुत्र-पौत्रान्वय-भोग्य उदयातिसर्ग्गेण ब्रह्मदायत्वेन प्रतिपादितः (।*) यतो(ऽ*)भ्योचितया ब्रह्मदा[यस्थि]-
७०. त्या भुंजतः कृषतः कर्षापयतः प्रतिदिशतो वा न कैश्चिद्व्यासेधे वर्त्तितव्य(म्*) ।। आगामी-भद्र-नृपतिभिः अ-
७१. स्मद्वंशजैरन्यैर्व्वानित्यानित्यान्यै श्वर्य्याण्यस्थिर(ं*)मानुज्यकं सामान्यं च भूमिदानं-फलं अवगच्छद्भिः अयम-
७२. स्मद्दायो(ऽ*)नु मन्तव्यः पालयितव्यश्च (।।*) उक्तञ्च पेदव्यासोन [व्यासेन] (।*)
बहुभि र्व्वासुरधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः (।*)
७३. यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फल(म्*) । (।*) [५*]
यानीह दत्तानि पुरान्नरेन्द्रैः
धनानि धर्म्मायतना कृतानि (।*)
निर्म्मल्यिवान्तः-
७४. प्रति[मा]नि तानि
के नाम (सा*)धु(ः*) प्रतिराददीतः (।।*) [६*]
षष्टि-वर्व-सहस्राणि स्वग्ग तिष्ठति भुमिदः (।*)
अ(ा*)च्छेत्ता चानुमंत(ा*) च्च तान्येव नर-
७५. [के] [व]सेत् (।।*) [७*]
भुष्वाटवीष्वतेयासु सुपु- कोटर-वासिनः (।*)
कृष्ण(ा*)हयो हि जायन्तो भूमि-द(ा*)यं हरन्ति य (।।*) [८*]
दूतकेत्र महाप्रतीहा-
७६. [र*]- [म*]ह[ा*]क्षपटलिक-त्र-राजकुल-श्री-सिद्धसेन(ः*) ग्रि-शर्व्वट- सुतः(।*) तव तन्नियुक्त-प्रतिनर्त्तक-कुलपुत्रासा-
७७. त्य-[गु]हेन हेम्बट-पुत्रेण लिखितमिति ।। संव[त्स]र-शत-चतुष्टये सप्तचत्वारिङ्शदधिके ग्येष्ठ-शुद्ध-पंचम्यां(म्याम्) । अङ्क-
७८. त(ः*) स(ं*)व(त्*) ४०० (+*) ४० (+*) श्रेष्ठ-गु ५ (।।*) स्व-हस्तो मम (।।*)

५३

(मैत्रक सामन्त ?) विष्णुसेन का आचार-स्थिति व्यवस्था-ताम्रपत्र

(विक्रम) सं० ६४६(=५६२ ई०)

प्राप्तिस्थल : यह दानपत्र गुजरात में कहीं मिला था। अब अप्राप्य है।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : परवर्तीयुगीन दक्षिण भारतीय ब्राह्मी।

अभिलेख-सार : (विक्रम) सं० ६४६ (=५६२ ई०) के श्रावण मास के शुक्ल पक्ष के पांचवें दिन महाकार्त्ताकृतिक महादण्डनायक महाप्रतीहार महासामन्त महाराज विष्णुसेन ने, जो श्री वाव पादानुध्यात कहा गया है, लोहाटावासक से राजन्, राजपुत्र, राजस्थानीय, आयुक्तक, विनियुक्तक, शौल्किक, चोरोद्धरणिक, वैलन्धिक, चाट तथा भट आदि पदाधिकारियों और ध्रुवाधिकरण को सूचित किया कि उससे व्यापारियों के समाज ने आचार-स्थिति-पत्र को प्रदान किये जाने का अनुरोध किया है जिससे व्यापारियों के हितों की रक्षा हो सके और जिसे राजा ने कृपापूर्वक जारी किया है। इस आचार-स्थितिपत्र में सत्तर से अधिक ऐसे परम्परागत नियमों का उल्लेख है जिनको आर्थिक इतिहास के लिये अतीव महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक रोचक और महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग है। शासनपत्र का दूतक सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत भड्डक था और सामन्त अवन्ति ने त्रैकूटक-कल्चुरि संवत् के ३५७ वें वर्ष (=६०५ ई०) के कार्त्तिक मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी को दर्पपुर से इसका अनुमोदन किया और आदेश जारी किया कि लोहाटक ग्राम के व्यापारियों को, जो विष्णुभट (=विष्णुसेन) के द्वारा स्वीकृत इस व्यवस्था के अनुसार व्यापार करें, किसी प्रकार बाधा न पहुँचाई जाये।

महत्त्व : इस अभिलेख का आर्थिक इतिहास के लिये विशेष महत्त्व है। इससे ज्ञात होता है कि किस प्रकार छठी शती ई० में कम से कम पश्चिमी भारत में व्यापारियों के आर्थिक हितों की सुरक्षा की ओर ध्यान दिया जा रहा था। इससे स्थानीय व्यापार से सम्बन्धित स्थानीय नियमों की अपवादात्मक जानकारी मिलती है। इस लेख के विष्णुसेन को दि० च० सरकार ने मैत्रक राजा माना है। परन्तु इस नाम का राजा मैत्रक वंशावली में अनुल्लिखित है। सम्भवतः वह मैत्रकों के अधीन कोई स्थानीय शासक था।

सन्दर्भ-लेख : सरकार, इ० आई०, ३०, पृ० १६३–८१; स० इ०, २, पृ० ३७२–६; बुद्ध प्रकाश, आस्पेक्टस ऑव इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलिजेशन, आगरा, १९६५, पृ० ५४–६४।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. स्वस्ति (।।*) लोहाटा-वासकात्परमभट्टारक- श्री-वाव-पादानुध्यातो महाकार्त्ताकृतिक-महादण्डनायक-महाप्रतीहार-महासामन्त-महाराज-श्री-विष्णुषेण:

२. [कु]शली [स]र्व्वानेव स्वान्राज-राजपुत्र-राजस्थानीयायुक्तक-विनियुक्तक- शौल्किक-चोरोद्धरणिक- वैलब्धिक-चाट- भटादीनन्यांश्य यथासंबध्यमान-कानादेश-विक्षेप-कारिण[:]

३. ध्रुवाकिरणं च समाज्ञापयत्यस्तु वः संविदितं यथा विज्ञा (ज्ञ) प्तो (ऽ*)-हं वणिग्ग्रामेण यथास्माकं लोक-संग्रहानुग्रहार्थमाचार-स्थितिपात्रमात्मीयं प्रसादीकुर्व्वन्तु (।*) तन्मया भूत-पूर्व्वस्य

४. जनपदस्याभूत-पूर्व्वस्य च परिरक्षण-सन्निवेशनायात्मीयं स्थिति-पात्रं प्रसादीकृतं (तम्) (।*)उन्मरभेदो न करणीयो राजपुरुषेण। उद्भावक-

५. व्यवहारो न ग्राह्यः (।*) शङ्कया ग्रहणं नास्ति। पुरुषापराधे स्त्री न ग्राह्या (*) क्षेमाग्नि-समुत्थाने छलो न ग्राह्यः (।*) स्वयं ह्सिते कर्ण्णे छलो न ग्राह्या (।*) अर्त्थि-प्रत्यर्त्थिना विना व्यवहारो न ग्राह्यः (।*)

६. आपणे आसनस्थस्य छलो न ग्राह्यः (।*) गो-शकटं न ग्राह्यं (ह्यम् ।) सामन्तामात्य-दूतानामन्येषां चाभ्युपागमे शयनीयासन-सिद्धान्नं न दापयेत्सर्व्व-श्रेणीनामेकापणको न देयः (।*) सर्व्व-श्रे-

७. णीभिः खोवादानं न दातव्यं (व्यम् ।) राजकुले (ऽ*) धिकरणस्य च राजार्ग्पिका देया। अन्येषामदेया। वारिकस्य हस्ते न्यासको न स्था-पनीयः (।*) पर-विषयात्कारकाभ्यागतो वाणिजक⁀ पर-रेषे न ग्राह्यः (।*)

८. आवेदनकेन विना उत्कृष्टी न ग्राह्या। वाक्पारूष्य दण्ड-पारुष्ययोः साक्षित्वे सारी न ग्रह्या। ढेङ्कु-कड्ढक-नील-डुम्फकाश्च विष्टिं न कारयितव्याः (।*) प्रपापू[र]क-गोपालाः राजग्रहेण न ग्राह्या (:*)। गृहा-

९. पण-स्थितानां मुद्रा-पत्रक-दूतकैः साहस-वर्ज्जमाह्वानं न करणीयं(यम् ।) परेणार्थाभियुक्तानां वाद-प्रतिसमासने यज्ञ-सत्र(त्र)-विवाहादिषु आह्वानं न कारयेत् (।*) ऋणादानाभिलेखित-व्यवहारे

१०. अ-काष्ठ-लोह-बद्धेन कृतप्रतिभुवेन(भुवा)गुप्तिरुपास्या। वर्षासु स्व-विष-यात् बीजार्त्थमागतक-कर्षकाः स्वामिना न ग्राह्याः (।*) आषाढ-मासि पौषे च द्रष्टव्वं मान-पौतवं(वम् ।) आदाने रूपकः

११. स-पादः सह धार्म्मिकेण। असंवाद्य व्यवहरतः शुल्कादिकं च धान्यादि प्रवेशयतो निष्काशयतो वा शुल्कमष्ट-गुणं दाप्यः (।*) पेटविक-वारिकेण पंच-रात्रके पंच-रात्रके कर्त्तव्यमर्घ-

१२. निवेदनं(नम् ।) अनिवेदयतो विनये रूपका षड्धार्म्मिके पादः। उत्तर-

कुलिक-वारकैः मान-भाण्ड-मेय-गते बहिर्न्न गन्तव्यं(व्यम् ।) उत्तर-कुलिक-वारिकाणामेव करण-संनिधौ छात्रेण त्रिराघुषितान(नां)
१३. निरुपस्थानाद्विनये रूपक-द्वयं स-पादं सह धार्म्मिकेण (।*) व्यवहारा-भिलेखितक-करण-सेवकस्यामध्याह्लादूर्ध्वं निरुपस्थितस्य विनयो रूपकाः षट्स-पादास्सह धार्म्मिकेण (।*) आ म-
१४. ध्याह्लादूर्ध्वमुत्तरकुलिक-वारिकाणां छलो नास्ति । अर्ग्घ-वंचने रूपक-त्रयं स-पादं सह धार्म्मिकेण (।*) मुद्रापचारे विनये रूपकाः षट्स-पादाः सह धार्म्मिकेण । स्थावर-[व्य]वहारे सामन्तैः
१५. अवसितस्य विनय(यो)रूपक-शतमष्टोत्तर १००(+ *) ८ (।*) संवदने रूपकाः चतुष्पञ्चाशत् (।*) जयिके भाषा फालावने चा(च) रूपक-त्रयं स-पादं(दम् ।) उल्लंबने कर्ण्ण-त्रोटने च विनयो रूपकाः
१६. सप्तविंशत्(शतिः ।) वाक्पारुष्य-दण्डपारुष्ययोः विनये रूपकाः षट्स-पादाः (।*) क्षत-दर्शने रूपकाः अष्टचत्वारिंशत् (।*) गवां तौण्डिके वि(ं*)शोपकाः पंच । महिष्यास्त[द्]द्विगुणम् ।

द्वितीय ताम्रपट्ट

१७. मद्य-भाजनस्यावलोक्ये रूपकाः पंच (।*) प्रथम-भाजने धार्म्मि[के] अधिकरणस्य रुपक-द्वय[ं] सार्ध(ं*) रू २½ (।*)अनापृष्ट्वा(च्छ्य) सन्धयतो द्वितीये(ऽ*)हनि तद्द्विगुणं दाप्यः । सुरा-कर[ण]-
१८. स्यावलोक्ये रूपक-त्रयं धार्म्मिके रूपकः स-पादः राजार्ग्घिकया मद्य-चातुर्थ-द्वयं २(।*) कांस्य-दोस्यायुधानां(नाम्) आ[षा]ढी-पौर्ण्णमासी-भरोलक-निरोधेन ग्रह-
१९. णक-प्रविष्टं भवति । ग्रहणकेषु दण्डको नानुसरणीयः । राजकीय-गञ्जे कल्वपाल-वारिकेण चातुर्त्थ-शोटी-हस्तेन मेयं मुक्त्वा नान्यत्[कि]ंचित्-करणीयं(यम् ।) नीलकुट्यादानं [डु]ंफकेन
२०. देयं रूपक-त्रयं रू ३ (।*) इक्षु-वाटादानं रूपकाः द्वात्रिंशत् रू ३०(+)-२ धार्म्मिके रूपक-द्वयं स-पादं रू २ १/४ (।*) अल्ल-वाटस्यातो(ऽ*)-द्धादानं(नम् ।) यन्त्रकुट्यादानं रूपक-त्रयं रू ३ धार्म्मिके रूपकः
२१. स-पादः(।*) वर्ष-पर्य्युषिता वणिजः प्रावेश्यं शुल्कातियात्रिकं न दापनीयाः नैर्गमिकं देयं(यम् ।) भाण्ड-भृत-वहित्रस्य शुल्कातियात्रिके । रूपका द्वादश । रू १० (+*) २ धार्म्मिके रूपकः
२२. स-पादः रू १ १/४ (।*) महिषोष्ट्र-भरकस्य रूपकाः पञ्च स-पादः रू ५ १/४ सह धार्म्मिकेन(ण ।) बलीवर्द्दादानं रूपक-द्वयं सार्धं रू २½ धार्म्मिके पादः १/४ (।*) गर्द्दभ-भरकादाने रूपकः
२३. स-पादः रू १ १/४ सह धार्म्मिकेन(ण ।) अतो(ऽ*)र्द्धेन पोट्टलिका-स[ं]-काचितकादानं(नम् ।) अवलम्बकस्य विंशोपकाः पंच । १/४(।*) पल-शतस्य विंशोपक-द्वयं सह धार्म्मिकेन(ण) । यथोपरि-लिखित-
२४. भाण्डादानात् धान्यस्यार्द्धादानं(नम् ।) आर्द्रक-लकटायाः शुल्काति-

यात्रिके रूपकः स-पादः सह धार्म्मिकेन (ण) रू १ १/४ (।*) वंश भृत-
वहित्रस्य रूपकाः षट् स-पादाः सह धार्म्मिकेन(ण) रू ६[१/४] (।*)
२५. [स्क]न्ध-वाह्यं धान्यं शुल्कं न प्रदापयेत् (।*) कणिक्का-कुस्तुम्बरी-
राजिका-प्रभृतीनां वर्णिणका-ग्रहणे सेतिका ग्राह्या । विवाह-यज्ञोत्सव-
सीमन्तोन्नयनेषु च शुल्कं न प्रदापयेत् (।*) वर-यात्रायां
२६. शुल्कादि(ति)या[त्रि]के रूपकाः द्वादश । रू १०(+*) २ (।*)
पट्टक-धार्म्मिके रूपक-द्वयं स-पादं रू २ १/४ (।*) मद्य-वहनकस्यादाने
रूपकाः पंच । रू ५ (।*) धार्म्मिके रूपकः स-पादः रू १ १/४ (।*)
२७. ख[ल्ल-भ]रक[स्य] रूपकः स-पादः सह धार्म्मिकेन(ण) रू १ १/४(।*)
केलायाः संकाचितकस्य च अतो(ऽ*)र्द्धादानं(नम्) पाद-घटस्य विंशो-
पकाः पंच । सह धार्म्मिकेन(ण) । कटु-मद्ये शीधु-चातुर्त्थ-
२८. त्रयं ३ (।*) छिम्पक-कोलिक-पदकाराणां यथानुरूप-कर्म्मणः जनपद-
मूल्याद्राजकुले(ऽ*)र्द्धादान(नम् ।) लोहकार-रथकार-नापित-कुंभकार-
प्रभृतीनां वारिकेण विष्टि × × करणीया । ये चान्ये
२९. [पू]र्व्व-त्रलमानकाचारास्ते(ऽ*)पि समनुज्ञाताः (।*) यतो(ऽ*)-
न्यराजभिरपि अस्मद्वंशजैरन्यैर्व्वा सामान्यमाचन्द्रार्कार्ण्णव-ग्रह-नक्षत्र-
क्षिति-स्थिति-समकालीनं पुत्र-पौत्रान्वयं यशः-
३०. कीर्त्ति-फलमभिवांछद्भिरिदमस्मप्रदत्तानुग्रह-स्थिति-पात्रं(त्रम्) अनुमोद-
नीयं प्रतिपालनीयं चेति ॥ दूतको(ऽ*)त्र सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत-
भड्डकः (॥*) सं ६००(+*)४०(+*)९ श्रावण-शु ५ (।*)
३१. । स्व-हस्तः श्री-विष्णुषेणस्य ॥—
३२. स्वस्ति ॥ दर्पपुरात्सामन्तावन्ति × × कुशली [स] र्व्वानेवात्मीयानन्यांश्च
यथासम्बध्यमानकान्बोधयत्यस्तु वो विदितं यथा मयैषां
३३. वणिग्ग्रामस्य लोहाटक-ग्रामे प्र[ति]वसतो येयं(य) मुपरिलिखिता
स्थिति-व्यवस्था श्री-विष्णुभटेन दत्ता सा मयाप्यनुमता (।*) यत
३४. एषामुपरिलिखित-स्थितिपात्र-व्यवस्थया प्रतिवसता[·]स्व-पण्येन चात्मानं
वर्त्तयतां ण(न) केनचित्परिपन्थना कार्य्येति (॥*)
सं ३००(+*)५०(+*)७ कार्त्तिक-ब ७ (।*)

५४

नान्दीपुर के गुर्जर-नरेश द्वितीय दद्द प्रशान्तराग का संखेड़ा-दानपत्र

(कल्चुरि) सं० ३९२ (=६४०-१ ई०)

प्राप्तिस्थल : बड़ौदा प्रदेश का संखेड़ा-स्थल ।

ताम्रपट्ट-वर्णन : यह दानशासन एक अन्य दानशासन के साथ मिला था । इन दोनों में एक ही तिथि को एक ही ब्राह्मण को दो पृथक् ग्रामों के दान दिये जाने का वर्णन है । प्रस्तुत दानशासन दो ताम्रपट्टों पर लिखा है । इनमें, अन्य गुर्जर दानपत्रों के समान, दो-दो छेद हैं जिनमें दो छल्ले रहे होंगे जो अब अप्राप्य हैं । ताम्रपट्टों का आकार १०"×५ ३/४" है ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : दक्षिणी वर्ग की पश्चिमी शैली की ब्राह्मी ।

लेख-सार : इस लेख में द्वितीय दद्द की वंशावली नहीं दी गई है । इसमें संगमखेटक विषय (निश्चय ही आधुनिक संखेड़ा-स्थल) में स्थित सुवर्णपल्ली ग्राम को सूर्य नामक ब्राह्मण को अग्निहोत्र आदि के व्यय के लिये दान दिये जाने का उल्लेख है । ब्राह्मण सूर्य को भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न, दशपुर से आया हुआ और क्षीरसर का निवासी कहा गया है । लेख का लेखक सन्धिविग्रहिक रेव था । ब्युलर जैसे बहुत से विद्वानों ने, जो कुछ जाली गुर्जर-लेखों को मौल (असली) मानते थे, इस लेख के दद्द प्रशान्तराग को इस नाम का चौथा गुर्जर-नरेश बताया है । परन्तु अब इस दद्द प्रशान्तराग को द्वितीय दद्द ही माना जाता है ।

संदर्भ-ग्रन्थ : ब्युलर, इ० आई०, ५, पृ० ३७-४१ ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओं स्वस्ति नान्दीपुरात्सजलघनपटलनिर्ग्गतरजनिकरकरावबोधितकुमुदधवलयशः -
२. प्रतानास्थगितनभोमण्डलोनेकसमरसंकटप्रमुखागतनिहतशत्रुसामन्तकुलवधूप्रभा-
३. तसमयरुदितच्छलोद्गीयमानविमलनिस्त्रिंशप्रतापो देवद्विजातिगुरुचरणकमलप्रणा-
४. मोद्घृष्टवज्रमणिकोटिरुचिरदीधितिविराजितमकुटोद्भासितशिराः दीनानाथा-
तुराभ्या-
५. गतार्थिजनाक्लिष्टपरिपूरितविभवमनोरथोपचीयमानत्रिविष्टपैकसहायधर्म्मसं-
६. चयः प्रणयपरिकुपितमानिनीजनप्रणामपूर्व्वमधुरवचनोपपादितप्रसादप्रकाशो-
७. कृतविदग्धनागरकस्वभावो विमलगुणकिरणपंजराक्षिप्तबहलकलितिमिरनिचयः
८. समधिगतपञ्चमहाशब्दश्रीदद्द Xकुशली सर्व्वानेव राजसामन्तभोगिकविषयपतिराष्ट्र-

९. ग्राममहत्तराधिकारिकादीन्समनुवर्ण्य बोधयत्यस्तु वो विदितसस्माभिः सङ्गम-
खेटकविष-

१०. यान्तर्गतसुवर्णारपल्लिग्रामे पूर्व्वसीम्नि । तद्विष यमानेन व्रीहिपिटकवापं क्षेत्रं-

११. [य]स्याघाटनानि पूर्व्वतः क्षीरसरग्राम सीमासन्धिः उत्तरतः कुक्कुटवल्लिका-
ग्रामसीमासन्धिः

१२. अपरतः ब्रह्मदेयक्षेत्रं वटवृक्षो । तलाइका च । दक्षिणतः सुवर्णारपल्लिग्रामगामी
पंन्थाः

१३. अटवीपाटकग्रामसन्धिश्च । एवमेतच्चतुराघाटनविशुद्धं क्षेत्रं सोद्रङ्गं-

१४. सोपरिकरं सर्व्वादानसंग्राह्यं सर्व्वदित्यविष्टिप्रातिभेदिकापरिहीणं

द्वितीय ताम्रपट्ट

१५. भूमिच्छिद्रन्यायेनाचाटभटप्रावेश्यमाचन्द्रार्क्कार्ण्णवक्षितिस्थितिसमकालीनं

१६. पुत्रपौत्रान्वयभोग्यं दाशपुरविनिर्गतक्षीरसरग्रामवास्तव्यभरद्वाजसगोत्रवाजिस-

१७. नेयमाध्यन्दिनसब्रह्मचारिब्राह्मणसूर्य्याय बलिचरुवैश्वदेवाग्निहोत्रपञ्चमहायज्ञा
दिक्रि-

१८. योत्सर्पणात्थं मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धयेद्य वैशाखशुद्धपञ्चदश्यामुद-
कातिसर्गेणा-

१९. तिसृष्टं यतोस्यास्मद्वंश्यैरन्यैर्व्वागामिभोगपतिभिः प्रबलपवनप्रेरितोदधिजल-
तरङ्गचञ्चलं

२०. जीवलोकमभावानुगतानसारान्विभवान्दीर्घकालस्थेयसश्च गुणानाकलय्य
सामान्य भोगभूप-

२१. दानफलेप्सुभिः शशिकररुचिरं यशश्चिराय चिचीषुभिरयमस्मद्दायोनुमन्तव्य
पालयितव्यश्च ।

२२. यो वाज्ञानतिमिरपटलावृतमतिराच्छिन्द्यादाच्छिद्यमानकं वानुमोदेत स प
ञ्चभिर्म्महापातकैः संयुक्तः

२३. स्यादित्युक्तञ्च भगवता वेदव्यासेन व्यासेन । षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे
तिष्ठति भूमिदः [।*] आच्छेत्ता चानुम-

२४. न्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ वन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः
[।*] कृष्णाहयो हि जायन्ते भूमिदायं हर-

२५. न्ति ये ॥ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः [।*] यस्य यस्य
यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं ॥ यानीह ताद-

२६. नि पुरा नरेन्द्रैर्द्दानानि धर्म्मार्त्थयशस्कराणि [।*] निर्भुक्तमाल्यप्रतिमानि
तानि को नाम साधुः पुनराददीत ॥ स्वद-

२७. त्तां परदत्तां वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर । महीं महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रे
योनुपालनमिति [॥*] संवत्सरशतत्रये

२८. द्वि[न]वत्यधिके वैशाखशुद्धपञ्चदश्यां स्वमुखाज्ञया लिखितमिदं सन्धिविग्रह-
करणाधिकृतरेवेण

२९. सं ३०० + ९० + २ वैशाख शु १० + ५ दिनकरचरणार्च्चनरतस्य श्रीवीत-
रागसूनोः स्वहस्तोयं श्रीप्रशान्तरागस्य [॥*]

दक्षिणी भारत के अभिलेख

दक्षिणापथ के अभिलेख

१. बुद्धराज कल्चुरि का वडनेर-दानपत्र : (कल्चुरि) सं० ३६०
२. दन्तिदुर्ग का एलोरा-दानशासन : शक सं० ६६३
३. गोवा प्रदेश के अनिर्जितवर्मा मौर्य का बण्डोरा-दानपत्र : वर्ष २९
४. दक्षिण कोसल के पाण्डुवंशीय तीवरदेव का राजीम-दानपत्र : वर्ष ७
५. पाण्डुवंशीय महाशिवगुप्त का बौण्डा-दानपत्र : वर्ष २२
६. शरभपुरवंशीय महाजयराज का आरंग-दानपत्र : वर्ष ५
७. शरभपुरवंशीय महासुदेवराज का रायपुर-दानपत्र : वर्ष १०

बादामी के चालुक्यों के अभिलेख

१. वल्लभेश्वर (प्रथम पुलिकेशी) का बादामी-शिलालेख : शक सं० ४६५
२. द्वितीय पुलिकेशी का लोहनेर-दानपत्र : शक सं० ५५२
३. द्वितीय पुलिकेशी की ऐहोले-प्रशस्ति : शक सं० ५५६
४. प्रथम विक्रमादित्य का गोडवल-दानपत्र : शक सं० ५९६
५. प्रथम विक्रमादित्य का सवणूर-दानपत्र : शक सं० ५९७
६. द्वितीय विक्रमादित्य का नर्वन-दानपत्र : शक सं० ६६४
७. द्वितीय कीर्त्तिवर्मा का वक्कलेरी-दानपत्र : शक सं० ६७९

सुदूर दक्षिण के अभिलेख

१. प्रथम परमेश्वरवर्मा पल्लव (६६९-७०० ई०) का वुन्नगुरु वयपलेम-दानपत्र : वर्ष १९
२. द्वितीय नरसिंहवर्मा पल्लव (लग० ७००-७२५ ई०) का कालहस्ती-दानपत्र : वर्ष १२
३. नेडुञ्जडैयन पाण्ड्य (लग० ७६५-८१५ ई०) का वेलविकुडी (ब्रिटिश-संग्रहालय) ताम्रपत्र-अभिलेख : वर्ष ३

५५

बुद्धराज कल्चुरि का वडनेर-दानपत्र

(कल्चुरि) सं० ३६०(=६०८ ई०)

प्रातिस्थल : महाराष्ट्र के नासिक जिले का वडनेर स्थल।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : दक्षिणी वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी।

छन्द : १-४ : अनुष्टुम्; ५ : इन्द्रवज्रा।

लेख-सार व महत्त्व : पश्चिमी दक्षिणापथ में छठी शती ई० के उत्तरार्द्ध में कल्चुरि वंश शक्तिशाली हुआ। अभिलेखों से तीन कल्चुरि नरेशों का अस्तित्व ज्ञात होता है—कृष्णराज, शंकरगण तथा बुद्धराज। ये तीनों 'परम माहेश्वर' कहे गये हैं। प्रस्तुत अभिलेख शंकरगण के पुत्र बुद्धराज का है जिसने ५९५ ई० के कुछ ही बाद में शासन करना प्रारम्भ किया। इसे वैदिश (=विदिशा=बेसनगर) से जारी किया गया था। इसमें वटनगर भोग (आधुनिक वडनेर) में भूमिदान किये जाने का उल्लेख है। पूर्वी मालवा को बुद्धराज ने ६०८ ई० के लगभग जीता होगा। चालुक्य मंगलेश (५९७-९८ से ६१०-११ ई०) बुद्धराज को हराने का दावा करता है। अभिलेख में उल्लिखित कोणियाणम् ग्राम का दान रानी अनन्त महायी की प्रार्थना पर वाजसनेय-माध्यन्दिन शाखा के बुद्धस्वामी को बलि, चरु, वैश्वदेव, अग्निहोत्र आदि सम्पन्न करने के लिये दिया गया था। दान दिये गये ग्राम को सभी दित्यों (देय करों), विष्टि, प्रतिभेदिका तथा चाटभटों के प्रवेश से मुक्त कर दिया गया था और दान पाने वाले को उद्रंग, उपरिकर आदि वसूल करने का अधिकार दिया गया था। दानपत्र में दूतक रूप में महाबलाधिकृत प्रसह्यविग्रह और लेखक रूप में महासन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत अनाफित का उल्लेख है।

तिथि : (कल्चुरि) सं० ३६० की भाद्रपद-सु का १३वां दिवस।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : गुप्ते, वाई० आर०, इ० आई०, १२, पृ० ३३, अ०; मिराशी, कॉर्पस, ४, पृ० ४७ अ०; सरकार, स० इ०, २, पृ० ३५५-९।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. १ॅ स्वस्ति (।।*) विजय-स्कन्धावाराद्वैदिश-वासकाच्छरदुपगमप्रसन्न-
गगनतलविमल-विपुल-विविध-पुरु-

२. [ष-रत्न]-गुण-किरण-[निकर]ावभासिते महासत्वापाश्रय-दुर्ल्लङ्घे गाम्भीर्य्यवति स्थित्यनुपालनपरे महोदधा-

३. विव[कट]च्चुरीणाम[न्वये][सकल-जन]-मनोहरया चन्द्रिकयेव कीर्त्या भुवनमवभासयन्ना जन्मन [एव] [पशु]-

४. [पति-समा]श्रय-पर×× कलङ्क-[दो]ष-रहित×× कुल-कुमुदवन-लक्ष्मी-विवोधनश्चन्द्रमा इव श्री-कृष्णराजो [यः]

५. संश्रय-विशेष-लोभादिव सकलैराभिगामिकैरितरैश्च गुणैरुपेत-स्संपन्न-प्रक्रि(कृ)ति-मण्डलो यथा[वत्]

६. आत्मन्याहित-शक्ति-सिद्धिर्य्येन च रुचिर-वंश-शोभिना निय-तमस्खलित-दान-प्रसरेण प्रथित-बल-गरिम्णा

७. वन-वारण-यूथपेनेवाविशङ्कं विचरता वन-राजय इवावनमिता दिशो यस्य च शस्त्रमापन्न-

८. त्राणाय विग्रह⌒पराभिमान-भंगाय शिक्षितं विनयाय विभ-वार्ज्जनं प्रदानाय प्रदानं धर्म्माय

९. [धर्म्म]श्श्रेयो(ऽ*) वाप्तये तस्य पुत्र⌒पृथिव्यामप्रतिरथ-श्चतुरुदधि-सलिलास्वादित-यशा धनद-वरुणेन्द्रान्त[क]-

१०. [सम]-प्रभावस्स्व-बाहु-बलोपात्तोर्ज्जित-राजश्री ⌒प्रतापाति-शयोपनत-समग्र-सामन्त-मण्डलः

११. परस्परापीडित-धर्म्मार्त्थ-काम-निषेवी प्रणति-मात्र-सुपरितोष-गम्भीरोन्नत-हृदयस्सम्यक्प्रजापालनाधि-

१२. गत-भूरि-द्रविण-विश्राणनावाप्त-धर्म्मक्रियश्चिरोत्सन्नानां नृपति- वंशानां प्रतिष्ठापयिता अतयुच्छ्रितानां

१३. उ[न्मू]लयिता दीनान्ध- क्रि(कृ)पण- समभिलषित- मनोरथाधिक-निकाम-फल-प्रद⌒पूर्व्वापर-समुद्रान्तादि-देश-स्वामी

१४. [माता-पितृ]-पादानुद्ध्यात ⌒ परममाहेश्वरः श्री-शङ्करगणस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्ध्यातस्सकल-महीमण्डलैक-

१५. तिलकस्सातिशय-प्रथित-नय-विनय-दया-दान-दाक्ष्य-दाक्षिण्य-धैर्य्य-शौर्य्य-स्थैर्य्याद्यशेष-गु[ण-स]मन्वितः

१६. प्रवल-रिपु-बलोद्भूत-दर्प्प-विभव-प्रध्वन्स-हेतुस्सेतु स्थितीनामा-[यतनं] सिद्धेरप्रति[हत-चक्रः]

१७. चक्रधर इवार्त्ति-प्रशमन-कर⌒प्रजानां परममाहेश्वरः श्री-बुद्ध- [राज] स्सर्व्वानेव राज-

द्वितीय ताम्रपट्ट

१८. सामन्त-भोगिक- विषयपति-राष्ट्र-ग्राम-महत्तराधिकारिकादी (न्*) समाज्ञापयत्यस्तु वो विदितमस्माभिः

१९. वटनगर-भोगे भट्टउरिका-प्रत्यासन्न-कोणियाणां । एष ग्रामस्सोद्रङ्गस्सोपरिकरस्सर्व्वादान-

२०. संग्राह्यस्सर्व्व-दित्य-विष्टि-प्रातिभेदिका-परिहीणो भूमिच्छिद्र-न्यायेनाचाट-भट-प्र (1*) वेश्य आच[न्द्रार्क्का]र्ण्णव-

२१. क्षिति-स्थिति-समकालीन‿पुत्र- पौत्रान्वयभोग्यो वटनगर- वास्तव्य-काश्यप-सगोत्र-वाजसनेय-माद्ध्यन्दिन-

२२. [स]ब्रह्मचारि-ब्राह्मण-बोधस्वामिने बलि-चरु-वैश्वदेवाग्निहोत्रादि-क्रियोत्सर्प्पणार्थं मातापित्रोरात्मनश्च

२३. पुण्याभिवृद्धये उदकातिसर्ग्गेणातिसृष्टो यतो (ऽ*) स्मद्वंश्यैरन्यैर्व्वागाभि-नृपति-भोगपतिभि‿प्रबल-पवन-प्रेरितोदधि-

२४. जलतरङ्ग-चञ्चलं जीवलोकमभावानुगतानसारान्विभवादीर्ग्घ-कालस्थेयसश्च गुणानाकलय्य सामान्य-

२५. भोग-भू-प्रदान-फलेप्सुभिश्शशि-कर-रुचिरं चिराय यशश्चि-चीषुभिरयमस्मद्दायो (ऽ*) नुमन्तव्य‿पालयितव्यश्च (।*)

२६. [यो वाज्ञा]न-तिमिर-पटलावृत-मतिराच्छिन्द्यादाच्छिद्यमानं वानुमोदेत स पञ्चभिर्म्महापातकैस्संयुक्तस्स्या[त्]

२७. इत्युक्तञ्च भगवता वेदव्यासेन व्यासेन ।।
षष्टिं वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः(।*)
आच्छेत्ता च

२८. अनुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ।। [१*]
विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्क-कोटर-वासिनः (।*)
कृष्णाहयो हि जायन्ते

२९. भूमि-दायं हरन्ति ये ।। [२*]
बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिः (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा

३०. फलं ।। [३*]
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्योया(य)त्नाद्रक्ष युधिष्ठिर ।
मर्हि (हीं) महीमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो (ऽ*) नुपालनम् ।। [४*]
यानि(नी)ह

३१. द[त्तानि] [पुरा] नरेन्द्रै-
र्द्दानानि धर्म्मार्त्थ-यशस्कराणि ।
निर्भ्भुक्त-माल्य-प्रतिमानि तानि
को नाम साधु‿पुनराद-

३२. दीत इति ।। [५*]
संवत्सर-शत-त्रये षष्ट्यधिके भाद्रपद-शुद्ध-त्रयोदश्यां
पाशुपतराज्ञी-राज्ञी

३३. अनन्त-महायी-विज्ञापनया महाबलाधिकृत-श्री-प्रसह्यविग्रह (:*)
दूतकं(कः ।)[लिखितं]

३४. इदं महासन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृतानापितेनेति ।। सं ३००
(+*) ६० भाद्रपद-शु १० (+*) ३ ।।

५६

दन्तिदुर्ग का एलोरा-दानपत्र

(शक) सं ६६३ (=७४१ ई०)

स्थान : महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में एलोरा नामक प्रसिद्ध स्थल।

लिपि : दक्षिणी वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी।

भाषा : संस्कृत।

विषय : राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग द्वारा नवसारिका मूल के कुछ ब्राह्मणों को चन्दनपुरी चौरासी के अन्तर्गत पिप्पलाल नामक ग्राम का दान।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : एस० के० दीक्षित, इ० आई०, २५, पृ० २५।

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओं स्वस्ति[।*] बदरिकावासकात्समधिगत-पंच-महाशब्द-म-
२. हा-सामन्ताधिपति-राष्ट्रकूटान्वय-गोत्रालंकार-श्री-कर्क्क-
३. राज[स्] तत्पादानुद्ध्यात-परम-माहेश्वर-समधिगत-पंच-म
४. हाशब्द-महासामन्ताधिपति-श्रीमदिन्द्रराज-[स्तत्*]-सुत[ो*] मेरु-महीधर-
५. गिर (? विजर)-स्थिर-रुचिर-समुन्नते विकसित-यशसि महति स इन्द्रराज्ञा (राजस्या)-
६. न्वये अनेक-चातुर्द्दन्त-गज-घटाटोप-समर-संघट्ट-ल-
७. ब्ध-विजयी(यः) समधिगत-पञ्च-महाशब्द-महासामन्ताधिपति-
८. प्री(पृ)थिवी-वल्लभ-खड्गावला(लो)क-श्री-दन्तिदुर्ग-राजः कुशली
९. सर्वानेव राज-सामन्त-भोगिक-विषयपति-राष्ट्रकूट-महत्तरा-
१०. धिकारिकादी[न्*] समाज्ञापयत्यस्तु वो विदितं यथा च मया एल[ा*]पुर-
११. व्यवस्थितेन अश्वयुज-शुद्ध-त्रयोदश्यां स्व-हस्तेन पादां (दौ) प्रक्षा-
१२. ल्य परलोकमपेक्षत्वमङ्गीकृत्य (लोकमपेक्ष्य) महत्फलं च श्रुत्वा चन्दनपुरि-
१३. चतुराशित्या(रशीत्य)न्तर्गत-पिप्पलालं नाम ग्राम[:*] नवसारि-

१४. का-विनिर्गत-भरद्वा[ज]-सगोत्राय तथा[ऽ*]ध्वर्य्यु-रेवादित्य-

१५. भट्टाय तथा माउलाय तथा[गो]विसरेभ्य(भ्यो)गुहेश्वर-ती-

द्वितीय ताम्रपट्ट

१६. र्थ-स्नातेन बलि-चरु-वैश्वदेवाग्निहोत्रादिक्(क्रि)यो-

१७. त्सर्प्पणार्त्थं माता-पित्रोरात्मनश्च पुण्य-यशो-[ऽ*]भि-.

१८. ब्रि (वृ)द्धये पिप्पलाल-ग्राम [:*] प्रतिपादित: यत [:*] अ-चाट-
भट-प्रवेश्य[:*] अ-

१९. भ्यन्तर-सिद्धिक[:*] सर्व्वादानं-संग्राह्य[:*] यतो [ऽ*]स्म[द्]-
वंशै(श्यै)रन्यैर्व्वा भोग-नृ-

२०. पतिभिः (भावि-नृपति-भोगपतिभिः) नल-वेणु-कदली-सार-
संसार-जल-बुद्बुदोपमं जीवित-

२१. मवधार्य्य अस्मद्दायो[ऽ*] नुमन्तव्य[:*] प्रतिपालयितव्यश्च यो
वा [ऽ*]ज्ञा-

२२. न-तिमिरान्धावृत-मतिराचि(च्छ)न्द्यादाछि(च्छ)द्यमानं वा[ऽ*]
नुमोदेत स

२३. पंचभिर्महापातकै[:*]संयु[न*]क्त[।*] उक्तं च भगवतो(ता)
वेदव्यासेन[।*] षष्टिं

२४. वर्ष-सहस्राणि स्वग्गि(र्ग्गे) तिष्ठति भूमिदः। आच्छेता (त्ता)
चानुमन्ता च

२५. तान्येव नरके वसे[त्*]। [।*] विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्क-
कोटर-वासिन[:।*]

२६. क्रि(कृ) ष्णाहयो हि जायंते(यन्ते) भूमिदायं हरन्ति ये [॥*]
बहुभिर्वसु-

२७. धा भुक्ता राजभि[:*] सगरादिभिः। यस्य यस्य यदा भूमि[स्]
तस्य तस्य तदा फ-

२८. लं(लम्) [॥*] सं ६०० (+*)६० (+*) ३ अश्वयुज-शुद्ध-त्रयोदश्यां
सोमवारे

२९. लिखितमिदं कुक्कुरेन(ण) गवंग [वाब्बा]भिहितेन [॥*]

५७

गोवा प्रदेश के अनिर्जितवर्मा मौर्य का बण्डोरा-दानपत्र

वर्ष २९

प्राप्तिस्थल : गोवा प्रदेश का बण्डोरा स्थान।

ताम्रपट्ट-वर्णन : इसमें दो ताम्रपट्ट हैं जिनका आकार ६.६"×२.६" है। ये एक छल्ले से जुड़े थे। दोनों ही ताम्रपट्टों पर लेख केवल एक ही ओर लिखा है।

भाषा : संस्कृत। सम्पूर्णतः गद्य में है।

लिपि : दक्षिणी वर्ग की छठी-सातवीं शती ई० की पेटिकाशीर्षक लिपि।

लेख-सार : यह लेख विजयकुमार द्वीप से जारी किया गया था। इसका जारीकर्त्ता मौर्य नरेश अनिर्जितवर्मा था। इसमें उसने द्वादशग्रामों के निवासियों तथा पदाधिकारियों—यथा, भोजकों, आयुक्तकों, आदि—को इसमें उल्लिखित दान की सूचना दी है। दान पाने वाले ब्राह्मण का नाम हस्त्यार्य था। दान का आज्ञप्ति स्वयं राजा था।

तिथि : अनिर्जितवर्मा के शासन काल के २९वें वर्ष की हेमन्त ऋतु के सातवें पक्ष का दसवां दिन।

महत्त्व : इस अभिलेख का महत्त्व इसमें एक मौर्य वंश का उल्लेख होने के कारण है। गोवा प्रदेश पर चालुक्यों के उदय के पूर्व भोजों का शासन था। लेकिन चालुक्यराज प्रथम कीर्त्तिवर्मा, मंगलेश तथा द्वितीय पुलिकेशी ने मौर्यों को परास्त करने का दावा किया है। क्योंकि चालुक्य लेखों में भोजों की चर्चा नहीं है इसलिये मौर्यों ने तब तक भोजों का स्थान ले लिया होगा। अनिर्जितवर्मा इन मौर्यों का एक राजा था। गायि तथा सरकार का यह अनुमान सही लगता है कि चन्द्रवर्मा, जिसका नाम इसी काल के एक अन्य गोवा-दानपत्र में मिलता है और जिसको सम्भवतः मौर्य कहा भी गया है (यद्यपि उस लेख में 'मौर्य' शब्द कुछ अपठ्य हो गया है), अनिर्जितवर्मा से सम्बन्धित रहा होगा। इन मौर्यों का मथुरा-कन्नौज तथा राजस्थान के मौर्यों से क्या सम्बन्ध था, कहना कठिन है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : गायि, जी० एस०, इ० आई०, ३३, पृ० २९३-५।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

1. [दि] ट्ठम् (दृष्टम्) [।।*] विजय-कुमार द्वीपान् मौर्य्य-
महाराजस्य श्रीमदर्निर्जितवर्म्मणो वच [नात्]
२. देशे द्वादशग्राम्या ग्रामो (म)-पौरकाः वर्त्तमान-
भविष्यद्-भोजकायुक्तक-स्था[य्या]-

३. दयश्च वक्तव्याः यथात्र ग्रामसीमे(ऽ)स्मामिः नागपद्द-
मल्लदत्ताचलानां (नाम्)
४. आत्मनश्च इहामुत्रिक-नि[:*] श्रेयसात्र्थम् खज्जनं
(न)-हलमेराकमेकतः एकतश्च
५. राष्ट्रकूट-तटाक-वाटक-गृह-स्थान-भु(भू)मिः चतुर्भि
श्च प्रेष्य-कुलैर्य्यदत्र सीमे

द्वितीय ताम्रपट्ट

६. ब्राह्मणः अरण्य-कर्षणम् (णं) कारापयति (कारयति) तेन
साद्र्धं[ ](द्र्धम्) उक्ता (क्त)-नियोगाय गृही[त]-
७. साह्ना (ह्) स्नाय हारीत-सगोत्राय हस्त्यार्याय सर्व्व-
पङ्क-परिहृत-परी(रि) हारम्
८. उदकेन संप्रदत्तम्[।*] ज्ञात्वैवम् ब्राह्मणः लवण-
जल[ ]सेतुना निवार्य्य क्षेत्रम्
९. उत्पाद्य चोपभुंजमानः न केनचिद् व्यंसयितव्यः [।*]
यो(ऽ)स्मात-कुलाभ्यन्तरोन्यो वा राग-
१०. द्वेष-लोभ-मद-मात्सर्य्यादिभिर्द्दोषैरभिभूतः व्यंसनां
कुर्य्यात् स पञ्चमहापातको-
११. पपातक-संयुक्त[:*]स्यादिति[।*]अत्राज्ञप्तिः स्वयं
महाराजः ॥ साव्व (संव) २०(+*) ९ ॥ हेम ७
दिव १०[।*]

५८

पाण्डुवंशीय महाराज तीवरदेव (लग० ५८०-९५ ई०)का राजीम-दानपत्र

वर्ष ७

प्राप्तिस्थल : मध्य प्रदेश के रायपुर जिले का राजीम स्थल।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : परवर्ती ब्राह्मी का पेटिकाशीर्षक रूप।

छन्द : १, ४, ६-८ : अनुष्टुभ् (श्लोक); २ : आर्या; ३ : वसन्ततिलक; ४-५ : इन्द्रवज्रा।

सार और महत्त्व : दक्षिण कोसल के पाण्डु या सोम वंश के तीवरदेव की, जिसे कभी-कभी महातीवरदेव भी कहा जाता है, तिथि विवादग्रस्त है। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने आठवीं शती ई० में शासन किया। परन्तु यह मानने के लिये अधिक सुपुष्ट प्रमाण मिलते हैं कि वह ईशानवर्मा के पुत्र सूर्यवर्मा का समकालीन था। प्रस्तुत लेख उसने श्रीपुर=सिरपुर (जिला रायपुर) से अपने शासन के सातवें वर्ष में जारी किया था। उसे महाराज तथा समस्त कोसल का स्वामी कहा गया है। समधिगतपञ्चमहाशब्द विरुद्ध उसके लिये नहीं, उसके सामन्तों के लिये प्रयुक्त है। वह एक परमवैष्णव था। अभिलेखों में उसे पाण्डु वंश में उत्पन्न उदयन का प्रपौत्र, इन्द्रराज का पौत्र तथा नन्नदेव का पुत्र कहा गया है। उसने भट्ट भवदत्त और भट्ट हरदत्त को, जो भट्ट गौरीदत्त के पुत्र थे, पिम्परिपद्रक ग्राम दान में दिया था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : कीलहॉर्न, आई० ए०, १८, १८८९, पृ० २२० अ०; हीरालाल, इन्स्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, पृ० ९७; मिराशी, नागपुर यूनी० जर्नल, दिस० १९३६, पृ० ५०-१; फ्लीट, कॉर्पस, ३, पृ० २९४-६; सरकार, स० इ०, २, पृ० ३०७ अ०।

मूलपाठ

मुहर

क. श्रीमत्ति(त्ती)वरदेवस्य कोसलाधिपतेरिदं(दम्) (।*)

ख. शासनं धर्म्म-वृद्ध्यर्थं[।] स्थिरमाचन्द्रतारकं(कम्) (।।*) [१*]

प्रथम ताम्रपट

१. १ँ

जयति जगत्त्रय-तिलक(:*) क्षितिभृत्कुल-भवन-मङ्गल-स्तंभ(:* ।)

श्रिमत्तिवरदेवो धौरेय(:*) स-

२. कल-पुण्य-कृतां(ताम्) (।।*) [२*]

स्वस्ति (।।*) श्रिपुरात्समधिगत-पञ्चमहाशब्दानेक-नत-नृपति-किरिट-

३. कोटि-धृष्ट-चरण-नख-दर्पणोद्भासितो(ऽ*)पि कण्ठदुन्मुख-प्रकट-रिपु-राज-लक्ष्मि-
४. केशपाशाकर्षण-दुर्ललित-पाणिपल्ल(वो*) निशित-निस्तृङ्श-घन-घात-पातितारि-द्विरक-कु-
५. म्भ-मण्डल-गलद्व हल-शोणित - सदासिक्त-मुक्ताफल-प्रकर-मण्डित-रणाङ्गण-
६. द्विविध-रत्न-संभ[ा]र-लाभ-लोभ- विजृम्भमाणारि-क्षारवारि-वाडवा-नलश्चन्द्रोदय इवाकृत-
७. करोद्वेगः क्षिरोद इवाद्विर्भूतानेकातिशायि-रत्न-सम्पत् गरुत्मा-निव भुजङ्गोद्धार-चतुर(ः*)
८. परामृष्ट-गत्रु-कलत्र-नेत्रांजन-कोमल-कपोल–कुङ्कुमपत्रभङ्गत् शिष्टा-चार-व्यवस्था-
९. परिपालनैक-दत्त-चित्त(ः*) (।*) अपि च प्राक्तने तपसि यशसि रहसि चेतसि चक्षुषि ब[पु]-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१०. षि च पूजितो जनेनाक्लिष्टतया नितान्तमवितृप्तो गूडो गाड- स्वच्छ-प्रसन्नयद-
११. नेन चालङ्कृत(ः*)स्वामि-भवन प्यबहु-लपनो(ऽ*)नुज्झितः कु-तृष्णो-(ऽ*)पि नितान्त-त्या-
१२. गि रिपुजन-प्रचण्डो(ऽ*)पि सोम्य-दर्शनो भूति-विभूषणो(ऽ*)प्यपरुषः स्वभाव(तः*) कि-
१३. ञ्चासन्तुष्टो धर्मार्जिने न सम्पल्लाभे स्वल्प(ः*)क्रोधे न प्रभावे लुब्धो यशसि न प-
१४. र-वित्तापहारे स[क्ल]ः सुभासितेपु न कामिनि-क्रिडासु प्रतापानल-दग्धाशेष-
१५. रिपुकुल-तूलराशिस्तुहिनशिलाशैल-धवल-यशोराशि-प्रकाशित-दिगन्त(ः*) कान्त(ः*) प्रकृत्या
१६. शि मदिन्द्रबल-सूनोरलङ्कृत-पाण्डुवङ्शस्य श्रि-नन्नदेवस्य तनयप्राप्तः स्वपुन्य-
१७. संभार- प्रसमिताशेष-जगदुपद्रवः स्व-प्रज्ञा-शूचि-समुद्धृताखिल-कण्टकः पर-
१८. मवैष्णवो मातापितृ-पादानुध्यातः श्री-महाशिव-तिरराजः कुशली ॥ पेण्ठामभुक्तीय-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१९. पिम्परिपद्रके ब्राह्मणां संपूज्य प्रतिवासिनः समाज्ञापयति (।*) विदि-तमस्तु
२०. भवतां यथास्माभिरयं ग्रामो यावद्रवि-शशि-तारा-किरण-प्रतिहत-घोरान्धकारं ज-

२१. गदवतिष्ठते तावदुपभोग्य(:*) स-निधिः सोपनिधिः रचाट-भ[ट]-
प्रवेश दा-

२२. रद्रणक-सर्व्व-करादान-समेतो [माता]-पित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये
भा-

२३. रद्वाज-सगोत्र-वाजसनेय-माध्यन्दिन-भट्ट-गौरिदत्तपुत्र-भट्ट-

२४. भवदत्त-भट्ट-हरदत्ताभ्यां ज्येष्ठ-द्वादश्यामुदक-पूर्व्वं प्रतिपादित इ-

२५. त्यवगम्य भवद्भिर्यशोचितमस्मै भोग-भागमुपनयद्भिः सुखम्प्रति-

२६. वस्तव्यमिति ।। भाविनश्च भूमिपालानुद्दिश्येदमभिधीयते(।*)
भूमि-प्र-

२७. दा दिवि ललन्ति पतन्ति हृन्त
हृत्वा महि नृपतयो नरके नृशङ्साः(शंसाः) (।*)

तृतीय ताम्रपट्ट

२८. एतद्वय परिकलय्य चलाञ्च लक्ष्मि-
मायुस्तथा कुरुत यद्भवतामभिष्ट[ं] (।।*) [३*]

२९. अपि च (।*)
रक्षा-पालनयोस्तावत्फलं सुगति-दुर्गति(ती) (।*)
को नाम स्वर्गमुच्छ्रृज्य
नरकं प्रतिपद्यते (।।*) [४*]

३०. व्यास-गितांश्चात्र श्लोकानुदाहरन्ति (।*)
अग्नेर(प*)त्यं प्रथमं

३१. सुवर्ण
भूर्व्वैष्णवि सूर्य्य-सुताश्चः गावः (।*)
दत्ता त्रयस्तेन मवन्ति लोका
यः काञ्चनं गा-

३२. ञ्च महि[ञ्च] दद्यात्(।।*) [५*]
षष्टि-वर्ष-सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः (।*)
आक्षेप्ता

३३. चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् (।।*) [६*]
बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिमिः (।*)

३४. यस्य यस्य भूमि तस्य तस्य तदा फलं(लम्) (।।*) [७*]
स्व-दत्तां पर-दत्तां बा यत्नाद्रक्ष

३५ युधिष्ठिरः (।*)
महि महिमतां श्रेष्ठ दाना श्रेयो(ऽ*)नुपालनमिति ।। [८*]
प्रवर्द्धमान-

३६. विजय-राज्य-सम्वत्सर् ७ कर्त्तिक-दिवस् अष्ठ(ष्ट) सु ८ (।।*)

५६

पाण्डुवंशीय महाशिवगुप्त का बौण्डा-दानपत्र

वर्ष : २२

प्राप्तिस्थल : मध्य प्रदेश के रायगढ़ जिले का बौण्डा ग्राम।

भाषा : संस्कृत। शापाशीर्वादात्मक श्लोकों को छोड़कर शेष गद्य में।

लिपि : दक्षिणी वर्ग की परवर्तीपेटिका शीर्षक ब्राह्मी।

छन्द : १ : वसन्ततिलका, २, ४ : अनुष्टुभ्, ३ : इन्द्रवज्रा।

सार और महत्त्व : यह अभिलेख पाण्डुवंशी नरेश महाशिवगुप्त का है जो तीवर के भाई चन्द्रगुप्त का पौत्र तथा चन्द्रगुप्त के पुत्र हर्षगुप्त का उसकी रानी वासटा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र था। यह वासटा सूर्यवर्मा की पुत्री थी, जो लगभग निश्चय ही ईशानवर्मा मौखरि का पुत्र था। महाशिवगुप्त ने बालार्जुन उपाधि धारण की और कम से कम ५७ वर्ष शासन किया। सम्भवतः उसे ६३४ ई० के पूर्व द्वितीय पुलिकेशी ने पराजित किया था। प्रस्तुत अभिलेख का उद्देश्य महाशिवगुप्त के द्वारा भारद्वाज गोत्र के त्रिविक्रमस्वामी नामक ब्राह्मण को अपने शासन के २२वें वर्ष में लायोड्डक विषय में स्थित शर्करापाटक ग्राम दान में दिये जाने का उल्लेख करना है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : वी० वी० मिराशी तथा एल० पी० पाण्डे, इ० आई०, ३५, पृ० ६० अ०।

मूलपाठ

मुहर

क. राज्ञः[:*] श्री[हर्ष]गुप्तस्य सूनो[:*] सद्गुणशालिन[: ।*]
ख. शासनं [शि]वगुप्तस्य स्थितमाभुवनस्थितेः ।।

प्रथम ताम्रपट्ट

१. सिद्धम् [।*] स्वस्त्यशेषक्षी(क्षि)ति(ती)श[वि]द्याभ्यासविशेषासादितमहनीयविन–
२. यसम्पत्संपादितसकलविजिगि(गी)षुगुणो गुणवत्समाश्रयः
३. प्रकृष्टतरशौर्य्यप्रज्ञाप्रभावसंभावितमहाभ्युदयः कार्त्तिके–
४. य इव कृत्तिवाससो राज्ञः श्रि(श्री)हर्षदेवस्य सूनु[:*] सोक–
५. वङ्शसम्भवः परममाहेश्वरो मातापितृपादानुध्यातश्रि(श्री)महाशी-(शि)व–
६. गुप्तराज[:*] कुशलि(ली) ।। लायोड्डकवैषयिकशर्करापाटके ब्रा–
७. ह्मणां(णान्) संपु(पू)ज्य सप्रधाना[न्*] प्रतिवासनो यथाकालाध्यासिन[:*]

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

८. समाहर्त्तृसन्निधात्तृ(तृ) प्रमुखानन्याङ्श्चास्मत्पादोपजीवी(वि)न[:]
९. सर्व्वराजपुरुषान्समाज्ञापयति [।*] विदितमस्तु भवतां यथा-
१०. स्माभिरयङ्ग्रामः सनिधिः सोपनिधिः सदशापराधः सर्व्वक-
११. रादानसमेतः सर्व्वपि(पी)डार्व्जितः प्रतिषिद्धचाटभटप्रवे-
१२. शो च्छान्दोगभरद्वाजसगोत्त्रभट्टतृ(त्रि)विक्रमस्वामिने पौषसंक्रान्त्या-
१३. मुदकपूर्व्वं मातापित्त्रोरात्मनश्च पुण्ताभिबृ(वृ)द्धये ताम्ब्रशासनेना-
१४. चन्द्रार्कसमकालोपभोगार्थं प्रतिपादित इत्यवगत्यास्य विधे-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१५. यतया समुचितं भोगभागादिकमुपनयद्भिर्भवद्भि[:*] सुखं प्रती(ति)-
१६. वस्तब्य(व्य)मिति ।। भाविनश्च भूमिपालानुद्दिश्येदमभिधि(धी)य-[ते] [।*] भूमि-
१७. प्रदा दिवि ललन्ति पतन्ति हन्त हृत्वा महिं(हीं) नृपतयो नरके नृशङ्सा-
१८. त् [।*] एतद्व(द्द्व)यं परिकलय्य चलाञ्च लक्ष्मि(क्ष्मी)मा [यु*]स्तथा कुरुत य-
१९. द्भवताममि(भी)ष्टं(ष्टम्) [।।*] अपि च [।*] रक्षापालनयोस्ता-वत्फलं सुगति-
२०. दुर्ग्गति(ती) [।*] को नाम स्वर्गमुच्छि(त्सृ)ज्य नर[कं]प्रतिपद्यते [।*] ब्या(व्या)सगी-
२१. तांश्चात्त्र श्लोकानुदाहरन्ति [।*] अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

२२. भूर्व्वैस्णवि(वी) सूर्य्यसुताश्च गावः [*।] दत्तास्त्रयस्तेन भवन्ति लोका य[:*]
२३. क(का)ञ्चनं गाञ्च महिं(ही)ञ्च दद्यात् [।।*] [प]ष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे मो–
२४. दति भूमिदः [।*] आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् [।।*] ब–
२५. हुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः [।*] यस्य यस्य यदा भूमि–
२६. त(स्त)स्य तस्य तदा फलं(लम्) [।।*] स्वदत्तां परदत्ताम्वा यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर [।*] महि(हीं)
२७. महिमतां श्रेष्ठ दानाश्रे(च्छ्रे)योनुपालनमिति ।। प्रवर्द्धमानविजयराज्ये
२८. सम्ब(संव)त्सरे द्वाविङ्शे(विंशे) पौषप्रथमपक्षषष्टयामङ्क्नापि संब(व)त् २० + २ पुष्य–

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२९. दिन ६ ।

६०

शरभपुरवंशीय महाजयराज का आरंग-दानपत्र

वर्ष ५

प्राप्तिस्थल : मध्य प्रदेश के रायपुर नगर से बारह मील दूर स्थित आरंग स्थान।

ताम्रपट्ट-परिचय : ये संख्या में तीन हैं। इनका आकार ५ ३/८" × २ ३/४" है और ये एक छल्ले से जुड़े हैं। छल्ले पर ३ १/४" परिधि की मुहर टंकित है।

भाषा : संस्कृत। शापाशीर्वाद विषयक श्लोकों को छोड़कर गद्यमय।

लिपि : मध्य भारत की पेटिकाशीर्षक ब्राह्मी।

लेख-सार : छठी शती ई० के प्रारम्भ में शरभपुर को (सिरपुर के समीप कहीं स्थित) राजधानी बनाकर शासन करने वाला एक नया वंश अस्तित्व में आया। जयराज या महाजयराज, जिसने यह दानपत्र जारी किया, सम्भवतः प्रसन्नमात्र का उत्तराधिकारी था (दे०, क्ला० ए०, पृ० २१९)। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य जयराज द्वारा किसी ब्राह्मण को पूर्वी देश या पूर्वी राष्ट्र में स्थित पाम्बा गाँव को दान दिये जाने का उल्लेख करना है।

तिथि : महाजयराज के प्रवर्द्धमान राज्य का वर्ष पाँच, मास मार्गशिर, दिवस २५।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २३५–४० ; हीरालाल, इन्स्क्रिप्शन्स इनसी० पी० एण्ड बरार, पृ० १०५; स्टेनकोनो, इ० आई, ९, १९०७–८, पृ० १७२ अ०।

मूलपाठ

मुहर

क. प्रसन्नहृ[ृदद] यस्यैव विक्क्रमाक्क्रा [ं]त्तविद्विष[:]

ख. श्रीमतो जयराजस्य शास [नं] रिपुशासनं [॥*]

प्रथम ताम्रपट्ट

१. स्वस्ति शरभपुरात् द्विक्क्रमोपनतसामंत्तचूडाम [f]ण् प्रभाप्रसेकां-

२. म्बुभिर्धो(धौ)तपादयुगलो रिपुविलासिनीसीमंत्तोद्धरणहेतु-

३. र्व्वसुवसुधागोप्रदः :परम भागवतो मातापितृपा-

४. दानुद्ध्यातः श्र्श्री महाजयराजः पूर्व्वराष्ट्रीयपम्बां प्रति-

५. वासिकुटुम्बिनः स्समाज्ञापयति। विदितमस्तु वो यथा-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

६. समाभिरयं ग्राम-। स्त्रिदशपतिसदनसुखप्रतिष्ठाकरो याव-

७. द्रविशशिताराकिरणप्रतिहतघोरान्धकारं जग [द*] वतिष्ठते

८. तावदुपभोग्यस्सनिधिस्सोपनिधिरचाटभटप्रवेश्यस्स-
९. र्व्वकरविसर्ज्जितः वाजि(ज)सनेयकौण्डिन्यसगोत्रः ब्रह्मदेव-
१०. स्वामिने ॥ (।) मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ये(ा)भिवृ[द्*]धये ॥ (।) उदकपूर्व्वं[ं*]

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

११. ताम्ब्र(म्र)शासनेनातिस्र(सृ)ष्टः [।।*] ते यूयमेवमुपलभ्यास्याज्ञाश्रवण-
१२. वी (वि)धेया भूत्वा यथोचितं भोगभागमुपनयंत्ता(न्तः) सुखं प्रतिव [त्*]स्य-
१३. थ ॥ भविष्यतश्च भूमिपाननुदर्शयति ॥ (।) दानाद्विशिष्टम-
१४. नुपालनजं पुराणे(णा) ॥ (।) धर्म्मेषु निश्चितधियः प्रवंदन्ति धर्म्मं ॥ (।)
१५. तस्माद् [द्*]विजाय सुविशुद्धकुलश्रुताय ॥ (।) दत्ता[ं*] भुवं भवतु वो म[ति*]रे-

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१६. व गोप्त्[ुं*] ॥ तद्भवद्भिरप्येषा दत्तिरनुपालयितव्या ॥ व्यास गीतांश्चात्र
१७. श्लोकानुदाहरंत्ति ॥ (।) अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं [ं*] भूर्व्वैष्णवी सू—
१८. र्य्यसुत्[ा*]श्च गावः [।*] दत्तास्त्रयस्तेन भवंति लोकाः यः कांञ्चनं गा[ं*]
१९. च मही [ं*]च दया [त्*] ॥ षष्ठिं वर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे वसति भूमिदः [।*]
२०. आच्छेत्ता चानुम[ं*]त्ता च तान्येव नरके वसे[त्*] ॥ स्वदत्ता [ं*]परदत्ता[ं]वा य-

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२१. त्ना [द्र] क्ष युधिष्ठर ॥ (।) महीत्(म्)महिमतां च्छे्ष्ठ दानाच्छे्योऽनुपालनं [।।*]
२२. बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्सगरादिभि [:] यस्य [यस्य*]यदा भूमिस्त-
२३. स्य तस्य तदा फलमिति [।।*] स्वमुखाज्ञया उत्की (त्की) र्ण्ण अच-
२४. लसिङ्घेन प्रवर्द्धमानविजयसंवत्सर ५ मार्गशिर २० + ५ [।।*]

६१

शरभपुरवंशीय नरेश महासुदेवराज का रायपुर-दानपत्र

वर्ष १०

प्राप्तिस्थल : मध्यप्रदेश का रायपुर जिले का प्रमुख नगर।

ताम्रपट्ट-परिचय : यह दानपत्र तीन ताम्रपट्टों पर लिखा है जिनका आकार ६"×३ १/४" है। बीच में ये कुछ कम चौड़े हैं। ये तीनों एक छल्ले से, जिस पर ३ ५/८" परिधि की गोलाकार मुहर टंकी है, संयुक्त थे। मुहर पर खड़ी गजलक्ष्मी व लेख उत्कीर्ण हैं।

भाषा : संस्कृत। शापाशीर्वादात्मक श्लोक को छोड़कर गद्यमय।

लेख-सार : लेख में दान देने वाला राजा महासुदेवराज है। वह पिछले लेख (सं० ६०) में चर्चित महा-जयराज के भाई मानमात्र-महादुर्गराज का पुत्र था। उसने पूर्वी देश या पूर्व राष्ट्र में श्रीसाहिका ग्राम को दो ब्राह्मणों को दान दिये जाने की स्वीकृति दी थी।

तिथि : महासुदेवराज के प्रवर्द्धमान विजय राज्य के वर्ष दस का माघ मास, दिवस नौ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : फ्लीट, कॉर्पस, ३, हिन्दी, पृ० २४१-६; हीरालाल, इन्स्क्रिप्शन्स इन सी० पी० एण्ड बरार, पृ० १०६।

मूलपाठ

मुहर

क. प्रसन्न हृदयस्यैव विक्क्रमाक्क्रान्तविद्विषः
ख. श्रीमत्सुदेवराजस्य शासनं रिपुशासनम् [।।*]

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओम् स्वस्ति शरभपुराद्विक्क्रमोपनतसामन्तमुकुटचूडामणि-
२. प्रभाप्रसेकाम्बुधो (धौ) तपादयुगलो रिपुविलासिनीसीमन्तोद्ध-
३. रणहेतुर्व्वसुवसुधागोप्रदः परमभागवतो मातापितृ-
४. पादानुद्ध्यातश्रीमहासुदेवराजः पूर्व्वराष्ट्रीयश्रीसाहि-
५. कायां प्रतिवासिकुटुम्बिनस्समाज्ञापयति। विदितमस्तु वो
६. यथास्माभिरयं ग्रामस्तृ (त्रि)दशपतिसदनसुखप्रतिष्ठाक-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

७. रो यावद्रविशशिताराकिरणप्रतिहतघोरान्धकारं जगदव-

८. तिष्ठते तावदुपभोग्यस्सनिधिस्सोपनिधिरचाटभटप्रावेश्य [।*]-
९. सर्व्वकरविसर्ज्जितःको (कौ) ण्डिन्यसगोत्रवाजसनेयसवित् [ऋ*]-
१०. स्वामिन [आ*]त्मीयकन्याप्रदाने [न*] औपमन्यव [व*]त्ससगोत्र यामा-
११. त्रो [:*] नागवत्सस्वामिबन्धुवत्सस्वामिनोस्ताम्ब्र (म्र) शासनेनाति-
१२. स्तृ (सृ)ष्टको भूत्वास्माभिरप्युत्तरायणे मातापित्रोरात्मनश्च

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१३. पुण्ये (या) भिवृद्धयेऽनुमोदितः [।।*] ते यूयमेवमुपलभ्यास्याज्ञा श्र-
१४. वणविधेया भूत्वा यथोचितं भोगभागमुपमुपनयन्तस्सु—
१५. खं प्रतिवत्स्यथ [।।*] भविष्यतश्च भूमिपा [न*] नुदर्शयति । दानाद्धि शिष्ट-
१६. मनुपालनजं पुराणे (णा) द्ध (ध)र्म्मेषु निश्चितधियः प्रवदन्ति धर्म्मं । तस्मा-
१७. द् [द् *] विजाय सुविशुद्धकुलश्रुताय दत्ता भुवं भवतु वो मतिरेव गोप्तुम् [।।*] त-
१८. द्भवद्भिरप्येषा दत्तिरनुपालयितव्या [।।*] व्यासगीता [:*] श्चात्र श्लोकानुदाहरन्ति [।*]

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१९. अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं [*] भूर्व्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गाव [:*] दत्ता-
२०. स्त्रयस्तेन भवन्ति लोका यः काञ्चनं गाञ्च महीञ्च दद्यात् [।।*] षष्टि व-
२१. र्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः आच्छत्ता चानुमन्ता च तान्ये-
२२. व न [र*] के वसेत् [।।*] बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभि [:*] सगरादिभिः । यस्य-
२३. यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फल [।।*] स्वदत्ता [*] परदत्ता [ ] [वा*] य-
२४. त्नाद्रक्ष युधिष्ठिर महि महिमता [*] श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोऽनुपालं-

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२५. अस्मिन् [न्*] `व ग्रामे पूर्व्वतटाकस्य पर्यत्त (न्त) भूमिवप्रबद्धा श्री-
२६. वापिका पन्थान यावज्जा (ज्ये)ष्ठ इति कृत्वा नाग [व*]त्सस्वामिने ग्रामार्द्धस्याधिका दत्ता
२७. (अनुपा) लनमिति । स्वमुखाज्ञया प्रवर्द्धमानविजयसंव्वत्सर १० माघ ६
२८. उक्ती (त्की) र्ण्ण [द्रोणसिङ्ग (ङ्घे) न [।।*]

वल्लभेश्वर (प्रथम पुलिकेशी चालुक्य) का बादामी-शिलालेख

शक सं० ४६५(=५४३ ई०)

प्राप्तिस्थल : यह अभिलेख बीजापुर जिले के बादामी (प्राचीन वातापि) के उत्तरी दुर्ग में बत्तेरप्पा मन्दिर के पीछे स्थित करीब २५० फुट ऊंची पहाड़ी के एक दुर्गम स्थान पर लिखा है। १९४१ ई० में आर० एस० पञ्चमुखी तथा श्री जोगलेकर ने अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से इसकी खोज की।

लिपि : ५वीं-६ठी शती ई० की दक्षिणी वर्ग की है और हरिवर्मा तथा द्वितीय कृष्णवर्मा कदम्ब एवं प्रथम कीर्त्तिवर्मा चालुक्य के शक सं० ५०० (=५७८ ई०) के बादामी-लेख से मिलती-जुलती है।

भाषा : संस्कृत।

वर्तनी : दोष से मुक्त है। इसकी प्रथम पंक्ति गद्य में है और शेष चार पंक्तियों में दो अनुष्टभ् श्लोक लिखे हैं। इसमें शक सं० ४६५ तिथि दी गई है।

उद्देश्य : चलिक्य (=चालुक्य) नरेश वल्लभेश्वर (=प्रथम पुलिकेशी) द्वारा वातापि को अजेय दुर्ग का रूप दिये जाने का उल्लेख करना है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : पञ्चमुखी, आर० एस०, इ० आई०, २७, पृ० ४-९; सरकार, स० इ०, पृ० ४८२।

मूलपाठ

१. स्वस्ति (।।*) शक-वर्षेषु चतुश्शतेषु पञ्चषष्टियुतेषु

२. अश्वमेधादि-यज्ञानां यज्वा श्रौत-विधानतः (।*)

३. हिरण्यगर्भ-सम्भूतश्चलिक्यो वल्लभेश्वरः (।।*) [१*]

४. धराधरेन्द्र-वातापिमजेयम्भूतये भुवः (।*)

५. अधस्तादुपरिष्टाच्च दुर्ग्गमेतदचीकरत् (।।*) [२*]

शब्दार्थ

श्रौत-विधानतः=श्रौत के अनुसार; हिरण्यगर्भसम्भूत=हिरण्यगर्भ से उत्पन्न; धराधरेन्द्र=सर्वोत्तम पर्वत; अधस्तात्=नीचे से; उपरिष्टात्=ऊपर से; भूतयेभुवः=पृथिवी की समृद्धि के हेतु; अचीकरत्=बनाया।

अनुवाद

पं० १ स्वस्ति! शक वर्ष चार सौ पैंसठ में,

पं० २ श्रौत विधानानुसार अश्वमेध आदि यज्ञ करने वाले (तथा) हिरण्यगर्भ-सम्भूत चलिक्य (नरेश) वल्लभेश्वर ने पृथिवी की समृद्धि के हेतु वातापि के सर्वोत्तम पर्वत को (अथवा सर्वोत्तम पर्वत में स्थित वातापि को) नीचे तथा ऊपर से अजेय दुर्ग बनाया।

व्याख्या

(१) **हिरण्यगर्भसम्भूत**—'मत्स्यपुराण' तथा हेमाद्रि के 'दानखण्ड' में हिरण्यगर्भ सोलह महादानों में से एक बताया गया है। महाकूट स्तम्भ-लेख में मंगलेश को भी 'हिरण्यगर्भसम्भूत' कहा गया है। हुल्त्श का यह अनुमान कि 'हिरण्यगर्भ' से आशय चतुर्मुख ब्रह्मा से है, गलत है।

(२) **वल्लभेश्वर**=प्रथम पुलिकेशी। चलिक्य=चालुक्य। वातापि=आधुनिक बादामी।

महत्त्व

प्रस्तुत अभिलेख का महत्त्व कई कारणों से है। एक, यह दक्षिण भारत के अभिलेखों में शक संवत् के प्रयोग का प्राचीनतम असन्दिग्ध प्रमाण है। साहित्य में इसके पूर्व इस संवत् का प्रयोग दिगम्बर विद्वान् सिंहसूरि के ग्रन्थ 'लोकविभंग' में मिलता है जिसकी रचना ३८० शक संवत् में हुई कही गई है। दूसरे, इससे ज्ञात होता है कि वल्लभेश्वर द्वारा यहां दुर्ग बनवाये जाने के पूर्व वातापि मात्र धराधरेन्द्र से सम्बद्ध होने के कारण प्रसिद्ध था। परम्परा तथा 'महाकूटमाहात्म्य' के अनुसार वातापि एक राक्षस था जिसके नाम से वातापि पर्वत और ग्राम प्रसिद्ध हुए। वातापि और उसके साथी इल्वल ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था परन्तु महर्षि अगस्त्य की तपः शक्ति से मारे गये थे। वातापि या बादामी का उल्लेख द्वितीय शती के लेखक टॉलेमी ने बदियमाइओई नाम से किया है। चिपलुन-दानपत्र में वातापि के निर्माण का श्रेय प्रथम पुलिकेशी के पुत्र कीर्त्तिवर्मा को दिया गया है, जबकि प्रस्तुत-लेख से लगता है कि प्रथम पुलिकेशी ने ही इसे अपनी राजधानी बनाया था। लगता है इस कार्य में पुलिकेशी को अपने पुत्र से बहुत सहायता मिली थी, इससे यह श्रेय दोनों को दे दिया गया है।

वल्लभेश्वर की पहिचान प्रथम पुलिकेशी से निश्चित है। ऐहोले-अभिलेख में प्रथम पुलिकेशी को श्रीवल्लभ, अश्वमेध करने वाला (हयमेधयाजिना) तथा 'वातापिपुरीवधू का पति' (वातापिपुरीवधूवरताम्) कहा गया है। अश्वमेध यज्ञ सामान्यतः सार्वभौम पद के दावेदार नरेश करते थे। परन्तु 'आपस्तम्ब श्रौतसूत्र' के अनुसार अ-सार्वभौम नरेश भी इसे सम्पन्न कर सकते थे (राजा सार्वभौमोऽश्वमेधेन यजेत अप्यसार्वभौमः —इ० आई०, २७, पृ० ६ पर उद्धृत)। प्रथम कृष्णवर्मा कदम्ब ने अश्वमेध किया था जबकि वह सार्वभौम नरेश नहीं था।

प्रस्तुत अभिलेख प्रथम पुलिकेशी का प्रथम विश्वसनीय अभिलेख है। इससे प्रारम्भिक चालुक्य इतिहास का तिथिक्रम निर्धारित करने में सहायता मिलती है।

६३

द्वितीय पुलिकेशी का लोहनेर-दानपत्र

(शक) सं० ५५२ (=६३० ई०)

प्राप्तिस्थल : महाराष्ट्र के नासिक जिले का लोहनेर गांव।

ताम्रपट्ट-वर्णन : लेख कुल तीन ताम्रपट्टों पर लिखा है जो ७ १/२" × ३; ३/४" आकार के हैं और एक छल्ले से संयुक्त हैं। लेख प्रथम ताम्रपट्ट के पृष्ठभाग पर, दूसरे ताम्रपट्ट के दोनों ओर तथा तृतीय ताम्रपट्ट के पुरोभाग पर लिखा है। ताम्रपट्टों का भार ८९ तोले है।

भाषा : संस्कृत। सात श्लोकों के अतिरिक्त शेष गद्य में है।

लिपि : दक्षिणी वर्ग की सातवीं शती ई० की ब्राह्मी।

लेख-सार : यह लेख विष्णु के वराह अवतार की स्तुति से प्रारम्भ होता है। दूसरे श्लोक में सत्याश्रय (द्वितीय पुलिकेशी) की प्रशंसा है। इसके उपरान्त चुलिकिकी (=चालुक्य) वंश वर्णन है जिसमें प्रथम पुलिकेशी उत्पन्न हुआ। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः कीर्त्तिवर्मा और सत्याश्रय थे। इस सत्याश्रय ने लोहनगर (=आधुनिक लोहनेर) में निवास करने वाले सावर्णिगोत्रीय ब्राह्मण दामदीक्षित को इस लेख में उल्लिखित गोकियाणक ग्राम दान दिया था। यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इस लेख में हर्ष-पुलिकेशी युद्ध की चर्चा नहीं हुई है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : खरे, जी० एच०, इ० आई०, २७, पृ० ३७ अ०।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओं स्वस्ति [।*] जयत्यमलबालेन्दुकोटिप्रकाशदंष्ट्रोत्कटं रसातलजपङ्का-ङ्कितस्कन्धदे-

२. शमुत्केसरं [।*] जलालुलितघोणाग्रमुक्तप्रभञ्जनोत्सरितध्वनेर्ज्जलधिम-

३. ध्योपलब्धोर्व्वि कोलरूपं हरेः ॥[१*॥] तदनु जितबलवदरिगजमस्तकग-लितसितमी-

४. क्तिकच्छुरितस्म(तः । स)त्याश्रयस्य बाहुर्ज्जयति जगज्जनितबहुमानः ॥[२॥*] अस्ति मानव्यसगो-

५. त्राणां हारीतिपुत्राणां कौशिकी[सं]वर्द्धितानां मातृगणाभिषिक्तानां स्वामिमहासे-

६. नपादानुद्ध्यातानां चुलुकिकीनामन्वये बहुसुवर्णकाश्वमेधपौण्डरीक-
७. वाजपेयादियागावभृथस्नानपवित्रीकृतशिरसां मनुनृगनहुषययातिधुन्धुमारा-
८. म्बरीषदिलीपनाभागप्रतिम: श्रीरणविक्रमद्वितीयनामा पुलिकेशिवल्लभम-
९. महाराजस्तस्य पुत्र: परगजघनपटलपवन[:*] श्रीपराक्रमापरान्य:(ख्य:) कीर्त्तिवर्म्मा तस्य पुत्र:

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१०. प्रद्ध(ध्व)स्तप्रबलश[त्रु]महिमा हिमाचलानुकारी विपुलस्थैर्य्योन्नतिन-(र्न)तपरमसामन्त-
११. समुपचरितश्चरिततपश्चरण(णो) भृत्यलब्धप्रसाद: सादरमिवानन्यमनसा वि-
१२. धात्रा विनिर्म्मितो मितहितविशदसत्यवचनोपन्यासो न्यास इव जगत्याश्चर्य्याणां प्रथम-
१३. युगमनुजपतिमुनिचरित(तो) विजयी विमलगगनगत इ[व*] शरदीन्दुरू(रु)पशमितसकल-
१४. जगद्[सुख:] साहसैकरतिरनेकचातुर्द्दन्त[सं]ग्रामजनितव्रणाङ्काङ्कतया
१५. स्वभुजबललब्धरणविक्रमाख्य: सुहृदवन(नो) दीनान्धकृपणसमु-
१६. पभुज्यमानविभव: पूर्व्वापराम्वु[धि*]नाथ:(थो) देवद्विजगुरुशुश्रूषणपर:
१७. परमभागवत: प्रसभाभिमृष्टान्यराजश्री[:*] श्रीसत्याश्रयपृथिवीवल्लभ-
१८. महाराज[:*] सर्व्वानिव राजसामन्तभोगिकविषयपतिराष्ट्रकूटग्रामायुक्त-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१९. कादीन्सम्मानयत्यस्तु वो विदितमस्माभिमो(र्मो)षिणीपथकान्तर्गतअ(तोऽ)सिखेटकग्राम-
२०. प्रत्यासन्नगोवियाणकग्राम: सर्व्वराजकुलादेयसहित:अ(तोऽ)चाटभटप्रा-
२१. वेश्य आचन्द्रार्क्कार्ण्णवक्षितिस्थितिसमकालीन(नो) बलिचरुवैश्वदेवाग्निहोत्रक्र(क्रि)-
२२. यापञ्चमहायज्ञोत्सर्प्पणार्त्थं गिरिनगरविनिर्ग्गतलोहनगरवास्तव्याय साव-
२३. र्ण्णिसगोत्रमैत्रायनि(णि)कवाराहकसब्रह्मचारिदामदीक्षिताय उ-
२४. दकातिसर्ग्गेन(ण) प्रतिपादित: यतोस्मद्व(द्वं)श्यैरन्यैर्व्वागामिनृपतिभोगपतिभिर्न्न-
२५. लवेणुकदलीसारं संसारमुपलभ्य उदधिजलवीचीचञ्चलांश्च विषयां(या)नव-
२६. निश्वरशिखरकटकतटलसितसलिलरयगत्वरञ्च जीवितमवगम्य महाभूत-
२७. परमाणुस्थास्नु च महत्फलं शरच्चन्द्रकिरणधवलं यशो निरूप्यायमस्मद्दायो-

तृतीय ताम्रपट्ट

२८. नुमन्तव्य॒परिपालयितव्यश्च [।*] यो वाज्ञानतिमिरपटलावृतमतिराच्छिन्द्यादा-
२९. च्छिद्यमानं वानुमोदेत स पञ्चभिर्म्महापातकैस्संयुक्त[:*] स्यादुक्तञ्च भगवता
३०. वेदव्यासेन व्यासेन ।।षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्ग्गे तिष्ठति भूमिद: [।*] आच्छेत्ता
३१. चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ।। [३।।*] विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिन: [।*] कृ-
३२. ष्णाहयो हि जायन्ते भूमिदायं हरन्ति ये ।। [४।।*] स्वदत्तां परदत्तां [वा] यत्ना-
३३. द्रक्ष युधिष्ठिर [।*] महीं महीमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयोनुपालनं(नम्) ।। [५।।*] बहुभिर्व्वसुधा

३४. भुक्ता राजभिस्सगरादिभि[ः।*] यस्य यस्य यदा भूम(मि)स्तस्य तस्य तदा फलं(लम्) ॥ [६॥*] यानी-

३५. ह दारिद्रयभयानरेन्द्रैर्द्धनानि धर्म्मायतनी[कृ]तानि [।*] निर्भुक्तवान्तप्रतिमानि तानि को

३६. नाम साधुः पुनराददीत ॥[७॥*] द्विपञ्चाशदधिके शका(ता)ब्दपञ्चके लिखितं ताम्रष (शा)सनम् [॥*]

६४

द्वितीय पुलिकेशी की ऐहोले-प्रशस्ति

श० सं० ५५६ (=६३४ ई०)

लेख-परिचय—प्रस्तुत अभिलेख चालुक्य वंशीय नरेश द्वितीय पुलिकेशी के शासन काल में लिखवाया गया था। यह दक्षिण भारत के महत्त्वपूर्ण अभिलेखों में से एक है। यह बीजापुर जिले के हुगुण्ड तालुके में **ऐहोले** नामक **स्थान** पर स्थित मेगुटी नामक एक प्राचीन मन्दिर में एक पाषाण खण्ड पर उत्कीर्ण है। यह ४' ६½"×२'½" **क्षेत्रफल** में लिखा है। इसके **अक्षर** जो ½" से ५/८" आकार के हैं काफी गहरे खुदे हैं। यह पर्याप्त सुरक्षितावस्था में मिला है। इसकी **भाषा** संस्कृत है और **लिपि** सातवीं शती की दक्षिण भारतीय वर्ग की परवर्ती ब्राह्मी जो अन्य प्रारम्भिक चालुक्य लेखों में भी मिलती है। इसकी विशेषताएँ हैं: द्रविड 'ल' (यथा, पंक्ति ११ में 'मालव' में तथा पंक्ति १२ में 'पुलिन' में) एवं पदान्त 'त्' (यथा, पंक्ति ३ में 'प्रकर्षात्' में) और 'न्' (यथा, पंक्ति ११ में 'इवाभुवन्' में तथा पंक्ति १५ में 'द्विजान्' में) का प्रयोग। **वर्तनी** की विशेषताओं में 'क्' के पूर्व विसर्ग के स्थान पर जिह्वामूलीय का और 'प्' के पूर्व उपध्मानीय का प्रयोग उल्लेखनीय हैं। श्लोक २५ में 'त्रयाणां' को छोड़कर सर्वत्र पदान्त 'म्' को विशेष चिह्न द्वारा लिखा गया है। श्लोकों के प्रथम एवं तीसरे पादों के अन्त में सन्धि के नियमों का प्रायः पालन नहीं किया गया है। 'वीभत्स' में 'ब' के स्थान पर 'व' का प्रयोग है तथा 'चिरञ्जातः' में 'य' के स्थान पर 'ज' का। 'र्' के पूर्व 'क' के स्थान पर 'क्क' तथा 'य' के पूर्व 'ध' के स्थान पर 'द्ध' का प्रयोग हुआ है। द्रविड 'ल' का प्रयोग 'कालिदास', 'आलुप', 'केरल', 'नल', 'चोल', 'कौनाल,' 'अन्तराल,' 'अलि', 'आवली', 'कालरात्रि' (पर 'काल' में नहीं) तथा 'विगलित' आदि शब्दों में भी हुआ है। लिपिक के द्वारा की गई अशुद्धियाँ बहुत कम हैं। **छन्द** १–४, ७: आर्या; ५, २६, ३२: शार्दूलविक्रीडित; ६: उपजाति; ८: रथोद्धता; ९, २६: औपच्छन्दसिक; १०: द्रुतविलम्बित; ११, १४, २८, ३५: वसन्ततिलक; १२: वंशस्थ; १३, २३, २४, २५: मालिनी; १७: मन्दाक्रान्ता; १८: मत्तेभविक्रीडित; १९: इन्द्रवज्रा; २०, २२, २७, ३१, ३३, ३४, ३६: अनुष्टुभ् (श्लोक); २१: हरिणी; ३०: प्रहर्षिणी; ३७: आर्यागीति।

ऐहोले-लेख में कुल १९ पंक्तियाँ हैं, लेकिन इसकी १८ वीं पंक्ति का अधिकांश भाग व १९ वीं पंक्ति मूल लेख का अंश नहीं हैं,। ये बाद में जोड़ी गई थीं। इनकी लिपि भी कुछ बाद की है। इनमें ६ गांवों का उल्लेख था और शायद उनकी सीमा बताई गई थी जिनको किसी ने, स्पष्टतः रविकीर्त्ति द्वारा निर्मित मन्दिर को, दान दिया था। कीलहॉर्न ने इस अंश को अभिलेख का अभिन्न भाग नहीं माना है। शेष मूल अभिलेख सम्पूर्णतः पद्य में है और इसमें कुल ३७ श्लोक हैं।

ऐहोले-अभिलेख प्रकृत्या एक जैन लेख है। इसका **उद्देश्य** द्वितीय पुलिकेशी के शासन काल में रविकीर्त्ति नामक व्यक्ति द्वारा एक जैन मन्दिर बनवाए जाने का वर्णन करना है। इस लेख की रचना भी मन्दिर के निर्माता रविकीर्त्ति ने स्वयं की थी। वह अपने को कालिदास और भारवि के तुल्य बताता है।

तिथि—ऐहोले-लेख, इसके ३३वें और ३४ वें श्लोकों के अनुसार, महाभारत के ३७३५ वर्ष उपरान्त तथा शक संवत् के ५५६ वर्ष बाद अर्थात् ६३४ ई० में लिखवाया गया था।

अध्ययन-इतिहास—इस लेख को सर्वप्रथम फ्लीट ने 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' अंक ५ में प्रकाशित किया और उन्होंने ही पुनः उसी पत्रिका के ८ वें अंक में छापा। तदनन्तर इसका संशोधित संस्करण कीलहॉर्न ने 'एपिग्रेफिया इण्डिका' के छठे अंक में छापा। उसके बाद इस पर अनेक विद्वानों ने शोध-कार्य किया।

मुख्य शोध-ग्रन्थ व निबन्ध—फ्लीट, आई० ए०, ५, पृ० ६७ अ०; वही, ८, पृ० २३७ अ०; कीलहॉर्न, इ० आई, ६, पृ० १ अ०; दिस्कलकर, 'सेलेक्शन्स', स० १२; पाण्डेय, रा० ब०, हि० लि० इ०, पृ० २४० अ०; भाण्डारकर, अ० हि० ड०; सरकार, स० इ०, २।

अभिलेख का संक्षेप—अध्ययन की सुविधा के हेतु ऐहोले-अभिलेख की सामग्री को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

श्लोक १—मन्दिर के देवता जिनेन्द्र की वन्दना।

श्लोक २—मन्दिर-निर्माता रविकीर्त्ति के संरक्षक राजा के 'चलुक्य' वंश की महिमा।

श्लोक ३—रविकीर्त्ति के संरक्षक सत्याश्रय (पुलिकेशी) का वर्णन।

श्लोक ४—चालुक्य वंश के राजाओं का 'पृथिवीवल्लभ' रूप में वर्णन।

श्लोक ५—प्रथम ऐतिहासिक चालुक्य नरेश जयसिंह वल्लभ।

श्लोक ६—जयसिंह का पुत्र रणराग।

श्लोक ७-८—रणराग का पुत्र (प्रथम) पुलिकेशी जिसने वातापि को राजधानी बनाया।

श्लोक ९-१०—प्रथम पुलिकेशी का पुत्र कीर्त्तिवर्मा जो नल, मौर्य और कदम्बों का विजेता था।

श्लोक ११-१३—कीर्त्तिवर्मा का अनुज मंगलेश जिसने पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक विजय प्राप्त की, कटच्छुरी वंश को हराया और रेवती द्वीप को जीता।

श्लोक १४-१५—कीर्त्तिवर्मा के दूसरे पुत्र द्वितीय पुलिकेशी द्वारा मंगलेश को मार कर राज्य पर अधिकार किया जाना।

श्लोक १६—गृहयुद्ध के कारण हुए विद्रोहों का पुलिकेशी द्वारा दमन।

श्लोक १७—पुलिकेशी का भीमरथी नदी के उत्तर में आक्रमण करने वाले आप्यायिक को मार भगाना और गोविन्द को अपने पक्ष में मिला लेना।

श्लोक १८—वरदा से घिरी वनवासी नगरी को जीतना।

श्लोक १९—गंग और आलुप राजाओं को अपने अधीन करना।

श्लोक २०—कोंकण के मौर्यों का पराभाव।

श्लोक २१—पुरी नगरी का घेरा डालना।

श्लोक २२—लाट, मालव और गूर्जर नरेशों का पुलिकेशी की शरण में आना।

श्लोक २३—हर्ष से युद्ध और पुलिकेशी का उसे भयभीत करना।

श्लोक २४—विन्ध्य प्रदेश का पुलिकेशी के प्रभावान्तर्गत होना।

श्लोक २५—९९,००० गावों वाले तीनों महाराष्ट्रकों पर पुलिकेशी का अधिकार।

श्लोक २६—कोसल और कलिंग के राजाओं का भयभीत होना।

श्लोक २७—पिष्टपुर दुर्ग की विजय।

श्लोक २८—कौनाल झील की विजय।

श्लोक २९—पल्लवों का पराभाव और पुलिकेशी का काञ्ची तक जा पहुँचना।

श्लोक ३०—पुलिकेशी का चोलों पर आक्रमण।

श्लोक ३१—चोल, केरल व पाण्ड्य राजाओं का पुलिकेशी के साथ मिल जाना।

श्लोक ३२-३५—जब पुलिकेशी वातापि पर शासन कर रहा था (श्लोक ३२) भारत-युद्ध के ३७३५ वर्ष बीत जाने पर (श्लोक ३३) और शक संवत् के ५५६ वर्ष व्यतीत हो जाने पर (श्लोक ३४) रविकीर्त्ति द्वारा जिनेन्द्र का मन्दिर बनवाया जाना (श्लोक ३५)।

श्लोक ३६—मन्दिर के निर्माता रविकीर्त्ति के द्वारा ही इस प्रशस्ति की रचना किये जाने का उल्लेख।

श्लोक ३७—रविकीर्त्ति की उन्नति की कामना, जो काव्यकला में कालिदास व भारवि की समता करने वाला था।

मूलपाठ

१. जयति भगवान्जि (ञ्जि) नेन्द्रो [वी] तज [राम] रणजन्मनो यस्य [।]
ज्ञानसमुद्रान्तर्ग्गं [त] मखिलञ्जगदन्तरीपमिव। [।। १ *]
तदनु चिरमपरि [मे] यश्चलुक्य कुलविपुलजलनिधिर्ज्जयति [।]
पृथिवीमौलिललाम्नां य॒प्रभव॒पुरुषरत्नाम् [।। २*]
शूरे विदुषि च विभजन्दानम्मानञ्च युगपदेकत्र [।]
२. अविहितयाथासं [ख] य [ो] [ज] यति च सत्याश्रयस्सुचिरम् [।।३*]
पृथिवीवल्लभशब्दो येषामन्वर्थताञ्चिरञ्जातः [।]
तद्वंशेषु जिगीषुषु तेषु बहुष्वप्यतीतेषु[।।४*]
नाना हेतिशताभिघात पतितभ्रान्ताश्वपत्तिद्विषे
नृत्यद्भीमकबन्धखड्गकिरणज्वालासहस्र [ॅ] रणे [।]
३. लक्ष्मीर्भावितचापलापि च कृता शौर्य्येण येनात्मसा-
त्रा (द्रा) जासीज्जयसिंह वल्लभ इति ख्यातश्चलुक्यान्वयः [।।५*]
तदात्मजोभूद्रणरागनामा दिव्यानुभावो जगदेकनाथः [।]
अमानुषत्वं किल यस्य लोकाः स्सुप्तस्य जानाति वपु॒प्रकर्षात् [।। ६*]
तस्याभवत्तनूजः पोलेकेशि (शी) य [:] श्रितेन्दुकान्ति रपि [।]
४. श्रीवल्लभोप्ययासीद्वातापिपुरी वधूवरताम् [।।७*]
यत्त्रिवर्ग पदवीमलं क्षितौ नानुगन्तुमधुनापि राजकम् [।]
भूश्च येन हयमेधयाजिना प्रापितावभृथमज्जना बभौ [।। ८ *]
नलमौर्य्यकदम्बकालरात्रिः स्तनयस्तस्य बभूम (व) कीर्त्तिवर्म्मा [।]
परदारनिवृत्तचित्तवृत्तेरपि धीर्यस्य रिपुश्री-
५. यानुकृष्टा [।। ९*]
रणपराक्रमलब्धजयश्रिया सपदि येन विरुग्न (ग्ण) मशेषतः [।]
नृपतिगन्धगजेन महौजसा पृथुकदम्बकदम्बकदम्बकम् [।। १० *]
तस्मिन्सुरेश्वरविभूतिगताभिलाषे
राजाभवत्तदनुजः किल मङ्गल [ॅ] शः [।]
य॒पूर्व्वपश्चिमसमुद्रतटोषिताश्व-
सेनारज॒पटविनिर्म्मितदिग्वितानः [।। ११ *]
स्फुरन्मयूखैरसिदीपिकाशतै (तैॅ)

६. व्युदस्य मातङ्ग तमिस्रसञ्चयम् [।]
अवाप्तवान्यो रणरङ्गमन्दिरे
कटच्छुरिश्रीललनापरिग्रहम् [।। १२*]
पुनरपि च जिघृक्षोस्सैन्यमाक्क्रान्तसालम्
रुचिरबहुपताकं रेवतीद्वीपमाशु [।]
सपदि महदुदन्यत्तोयसंक्क्रान्तबिम्बम्
वर (रु) णबलमिवाभूदागतं यस्य वाचा [।। १३*]
तस्याग्रजस्य तनये नहुषानुभागे (वे)
लक्ष्म्या किलाभि-

७. लषिते पोल [`] केशिनाम्नि [।]
सासूयमात्मनि भवन्तमत͡ पितृव्यम्
ज्ञात्वापरुद्धचरितव्यवसायबुद्धौ [।। १४*]
स यदुपचित [म] न्त्रोत्साहशक्तिप्रयोग-
क्षपितबलविशेषो मङ्गलेशस्समन्तात् [१]
स्वतनयगतराज्यारम्भयत्नेन सार्द्धं
निजमतनु च राज्यञ्जीवितञ्चोज्झति स्म [।। १५*]
तावत्तच्छ [त] त्रभङ्गे जगदखिलमरात्यन्धकारोपरुद्धं

८. यस्यासह्यप्रतापद्युतितितिभिरिवाक्क्रान्तमासीत्प्रभातम् [।]
नृत्यद्विद्युत्पताकौ͡ प्रजविनि मरुति क्षुण्णप [`] र्य्यान्तभागै-
र्ग्गर्ज्जद्भिर्व्वारिवाहै (है) रलिकुलमलिनं व्योम यातं कदा ना [।। १६ *]
लब्ध [ध्व] ा कालं भुवमुपगते जेतुमाप्पायिकाख्ये
गोविन्दे च द्विरदनिकरैरुत्तराम्भोमरथ्याः [।]
यस्यानीकैर्यु धि भयरसज्ञात्वमेक͡ प्रयात-
स्तत्रावाप्तम्फलमुपकृतस्या-

९. परेणापि सद्यः [।। १७*]
वरदातुङ्गतरङ्गरङ्गविलसद्धंसावलीमेखलां
वनवासीमवमृद्गतस्सुरपुरप्रस्प [ि] र्द्धनीं सम्पदा [।]
महता यस्य वलार्ण्णवेन परितस्सञ्छादितोर्व्वीतलं ।
स्थलदुर्ग्गञ्जलदुर्ग्गतामिव गतं तत्तत्क्षणे पश्यताम् [।। १८*]
गङ्गालुपेन्द्रा व्यसनानि सप्त
हित्वा पुरोपार्ज्जितसम्पदोपि [।]
यस्यान्नुभावोपनतास्सदास-
न्ना-

१०. सन्न सेवामृतपानशौण्डः [।। १९ *]
कोङ्कणेषु यदादिष्ट चण्डदण्डाम्बुवीचिभिः [।]
उदस्तास्तरसा मौर्य्यपल्वलाम्बुसमृद्धयः । [।। २०*]
अपरजलधेर्ल्लक्ष्मी [˙] यस्मिन्पुरीम्पुरमित्प्रभे

मदगजघटाकारैर्न्नावां शतैरवमृद्नति [।]
जलदपटलानीकाकि (की) र्ण्णन्नवोत्पलमेचक-
ञ्जलनिधिरिव व्योम्नम व्योन्मस्स–

११. मोभवदम्बुभिः (धिः) [।। २१*]
प्रतापोपनता यस्य लाटमालवगूर्ज्जराः [।]
दण्डोपनतसामन्तचर्य्या च [ा] र्य्या इवाभवन् [।। २२*]
अपरिमितविभूतिस्फीतसामन्तसेना-
मुकुटमणिमयूखाक्क्रान्तपादारविन्दः [।]
युधि पतितगज (जे) न्द्रानीकवी (बी) भत्सभूतो
भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः [।। २३*]
भुवमुरुभिरनीकैश्शा-

१२. सतो यस्य रेवो (वा)-
विविधपुलिनशोभावन्ध्य विन्ध्योपकण्ठ [:] [।]
अधिकतरमराजत्स्वेन तेजोमहिम्ना
शिखरिभिरिभवर्ज्या (र्ज्यो) व [८] र्मणां स्पर्द्धयेव [।। २४ *]
विधिवदुपचिताभिश्शक्तिभिश्शक्क्रकल्प-
स्तिसृभिरपि गुणौघैस्वैश्च माहाकुलाद्यैः [।]
अगमदधिपतित्वं यो महाराष्ट्रकाणां
नवनवतिसहस्रग्रामभाजां त्रयाणां [।। २५*]
गृहिणां स्व

१३. स्वगुणैस्त्रिवर्गतुङ्गा विहितान्यक्षितिपालमानभङ्गा [:] [।]
अभवन्नुपजातभीतिलिङ्गा यदनीकेन सको [स] लाः कलिङ्गा [: ।। २६]
पिष्टं पिष्टपुरं येन जातं दुर्ग्गमदुर्ग्गम-
ञ्चित्रं यस्य कलेर्वृत्तम् जातं दुर्ग्गमदुर्ग्गमम् [।। २७*]
सन्नद्धवारणघटास्थगितान्तरालम्
नानायुधक्षतनरक्षतजाङ्गरागम् [।]
आसीज्जलं यदवमर्द्दितमभ्रगर्भं
कौनालम-

१४. म्बरमिवोर्ञ्जि [ज] त सान्ध्यरागम् [।। २८*]
उद्धूतामलचाव (म) रध्वज शतच्छ [त्] त्रान्धकारैर्व्व (र्व्व) लैः
शौर्य्योत्साहरसोद्धतारिमथनैर्म्मौल (ला) दिभिष्षड्विधैः [।]
आक्क्रान्तात्मबलोन्नतिम्बलरजस्सञ्छीन काञ्चीपुरः (र)
प्राकारान्तरितप्रतापमकरोद्यः पल्लवानाम्पतिम् [।। २९*]
कावेरी हतशफरीविलोलनेत्रा
चोलानां सपदि जयोद्यतस्य यस्य [।]
प्रश्च्योतन्मदगजसे-

१५. तुरुद्धनीरा
संस्पर्श परिहरति स्म रत्नराशेः [।। ३०*]
चोलकेरल पाण्ड्यानाम् योभूत्तत्र महर्द्धये [।]
पल्लवानीकनीहार तुहिनेतरदीधितिः [।। ३१*]
उत्साहप्रभुमन्त्रशक्तिसहिते यस्मिन्समस्ता दिशो
जित्वा भूमिपतीन्विसृज्य महितानाराद्ध्य देवद्विजान् [।]
वातापीन्नगरीम्प्रविश्य नगरीमेकामिवोर्व्वि (र्व्वी) मिमाम्
चञ्चन्नीरधी (धि) नीलनीरपरिखां
१६. सत्याश्रये शासति [।। ३२*]
त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः [।]
सप्ताब्दशतयुक्तेषु श (ग) तेष्वब्देषु पञ्चसु [।। ३३*]
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च [।]
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् [।। ३४ *]
तस्याम्बुधित्रयनिवारितशासनस्य
१७. सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादं [।]
शैलञ्जिनेन्द्रभवनम्भवनम्महिम्ना-
न्निर्म्मापितम्मतिमता रविकीर्त्तिनेदम् [।। ३५*]
प्रशस्तेर्व्वसतेश्चास्याः जिनस्य त्रिजगद्गुरो-
× कर्त्ता कारयिता चापि रविकीर्त्ति × कृती स्वयम् [।। ३६*]
येनायोजिनवेश्मस्थिरमर्त्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म [।]
स विजयतां रविकीर्त्ति × कविता-
१८. श्रितकालिदासभारविकीर्त्तिः । [।। ३७ *]
मूलवल्लिवेलमल्तिकवाड [म] च्चनूर्गवूर्पुलिगेरे-
गण्डवग्राम (मा) इति अस्य भुक्ति [: ।] गिरि (रे) [स्त]-
टात्पश्चिम [ा] भिगत निमूवारिर्य्याव [त्] महापथान्तपुरस्य
सि (सी) मा उत्तरतः दक्षिणतो
१९. ·········ग··········न *

शब्दार्थ

श्लोक १ : जिनेन्द्र=पार्श्वनाथ, एक जैन अर्हत्; वीत=परे; जरा=वृद्धावस्था; अन्तरीप द्वीप

श्लोक २ : तदनु=तत्पश्चात्; अपरिमेय=असीम; मौलि=सिर, किरीट; ललामन्=भूषण; प्रभव=उत्पत्ति-स्थल

श्लोक ३ : युगपद=एक साथ; अविहित=अनुसार न होना; याथासंख्य=पाणिनि (अष्टाध्यायी, १०.३०.१०) का एक नियम जिसके अनुसार जब वस्तुओं को एक बार एक क्रम में उल्लिखित किया जाय तो दोबारा भी उसी क्रम में उल्लिखित करना चाहिये; सत्याश्रय=द्वितीय पुलिकेशी की एक उपाधि

श्लोक ४ : शब्द=उपाधि; अन्वर्थता=सार्थकता; जिगीषिषु=विजय की इच्छा रखने वालों में

श्लोक ५ : हेतिः=शस्त्र; अभिघात=आघात; पत्तिः=पदाति सैनिक; द्विपः=हाथी; भीमकबन्ध=भयंकर धड़; भावित=मानी जाती है

श्लोक ६ : आत्मज=पुत्र; अनुभावः=शान, गौरव; जगदेकनाथः=संसार का एकमात्र स्वामी; अमानुषत्व=देवत्व; वपु=शरीर; प्रकर्ष=उत्कर्ष, विशालता

श्लोक ७ : तनूजः=पुत्र; श्रित=धारण करते हुए, रखते हुए; इन्दुकान्ति=चन्द्रमा की कान्ति; वधूवरतां अयासीत्=वधू के वर की स्थिति को प्राप्त हुआ

श्लोक ८ : त्रिवर्ग=धर्म, अर्थ और काम; पदवी=मार्ग; क्षितौ=पृथिवी पर; अधुनाऽपि=आज भी; राजकम्=राजसमूह; हयमेधयाजिना=अश्वमेध करने वाले के द्वारा; प्रापित=पहुँच करके, ला करके, प्राप्त करके; मज्जनं=स्नान; अवभृथ मज्जनं=अश्वमेध की समाप्ति पर यजमान व उसकी पत्नी द्वारा किया जाने वाला स्नान विशेष; बभौ=प्रकाशित हो गई

श्लोक ९ : कालरात्रि=विनाश की रात; परदार=दूसरों की स्त्रियाँ; धी=मन, बुद्धि; निवृत्त=अनासक्त

श्लोक १० : सपदि=तत्काल, क्षणभर में; विरुग्ण=विनष्ट कर दिया गया, उखाड़ फेंका गया; अशेषतः=सम्पूर्णतः; गन्धगज=सर्वश्रेष्ठ कोटि का हाथी जिसके मद की गन्ध को अन्य हाथी सह नहीं पाते; कदम्ब=एक राजकुल का नाम, एक वृक्ष का नाम, समूह

श्लोक ११ : सुरेश्वर=इन्द्र; विभूति=ऐश्वर्य; उषित=पड़ाव डाले हुए; पट=वस्त्र; वितान=चंदोवा

श्लोक १२ : स्फुरन्=चमकती हुई; मयूखः=प्रकाश किरण; व्युदस्=हटाना, भेदना; मातंग=हाथी; तमिस्रसञ्चय=अन्धकार समूह; रंगमन्दिर=रंगमहल; श्रीललना=लक्ष्मी रूपी ललना; परिग्रह=पत्नी, अधिकार

श्लोक १३ : पुनरपि च=और फिर; जिघृक्षा=अधिकार कर लेने की इच्छा; साल=प्राचीर; रुचिर=रंगबिरंगे, चमकते हुए; आशु=तेजी से; सपदि=तत्क्षण, जल्द ही, सहसा; उदन्वत्=समुद्र; तोय=जल; संक्रान्त=प्रतिबिम्बित; बल=सेना; वाचा=आज्ञा

श्लोक १४ : तनय=पुत्र; अनुभाव=प्रभाव, गौरव; लक्ष्म्या=लक्ष्मी द्वारा; अभिलषित=इच्छित; असूया=ईर्ष्या; पितृव्य=चाचा; ज्ञात्वा=जानकर; अपरुद्ध चरित=निष्कासित होकर घूमना; व्यवसाय=निश्चय; व्यवसाय बुद्धि=निश्चित बुद्धि, दृढ़ निश्चय, किसी चीज में लगी हुई बुद्धि

श्लोक १५ : सः=वह (मंगलेश); यद्=जो (अर्थात् पुलिकेशी); उपचित=बढ़ी हुई; क्षयित=विनष्ट, वह जो क्षय हो गई थी; समन्तात्=सब ओर से, पूर्णतः; बल विशेष=महान् बल; तनय= पुत्र; उज्झ्=छोड़ना, त्यागना; सार्द्धम्=साथ-साथ; तनयगत=पुत्र के हेतु; अतनु=विशाल, जो छोटा नहीं था; जीवितम्=जीवन

श्लोक १६ : तावत्तच्छत्र भंगे=उसका छत्र अर्थात् राज्य टूटते ही; अराति=शत्रु; उपरुद्धं=घिर गया, आच्छादित हो गया; असह्य=प्रबल; द्युति=प्रकाश; तति=पंक्ति, क्रम; प्रजविन्=तेज; मरुति=हवा में; क्षुण्ण=कुचला हुआ; पर्यन्त भाग=छोर, सीमा; वारिवाह=बादल; अलिकुलमलिनं=भौंरों के दल के समान काला; व्योम=आकाश; यातं=जातं, हो जाना; कदावा=और कब ? कैसे ?

श्लोक १७ : लब्ध्वा=प्राप्त करके; कालं=अवसर; द्विरदः=हाथी; निकर=समूह; जेतुम्=जीतने के लिये; उपगत=पहुँचना; अनीकः=सेना; प्रयात=चला गया; सद्यः=तत्काल; उपकृतम्=उपकार (यहां 'सेवा' अर्थ है)

श्लोक १८ : वरदा=एक नदी का नाम; तुङ्ग=ऊँची; हंसावली=हंस पंक्ति; रंग=रंगमञ्च; मेखला=करधनी; सुरपुर=इन्द्रपुरी, अमरावती; अवमृद्=मर्दन करना; बलार्णव=सेना रूपी समुद्र; परितः=चारों तरफ से; सञ्छादित=घिरा हुआ, ढका हुआ; जलदुर्गताम्=जलदुर्ग होने की स्थिति; तत्क्षणे=तत्काल

श्लोक १९ : हित्वा = छोड़कर; पुरा = पुराने जमाने में, पहले; सम्पद् = प्रसन्नता, सुख; सदा = सदैव; आसन्न = समीप; आसन्न सेवा = व्यक्तिगत सेवा; शौण्डा: = मतवाले, मस्त

श्लोक २० : आदिष्ट = आज्ञा प्राप्त; अम्बुवीचि = जल की लहर; तरसा = वेगपूर्वक; पल्वल = लघु जलाशय; उदस् = फेंक देना, बहा ले जाना

श्लोक २१ : पुरभिद् = पुरों को तोड़ने वाला, शिव का त्रिपुरारी रूप, इन्द्र का पुरन्दर रूप; अपरजलनिधि = पश्चिमी समुद्र; घटा = समूह; अवमृद् = मर्दन करना, कुचलना; जलदपटल = मेघमाला; अनीक: = सेना; आकीर्ण = भरा हुआ, मेचक = नीला; व्योम = आकाश; अम्बुधि: = समुद्र

श्लोक २२ : प्रतापोपनत = प्रताप से अवनत; चर्या = आचरण

श्लोक २३ : अपरिमित = अतुल; स्फीत = समृद्ध; मयूख = किरण; आक्रान्त = यहां अर्थ है 'प्रकाशित'; अनीक: = सैन्य पंक्ति; बीभत्सभूत: = बीभत्स हुआ

श्लोक २४ : उरु = विशाल; रेवा = नर्मदा; पुलिन = बालुकामय तट; अवन्ध्य = उर्वर, समृद्ध; उपकण्ठ = समीपवर्ती प्रदेश; वर्ष्मणा = शरीर से; अधिकतरम् = और अधिक; शिखरिभि: = विशाल हाथियों के द्वारा

श्लोक २५ : विधिवत् = समुचित रूप से; उपचित = बढ़ी हुई; शक्र = इन्द्र; कल्प = लगभग समान; औघ: = बाढ़, राशि; माहाकुल = पाणिनि (४. १. १४१) के अनुसार इसका अर्थ है 'उच्चकुलोत्पन्न', यहां इसका प्रयोग 'उच्च कुल में जन्म' या 'कुलीनता' अर्थ में हुआ है; तिसृभि: शक्तिभि: = प्रभुशक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साह शक्ति; नवनवति सहस्र = ९९ सहस्र; भाज = रखते हुए

श्लोक २६ : गृहिन् — गृहस्थ; विहित = कार्यान्वित; क्षितिपाल = राजा; यदनीकेन = जिसकी सेना द्वारा; लिंग = चिह्न; भीति = डर; उपजात = उत्पन्न

श्लोक २७ : पिष्टं = चकनाचूर; अदुर्गमम् = सुगम; चित्रं, = विचित्र, यह विचित्र बात है; क्लेवृत्तं = कलि के दुर्गुण

श्लोक २८ : सन्नद्ध = उद्यत; वारणघटा = हस्तिसमूह; स्थगित = आच्छादित, अवरुद्ध; अन्तरालम् = मध्यवर्ती अथवा अन्तर्वर्ती प्रदेश; क्षतज = रुधिर; नानायुध = नाना प्रकार के आयुध; अम्बरम् = आकाश; ऊर्जित = विशिष्ट, सुन्दर; अभ्रं = बादल; गर्भ = किसी चीज का अन्दरूनी भाग; अभ्रगर्भ = जिसके अन्दर बादल छाये हुए थे, मेघों से आच्छादित; सान्ध्यरागम् = सन्ध्याकालीन लालिमा

श्लोक २९ : उद्धूत = ऊपर उठाये हुए; चामर = चंवर; उद्धत = मतवाले; मौल = वंशानुगत रूप से सेवा करने वाले सैनिक; बलरज: सञ्छन्न = सेना के द्वारा उड़ाई गई धूल से आच्छादित; अन्तरित = अन्दर किया हुआ, बन्द किया हुआ; आक्रान्तात्मबलोन्नतिम् = अपने बल की उन्नति में बाधक

श्लोक ३० : शफरी = एक विशेष जाति की मछली; विलोल = चञ्चल; सपदि = सहसा; परिहरति स्म = छोड़ दिया, बचाया; रत्नराशि = समुद्र; प्रश्च्योतन् = चूते हुए

श्लोक ३१ : महद्र्धये = महान् समृद्धि का कारण; अनीक: = सेना; नीहारतुहिन = ओस; दीधिति: = प्रकाश किरण

श्लोक ३२ : विसृज्य = विदा करके; महित = सम्मानित, श्रद्धास्पद; प्रविश्य = प्रवेश करके; नीरधि = समुद्र; परिखा = खाई; नगरीमेकामिव = एक नगर के समान; उर्वीमिमां = इस पृथ्वी को

श्लोक ३३ : त्रिंशत्सु = तीस; त्रिसहस्रेषु = तीन हजार; सताब्दशतयुक्तेषु = सात सौ वर्ष युक्त; गतेषु = बीत जाने पर; पञ्चसु = पांच; आहव = युद्ध; आदित: = शुरू होने के समय से

श्लोक ३४ : कलौकाले = कलियुग में; पञ्चाशत्सु = पचास; षट्सु = छः; पञ्चशतासु = पांच सौ; भूभुजाम् = राजाओं के; समतीत = व्यतीत; सम = समान

श्लोक ३५ : अम्बुधि = समुद्र; निवारित = सीमाबद्ध; शासन = आदेश, राज्य; प्रसाद = कृपा; मतिमतां = बुद्धिमान; निर्मापितं = बनवाया गया; आप्तवता = प्राप्त, पाया हुआ; शैल = पत्थर

श्लोक ३६ : वसतिः निवास स्थान, मन्दिर; कर्त्ता = रचयिता; कारयिता = निर्माता; कृती = बुद्धिमान्

श्लोक ३७ : जिन वेश्म = जैन भवन, जैन मन्दिर; अश्मस्थिर = पत्थरों से दृढ़तापूर्वक बना हुआ; विधौ = = रचना, कृति; नवे अर्थ विधौ = अपनी रचना को नया अर्थ देने के लिये; विवेकिना = बुद्धिमान् द्वारा

अनुवाद

वह भगवान् जिनेन्द्र जो वृद्धावस्था, मृत्यु तथा जन्म से परे हैं (और) जिनके ज्ञान रूपी समुद्र में यह अखिल जगत् द्वीप के समान है, विजयी हों ॥१॥

इसके उपरान्त असीम चलुक्य वंश रूपी विशाल समुद्र चिरविजयी हो जो पृथिवी के शिरोभूषण रूपी पुरुष रत्नों का उत्पत्ति स्थल है ॥२॥

और वह सत्याश्रय चिरविजयी हों जो शूरवीरों और विद्वानों दोनों को एक साथ दान और मान दोनों देता है और 'याथासंख्य' नियम का पालन नहीं करता ॥३॥

उस वंश में विजय की इच्छा रखने वाले बहुत से प्राचीन राजाओं में 'पृथिवी वल्लभ' उपाधि चिरकाल तक सार्थकता प्राप्त करती रही ॥४॥

उस चलुक्य वंश में जयसिंह वल्लभ नाम का प्रसिद्ध राजा हुआ जिसके द्वारा रणक्षेत्र में, जहाँ विविध प्रकार के सैकड़ों हथियारों के आघात से अश्व, पदाति सैनिक और हाथी भ्रमित होकर गिरते हैं और भयंकर धड़ों और तलवारों की किरण ज्वालाओं का नृत्य होता है, लक्ष्मी को, जो यद्यपि चंचला मानी जाती है, शौर्य से अपनी बना लिया गया (अर्थात् जीत लिया गया) ॥५॥

उसका पुत्र रणराग नाम का हुआ जो अलौकिक गौरव से युक्त और जगत् का एकमात्र स्वामी था। उसको सुप्तावस्था में देखकर भी लोग उसको, उसके शरीर की विशालता के कारण देवता समझते थे ॥६॥

उसका पुत्र पोलकेशी हुआ जो चन्द्रमा की कान्ति को धारण करने और श्रीवल्लभ (अर्थात् लक्ष्मी का प्रियतम) होने के बावजूद भी वातापिपुर रूपी वधू के वर की स्थिति को प्राप्त हुआ ॥७॥

जिस (पुलिकेशी) के त्रिवर्ग (अर्थात् धर्म, अर्थ और काम) के मार्ग का पृथिवी का राजसमूह आज भी अनुसरण नहीं कर सका है; जिस अश्वमेधयाजी के द्वारा (यज्ञ की समाप्ति पर) किये गए अवभृथ स्नान से धरा प्रकाशमान हो उठी ॥८॥

उस (पुलिकेशी) का पुत्र कीर्त्तिवर्मा हुआ जो नल, मौर्य और कदम्ब (वंशीय राजाओं के लिए) काल रात्रि के समान था (और) दूसरों की स्त्रियों के प्रति अनासक्त चित्तवृत्ति वाला होने पर भी जिसके मन को शत्रुओं की राजलक्ष्मी ने आकर्षित कर लिया था ॥९॥

महान् शक्ति से सम्पन्न, रण में पराक्रम दिखाकर जयश्री प्राप्त करने वाले राजाओं में गन्धराज के समान जिस (कीर्त्तिवर्मा) के द्वारा कदम्ब (राजाओं) रूपी विशाल कदम्ब वृक्षों के समूह को क्षण भर में सम्पूर्णतः उखाड़ फैंका गया ॥१०॥

जब उसकी अभिलाषा इन्द्र के ऐश्वर्य की ओर झुक गई (अर्थात् जब कीर्त्तिवर्मा दिवंगत हो गया) तो उसका अनुज मंगलेश राजा बना जिसने पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक पड़ाव डालने वाली (अपनी) अश्व सेना की धूल रूपी वस्त्र से बना चंदोवा मानो दिशाओं में लगवा दिया (अर्थात् उसकी सेनाओं ने पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक विजय यात्रा की ॥११॥

जिसने (अर्थात् मंगलेश ने) तलवार रूपी दीपक की चमकती हुई सैकड़ों प्रकाश किरणों द्वारा (शत्रुओं के) हाथी रूपी अन्धकार-समूह को भेदकर रणक्षेत्र रूपी रंगमहल में कटच्छुरी वंश की लक्ष्मी रूपी ललना को पत्नी रूप

में प्राप्त किया (अथवा उस ललना पर अधिकार प्राप्त किया, अर्थात् उसने कटच्छुरियों को परास्त कर उनकी राज्य-लक्ष्मी छीन ली) ।।१२।।

और फिर, जब उसे (अर्थात् मंगलेश को) शीघ्र ही रेवती द्वीप पर विजय प्राप्त करने की इच्छा हुई, उसकी रंग-बिरंगी पताकाओं वाली सेना, जिसने (रेवती द्वीप की) प्राचीर को आक्रान्त कर दिया, विशाल समुद्र के जल में प्रतिबिम्बित होकर उसकी आज्ञा से शीघ्रता से आ गई वरुण की सेना के समान प्रतीत होने लगी ।।१३।।

उसके (अर्थात् मंगलेश के) बड़े भाई (कीर्त्तिवर्मा) के पुलिकेशी नामक पुत्र ने, जो नहुष के समान प्रभावशाली तथा लक्ष्मी के द्वारा अभिलषित था (अर्थात् जिसे राजलक्ष्मी अपनाना चाहती थी), अपने चाचा को अपने प्रति ईर्ष्यालु जानकर (मंगलेश द्वारा निष्कासित किये जाने पर अथवा स्थिति को अपने प्रतिकूल जानकर स्वेच्छा से) निष्कासितावस्था में घूमने का निश्चय किया ।।१४।।

जिसकी (अर्थात् पुलिकेशी की) बढ़ी हुई मन्त्र शक्ति और उत्साह शक्ति के प्रयोग से सब ओर से घटे हुए महान् बल वाला वह (=मंगलेश) अपने पुत्र के हेतु राज्य पाने (अर्थात् अपने पुत्र को राज्य दिलाने) के प्रयास के साथ-साथ अपने विशाल राज्य और जीवन को भी त्याग बैठा (अर्थात् उनसे हाथ धो बैठा) ।।१५।।

उसकी (अर्थात् मंगलेश की) सत्ता भंग होते ही समस्त संसार में, जो शत्रुओं रूपी अन्धकार से आच्छादित हो गया था, मानो उसके (अर्थात् पुलिकेशी के) प्रबल प्रताप के प्रकाश-क्रम (=प्रकाश पुञ्ज) से आक्रान्त होने पर प्रभात हो गया। वेगपूर्वक चलती हुई वायु में नाचती हुई (अर्थात् फहराती हुई) पताकाओं के समान विद्युत् (और) कुचले हुए छोरों वाले गरजते हुए बादलों द्वारा आकाश भौरों के दल के समान काला कैसे हो सकता है ? (अर्थात् कदापि नहीं हो सकता) ।।१६।।

(मंगलेश और पुलिकेशी के बीच हुए गृहयुद्ध के कारण) अवसर पाकर भीमरथी नदी के उत्तरी प्रदेश को जीतने के लिए हस्ति समूह (अर्थात् हस्ति सेना) के साथ जा पहुँचे आप्यायिक और गोविन्द नाम के (राजाओं) में एक (अर्थात् आप्यायिक) जिसकी (अर्थात् पुलिकेशी की) सेना द्वारा युद्ध में भय नाम को जानकर (अर्थात् भयभीत होकर) भाग गया और दूसरा (अर्थात् गोविन्द) भी उसकी (अर्थात् पुलिकेशी की) सेवा का फल तत्काल वहीं पा गया (अर्थात् उसने पुलिकेशी के प्रभुत्व को स्वीकार करके अपनी रक्षा की) ।।१७।।

सम्पदा में इन्द्रपुरी के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाली (तथा) वरदा की ऊँची तरंगों के रंगमञ्च में विलास करने वाली हंसपंक्ति रूपी मेखला वाली वनवासी (नगरी) का मर्दन करते समय जिस (पुलिकेशी) की विशाल सेना रूपी समुद्र द्वारा चारों ओर से भूमितल को ढक देने पर दर्शकों को (वह) स्थल दुर्ग तत्काल जलदुर्ग की स्थिति को प्राप्त प्रतीत हुआ (अर्थात् सेना रूपी समुद्र से घिर जाने पर वनवासी नगर जल के मध्य स्थित दुर्ग लगने लगा) ।।१८।।

पूर्वकाल में (सुरापान आदि) सात व्यसनों को छोड़कर सुख उपार्जित करने के बावजूद गंग और आलूप वंशीय नरेश जिसके (अर्थात् पुलिकेशी के) प्रभाव से आक्रान्त होकर सदैव (उसके) समीप रहकर (उसकी) व्यक्तिगत सेवा रूपी अमृत का पान करके मतवाले रहने लगे ।।१९।।

जिससे आदेश प्राप्त चण्ड और दण्ड (नाम के सेनापतियों ?) रूपी जल लहरों द्वारा (अथवा जिसके आदेश से नियन्त्रित प्रचण्ड जल-लहरों द्वारा) कोंकण प्रदेश में मौर्य वंश रूपी लघु सरोवर की जलश्री को वेगपूर्वक बहा ले जाया गया (अर्थात् नष्ट कर दिया गया) ।।२०।।

जब कान्ति में पुरारि (त्रिपुरारि=शंकर अथवा पुरन्दर=इन्द्र) के समान उस (पुलिकेशी) ने पश्चिमी समुद्र की लक्ष्मी रूपा पुरी का मतवाले हाथियों के समूह रूपी सैंकड़ों नावों से मर्दन किया तो मेघमाला की सेना से भरा हुआ, नव विकसित नील कमल के समान (नीला) आकाश समुद्र के समान और समुद्र आकाश के समान हो गया (अर्थात् दिखाई पड़ने लगा) ।।२१।।

जिसके प्रताप से अवनत होकर लाट, मालव और गूर्जर (नरेश) दण्ड से अवनत किये गए सामन्तों के आचरण में आचार्य जैसे हो गए ॥२२॥

अपरिमित सम्पदा से समृद्ध, सामन्त समूह की मुकुट-मणियों की किरणों से प्रकाशित चरण कमलों वाला (और) युद्ध में धराशायी गजेन्द्रों की सैन्य-पंक्तियों के कारण बीभत्स हुआ हर्ष जिसके (अर्थात् पुलिकेशी के) द्वारा भय के कारण हर्षरहित कर दिया गया (अर्थात् पुलिकेशी के आतंक से भयभीत हर्ष आनन्दविहीन हो गया) ॥२३॥

(अपनी) विशाल सेना से पृथिवी पर जिस (पुलिकेशी) के शासन करते समय नर्मदा के बालुकामय विविध तटों की शोभा से समृद्ध विन्ध्य का समीपवर्ती प्रदेश, जो अपने शरीर से पर्वतों के साथ स्पर्द्धा करते प्रतीत होने वाले हाथियों के लिए वर्जित था (अर्थात् जहाँ उन हाथियों का जाना वर्जित था), अपने तेज की महिमा से और अधिक शोभित हुआ ॥२४॥

इन्द्र के लगभग समान जिस (पुलिकेशी) ने अपनी यथोचित रूप से बढ़ी हुई तीनों शक्तियों (प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति) तथा कुलीनता आदि गुणराशि द्वारा ९९ सहस्र ग्राम वाले तीन महाराष्ट्रकों पर आधिपत्य स्थापित कर लिया ॥२५॥

जिस (पुलिकेशी) की सेना के कारण कोसल के साथ कलिंग के राजाओं को (भी), जो अपने गृहस्थों के गुणों के कारण त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ तथा काम) के सम्पादन में श्रेष्ठ (तथा) अन्य राजाओं के मान भंग को कार्यान्वित करने वाले थे, भय के चिह्न प्रदर्शित करना पड़ा ॥२६॥

जिसके द्वारा (अर्थात् पुलिकेशी के द्वारा) पिष्टपुर दुर्ग को चकनाचूर करके सुगम (अर्थात् सहज में प्रवेश करने योग्य) बना दिया गया (पर) विचित्र (बात है कि) उसने कलियुग के सुगम (अर्थात् आसानी से हृदय में प्रवेश करने वाले) दुर्गुणों को (अपने गुणों द्वारा अपने में) दुर्गम् (अर्थात् अगम्य) बना दिया ॥२७॥

हस्ति-सैन्य से अवरुद्ध अन्तर्वर्ती प्रदेश वाला और नाना प्रकार के आयुधों से क्षत मनुष्यों के रक्तरूपी अंगराग वाला कौनाल (झील) का जल उससे (अर्थात् पुलिकेशी से) आक्रान्त होकर मेघों से युक्त और सन्ध्याकालीन लालिमा से सुन्दर हुए आकाश के समान हो गया ॥२८॥

वंशानुगत रूप से सेवा करने वाले सैनिकों आदि छः प्रकार के बल (अर्थात् सेना) की सहायता से, जिसने सैकड़ों बेदाग चंवरों, ध्वजों, छत्रों तथा (अपनी धूलि से) अन्धकार को ऊपर उठाया हुआ था (और) शौर्य तथा उत्साह के रसों (अर्थात् भावों) से मत्त होकर शत्रु को मथ डाला था, (पुलिकेशी ने) अपने बल की उन्नति में बाधक पल्लवों के स्वामी को बाध्य कर दिया कि वह अपने प्रताप को (चालुक्य) सेना की धूलि से आच्छादित काञ्चीपुरी की प्राचीर के अन्दर बन्द रखे ॥२९॥

चोलों को जीतने के लिए सहसा उद्यत जिस (पुलिकेशी) के, चूते हुए मदजल से युक्त, हाथियों रूपी पुल से अवरुद्ध जल वाली (तथा) तेजी से इधर-उधर चलने वाली चञ्चल मछलियों रूपी नेत्रों वाली कावेरी नदी ने समुद्र के स्पर्श (अर्थात् समुद्र रूपी पति के आलिंगन) से (अपने को) बचाया ॥३०॥

पल्लव सेना रूपी ओस के लिए दूसरे सूर्य के समान जो (पुलिकेशी) चोल, केरल व पाण्ड्य राजाओं की महान् समृद्धि का कारण बन गया ॥३१॥

जब उत्साह, प्रभु और मन्त्र शक्ति से सम्पन्न वह सत्याश्रय (अर्थात् पुलिकेशी) समस्त दिशाओं को जीत-करके, (विजित) राजाओं को विदा करके, श्रद्धास्पद देवों और ब्राह्मणों की आराधना करके (और) वातापि नगरी में प्रवेश करके चंचल समुद्र के नीचे जल की खाई से घिरी हुई, एक नगर के समान, इस पृथिवी पर शासन कर रहा है ॥३२॥

(महा) भारत युद्ध प्रारम्भ होने के समय से तीस, तीन हजार, पाँच जमा सात सौ वर्ष (अर्थात् ३७३५ वर्ष) बीत जाने पर ॥३३॥

कलियुग में शक राजाओं के भी उसी तरह पचास छः पाँच सौ (अर्थात् ५५६ वर्ष) बीत जाने पर ।।३४।।

पत्थर का यह जिनेन्द्र मन्दिर, यह महिमामय भवन, तीन समुद्रों से घिरे हुए शासन वाले उस सत्याश्रय (अर्थात् पुलिकेशी) की परम कृपा प्राप्त बुद्धिमान् रविकीर्त्ति द्वारा बनवाया गया ।।३५।।

तीन लोकों के गुरु (भगवान्) जिन के इस मन्दिर का निर्माता और इस प्रशस्ति का रचयिता भी बुद्धिमान् रविकीर्त्ति स्वयं ही है ।।३६।।

कविता में (अपनी पटुता द्वारा) कालिदास और भारवि के समान कीर्त्ति को पाने वाला वह रविकीर्त्ति विजयी हो जिस बुद्धिमान् (रविकीर्त्ति) के द्वारा पत्थरों से दृढ़तापूर्वक निर्मित्त (इस) जैन मन्दिर को अपनी कृति को नया अर्थ देने के लिए प्रयुक्त किया गया ।।३७।।

व्याख्या

श्लोक १

(१) '**वीतजरामरणजन्मनः** से तुलनीय भाव के लिए दे०, 'किरातार्जुनीयम्', ५.५२ ।

श्लोक २

(१) '**चलुक्य**' शब्द अभिलेखों व साहित्य में अनेक रूपों में मिलता है—चलुक्य, चलिक्य, चल्क्य, चलिकि, चलुक्कि, चलुकिक, चिरीक्य, चौलकिक, चालुक्य, चौलुक्य आदि (आई० ए०, १९१९, पृ० ११२ अ०)। इनमें बहुत से रूपों में 'ल' के स्थान पर द्रविड 'ल' का प्रयोग भी मिलता है। चालुक्य वंश की उत्पत्ति के लिए दे०, पीछे, पूर्वपीठिका 'अ' ।

श्लोक ३

(१) **सत्याश्रय**—द्वितीय पुलिकेशी की एक उपाधि। उसका पुलिकेशी नाम १४वें श्लोक में आया है। यहां उसका उल्लेख इसलिए हुआ है क्योंकि वह इस लेख के लिखे जाने के समय शासन कर रहा था। द्र०, कदम्बों का तालगुण्ड-अभिलेख जिसमें पहले भगवान् शिव की स्तुति है, फिर ब्राह्मणों की (क्योंकि कदम्ब ब्राह्मण थे) और फिर लेख में उल्लिखित तडाक के निर्माता काकुत्स्थवर्मा की। काकुत्स्थवर्मा का नाम बाद में भी आता है। इसी प्रकार ऐहोले-लेख में पहले जिनेन्द्र की स्तुति है, फिर चलुक्य वंश की और फिर सत्याश्रय की।

(२) **याथासंख्य**—यहां आशय है कि सत्याश्रय शूरवीरों और विद्वानों दोनों को मान और दान दोनों चीजें देता है—वीर को केवल दान और विद्वान् को केवल मान, ऐसा नियम नहीं मानता। इस बात को कवि ने इस रूप में कहा है कि सत्याश्रय वीरों और विद्वानों का दान और मान देने में पाणिनि के 'याथासंख्य' नियम को नहीं मानता।

श्लोक ५

(१) नाचते हुए कबन्धों की कल्पना के लिए दे०, 'रघुवंश' ७.५१ (स्वं नृत्यत्कबन्धं समरे ददर्श)। लक्ष्मी के चञ्चला होने पर भी किसी राजा के पास स्थायी रूप से रहने का भाव भी इस ग्रन्थ में कई जगह आया है, यथा ६.४१, १७.४६ ।

श्लोक ६

(१) देवताओं को 'अनिमेष' या 'अनिमिष' माना गया है क्योंकि वे न पलक झपकते हैं और न आँखें बन्द करते हैं (दे०, 'रघुवंश' ६.४३: अनिमेष वृत्तिमिर्हिर विदित्वा)। इसलिए जब कोई व्यक्ति आंखें बन्द करके सोता है तो सिद्ध हो जाता है कि वह मनुष्य है। रणराग सोते समय आँखें बन्द करता था जिससे प्रमाणित हो जाता था कि वह मनुष्य है। परन्तु तब भी, उसके शरीर की विशालता के कारण, लोग उसको देवता समझ बैठते थे।

(२) '**जगदेकनाथः**' विशेषण का प्रयोग 'रघुवंश' ५.२३ में हुआ है। 'वपु प्रकर्षात्' पद भी 'रघुवंश' ३.३४ में उपलब्ध है।

श्लोक ७

(१) इस श्लोक का आशय यह है कि यद्यपि पुलिकेशी सुन्दर होने कारण चन्द्रमा की कान्ति का आश्रय तथा श्री वल्लभ उपाधिधारी होने के कारण लक्ष्मी का प्रियतम दोनों था, परन्तु इसके बावजूद उसने वातापिपुर को राजधानी बनाकर मानो वातापिपुर रूपी तीसरी वधू का वरण किया। तु०, 'रघुवंश' में राजा अतिथि के लिए प्रयुक्त 'राज्यश्रीवधूवरः' पद (७.२५)।

(२) **पोलकेशी**—उसका नाम 'पुलिकेशी', 'पुलकेशी' तथा 'पोलिकेशी' रूपों में भी मिलता है। शायद पोलकेशी कन्नड़-संस्कृत मिश्रित शब्द है और इसका अर्थ है 'चीते के से बालों वाला'।

(३) **श्री वल्लभ**—'श्री वल्लभ', 'वल्लभ' या 'श्री पृथिवी वल्लभ' (=लक्ष्मी और पृथिवी का प्रियतम) प्रथम पुलिकेशी की उपाधि थी। जैसा कि चौथे श्लोक से संकेतित है, यह चालुक्य नरेशों के लिए सामान्यतः प्रयोग में आई है।

(४) **वातापि**—आधुनिक बादामी, जिला बीजापुर। इसका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि एक कथा के अनुसार अगस्त्य ने यहां वातापि और आतापि नामक दैत्यों का नाश किया था :—

आतापि भक्षितो येन वातापि च महाबलः।
समुद्रः शोणितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदत :॥

प्रथम पुलिकेशी के बादामी-अभिलेख में उसके लिए ५४३ ई० तिथि दी गयी है। उसमें उसे वातापि दुर्ग के निर्माण का श्रेय दिया गया है। प्रस्तुत श्लोक से भी स्पष्ट है कि प्रथम पुलिकेशी ने वातापि को अपनी राजधानी बनाया था। लेकिन चिपलुन-अभिलेख में उसके पुत्र कीर्त्तिवर्मा को 'वातापि का प्रथम निर्माता' कहा गया है। इससे लगता है कि प्रथम पुलिकेशी के काल में वातापि दुर्ग और राजधानी की स्थापना हुई थी, परन्तु इनके निर्माण में मुख्य योगदान उसके पुत्र कीर्त्तिवर्मा ने दिया था।

(५) **इन्दुकान्ति**—चन्द्रमा की कान्ति। दुब्रील ने इन्दुकान्ति को एक नगर का नाम और प्रथम पुलिकेशी का आदि निवास स्थान माना है।

श्लोक ९

(१) **नल, मौर्य तथा कदम्ब**—नलों का एक राज्य पांचवीं शती के उत्तरार्द्ध एवं छठी शती के प्रारम्भ में दक्षिण कोसल में था। मौर्य, जो मौर्य सम्राटों के किसी गवर्नर के वंशज रहे होंगे, चालुक्यों के उदय के समय गोवा प्रदेश पर शासन कर रहे थे। कदम्बों का शासन कुन्तल देश में था। छठी शती के मध्य कदम्ब राज्य कई शाखाओं में बंट चुका था जिनमें मुख्य वह था जिसकी राजधानी वैजयन्ती (=बनवासी, उत्तरी कन्नड़ जिला) थी।

(२) मंगलेश के महाकूट स्तम्भ-लेख के अनुसार कीर्त्तिवर्मा ने वंग, अंग कलिंग, वट्टूर, मगध, मद्रक, केरल, गंग, मूषक, पाण्ड्य, द्रमिल, चोडिय, आलुक तथा वैजयन्ती को जीता था। यह वर्णन स्पष्टतः अतिरञ्जित और अविश्वसनीय है (दे०, क्ला० ए०, पृ० २३२)। कीर्त्तिवर्मा ने सेन्द्रक वंशीय राजकुमारी से विवाह किया था।

(३) **परदारनिवृत्तचित्तवृत्ते**—तु०, 'रघुवंश' में रघुवंशियों को 'परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति' वाला कहा जाना (१६.८)।

श्लोक १०

(१) गन्धगज हाथियों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उसके मद की गन्ध को अन्य हाथी सहन नहीं कर पाते :—

यस्य गन्ध समाघ्राय न तिष्ठन्ति प्रतिद्विपा :।
स वै गन्धगजो नाम नृपतेर्विजयावह :॥
स्वेदमूत्रं पुरीषं च मज्जां चैव मतङ्गजाः।
यस्याघ्राय विमाद्यन्ति तं विद्याद् गन्ध हस्तिनम् ॥

श्लोक ११

(१) **मंगलेश** का नाम अन्य लेखों में मंगालेश, मंगलीश, मंगलीश्वर, मंगलराज आदि रूपों में भी मिलता है। उसकी उपाधियाँ 'परमभागवत', 'रणविक्रान्त' (अथवा 'उरुरणविक्रान्त') तथा 'पृथिवी वल्लभ' आदि थीं।

(२) समुद्र तक विजय यात्रा करके समुद्र तट पर सैनिकों को ठहराने का भाव 'रघुवंश' १८.२३ में है (वेलातटेषूषित सैनिकाश्वं) तथा धूल से आकाश में चंदोवा तनने का भाव भी उसी ग्रन्थ में ६.५० में (गगनमश्वखुरोद्धतरेणुभिर्नृ सविता स वितानमिवाकरोत्) आया है।

श्लोक १२

(१) **कटच्छुरियों** अथवा कलचुरियों पर मंगलेश की विजय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। इसका उल्लेख अन्य अनेक लेखों में भी मिलता है। मंगलेश के नेरूर-दानपत्र तथा महाकूट, स्तम्भ-लेखानुसार कलचुरी राजा शंकरराज का पुत्र बुद्धराज मंगलेश के हाथों १२ अप्रैल ६०२ ई० तक पराजित हो चुका था और चालुक्य-नरेश ने कलचुरियों की समस्त राजलक्ष्मी पर अधिकार कर लिया था। लेकिन बुद्धराज के ६०८ ई० के वडनेर-दानपत्र के अनुसार, जो विदिशा से जारी किया गया था, नासिक प्रदेश उस वर्ष भी बुद्धराज के अधिकार में था। बुद्धराज के सरसावनी-दानपत्र (जिला बड़ौदा) में ६०९ ई० में भी उसके द्वारा भरुच प्रदेश में दान देने का उल्लेख है। इसलिए मंगलेश ने बुद्धराज कलचुरी पर निर्णायक विजय ६०८-९ ई० के उपरान्त ही पाई गई होगी (दे०, क्ला० ए०, पृ० १९६, २३३)।

श्लोक १३

(१) **रेवती द्वीप** की पहिचान रत्नागिरि जिले वेंगुर्ला स्थल के दक्षिण में अरब सागर में स्थित रेडी नामक लघु अन्तरीप से की जाती है (क्ला० ए०, पृ० २३३-४)। इसकी विजय मंगलेश की दूसरी प्रमुख सफलता थी। रेवती द्वीप पर विजय प्राप्त करके मंगलेश ने वहां बप्पूर वंश के इन्द्रवर्मा को गवर्नर नियुक्त किया। एक गोवा-दानपत्र के अनुसार इन्द्रवर्मा ६१० या ६११ ई० में रेवती द्वीप पर शासन कर रहा था। उस वर्ष उसने चालुक्य सम्राट् की अनुमति से खेटाहार प्रदेश में एक ग्राम दान में दिया था। यह दानपत्र इन्द्रवर्मा के शासन के २०वें वर्ष जारी किया गया था, इसलिए बहुत से विद्वान् यह मानते हैं कि वह रेवती द्वीप पर ६१०ई० के २० वर्ष पूर्व अर्थात् ५९० ई० में भी शासन कर रहा था और इसलिए उसे वहां कीर्त्तिवर्मा ने नियुक्त किया होगा। परन्तु यह मानना आवश्यक नहीं है कि रेवती द्वीप इन्द्रवर्मा के मण्डल में ५९० ई० से ही सम्मिलित था। हो सकता है यह उसके मण्डल में बाद में सम्मिलित किया गया हो।

श्लोक १४

(१) **लक्ष्म्या किल अभिलषिते**—यह वर्णन उन उदाहरणों में से एक है जिनमें 'लक्ष्मी के द्वारा वरण' प्रतीक का प्रयोग करके गृहयुद्ध की ओर संकेत किया गया है। अन्य उदाहरणों के लिए दे०, गोयल, गुप्तकालीन अभिलेख, स्कन्दगुप्त का जूनागढ-लेख, श्लोक ५ की टि०।

(२) **अपरुद्धचरित व्यवसायबुद्धौ**—'व्यवसाय बुद्धि' पद के प्रयोग के लिए दे०, 'कुमारसम्भव' ४.४५ (मरण व्यवसाय बुद्धिम्)। सम्भवतः पुलिकेशी का उद्देश्य अन्य प्रदेशों में जाकर अपने लिए शक्ति संगृहीत करना था।

श्लोक १५

(१) **मन्त्रोत्साहशक्ति**—राजा के बल के तीन स्रोत माने गए हैं—प्रभुशक्ति (उच्च पद पर होने के कारण प्राप्त शक्ति), मन्त्र शक्ति (अच्छी सलाह मिलने से उत्पन्न शक्ति) तथा उत्साहशक्ति (उत्साह जनित शक्ति)। पुलिकेशी के पास प्रभु शक्ति नहीं थी। उसने मंगलेश को केवल मन्त्र और उत्साह शक्ति से परास्त किया। गजेन्द्रगडकर तथा करमरकर ने इसकी बिलकुल उलटी व्याख्या की है। उनके अनुसार प्रभु शक्ति का अर्थ है 'व्यक्तिगत प्रभाव'। यह शक्ति पुलिकेशी के पास थी ही। मन्त्र और उत्साह शक्ति उसके पास नहीं थीं। ये उसे बढ़ानी पड़ीं।

(२) यहां ध्यान देने की बात है कि पुलिकेशी ने यद्यपि विद्रोह करके मंगलेश का उन्मूलन किया परन्तु पिछले श्लोकों में (११-१३) वह मंगलेश की सफलताओं का गर्वपूर्वक उल्लेख करता है।

(३) मंगलेश के पुत्र का नाम इस लेख में नहीं दिया गया है। प्राय: उसकी पहिचान उस सत्याश्रय-ध्रुवराज-इन्द्रवर्मा से की जाती है जिसका उल्लेख गोआ-दानपत्र में हुआ है। लेकिन यह इन्द्रवर्मा बप्पूर वंश का भूषण कहा गया है। 'तनयगत' जैसे पद के लिए दे०, रघुवंश, १५.८६।

श्लोक १६

(१) इस श्लोक के प्रथमांश में बताया गया है कि मंगलेश का छत्र अर्थात् सत्ता भंग होते ही बहुत मे शत्रु उठ खड़े हुए, लेकिन पुलिकेशी ने उनको उसी प्रकार पराभूत कर दिया जैसे सूर्य अन्धकार को विदीर्ण कर देता है। दूसरे अंश में कहा गया है कि जिस प्रकार तेज वायु के चलने पर बादलों का तितर-बितर हो जाना अवश्यम्भावी है, आकाश उनके कारण काला नहीं हो सकता, उसी प्रकार पुलिकेशी के सत्तारूढ़ होने पर उसके शत्रुओं का विनाश निश्चित था। इस स्थल पर कवि ने बादलों और हवा के प्रतीक का प्रयोग करते समय विद्युत् के लिए 'फहराती हुई पताकाओं' (नृत्यद् विद्युत्पताकैः) पद का, बादलों के छोरों के लिए राज्य की सीमा अर्थ में आने वाले 'पर्यन्त भाग' शब्दों का और बादलों से उत्पन्न कालेपन के लिए 'अलिकुलमलिनं' पद का (जिसे, 'अलि' शब्द को 'अरि' रूप में मानकर अनायास 'अरिकुलमलिनं'='शत्रुओं द्वारा आक्रान्त' अर्थ में लिया जा सकता है) प्रयोग किया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता हैं कि उसका संकेत यहां पुलिकेशी के हाथों सीमा पर फहराती पताकाओं वाली सेनाएँ लेकर आने वाले शत्रुओं की पराजय की ओर है।

श्लोक १७

(१) **भीमरथी** नदी भीमा है। आप्यायिक और गोविन्द की पहिचान अनिश्चित है। कुछ लोग गोविन्द को राष्ट्रकूट दन्तिदुर्ग (७४२-५७ ई०) का प्रपितामह मानते है। लेकिन यह असम्भव है। गोविन्द और आप्यायिक ने स्वयं चालुक्य राजधानी बादामी पर आक्रमण किया लगता है। लेकिन पुलिकेशी ने उन्हें पराभूत कर दिया। उसने भेद की नीति अपनाकर गोविन्द को अपने पक्ष में कर लिया और आप्यायिक को हरा दिया।

श्लोक १८

(१) **वनवासी** नगरी उत्तरी कन्नड जिले में वरदा नदी के तट पर स्थित थी। यह कदम्बों की राजधानी थी। कदम्बों को पुलिकेशी के पिता कीर्त्तिवर्मा ने परास्त किया था। स्पष्टतः उन्होंने पुलिकेशी और मंगलेश के बीच हुए युद्ध का लाभ उठाकर विद्रोह कर दिया था।

श्लोक १९

(१) **सप्त व्यसन**—'मनुस्मृति' में सात व्यसन निम्नलिखित बताए गए हैं।

द्यूतं मांसं सुरा वेश्याखेट चौर्यं पराङ्गना:।
महापापानि सप्तैव व्यसनानि त्यजेद् बुधः॥

(२) **गंगालुपेन्द्रा**—गंग वंश का शासन दक्षिणी मैसूर में गंगवाड़ी प्रदेश में था। पुलिकेशी ने सम्भवतः गंगवंशीय दुर्विनीत कोंगणिवृद्ध को परास्त किया था। एक मत के अनुसार परास्त हो जाने बाद दुर्विनीत ने अपनी कन्या का विवाह पुलिकेशी के साथ कर दिया था। आलुप वंश सम्भवतः मैसूर के शिमोगा जिले में हुम्चा पर शासन करता था।

श्लोक २०

(१) **मौर्य** राजाओं को कीर्त्तिवर्मा ने भी परास्त किया था। लगता है कदम्बों के समान वे भी पुलकेशी और मंगलेश के मध्य हुए युद्ध के समय पुनः स्वतन्त्र हो गए थे।

श्लोक २१

(१) इस श्लोक में पहिले जलपोतों की तुलना हाथियों से की गई है और फिर मेघों से। तु०, रघुवंश ४.२९ जिसमें कहा गया है कि 'रघु के रथों के चलने से जो धूलि उड़ी उसने मानों आकाश को पृथिवी बना दिया और पृथिवी पर चलने वाले हाथी रूपी मेघों से पृथिवी आकाश लगने लगी'।

(२) **पुरभिद्**='पुरों का विध्वंसक'। 'महाभारत' के कर्णपर्व में आई एक कथा के अनुसार तारकासुर के तीन पुत्रों—तारकाक्ष, कमलाक्ष तथा विद्युन्माली ने ब्रह्मा के वरदान से तीन पुर प्राप्त किए थे जो मय दानव ने उनके लिए सोने, चांदी तथा लोहे से क्रमशः आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर बनाए थे। इन पुरों का विध्वंस करने के कारण शिव 'त्रिपुरारि', 'पुरभिद्', 'पुरारि' आदि कहलाते हैं। 'ऋग्वेद' (१०.८९.७) में इन्द्र दास-दस्युओं के पुरों को तोड़ते हैं और 'पुरन्दर' कहे गए हैं।

(३) **पुरी** =सम्भवतः मौर्यों की राजधानी। इसकी पहिचान धारापुरी (=बम्बई के पास स्थित एलिफेण्टा) अथवा जञ्जीरा के निकट स्थित राजपुरी से की जाती हैं (दे०, क्ला० ए०, पृ० २३५-६)।

(४) तु०: गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः ।।
राम रावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।
—रामा०, ६. २३-२४।

श्लोक २२

(१) इस श्लोक का आशय यह है कि यद्यपि लाट, मालव और गूर्जर नरेशों ने पुलिकेशी के प्रभुत्व को उसके प्रताप से प्रभावित होकर स्वेच्छया स्वीकार किया था, लेकिन उन्होंने उसके प्रति ऐसा व्यवहार किया जिससे उनका आचरण बलात् वशवर्ती किए गए सामन्तों के लिए भी अनुकरणीय प्रतीत होता था। 'सामन्तचर्याचार्या इवाभवन्' जैसे भाव के लिए दे०, रघुवंश, १२. ७८।

(२) कुछ विद्वानों के अनुसार **गूर्जरों** से आशय राजस्थान के मण्डोर प्रदेश पर शासन करने वाले गूर्जरों से प्रतीत होता है। लेकिन राजस्थान के मण्डोर प्रदेश के शासक प्रतिहार थे, गूर्जर नहीं। गूर्जरों की एक शाखा लाट या दक्षिणी गुजरात में शासन करती थी। **मालवा** से आशय प्रायः पश्चिमी मालवा से माना जाता है। लेकिन यह सर्वथा सम्भव है कि मालवा से यहाँ आशय अजमेर-टोंक मेवाड़ प्रदेश से हो (दे०, पूर्वपीठिका अ)। बाण ने अपने 'हर्ष-चरित' में बताया है कि हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन (मृत्यु ६०६ ई०) द्वारा गुर्जर, लाट और मालव आतंकित अथवा आक्रान्त किए गए थे।

इसके बाद हम पाते हैं कि भड़ौच के गुर्जर-नरेश द्वितीय दद्द प्रशान्तराग (ज्ञात तिथियाँ ६२९–४१ ई०) ने परमेश्वर हर्ष के विरुद्ध वलभी-नरेश को सहायता दी थी (दद्द के एक उत्तराधिकारी तृतीय जयभट का नवसारी-दानपत्र)। ऐसी स्थिति में जब हम ऐहोले-अभिलेख में लाट, मालव और गूर्जर नरेशों के द्वारा पुलिकेशी की शरण में स्वेच्छया आने का उल्लेख पाते हैं और अगले ही श्लोक में (दे०, नीचे) पुलिकेशी और हर्ष के युद्ध का वर्णन देखते हैं तो यह मानना युक्तयुक्त प्रतीत होने लगता है कि लाट, मालव और गूर्जर नरेशों ने पुष्यभूतियों से आतंकित होकर पुलिकेशी की शरण ली होगी। लेकिन स्मरणीय है कि यह निष्कर्ष मात्र पारस्थितिक साक्ष्य पर निर्भर है, इसके पक्ष में निश्चायक प्रमाणों का अभी तक अभाव है।

श्लोक २३

(१) **मुकुटमणिमयूखाक्रान्त पादारविन्दः**—तु०, यशोधर्मा के तिथिविहीन अभिलेख के ५ वें श्लोक का उत्तरार्द्ध।

(२) हर्ष और पुलिकेशी का युद्ध तत्कालीन भारत के दो विशालतम साम्राज्यों में हुआ संघर्ष था। इसका

मूल कारण हर्ष और पुलिकेशी की महत्त्वाकांक्षाएं थीं। इसका तात्कालिक कारण मालव, गूर्जर और लाट प्रदेश में दोनों के हितों का संघर्ष हो सकता है।

(३) पुलिकेशी के उत्तराधिकारियों ने अपने अभिलेखों में और कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने अपने ग्रन्थों में हर्ष पर पुलिकेशी की विजय को बहुत अतिरञ्जित करके लिखा है। लेकिन ऐहोले-लेख में केवल इतना ही कहा गया है कि इस युद्ध में हर्ष की हस्ति सैन्य का विध्वंस हो गया था और वह स्वयं भयभीत हो उठा था।

(४) कुछ विद्वानों का मत है कि पुलिकेशी ने हर्ष को ६१२-६१३ ई० में हैदराबाद-दानपत्र जारी किये जाने के पूर्व परास्त कर दिया था क्योंकि इस दानपत्र में कहा गया है कि चालुक्य-नरेश ने एक अथवा एक से अधिक) शत्रु राजाओं को परास्त कर 'परमेश्वर' उपाधि धारण की थी जबकि उसके उत्तराधिकारियों के अभिलेखों में कहा गया है कि पुलिकेशी ने यह उपाधि अपने दूसरे नाम के रूप में 'सकलोत्तरापथनाथ' हर्ष को परास्त करके धारण की थी। लेकिन (अ) हर्ष, जिसने ६०६ ई० में शासन करना प्रारम्भ किया, और पुलिकेशी, जिसका शासन ६१०-११ ई० में शुरू हुआ, अपने राज्यकाल के प्रारम्भिक वर्षों में ऐसी कठिनाइयों में फंसे हुए थे जिनसे स्वयं उनके पैत्रक राज्य संकट ग्रस्त हो गए थे। अतः वे ६१२-१३ ई० में परस्पर संघर्षरत हो गये थे, यह नहीं माना जा सकता। (आ) पुलिकेशी के ६३० ई० के लोहनेर-दानपत्र में उसकी हर्ष के ऊपर प्राप्त विजय की चर्चा नहीं है। ऐसा लगता है कि पुलिकेशी ने हर्ष पर विजय प्राप्त की थी ६३० और ६३४ ई० के बीच में और 'परमेश्वर' उपाधि धारण की ६१२-१३ ई० के हैदराबाद-दानपत्र जारी किये जाने के पूर्व, लेकिन उसके उत्तराधिकारियों ने उसकी महत्ता बढ़ाने के लिये यह कह दिया कि उसने हर्ष को परास्त करके यह उपाधि धारण की थी।

(५) स्मिथ का विचार था कि हर्ष और पुलिकेशी का युद्ध नर्मदा के समीप लड़ा गया था, लेकिन पुलिकेशी ने नर्मदा के समीपस्थ दर्रों की रक्षा इतनी अच्छी तरह से की कि हर्ष उनको पार नहीं कर सका।

(६) हर्ष और पुलिकेशी के जिस युद्ध का उल्लेख ऐहोले-लेख में है वह उनका अन्तिम या निर्णायक युद्ध नहीं था। चीनी यात्री शुआन-च्वांग ने ६४१ ई० में पुलिकेशी के राज्य की यात्रा करते समय लिखा था कि "यद्यपि हर्ष ने 'पञ्च भारत' से सैनिक एकत्र किये हैं और सब प्रदेशों से सर्वोत्तम सेनापतियों को बुलाया है और स्वयं सेनाध्यक्ष रूप में इन लोगों (=पुलिकेशी के राज्य के निवासियों) को दण्डित करने और अपने अधीन करने गया है, लेकिन वह उनके सैनिकों को अब तक नहीं जीत पाया है" (बील, रिकार्ड्स, २, पृ० २५७)। आधुनिक इतिहासकारों ने शुआन-च्वांग के इस कथन को प्रायः उद्धृत तो किया है परन्तु पता नहीं क्यों किसी ने भी यह ध्यान नहीं दिया है कि शुआन-च्वांग के अनुसार हर्ष-पुलिकेशी युद्ध ६४१ ई० में भी चल रहा था। हमारे विचार से इससे स्पष्ट है कि पुलिकेशी की हर्ष पर ६३४ ई० के पूर्व प्राप्त विजय, जिसका उल्लेख ऐहोले-लेख में है, निर्णायक नहीं थी। वह किसी एक संग्राम में प्राप्त मामूली सी सफलता मात्र रही होगी।

श्लोक २४

(१) पुलिकेशी के हाथियों को विन्ध्य से वास्तव में इसलिए बचकर चलना होता था क्योंकि वे उसे पार नहीं कर पाते थे। दिस्कलकर (सलेक्शन्स्, पृ० १४२) के अनुसार कवि का आशय यह है कि हर्ष की पराजय से उत्तर की तरफ से आक्रमण की आशंका खत्म हो गई थी इसलिए पुलिकेशी ने विन्ध्य प्रदेश में हस्ति-सेना रखना बन्द कर दिया था। दूसरे, इसमें कवि हाथियों के आकार की तुलना पर्वतों से करता है। इसलिये हमें कीलहॉर्न (ई० आई, ६, पृ० १ अ०) का यह कथन सही लगता है कि यहाँ कवि ने अगस्त्य और विन्ध्य पर्वत की कथा की ओर संकेत किया है। इस कथा के अनुसार विन्ध्य पर्वत ने अगस्त्य ऋषि को वचन दे रखा था कि वह उनके लौटने तक और अधिक ऊँचा नहीं होगा। अब चूंकि पुलिकेशी के हाथी आकार में, कवि की कल्पनानुसार, पर्वतों से स्पर्धा करते थे इसलिए उनको वहाँ भेजने से उनसे मुकाबला करने के लिए विन्ध्य को और ऊँचा होना पड़ता, जिससे उसका वचन भंग हो जाता।

श्लोक २५

(१) **शक्रकल्प**:—'कल्प:' का अर्थ 'लगभग समान' या 'ईषत् न्यून' (कुछ ही कम) होता है। पुलिकेशी इन्द्र के समान होते हुए भी कुछ न्यून था क्योंकि उसके पास केवल तीन शक्तियाँ थीं जबकि इन्द्र के पास इन्द्राणि आदि आठ शक्तियाँ मानी गई हैं।

(२) **त्रयाणां महाराष्ट्रकाणाम्** :—शुआन-च्वांग ने पुलिकेशी के राज्य को महाराष्ट्र कहा है। तीन 'महाराष्ट्रकों' से आशय तीन महाराज्यों से हो सकता है। ये रहे होगे—महाराष्ट्र, कोंकण तथा कर्णाट।

(३) **नवनवतिसहस्रग्रामभाजां** :—इस पद का अर्थ स्पष्ट नहीं है। दे०, सरकार, स्टडीज़ इन दि ज्योग्रेफी ऑव एन्श्येण्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृ० २०० अ०।

श्लोक २६

(१) कोसल के राजा से आशय सम्भवत: दक्षिण कोसल के पाण्डुवंशी नरेश से है और कलिंगराज से संकेत गञ्जाम जिले के कलिंग नगर पर शासन करने वाले गंगों से हो सकता है।

श्लोक २७

(१) इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि पुलिकेशी ने कहीं दुर्ग को अदुर्गम कर दिया और कहीं अदुर्गम को दुर्ग। संस्कृतविदों के अनुसार इसमें 'यस्य' का प्रयोग पाणिनीय नियम के विरुद्ध है।

(२) **पिष्टपुर**=गोदावरी जिले में स्थित आधुनिक पीथापुरम्। इसका उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में भी हुआ है।

(३) अन्य अभिलेखों के अनुसार पुलिकेशी ने पिष्टपुर के राजवंश को उन्मूलित करके अपने 'प्रिय अनुज' कुब्ज विष्णुवर्द्धन को वहाँ का गवर्नर नियुक्त किया था। कुब्ज विष्णुवर्द्धन सुप्रथित 'पूर्वी चालुक्य' अथवा 'वेङ्गी के चालुक्य' वंश का संस्थापक बना जो १०१७ ई० तक शासन करता रहा।

श्लोक २८

(१) इस श्लोक का आशय यह है कि जब पुलिकेशी ने कौनाल झील वाले प्रदेश पर आक्रमण किया तो झील का जल आकाश के समान प्रतीत हुआ—आकाश के समान झील का जल नीला था, उसमें उतरे हुए हाथी आकाश के मेघों के समान लग रहे थे तथा जल में घायल मनुष्यों के रक्त से उत्पन्न लालिमा आकाश की सन्ध्याकालीन लालिमा प्रतीत होती थी। सान्ध्यराग के वर्णन के लिये दे०, रघुवंश (६. ६०; १६. ५८)।

(२) कौनाल—कौनाल की पहिचान आधुनिक कोलेरु झील से की जाती है जो पिष्टपुर के दक्षिण में गोदावरी तथा कृष्णा के मध्य एलोर के निकट स्थित है। इसके एक टापू में प्राचीर युक्त नगर था। द्वितीय कोलोत्तुंग चोड द्वारा जारी किए गए १०५६ शक संवत् के चेल्लूर-दानपत्र में वेङ्गी मण्डल में स्थित एक विशाल झील और उसके एक टापू में स्थित प्राचीर युक्त नगर का उल्लेख है। इसका शासक उस समय कोलानु (=कोलेरु) का काटम नायक बताया गया है।

श्लोक २९

(१) '**उद्धूत — — — अंधकारैः**=सैनिकों के 'अन्धकार उठाने' से तात्पर्य यही हो सकता है कि उनके द्वारा उड़ाई गई धूल से आकाश में अन्धकार छा गया था। तु०, रघुवंश ७. ४२; विक्रमांकदेवचरित, १.७५।

(२) **मौलादिभिः षड्विधैः बलैः** :—'मौल' का अर्थ है 'वंशानुगत रूप से सेवा करने वाले सैनिक'। प्राचीन मान्यतानुसार राजा के बल के मौल आदि छः स्रोत हैं :

आदधीत बलं राजा मौलं मित्रबलं तथा।
अटवीबलं भृतं चैव तथा श्रेणिबलं प्रभो ॥

— महाभारत, आई० ए०, १९१९, पृ० २०७ पर उद्धृत।

इसी प्रकार कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में 'मौलभृतश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां' गिनाए हैं (गैरोला का संस्करण, पृ० ७३०)। 'रघुवंश' ४.२६ में कालिदास 'षड्विधबल' का उल्लेख करते हैं।

(३) कीलहॉर्न ने इस श्लोक में 'सञ्छन्न' को प्रताप का विशेषण मानकर अर्थ किया है कि पुलिकेशी की सेना से की धूलि से पल्लव-नरेश का प्रताप पहिले केवल तिमिराच्छन्न हुआ, बाद में काञ्ची में नजरबन्द होकर दृष्टि से ओझल हो गया।

(४) काञ्ची=काञ्जीवरम्। पल्लवों की राजधानी। इसका उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में भी हुआ है। पुलिकेशी स्वयं काञ्ची नगर की प्राचीर तक जा पहुंचने का दावा करता है। उसका पल्लव प्रतिद्वन्द्वी सम्भवतः प्रथम महेन्द्रवर्मा था। कसकुदी-दानपत्र में कहा गया है कि महेन्द्रवर्मा ने अपने 'मुख्य शत्रुओं' (=बादामी के चालुक्यों) को पल्लालूर नामक स्थान पर लड़े गए युद्ध में (जो काञ्ची के एकदम पास है) हराया था (क्ला० ए०, पृ० २३८)। कुछ विद्वान् पुलिकेशी का पल्लव प्रतिद्वन्द्वी महेन्द्रवर्मा के पुत्र नरसिंहवर्मा को बताते हैं और महेन्द्रवर्मा द्वारा परास्त शत्रुओं की पहिचान गंगों से करते हैं (आई० एच० क्यु०, पृ० ६० अ०)।

श्लोक ३०

(१) इस श्लोक की रचना करते समय रविकीर्त्ति कालिदास के 'रघुवंश' व भारवि के 'किरातार्जुनीय' से प्रभावित हुआ लगता है। 'कावेरी द्रुत शफरी विलोल नेत्रा' का भाव उसे 'किरातार्जुनीय' के 'शफरी परिस्फुरित चारु दृश (६.१६) पर से मिला प्रतीत होता है और हाथियों के द्वारा नदी में पुल बनाने का भाव 'रघुवंश' के एक श्लोक (४.३८) से (सतीर्त्वा कपिशां सैन्यैर्बद्धद्विरद सेतुभिः)। लेकिन इस भाव के साथ रविकीर्त्ति ने 'रघुवंश' के चौथे सर्ग के ही ४५वें श्लोक का भाव मिला दिया है :

> ससैन्य परिभोगेण गजदान सुगन्धिना।
> कावेरीं सरितां पत्यु : शकंनीयामिव करोत् ॥

"उसने (अर्थात् रघु ने) अपनी सेना द्वारा कावेरी नदी को मथकर और उसे अपने हाथियों के मद से सुगन्धित करके उसके पति अर्थात् समुद्र की दृष्टि में शंकनीया बना दिया (अर्थात् कावेरी नदी के जल से गजमद की सुगन्ध आने से समुद्र के मन में उसके उपपति रमण की शंका पैदा होने का डर हो गया)।"

स्पष्टतः रविकीर्त्ति का भी आशय यही है कि पुलिकेशी के हाथियों के मद की गन्ध से युक्त हो जाने के कारण कावेरी ने, जिसे यह आशंका हो गई थी कि उसका पति समुद्र उसके चरित्र को शंका की दृष्टि से देखेगा, अपने को उसके स्पर्श या आलिंगन से बचाया। लेकिन इसके साथ रविकीर्त्ति ने हाथियों के पुल का भाव और जोड़कर कालिदास की सुन्दर कल्पना को विकृत कर दिया है। यहां अब यह भी भाव लिया जा सकता है कि विशालकाय हाथियों द्वारा मार्ग अवरुद्ध कर दिए जाने से कावेरी अपने पति समुद्र तक पहुंचने में असमर्थ हो गई।

(२) कावेरी दक्षिण की एक प्रसिद्ध नदी है। यह पश्चिमी घाट से निकल कर बंगाल की खाड़ी में तञ्जौर के पास गिरती है। कथाओं में उसे ब्रह्मा अथवा कावेर मुनि की पुत्री कहा गया है। हिन्दू धर्म में उसे 'दक्षिणा गंगा' माना गया है।

श्लोक ३१

(१) स्पष्टतः पुलिकेशी के द्वारा पल्लवों पर प्राप्त विजय से भयभीत होकर चोल, केरल व पाण्ड्य राजाओं ने पुलकेशी के साथ स्वेच्छया मैत्री कर ली थी।

श्लोक ३२

(१) यह श्लोक का उत्तरार्द्ध एकदम 'रघुवंश' १,३० का भावानुवाद प्रतीत होता है :

सवेलावप्रवलयां परिखा कृत सागराम् ।
अनन्य शासनामुर्वी शशासैकपुरीमिव ।।

(राजा दिलीप) नगर रूपी इस पूरी पृथिवी पर अकेले राज्य करते थे जिसका परकोटा समुद्र का तट था और जिसकी खाई स्वयं समुद्र था।

(२) कुछ विद्वानों का अनुमान है कि पुलिकेशी ने उपर्युक्त सभी विजयों को पाने के बाद वातापि को जीता था। लेकिन यह असम्भव है। पुलिकेशी के हैदराबाद-दानपत्रानुसार वह अपने शासन के तीसरे वर्ष, ६१३ ई० में, वातापि में ठहरा हुआ था। उस समय तक, अर्थात् तीन वर्ष से भी कम समय में, वह ये सब सफलताएं प्राप्त नहीं कर सकता था।

श्लोक ३३

(१) महाभारत-युद्ध से प्रारम्भ माने जाने वाले संवत् को अभिलेखों में कलि-संवत् भी कहा गया है। ऐहोले-लेख के अगले श्लोक में 'कलिकाल' नाम से शायद इसका ही उल्लेख हुआ है। इसे युधिष्ठिर संवत् भी कहते थे। एक परम्परानुसार यह १८ फरवरी ३१०२ ई० पू० में प्रारम्भ हुआ। ऐहोले-लेख भी शक संवत् ५५६ को भारत-संवत् ३७५६ के बराबर बताकर इसका समर्थन करता है। लेकिन वराहमिहिर की 'बृहत्संहिता' तथा कल्हण की 'राजतरंगिणी' के अनुसार युधिष्ठिर ने कलियुग के ६५३ वर्ष उपरान्त शासन किया था। दे०, सरकार, इण्डियन एपिग्रेफी, पृ० ३१८-९।

श्लोक ३५

(१) 'अम्बुधित्रय निवारित शासनस्य' जैसे अर्थ वाली उपाधियां दक्षिण भारत के सम्राट् प्रायः धारण करते थे। तु०, पुलमावि के शासन के १९वें वर्ष के नासिक-लेख में गौतमीपुत्र शातकर्णि को 'तिसमुदतोयपीतवाहनस' (पंक्ति ३) कहा जाना (स० इ०, पृ० २०४)। तीन समुद्रों से आशय पूर्वी, पश्चिमी तथा दक्षिणी समुद्रों (बंगाल की खाड़ी, अरब सागर व हिन्द महासागर) से है।

श्लोक ३७

(१) यहां आशय है कि रविकीर्त्ति ने इस जैन मन्दिर के निर्माण द्वारा प्रस्तुत अवसर का प्रयोग चालुक्य वंश इतिहास विषयक अपनी रचना को नया रूप देने के लिए किया। इससे लगता है कि उसने चालुक्यों के इतिहास पर इसके पूर्व भी कुछ लिखा था। वैसे भी उसका यह दावा कि उसने भारवि और कालिदास जैसी कीर्त्ति प्राप्त की इस बात का प्रमाण है कि उसने इसके पूर्व अन्य कुछ ग्रन्थ लिखे थे, यद्यपि अपने को कालिदास और भारवि के समकक्ष मानना उसकी आत्मश्लाघा ही है। उसकी कोई अन्य रचना उपलब्ध नहीं है।

(२) इस श्लोक से प्रमाणित होता है कि महाकवि कालिदास ६३४ ई० के पूर्व रखे जाने चाहिए। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि मंगलेश के महाकूट-स्तम्भ-लेख पर भी कालिदास के 'रघुवंश' का गहरा प्रभाव मिलता है। भारवि रविकीर्त्ति के ज्येष्ठ समकालीन प्रतीत होते हैं। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' की एक पाण्डुलिपि के अनुसार दामोदर को, जो भारवि का एक मित्र था, विष्णुवर्द्धन (द्वितीय पुलिकेशी का अनुज ?), गंग वंशीय दुर्विनीत तथा पल्लव-नरेश सिंहविष्णु का संरक्षण मिला था।

ऐहोले-प्रशस्ति का ऐतिहासिक महत्त्व

ऐहोले और प्रयाग-प्रशस्तियों की तुलना—द्वितीय पुलिकेशी की ऐहोले-प्रशस्ति एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभिलेख है। चालुक्य वंश के इतिहास में इसका वही स्थान है जो गुप्त इतिहास में समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति का। वैसे ये दोनों अभिलेख प्रकृत्या परस्पर भिन्न हैं। प्रयाग-प्रशस्ति एक विशुद्ध प्रशस्ति है जिसका उद्देश्य समुद्रगुप्त की कीर्त्ति का वर्णन करना मात्र है जबकि ऐहोले-प्रशस्ति प्रकृत्या एक जैन अभिलेख है। दूसरे, प्रयाग-प्रशस्ति एक चम्पू

काव्य (गद्य-पद्य मिश्रित काव्य) है जबकि ऐहोले-प्रशस्ति पूर्णतः पद्य बद्ध है। तीसरे, ऐहोले-प्रशस्ति में वैसी संक्षिप्त वंशावली नहीं मिलती जैसी प्रयास-प्रशस्ति में मिलती है। लेकिन जहां तक समकालीन इतिहास पर प्रकाश देने का सम्बन्ध है, ये दोनों अभिलेख ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं।

ऐहोले-प्रशस्ति की विश्वसनीयता—ऐहोले-प्रशस्ति का लेखक प्रयाग-प्रशस्ति के लेखक के समान सान्धिविग्रहिक, महादण्डनायक और कुमारामात्य जैसे उच्च पदों का उपभोग करने वाला कोई पदाधिकारी तो नहीं था, लेकिन वह चालुक्य सम्राट् द्वितीय पुलिकेशी का कृपापात्र अवश्य था (सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादम्)। उसे निश्चय ही अपने संरक्षक की उपलब्धियों का व्यक्तिगत रूप से ज्ञान रहा होगा क्योंकि उसने जो कुछ लिखा है उसका समर्थन अन्य स्वतन्त्र साक्ष्य से होता है। उदाहरणार्थ, वह पुलिकेशी-हर्ष युद्ध का उल्लेख करता है और हर्ष को असफल पक्ष बताता है। यह बात शुआन-च्वांग के साक्ष्य से समर्थित होती है जिससे हमें ज्ञात होता है कि हर्ष अनेक प्रदेशों से सैनिक एकत्र करने के बावजूद, पुलिकेशी को परास्त नहीं कर पाया था। इसी प्रकार पुलिकेशी की पल्लवों पर विजय और उसके काञ्ची तक पहुँच जाने का समर्थन स्वयं पल्लव अभिलेखों से होता है और वेङ्गी प्रदेश जीतने का प्रमाण वहां उसके भाई कुब्ज विष्णुवर्द्धन द्वारा पूर्वी चालुक्य वंश की स्थापना है। अत : ऐहोले-प्रशस्ति को सामान्य रूप से एक विश्वसनीय अभिलेख माना जा सकता है।

प्रारम्भिक चालुक्य नरेशों का वर्णन—ऐहोले प्रशस्ति चालुक्यों की उत्पत्ति पर तो मौन है, परन्तु इस वंश के प्रारम्भिक नरेशों के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएं देती है। इसका यह वंश-वर्णन जयसिंह से प्रारम्भ होता है जिसका समय लगभग ५०० ई० पड़ेगा। स्पष्टतः जयसिंह ने विष्णुकुण्डी-साम्राज्य के विघटनोपरान्त अपने वंश की शक्ति को बढ़ाया होगा। उसके उपरान्त उसके पुत्र रणराग ने शासन किया और तदनन्तर रणराग के पुत्र प्रथम पुलिकेशी ने। प्रथम पुलिकेशी का एक अभिलेख बादामी से मिला है जिसके तिथि ५४३ ई० है (दे०, पीछे, लेख सं० ६२)। उसने अश्वमेध करके अपने वंश की वर्द्धमान महत्ता घोषित की और 'पृथिवीवल्लभ' उपाधि धारण की। यह उपाधि उसके उत्तराधिकारी बराबर धारण करते रहे। उसके बाद शासन किया उसके ज्येष्ठ पुत्र कीर्त्तिवर्मा ने। वह मौर्य, कदम्ब व नल वंशों का विजेता था। उसकी मृत्यु के समय उसका पुत्र द्वितीय पुलिकेशी अल्पवयस्क था, इसीलिए उसके बाद शासन सूत्र प्रथम पुलिकेशी के दूसरे पुत्र मंगलेश के हाथ में आया जिसने पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक विजय यात्रा की, रेवती द्वीप को जाता तथा कट्च्छुरियों को परास्त किया। उसने अपना राज्य अपने अज्ञातनामा पुत्र को देने की चेष्टा की, परन्तु कीर्त्तिवर्मा के पुत्र द्वितीय पुलिकेशी ने इसका विरोध किया। इसके परिणाम स्वरूप हुए युद्ध में पुलिकेशी विजयी हुआ और मंगलेश को अपने राज्य व जीवन से हाथ धोना पड़ा।

द्वितीय पुलिकेशी—द्वितीय पुलिकेशी अपने वंश का एक महान् शासक सिद्ध हुआ। उसने अनेक विरुद्ध धारण किए यद्यपि ऐहोले-लेख में केवल 'सत्याश्रय' विरुद का प्रयोग हुआ है। उसके आविर्भाव के समय हुए गृह युद्ध का लाभ उठा कर बहुत से अधीन राजाओं ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया व गोविन्द तथा आप्यायिक नामक नरेशों ने तो भीमा नदी के उत्तरी क्षेत्र पर भी आक्रमण कर दिया। परन्तु पुलिकेशी ने भेद नीति का सहारा लेकर गोविन्द को अपने पक्ष में मिला लिया। इससे आप्यायिक भयभीत होकर भाग गया। इसके बाद पुलिकेशी ने वरदा नदी के तट पर स्थित वनवासी नगरी को जीता, गंग व आलुप वंशीय नरेशों को पराभूत किया तथा कोंकण प्रदेश के मौर्यों पर विजय प्राप्त की। लाट, मालव और गूर्जर नरेश, सम्भवतः हर्ष से त्रस्त होने के कारण, उसकी शरण में आ गए। विशेषतः शायद इसी कारण वश हर्ष और पुलिकेशी का युद्ध हुआ जिसमें हर्ष को असफलता मिली। इसके उपरान्त पुलिकेशी ने विन्ध्य प्रदेश को जीता, तीनों महाराष्ट्रकों को अपने अधीन किया, कोसल और कलिंग नरेशों को भयभीत किया, पिष्टपुर पर विजय प्राप्त की, कुनाल झील को हस्तगत किया और पल्लव नरेश

को परास्त कर उसे पल्लव राजधानी काञ्ची की प्राचीर के पीछे शरण लेने को बाध्य किया। इसके परिणाम-स्वरूप चोल, केरल व पाण्ड्य राजा स्वयं ही पुलिकेशी की शरण में आ गए। इन सब प्रदेशों व राजाओं की पहिचान हमने पीछे यथास्थान तय की है। वहीं हमने टिप्पणियों में उसके इन युद्धों की महत्ता पर विचार किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह अभिलेख न केवल पुलिकेशी के पूर्वजों का इतिहास बताता है वरन् स्वयं पुलिकेशी की विजय यात्रा का भी विस्तार से वर्णन करता है। उत्तर भारतीय इतिहास की दृष्टि से हर्ष के साथ पुलिकेशी के संघर्ष का उल्लेख अत्यन्त रोचक व समस्यामूलक है। इसी प्रकार दक्षिण भारतीय इतिहास की दृष्टि से पल्लव-नरेश (सम्भवतः महेन्द्रवर्मा) के साथ उसका युद्ध बहुत महत्त्वपूर्ण था। लेकिन पल्लव-नरेश के ऊपर विजय उसे बड़ी मंहगी पड़ी। जैसा कि अन्य साक्ष्य से ज्ञात होता है, महेन्द्रवर्मा के पुत्र नरसिंहवर्मा ने प्रत्याक्रमण करके स्वयं वातापि को हस्तगत कर लिया था और उसे अर्थात् द्वितीय पुलिकेशी को मार डाला था।

द्वितीय पुलिकेशी का चरित्र—ऐहोले-लेख में यूं तो द्वितीय पुलकेशी के सभी पूर्वजों का वर्णन करते समय उनके चरित्र की विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है, परन्तु स्वयं द्वितीय पुलिकेशी के चरित्र के विषय में इसमें विशेष जानकारी मिलती है। इसमें उसे भारी योद्धा, कुशल सेनानायक तथा उत्साह, प्रभु और मन्त्र शक्तियों से सम्पन्न बताया गया है। उसकी नीति-कुशलता गोविन्द नामक राजा को अपना पक्षधर बना लेने से स्पष्ट है। उसके प्रभाव के परिणामस्वरूप ही कोसल, कलिंग, लाट, मालव, गूर्जर, चोल, केरल व पाण्ड्य राजाओं ने उसके प्रभुत्व को स्वयमेव स्वीकार कर लिया था। वह साहित्य का संरक्षक भी था जैसा कि उसके द्वारा रविकीर्त्ति को संरक्षण दिए जाने से स्पष्ट है। उसकी महत्ता का एक प्रमाण चीनी यात्री शुआन-च्वांग का वर्णन भी है। वह पुलिकेशी के विषय में लिखता है कि वह बड़ी ही बलवान एवं विचारशील नरेश था। प्रजा उस पर प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास रखती थी। उसकी गजसेना और पदाति सेना बड़ी प्रसिद्ध थी। सिपाहियों और हाथियों को युद्ध के पूर्व मदिरा पिलाई जाती थी। नशे में मत्त हाथी शत्रु सेना को रौंदते चले जाते थे और हरेक सिपाही सौ-सौ शत्रुओं से भी टक्कर लेने में नहीं हिचकिचाता था।

साहित्यिक महत्त्व—प्रयाग-प्रशस्ति के समान ऐहोले-अभिलेख का महत्त्व भी मात्र राजनीतिक ही नहीं है, साहित्यक भी है। एक, यह हमें सातवीं शती ई० के कवि रविकीर्त्ति से परिचित कराता है। अगर यह लेख उपलब्ध न होता तो रविकीर्त्ति भी विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया होता। दूसरे, इस लेख के ३७ वें श्लोक में रविकीर्त्ति अपने को कालिदास एवं भारवि के समकक्ष बताता है। उसका यह दावा आत्मश्लाघा मात्र है क्योंकि न तो उसकी रचना में भारवि का अर्थ गाम्भीर्य है और न कालिदास की उपमाओं की छटा ही मिलती है। परन्तु इससे यह अवश्य ही प्रमाणित हो जाता है कि कालिदास व भारवि ६३४ ई० के पूर्व हुए और उस समय तक पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। इस तथ्य से कालिदास की तिथि की, जो संस्कृत साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है, उपरली सीमा निर्धारित हो जाती है।

कालिदास व भारवि का रविकीर्त्ति पर प्रभाव—ऐहोले-प्रशस्ति से स्पष्ट है कि रविकीर्त्ति ने कालिदास व भारवि के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। अनेक स्थलों पर वह 'रघुवंश','कुमारसम्भव' व 'किरातार्जुनीय' के भावों, शब्दों व पदों का अनुसरण करता है। कीलहॉर्न ने ऐसे बहुत से पदों की ओर ध्यान दिलाया है। हमने भी पीछे श्लोकों की टिप्पणियों में इनकी एवं कुछ अन्य समान पदों की चर्चा की है (दे०,श्लोक १, ५–७, १०, १४, १५, १८, २०–२४, २७, २९, ३०, ३२ की टि०)

रविकीर्त्ति की साहित्यिक प्रतिभा—यद्यपि रविकीर्त्ति का यह दावा सही नहीं है कि वह कालिदास व भारवि के समान प्रतिभाशाली था, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि वह तत्कालीन युग के प्रथम श्रेणी के राजकवियों में गिना

जा सकता है। वह अलंकार-शास्त्र से पूर्णतः परिचित था। शब्दालंकार में उसने यमक और अनुप्रास के प्रति अनुराग दिखाया है। अन्त्यानुप्रास और यमक का उदाहरण २६ वें व २७ वें श्लोकों में है और पादान्त यमक का ३७ वें श्लोक में (रविकीर्त्ति – – – भारविकीर्त्तिः)। वर्णानुप्रास की सुन्दर छवि ६ वें (परदार निवृत्तचित्तवृत्तेरपि) व १०वें (पृथुकदम्बकदम्बकदम्बकम्) श्लोकों में मिलती है। उपमा (यथा, श्लोक २८), उपमेयोपमा (श्लोक, २१), उत्प्रेक्षा (श्लोक, १३, १८, २२,२४), विरोधाभास (श्लोक ७,६,१६) आदि का बहुलता से प्रयोग किया गया है। अन्य दाक्षिणात्यों के समान रविकीर्त्ति विशेषतः उत्प्रेक्षालंकार के प्रयोग में कुशल था। पुलिकेशी की विजय-यात्रा का वर्णन करते समय वह ओजगुण विशिष्ट समास बहुल पदावली का प्रयोग करता है जिसके बिना वीर रस का स्वाद मिलना असम्भव था (दे०, अभिलेखमाला, पृ० १२२-२५)

६५

प्रथम विक्रमादित्य का गोडवल-दानपत्र

शक सं० ५९६ (=६७४ ई०)

प्राप्तिस्थल : भूतपूर्व हैदराबाद रियासत का गोडवल स्थल।

ताम्रपट्ट-वर्णन : लेख तीन ताम्रपट्ट पर लिखा है। प्रथम और तृतीय ताम्रपट्टों पर मात्र एक ओर लिखा है, दूसरे पर दोनों ओर। तीनों ताम्रपट्ट, जो ९" लम्बे तथा ४ १/८" से ४ १/४" चौड़े हैं, एक छल्ले से संयुक्त हैं और इनका भार छल्ले सहित १६० तोला है।

भाषा : संस्कृत। १० श्लोकों के अतिरिक्त शेष भाग गद्य में है।

लिपि : सातवीं शती ई० की दक्षिणी वर्ग की ब्राह्मी।

लेख-सार : यह लेख चालुक्यराज द्वितीय पुलिकेशी के पुत्र प्रथम विक्रमादित्य का है। उसके पूर्वजों का इसमें जो वर्णन मिलता है वह अन्य लेखों में भी उपलब्ध है। स्वयं प्रथम विक्रमादित्य को इसमें श्रीवल्लभ, रणरसिक तथा राजमल्ल कहा गया है एवं नरसिंह (प्रथम नरसिंहवर्मा) महेन्द्र (द्वितीय महेन्द्रवर्मा) तथा ईश्वर (प्रथम परमेश्वरवर्मा) नामक पल्लव राजाओं का विजेता, काञ्ची को जीतने वाला तथा महामल्ल वंश (=पल्लव वंश) का विनाशक कहा गया है। जब उसने इस लेख में उल्लिखित दान दिया था, उसकी सेना कावेरी के दक्षिणी तट पर स्थित उरगपुर में ठहरी हुई थी और चोलिक विषय (चोल देश) जीतने में संलग्न थी। यह दान गंग महादेवी की प्रार्थना पर तीन ब्राह्मणों को दिया गया था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : हूल्त्श, इ० आई०, १०, पृ० १००–०६।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओं स्वस्ति [॥*] जयत्याविष्कृतं विष्णोः वाराहं क्षोभितार्णवं [।*] दर्षिणोन्नत-दंष्ट्राग्रविश्रान्तभुवनं व-
२. पुः [॥ १*] श्रीमतां सकलभुवनसंस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां हारितीपुत्राणां सप्तलोकमातृ-
३. भिस्सप्तमातृभिरभिवर्द्धितानां कार्त्तिकेयपरिरक्षणप्राप्तकल्याणपरम्पराणां भगवन्ना-
४. रायणप्रसादसमासादितवराहलाञ्छ [ने]क्षणक्षणवशीकृताशेषमहीभृतां चलि-
५. क्यानां कुलम[लं]करिष्णोरश्वमेधावभृथस्नानपवित्रीकृतगात्रस्य श्रीपुल-
६. केशिवल्लभमहाराजस्य प्रपौत्रः पराक्रमाक्रान्तवनवास्यादिपरनृपति-
७. मण्डलप्रणिबद्धविशुद्धकीर्त्तेः श्रीकीर्त्तिवर्म्मपृथिवीवल्लभमहाराजस्य पौत्र-
८. स्समरसंसक्तसकलोत्तरापथेश्वरश्रीहर्षवर्द्धनपराजयोपलब्ध-
९. परमेश्वरापरनामधेयस्य सत्याश्रयश्रीपृथिवीवल्लभमहा-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१०. राजाधिराजपरमेश्वरस्य प्रियतनयश्चित्रकण्ठाख्यप्रवरतुरंगमे-
११. णैकेनैव प्रतीतानेकसमरमुखे रिपुनृपतिरुधिरजलास्वादनरसना-
१२. यमानज्वलदमलनिशितनिस्त्रिंशधारया च धृतधरणीभरभुजगभोगसदृ-
१३. शनिजभुजविजितविजिगीषुरात्मकवचावमग्नानेकप्रहारः स्वगुरोः श्रि-
१४. यमवनिपतित्रितयान्तरितामात्मसात्कृत्य कृतैकाधिष्ठिताशेषरा-
१५. ज्यभरस्तस्मिन्राज्यत्रये विनष्टानि देवस्वब्रह्मदेयानि धर्म्मयशोभिवृ-
१६. द्धये स्वमुखेन स्थापितवान् [॥*] रणशिरसि रिपुनरेन्द्रान्दिशि दिशि जित्वा स्ववंश-
१७. जां लर्ष्मी (लक्ष्मीं) [।*] प्राप्तः परमेश्वरस्वतामनिवारितविक्रमादित्यः [॥ २*] अपि च [॥*] मृदित-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१८. नरसिंहयशसा विहितम[हे]न्द्रप्रतापविलयेन [।*] नयनविजितेश्वरेण प्रभुणा श्रीवल्लभेन जितं [॥ ३*] कृ-
१९. तपल्लवावमर्द्दं दक्षिणदिग्युवतिमात्तकाञ्चीकः [।*] यो भृशमभिरमयन्नपि सुतरां श्रीवल्लभत्वमितः [॥ ४*] वह-
२०. ति स्वमर्थवन्तं रणरसिक[:*] श्रीमदुरुबलस्कन्धः [।*] यो राजमल्लशब्दं विहितमहामल्लकुलनाशः [॥ ५*] दु-
२१. ल्लंघदुष्करविभेदविशालसाला दुर्ग्गाधदुस्तरबृहत्परिखापरीता [।*] अग्राहि येन जयतेश्वरपोत-
२२. राजं काञ्चीव दक्षिणदिशः क्षितिपेन काञ्ची [॥ ६*] स विक्रमाक्रान्तसकल-महीमण्डलाधिराज्यो विक्रमादि-
२३. त्यसत्याश्रयश्रीपृथिवीवल्लभमहाराजाधिराजपरमेश्वरस्सर्व्वानेवमाज्ञापयति[॥*] विदित
२४. मस्तु वोस्माभिः पण्णवत्युत्तरपञ्चशतेषु शकवर्षेष्वतीतेषु प्रवर्द्धमानविजयराज्यसं-
२५. वत्सरे विंशतितमे वर्त्तमाने चोलिकविषयं प्रविश्य कावेरीदक्षिणतटावस्थितोरगपुरमधिवस-
२६. ति विजयस्कन्धावारे वैशाखपौर्णमास्यां वर्त्तमाने काप्यसगोत्रस्य ईश्वरषडंगविदः पौत्राय
२७. स्वामिचन्दशर्म्मणः पुत्राय कन्हशर्म्मणे [चेडू]ल्लिग्रामे गंगमहादेवीविज्ञापनया राजमाने-
२८. न पञ्चाशन्निवर्त्तनपरिमाणं क्षेत्रं ख[ण्डु]गवड्लसहितं दत्तं [।*] तद्ग्रामे च वत्ससगोत्रस्य

तृतीय ताम्रपट्ट

२९. महीसरस्वामिनः पौत्राय तातम्मस्वामिनः पुत्राय पादम्मस्वामिने राजमानेन पञ्चाश-
३०. न्निवर्त्तनपरिमाणं क्षेत्रं दत्तं [।*] तद्ग्रामे कोन्नशर्म्मणे च पञ्चाशन्निवर्त्तनप-रिमाणं क्षेत्रं दत्तं
३१. सलगेसहितं स्मद्वंश्यैरन्यैश्च राजभिरायुरैश्वर्य्यादीनां विलसितमचिरांशुचंचलमवग-
३२. च्छद्भिराचन्द्रार्कधरार्णवस्थितिसमकालं यशश्चिचीषुभिस्स्वदत्तिनिर्व्विशेषं परिपालनी-यमुक्तञ्च
३३. भ[गव]ता वेदव्यासेन व्यासेन [॥*] बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिः [।*] यस्य यस्य यदा भू-

३४. मिस्तस्य तस्य तदा फलं [।। ७*] स्वन्दातुं सुमहच्छक्यं दुःखमन्यस्य पालनं [।*] दानं वा पालनं वे-

३५. ति दानाच्छ्रेयोनुपालनं [।। ८*] स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां [।*] षष्टिं वर्षसहस्रा-

३६. णि विष्ठायां जायते क्रिमिः [।। ९*] चालुक्यवंशजातस्य पल्लवान्वयनाशिनः [।*] सर्व्वानिवारिता-

३७. ज्ञस्य शासनं शासनं द्विषां [।। १०*] महासान्धिविग्रहिकश्रीजयसेनेन लिखितमिदं शासनं [।*]

३८. कुन्दस्वामिने एवास्य शासनस्य स्वामिनान्येस्ति [।।*] ओं नमो नमः [।*] नमस्सकलविदे [।।*]

६६

प्रथम विक्रमादित्य का सवणूर-दानपत्र

शक सं० ५९७ (=६७५ ई०)

प्राप्तिस्थल : सवणूर रियासत (धारवाड़) के बाजार में खरीदा गया।

ताम्रपट्ट-वर्णन : यह दानशासन ३ ताम्रपट्टों पर लिखा है जो एक छल्ले से संयुक्त हैं। छल्ले पर मुहर टंकी है। लेख प्रथम और तृतीय ताम्रपट्ट के एक ओर और द्वितीय ताम्रपट्ट के दोनों ओर लिखा है। ताम्रपट्ट ९"×४ ३/१६" आकार के हैं। तीनों ताम्रपट्टों का मार १४४ तोले है।

भाषा : संस्कृत।

लिपि : सातवीं शती की दक्षिणी वर्ग की ब्राह्मी।

लेख-सार : इस लेख का चालुक्य-वंश का वर्णन तथा प्रथम विक्रमादित्य के पूर्वजों का वर्णन लगभग वैसा ही है जैसा गोडवल-दानपत्र में है। लेख की रचना महासान्धिविग्रहिक जयसेन ने की थी जिसने गोडवल-दानपत्र भी लिखा था। दान पाने वाले ब्राह्मण तथा दान में प्रदत्त भूमि भिन्न हैं।

तिथि : यह दानशासन गोडवल दानशासन के कुछ बाद का परन्तु विक्रमादित्य के शासन के बीसवें वर्ष का ही है। उस समय भी विक्रमादित्य उरगपुर में सेना सहित ठहरा हुआ था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : खरे, जी० एच०, इ० आई, २७, पृ० ११५–११९।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. स्वस्ति [।*] जयत्याविष्कृतं विष्णोः वाराहं क्षोभिताण्णर्वं (वम्) [।*] दक्षिणोन्नतदंष्ट्राग्र-
विश्रान्तभुवन (नं) वपुः [॥१॥*]
२. श्रीमतां सकलभुवनसंस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां हारितीपुत्राणां सप्तलोक-
३. मातृभिस्सप्तमातृभिरभिवर्द्धितानां कार्त्तिकेयपरिरक्षणप्राप्तकल्याणपरम्पराणां भग-
४. वन्नारायणप्रसादसमासादितवराहलाञ्छनेक्षणक्षणवशीकृताशेषममहीभृतां
५. [च]लिक्यानां कुलमलंकरिष्णोरश्वमेधावभृथस्नानपवित्रीकृतगात्रस्य श्री-
६. पुलकेशिवल्लभमहाराजस्य प्रपौत्रः पराक्रमाक्रान्तवनवास्यादिपरन्टप-

७. तिमण्डलप्रणिबद्धविशुद्धकीर्त्तेः श्रीकीर्त्तिवर्म्मपृथिवीवल्लभमहाराजस्य पौत्र-

८. स्समरस(सं)सक्तसकलोत्तरापथेश्वरश्रीहर्षवर्द्धनपराजयोपलब्धपर-

९. मेश्वरापरनामधेयस्य सत्याश्रयश्रीपृथिवीवल्लभमहाराजाधिराजपर-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१०. मेश्वरस्य प्रियतनयश्चित्रकण्ठाख्यप्रवरतुरंगमेणैकेनैव प्रतीतानेकसम-

११. रमुखे रिपुनृपतिरुधिरजलास्वादनरसनायमानज्वलदमलनिशितनिस्त्रिंश-

१२. धारयावधूतधरणीभरभुजगभोगसदृशनिजभुजविजितविजिगीषुरात्मकव-

१३. चावम[ग्ना]न(ने) कप्रहारः स्वगुरोः श्रियमवनिपतित्रितयान्तरितामात्मसात्कृत्य कृतै-

१४. काधिष्ठिताशेषराज्यभरस्तस्मिन्राज्यत्रये विनष्टानि देवस्वब्रह्मदेयानि

१५. धर्म्मयशोभिवृद्धये स्वमुखेन स्थापितवान् [।।*] रणशिरसि रिपुनरेन्द्रान्दिशिदि-

१६. शि जित्वा स्ववंशजां लष्मी(क्ष्मीं) [।*] प्राप्तः परमेश्वरतामनिवारितविक्रमादित्य [।।२।।*] अपि च [।*] मृ-

१७. दितनरसिंहयशसा विहितमहेन्द्रप्रतापविलयेन [।*] नयनविजितेश्वरेण

१८. प्रभुणा श्रीवल्लभेन जितं(तम्) [।।३।।*] कृतपल्लवावमर्द्दं दक्षिणदिग्युवतिमात्तकाञ्ची-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१९. कः[।*] यो भृशमभिरम[य*]न्नपि स(सु)तरां श्रीवल्लभेन जितं(तम्) [।।४।।*] वहति स्वमर्थवन्तं रणरसिक(कः) श्रीमदुरुबल-

२०. [ष्क(स्क)]न्धः [।*] यो राजमल्लशब्दं विहितमहामल्लकुलनाशः [।।५।।*] दुर्ल्लंघ (ध्य) दुष्कर-विभेदविशालसाला

२१. दुर्गाधदुस्तरबृहत्परिखापरीता [।*] अग्राहि येन जयतेश्वरपोतराजम् काञ्चीव दक्षिणदिशः

२२. षि (क्षि) तिपेन काञ्ची [।।६।।*] भि(वि)दितमस्तु वोस्माभिः स[प्त]नवत्युत्तरपञ्चशतेषु शकवर्षेष्वतीतेषु प्रवर्द्ध-

२३. मानविजयराज्यसंवत्सरे वि (विं) शतितमे वर्त्तमाने चोलविषयं प्रविश्य क (का)वेरी-दक्षिणतट[स्थ-]

२४. मुरगपुरमधिवसति विजयस्कन्धावारे वैशाखपौर्ण्णपौर्ण्णमास्यां कामकाय-

२५. नसगोत्रस्य चतुर्व्वेदपार[ग*]स्य विप्णु[ष्णु]शर्म्मणः पौत्राय पफटनक्रमस्य बह्वृच-

२६. वेदस्य पारंगतवतो मादिशर्म्मणः पुत्राय बह(ह्वृ)चवेदसा(पा)रगाय कौथिय . .परुकन्दरु

२७. स्थानस्य पूर्व्वस्यान्दिशि द्विगव्यूतमात्रेवस्थित अंगिपोडिविज्ञापनया कुद्ध . . [न]पायुनामा

२८. ग्रामो दत्तः [।*] तदागामिभिरायुरे(रै)श्व[र्य्या]दीनां विलसितमचिरांशुचञ्चलमव-गच्छद्भिरा-

२९. चन्द्र(न्द्रा)र्कधरार्ण्णवस्थितिसमकालयशश्चि[ची*]षुभिस्स्वदत्तिनिर्व्विशेषं परिपालनीयं(यः)

तृतीय ताम्रपट्ट

३०. उ[क्त*]ञ्च भगवता वेदव्यासेन बहुभिर्ब्बसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिर्य्यस्य(भिःयस्य) यस्य य-

३१. दा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं(लम्) [।।७।।*] स्वन्दातु सुम[ह]च्छक्यं दु (दुः)ख-
मन्यस्य पालनं(नम्) [।*]

३२. दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रे(च्छ्रे॒)योनुपालनं(नम्) [।।८।।*] स्वदत्ताम्परदत्तां
वा यो हरे-

३३. त वसुन्धरा(राम्) [।*] षष्ठिं(ष्टिं) वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमिः [।।९।।*]
चालुक्य-

३४. वंशजातस्य पल्लवान्वयनाशिनः [।*] सर्व्वांनिवारिताज्ञस्य शा-

३५. सनं शासनं द्विषां(षाम्) [।।१०।।*] महासान्धिविग्रहिकश्रीजयसेनेन लिखि-

३६. तमिदं [।।*] यथाप्सु पतित(तः) शक्र स्नेलबिन्दवसर्प्पति [।*] एवं भूमि-

३७. कृत(तं) दानं सस्ये सस्यि(स्ये) विसर्प्पति [।११।।*] नमो नारायणाय

६७

द्वितीय विक्रमादित्य का नर्वन-दानपत्र

शक स० ६६४ (=७४२ ई०)

प्राप्तिस्थल : श्री डी० एच० जोशी को नर्वन (रत्नगिरि) से प्राप्त।

ताम्रपट्ट-वर्णन : लेख पांच ताम्रपट्टों पर लिखा है जो ९½"×४½" आकार के हैं। ताम्रपट्ट एक छल्ले से, जिस पर वराह मूर्त्ति युक्त मुहर टंकी है, जुड़े हैं। ताम्रपट्टों का कुल भार २१९ तोले है।

भाषा : संस्कृत। कुछ श्लोकों को छोड़कर गद्य में है।

लिपि : प्रारम्भिक तेलगु-कन्नड़।

लेख-सार : इस लेख में बताया गया है कि द्वितीय विक्रमादित्य के पूर्वज क्रमशः प्रथम पुलिकेशी, प्रथम कीर्त्तिवर्मा, सत्याश्रय (द्वितीय पुलिकेशी), प्रथम विक्रमादित्य, विनयादित्य और विजयादित्य थे। इन राजाओं का इस लेख में प्रदत्त वर्णन वक्कलेरी-दानपत्र आदि में भी मिलता है। द्वितीय विक्रमादित्य ने अपने शासन के आठवें वर्ष में, ६६४ (शक) सं० में अपने आदित्यवाड विजय स्कन्धावार से राष्ट्रकूट गोविन्दराज की प्रार्थना पर नरवण (आधुनिक नर्वन) ग्राम बहुत से ब्राह्मणों को दान दिया था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : जी० एच० खरे, इ० आई०, २७, पृ० १२५-३१।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. ओं स्वस्ति जयत्याविष्क्रि(ष्कृ)तं विष्णोर्व्वाराहं क्षोभिता-
२. र्ण्णवं(वम्) [।*] दक्षिणोन्नतदंष्ट्राग्रविश्रान्तभुवन(नं) वपुः [॥१॥*] श्री-
३. मतां सकलभुवनसंस्तूयमानमानव्यसगोत्राणां
४. हारिति (ती) पुत्राणां सप्तलोकमात्रु (तृ)भि(भिः) सप्तमातृ-
५. भिक(र)भि[व]द्धि(र्द्धि)तानां कार्त्तिकेयपरिरक्षणप्राप्त-
६. कल्याणं(ण) परंपराणा(णां) भगवा(व)न्नारायणप्रसा-
७. दात्समासादितो(त)वराहलांछनेक्षणक्षणवशीकृ-
८. ताशेषमहिभ्रितातां चलुक्य(क्या)नां कुलमलंकरिष्णोर-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

९. श्वमेधावभ्रि(भृ)थस्नानपवित्रीकृतगात्रस्य श्रीपोलकेशी(शि)वल्लभम-
१०. हाराजस्य सूनुः पराक्रमाक्र(क्रा)न्तवनवास्यादिपरनृपति[म]ण्डलप्र(प्र)-

११. णिबद्धविशुद्धकीर्त्ति(र्त्तिः) श्रीकीर्त्तिव[र्म्म]प्रि(पृ)थिवीवल्लभमहाराजस्तस्यात्म-
१२. ज[स्य*] समरसंसक्तसकलोत्तरापथेश्वरश्रीहरिष(हर्ष)वर्द्धनपराजयो-
१३. पात्तपरमेश्वरशब्दस्य सत्याश्रयश्रीप्रि (पृ)थिवीवल्लभ-
१४. महाराजाधिराजपरमेश्वरस्य प्रियतनयस्य प्रज्ञातनयस्य
१५. खङ्गमात्रसहायस्य चित्रकण्ठाभिदा(धा)नप्रवरतुं(तु)[रं*]गमणैकेनै-
१६. वोत्चा(त्सा) रिताशेषविजिगीषोरवनिपतिस्त्रि(त्रि)तयान्तरितो(तां) स्वगुरो(रोः) श्री(श्रि)य-
१७. मात्मसात्(त्कृ)त्य प्रभावात्कुलिशदलितपाण्ड्यचोडकेरलकल

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१८. प्रभ्रि(भृ)तिभूभृत(द)दभ्रविभ्रमस्यानन्यन(न्या)वनतकाञ्चीपतिमकुट-
१९. चु(चुं)बितपादा (दां)बुजस्य विक्रमादित्यसत्याश्रयश्रीप्रि(पृ)थिवीवल्लभ-
२०. महाराजाधिराजपरमेश्वरभट्टारकस्य प्रियसूनो[र्*] बाले-
२१. न्द(न्दु)शेखरस्य तारकारातिरिव दैत्यबलमतिसमुद्धत(तं) त्रैराज्यकाञ्चीप-
२२. तिबलमवष्टभ्य करज(दी)कृतकमेरपारसीयकसिंहलादिद्वीपाधिप-
२३. स्य सकलोत्तरापथनाथमथनोप(पा)र्जितोर्जितपालिध्वजादिसमस्त-
२४. पारमे(मै)श्वय्य(र्य्यं)चिन्ह(ह्न)स्य विनय(या)दित्यसत्याश्रयश्रीपृथिवी[व*]ल्लभमहा-
२५. राजादि(धि)राजपरमेश्वरभट्टारकस्य पृ(प्रि)यात्मज(जः)शैशव एवाधिगताशेषा-
२६. स्त्रशास्त्र(स्त्रो) दक्षिणाशाविजयिनि पितामहे समुन्मूलितनिखिलकण्ठ(ण्ट)क-
२७. संहतिर (रु)त्तरापथविजिगीषोगु(र्गु)रोरग्रत एवाहवव्यापारमाच-

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

२८. रन्नरातिगजघठा(टा)पाठ(ट)नविशीर्य्यमाणक्रि(कृ)पाणधारा(र)स्समग्रवि-
२९. ग्रहाग्रेसर(रः) सत्साहसरसिक(कः) पराङ्मुखीकृतशक्तु(त्रु)मण्डलो गंगाय-
३०. मुन(ना)पालिध्वजपटडकामहाशब्दचिन्ह(ह्न)माणिक्यमदगजादीन्पित्र(तृ)-
३१. सात्कुर्व्वंन्परै‿पलायमानैरासाद्य कथमपि विधि[व*]शादानीतोपि
३२. प्रतापादेव विषयप्रकोपमराजकं(क)मुत्सारयन्वच्च(त्स)राज इवानपेक्षिता-
३३. परसहायकस्तल(द)वग्रहान्निर्गत्य स्वभुजावष्टम्भप्रसाधिताशेष-
३४. विश्वम्भरः प्रभुरखण्डितशक्तित्रयत्वाच्छ(च्छ)त्रुमदभंजनत्वादुदारत्व(त्वा)न्निरव-
३५. द्यत्वाद्यः(द्य)स्समस्तभुवनाश्रय(यः)सकलपारमैश्वर्य्यव्यक्तिहेतुपालिध्वजा-
३६. द्य(द्यु)ज्व(ज्ज्व)लप्राज्यराज्या(ज्यो) विजयादित्यसत्याश्रयश्रीप्रि(पृ)थिवीवल्लभमहारा-
३७. जाधिराजपरमेश्वरभट्टारकक(स्त)स्य प्रियपुत्र(त्रः) सकलभुवनसाम्रा(म्रा)ज्यल-

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

३८. क्ष्मीस्वयंबराभिषेकसमयानन्तरसमुपजातमहोत्साहा(ह आ)त्मवंशज-
३९. पूर्व्वनृपतिजयापहारिण(णः) प्रकृत्यामित्रस्य पल्लवस्य समुन्मूलना-
४०. य क्रि(कृ)तमते(ति)रतित्वरया तुण्डकविषयं प्राप्याभिमुखागतन-
४१. न्दिपोतवर्म्माभिधानपल्लव(वं) रणमुखे संप्रहृत्य प्रपलाय(य्य) कतु-
४२. मुलवादित्रसमुद्रघोषाभिधानवाद्यविशेषखट्वांगध्वज-
४३. प्रमत्तप्रभूतप्रख्यातहस्तिवरा(रां)श्च किरणनिकाशनिराक्रि(कृ)ति(त)तिमिर(रं)
४४. माणिक्यराशिमनेक(का)नेका(को)पवहनीयमहाहेमराशिञ्च हस्तेकृ-

४५. त्य कुलधनकनिलयत्ररिरवाञ्चितकाञ्चीयमान(नां) काञ्चीमविना-
४६. श्य सततप्रव्रि(वृ)त्तदानान्थि(नन्दि)तद्विजा(ज)दीन(ना)नाथा(थ)जन(नो)नरसिंघपोत-
वम्म(र्म्म)[णा]

चतुर्थ ताम्रपट्ट : पुरोभाग

४७. निर्म्मितशिलामयराजसि(सि)घे(हे)श्वरादिदेवकुलप्रभूतसुवर्णरा-
४८. शिप्रत्या(त्य)र्पणोपार्जितोर्जितपुण्य(ण्यो)अनिवारितप्रतापप्रसभ(र)-
४९. प्रसाधितपाण्ड्यचोलकेरलकलभ्रप्रभृतिराजन्यक(कः) क्षुभित-
५०. करिमकरनिहति(त) सितशुक्त(क्ति)मुक्ताप(फ)लप्रकरमरीचिवेलाकु-
५१. लोत्घू(द्धू)र्णमानाण्वर्णनिधानदक्षिणार्ण्णव(वे) शरदमलश-
५२. शि(श)धरविशदयशोराशिमयं जयस्तंभमतिष्ठिपद्विक्र-
५३. मादित्यसत्याश्रयश्रीप्रि(पृ)थिवीवल(ल्ल) भमहाराजाधिराजपरमेश्वर-
५४. भट्टारक(कः) सर्व्वानेवमज्ञापे (प)यति विदितमस्तु वोस्माभि-

चतुर्थ ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

५५. चतुष्युत्तरषट्छतेषु शकवरुषे(र्षे)ष्वतीतेषु प्रवर्द्धमानविजयरा-
५६. ज्यस्संब (संव)त्सरेष्टमे आदित्यवाडमधिवसति विजयस्कन्धावारे उत्तरायणकाले
५७. राष्ट्रकु(कू)टशिवराजपुत्रगोविन्दराञ्ञा(ज)विञ्ञा(ज्ञा)पनया चिप्ररुलनविषये
५८. समुद्रतीरे सोन्नेनग्रंबाडग्रामादिपरिवृतचतु[:]सीमान्तनरवण-
५९. ग्रामं चिन्द्रमाड[स]हितं कौशिकगोत्रदुर्ग्गनागस्वामिपु-
६०. त्रदेग्गुलिस्व(स्वा)मिकौशिकगोत्रदोणस्व(स्वा)मिपुत्रनागडिदीक्षितावेतौ ब्राह्म-
६१. णौ [चा]रिकौ भूत्वा आराधितो(तौ) ग्रामं देग्गुलस्वामिनागडिदीक्षितकोन्तलनारा-
६२. यणनन्नस्व(स्वा)मिभुर्भुसगोदुधनंजयदुग्गुआत्रेयबोमावुवक्चपुत्रदेवु
६३. गोविदिवोवुणादिनानागोत्रसमय[वे]द[वे]दांगपारगब्राह्मणेभ्ये(भ्य इ)द(दं)
६४. अचाटभटप्रवे[शा]भ्यन्तरसिद्धिसहितं सभोगो(गं) दत्त(त्तं) यत्किञ्चिद्र(द्र)व्य(व्यं)

पञ्चम ताम्रपट्ट

६५. अंबाडग्रामदेयं(य)मरुहणादि राजपुरुषेभ्यो ददाति [तदर्थन्नरव]-
६६. णदेयं तदागामाविभिरस्मद्विश्वै राजभि राजपुरैश्वे(श्व)र्य्यादीनां विलसितमचि-
६७. रादाशुचञ्चलमवगछ(च्छ)त्भि(द्भि)राचन्द्रार्कताराणामवस्थितिसमकाल(लं) यश-
६८. चिकिरिषुभि स्वदत्तिर्न्निविशेषेण परिपालनीयमुक्तञ्चे(ञ्च) भगवता वेद-
६९. व्यासेन व्यासेन [।।*] बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभि(भिः) सगरादिभि(भिः) [।*] य-
७०. स्य यस्य यदा भूमिः तस्य तस्य तदा फलं(लम्) [।।२।।*]स्वन्दातुं सुमह-
७१. त्छ(च्छ)क्यं दु(दुः)खमन्यस्य पालनं(नम्) [।*] दानं वा पालनं वेत्ति(ति) दानाछे-
(च्छ्रे)योनुपालनं (नम्) [।।३।।*]
७२. स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेति (त) वसुन्धरां(राम्)[।*] षष्टिं वरिष(वर्ष)सहस्राणि
७३. विष्ठाया(यां)जायते क्रिमि[:*] [।।४।।*] इति महासन्धिविग्रह[श्री[अनिवाति-
(रित)पुण्यवल(ल्ल)भेन
७४. लिखितोयं(तमिदं)शासन(नम्) ।।

६८

द्वितीय कीर्त्तिवर्मा का बक्कलेरी-दानपत्र

शक सं० ६७९ (=७५७ ई०)

प्राप्तिस्थल : कर्नाटक के कोलार जिले का वक्कलेरी स्थल ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : प्रारम्भिक तेलुगु-कन्नड़ ।

लेख-सार : प्रस्तुत लेख चालुक्य वंश के अन्तिम महान् नृपति द्वितीय कीर्त्तिवर्मा का है जो द्वितीय विक्रमादित्य का पुत्र और उत्तराधिकारी था । इस लेख में चालुक्य वंशावली वैसी ही दी गई है जैसी पीछे दिये गये नर्वन-दानपत्र में है । इस लेख में उल्लिखित दान कीर्त्तिवर्मा ने विष्णुशर्मा के पौत्र और कृष्णशर्मा के पुत्र माधवशर्मा को दिया था । लेख का रचयिता महासान्धिविग्रहिक अनिवारित धनञ्जय उर्फ पुण्यवल्लभ था ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार, स० इ०, २, पृ० ४५१-५५ ।

प्रथम ताम्रपट्ट

१. स्वस्ति (।*)
जयत्याविष्कृत[ं] विष्णोर्व्वाराहं क्षोभितार्णवं(वम्) (।*)
दक्षिणोन्नत-वंष्ट्राग्र-विश्रान्त-भुवन[ं*]

२. वपु-
श्श्रीमता[ं] सकल-भुवन-संस्तूयमान-मानव्य-सगोत्राणां हारिति-पुत्रा-

३. णां सप्तलोक-मातृभिस्सप्त-मातृभिरभिवर्द्धितानां कार्त्तिकेय-परिरक्षण-प्रा-

४. प्त-कल्याण-परम्पराणाम्भगवन्नारायण-प्रसाद-समासादित-वराह-लां-

५. छनेक्षण-क्षण-वशीकृताशेष-महीभृताञ्चौलुक्याना[ं] कुलमलंक-

६. रिष्णोरश्वमेधावभृथ-स्नान-पवित्रीकृत-गात्रस्य श्रीपोलेके-

७. शिवल्लभ-महाराजस्य सूनु‿पराक्रमाक्रान्त-वनवास्यादि-पर-नृपति-म-

८. [ण्डल]-प्रणिबद्ध-विशुद्धकीर्त्ति-श्री-कि(की)र्त्तिवर्म्म-पृथिवीवल्लभ-महाराजस्तस्या-

९. त्म[ज]स्समर-संसक्त-सकलोत्तरापथेश्वर-श्रीहर्षवर्द्धन-पराज-

१०. यो[पा]त्त-परमेश्वरशब्दस्तस्य सत्याश्रय-श्रीपृथिवीव-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

११. ल्लभ-महाराजाधिराज-परमेश्वरस्य प्रिय-तनयस्य प्रज्ञात-नय-
१२. स्य खड्गमात्र-सहायस्य चित्रकण्ठाभिधान-प्रवर-तुरंगमेणैकेनैवो-
१३. त्सादिताशेष-वि[जि]गीषोरवनिपति-त्रितयान्तरितां स्वगुरो (:*) श्रियमात्म-
१४. सात्कृत्य प्रभाव-कुलिश-दलित-पाण्ड्य-चोल-केरल-कलभ्र-प्रभृति-भू-
१५. भृददभ्र-विभ्रमस्यानन्यावनत-काञ्चीपति-मकुट-चुम्बित-पा-
१६. दाम्बुजस्य विक्रमादित्य-सत्याश्रय-श्रीपृथिवीवल्लभ-महा-
१७. राजाधिराज-परमेश्वर-भट्टारकस्य प्रियसूनोर्बालेन्दुशेख-
१८. रस्य तारकारातिरिव दैत्यबलमतिसमुद्धतं त्रैराज्य-काञ्चीपति-
१९. बलमवष्टभ्य करदीकृत-कवेर-पारसीक-सिंहलादि-द्वीपाधिप-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२०. स्य सकलोत्तरापथ-नाथ-मथनोपार्ज्जित-पालिध्वजादि-समस्त-
२१. पारमैश्वर्य्य-चिन्ह(ह्न)स्य विनयादित्य-सत्याश्रय-श्रीपृथिवि(वी)-वल्लभ-महारा-
२२. जाधिराज-परमेश्वर-भट्टारकस्य प्रियात्मजश्शैशव एवाधिगताशेषा-
२३. स्त्र-शास्त्रो दक्षिणाशाविजयिनि पितामहे समुन्मूलित-निखिल-कण्ट-
२४. क-संहतिरुत्तरापथ-विजिगीषोर्गुरोरग्रत एवाहव-व्यापार-
२५. माचरन्नराति-गज-घटा-पाटन-विशीर्य्यमाण-कृपाण-
२६. धारस्समग्र-विग्रहाग्रेसरस्सन्साहसरसिक‿परांमुखी-कृत-श-
२७. त्रु-मण्डलो गंगा-यमुना-पालिध्वज-प[ड]ढक्का-महाशब्द-चिन्ह(ह्न)-मा-
२८. णिक्य-मतंगजादीन्पितृसात्कुर्व्वन्परै × पलायमा[नै]रासाद्य
२९. कथमपि विधिवशादपनीतो(ऽ*)[पि] प्रतापादेश विष-

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

३०. य-प्रकोपमराजकमुत्सारयन्वत्सराज इवानपेक्षितापर-सहा-
३१. यकस्तदवग्रहान्निर्गत्य स्व-भुजावष्टम्भ-प्रसाधिताशेष-विश्वम्भरः प्र-
३२. भुरखंडिव (त)-शक्तित्रयत्वात्छ (च्छ)त्रु-मद-भञ्जनत्वादुदारत्वा-न्निरवद्यत्वा-
३३. द्यस्समस्त-भुवनाश्रयस्सकल-पारमैश्वर्य्य-व्यक्ति-हेतु-पालि-
३४. ध्वजाद्युज्व(ज्ज्व)ल-प्राज्य-राज्यो विजयादित्य-सत्याश्रय-श्री-पृथिवी-
३५. ववल्लभ-महाराजाधिराज-परमेश्वर-भट्टारकस्य प्रियपुत्र-
३६. स्सकल-भुवन-साम्राज्य-लक्षि (क्ष्मी)-स्वयंवराभिषेक-समयानन्त-
३७. र-समुपजात-महोत्साहः आत्म-वंशज-पूर्व्व-नृपति-च्छाया-
३८. पहारिणः प्रकृत्यमित्रस्य पल्लवस्य समूलोन्मूल-

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

३९. नाय कृतमतिरतित्वरया तु[ं]डाक-विषयं प्राप्याभिमुखा(खा)गत-न्नन्दिपोतव-
४०. र्म्माभिधानम्पल्लवं रण-मुखे संप्रहृत्यप्रपलास्य(य्य) कटुमुख-वादि-
४१. त्र-समुद्रघोषाभिधान-वाद्यविशेषान्खट्वांगध्वज(जं) प्रभूत-प्रख्यात-
४२. हस्ति-वरान्स्वकिरण-निकर-विकास-निराकृत-तिमिरम्माणिक्य-राशि-
४३. ञ्च हस्ते कृत्यकलशभव-निलय-हरिदंगनांचित-कांचीय-
४४. मानां . कांचीमविनाश्य प्रविश्य सतत-प्रवृत्त दानाना(न)न्वित-द्विज्ज(ज)-
४५. दीनानाथ-जनो नरसिंहपोतवर्म्म-निर्म्मापित-शिलामय-राज-
४६. सिंहेश्वरादि-देवकुल-सुवर्ण-राशि-प्रत्यर्प्पणोपार्जितोर्जित-पुण्यः अ-
४७. निवारित-प्रताप-प्रसर-प्रतापित-पाण्ड्य-चोल-केरल-कलभ्र-प्र-

चतुर्थ ताम्रपट्ट : पुरोभाग

४८. भृति-राजन्यकः क्षुभित-करि-मकर-कर-हत-दलित-शुक्ति-मुक्त-मुक्ताफल-
४९. प्रकर-मरि(री)चि-जाल-विलसित-वेला-कुले घुर्णमानार्णाभिधाने दक्षिणा-
५०. र्णवे शरदमल-शशधर-विशद-यशोराशि-मयं जय-म(स्त)म्भ-
५१. मतिष्ठिपद्विक्रमादित्य-सत्याश्रय-श्रीपृथिवीवल्लभ-महाराजाधिरा-
५२. ज-परमेश्वर-भट्टारकस्य प्रियसूनुर्बाल्ये सुशिक्षित-शस्त्र-शास्त्रश्शत्रु-
५३. षट्व(ड्व)र्ग-निग्रह-परस्त्व-गुण-कलापानन्दित-हृदयेन पित्रा समा-
५४. रोपित-यौवराज्यः स्वकुल-वैरिण × काञ्चीपतेर्न्निग्रहाय मां प्रेषय इ-
५५. त्यादेशं (सं*)प्राथ्र्य लब्ध्वा तदनन्तरमेव कृतप्रयाणस्सन्नभिमुखमाग-
५६. त्य प्रकाश-युद्धं कर्त्तुमसमर्त्थं प्रविष्ट-दुर्गम् पल्लव(·*) भग्न-शक्ति कृत्वा
५७. मत्त-मतंगज-माणिक्य-सुवर्ण्ण-कोटीरादाय पित्रे समर्पितवा-

चतुर्थ ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

५८. नेवं क्रमेण प्राप्त-सार्वभौम-पद⁐प्रतागानुरागावनत-सामन्त-मकु-
५९. ट-माला-रज⁐पुंज-पिंजरित-चरण-सरसी(रु*)ह × कीर्त्तिवर्म्म-सत्याश्रय-श्री-
६०. पृथिवी-वल्लभ-महाराजाधिराज-परमेश्वर-भट्टारकस्सर्व्वानेव-
६१. माज्ञापयति (।*) विदितमस्तु वो (ऽ*)स्माभिर्ग (र्न) व-सप्तत्युत्तर-षट्छतेषु शकवर्षे-
६२. ष्वतीतेपु प्रवर्धमान-विजय-राज्य-संवत्सरे एकादशे वर्त्त-
६३. माने भीमरथी-नद्युत्तर-तटस्थ-भण्डारगविट्टगे-नाक-ग्राम-
६४. मधिवसति विजय-स्कन्धावारे भाद्रपद-पौर्णमास्यां श्री-दोसिराज-
६५. विज्ञापनया कामकायन-गोत्राय ऋग्यजुर्वेद-पारग-श्री-विष्णु-
६६. शर्म्मण⁐पौत्राय कृष्णशर्म्मणः पुत्राय माधवशर्म्मणे

६७. पा[नु]ङ्गल्विषये अ[र]दो[रे]।नदी-दक्षिण-तटे तामर-

पञ्चम ताम्रपट्ट

६८. गमुगे-पानुङ्गल्कि[रु]वलिल-बालवूरु इयेतेषां ग्रामाणां मध्ये नेङ्गियू-र्न्नन्दिवल्लिल-

६९. सहितस्सुल्लियूर्न्नाम-ग्रामो दत्तस्तदागामिभिरस्मद्वंश्यैरन्यैश्च राजभिरा-

७०. युरैश्वर्य्यादीनां विलसितमचिरांशु-चञ्चलमवगच्छद्भिराचन्द्रार्क-धरार्ण-

७१. व-स्थिति-समकालं यशश्चिचीषु मिस्स्व-दत्ति-निर्व्विशेषम्परिपाल-नीयमुक्तञ्च

७२. भगवता वेदव्यासेन व्यासेन (।*)
बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरा-

७३. दिभिः (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा[फ]लं(लम्) (॥*) [२*]
स्वन्दातुं

७४. सुमहच्छक्यं दुःखमन्यस्य पालनं(नम्) (।*)
दानं वा पालनं वेत्ति(ति) दानाच्छ्रेयो(ऽ*)-

७५. नुपालनं(नम्) (॥*) [३*]
स्व-दत्तां पर-दत्तां वा यो हरेत वस्व (सु)न्धरां(राम्) (।*)
षष्टि वर्ष-स-

७६. हस्राणि विष्ठायां जायते क्रिमिरिति (॥*) [४*]
मह[ा]सान्धिविग्रहिक-श्रीमदनि-

७७. वारित-धनंजय-पुण्यवल्लभस्य लिखितमिद[ं] शासन[ं](नम्) (॥*)

६९

प्रथम परमेश्वरवर्मा पल्लव (६६९-७०० ई०) का वुन्न गुरुवयपलेम-दानपत्र

वर्ष १९

प्राप्तिस्थल : आन्ध्र प्रदेश के नेलौर जिले का वुन्न गुरुवयपलेम स्थल ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि: प्रारम्भिक तेलुगु-कन्नड़ ।

छन्द : १-३ : अनुष्टुभ् (श्लोक) ।

लेख-सार : प्रथम महेन्द्रवर्मा पल्लव के प्रपौत्र, प्रथम नरसिंहवर्मा के पौत्र तथा द्वितीय महेन्द्रवर्मा (महेन्द्र विक्रमवर्मा) के पुत्र परमेश्वरवर्मा ने दक्षिणायन के अवसर पर काञ्चीपुर से स्वामिशर्मा के पौत्र और दोणशर्मा के पुत्र देवशर्मा को कुबुणूरु ग्राम अपनी दीर्घायु व स्वास्थ्य की कामना से दान में दिया । इसमें पदाधिकारियों को आदेश दिया गया है कि वे अपने दौरों पर आते समय इस ग्राम को कर आदि से मुक्त रखें । दूतक के रूप में तगी या नगी पल्लव के पुत्र कुलवर्मा का नाम है । लेख का लेखक विशेषविदित था ।

तिथि : परमेश्वरवर्मा के शासन के १९वें वर्ष की पौष्य सुदि का १३वां दिन जो सम्भवतः ६८७ ई० में पड़ेगा ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : सरकार और पी० शेषाद्रि शास्त्री, इ० आई०, ३२, पृ० ९१ अ०; सरकार, स०, इ०, २, पृ० ६०५-७ ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. [स्व]स्ति(।*) [जित]म् भगवता (।*) श्रीमत्काञ्चीपुरात्पल्लवानां भारद्वाज-सगोत्राणां यथावदा-

२. [हृ]ताश्व[मे]धाद्यनेक-क्रतु-याजिनां स्व-वी[र्य्या]धिगत-राज्यस्य प्रतापोपनत-राज-

३. [म]ण्डलस्य मध्यमलोक-पालस्य लोकपालाम्पञ्चमस्य [श्री]-म-

४. [हे]न्द्रवर्म्मण͜ प्रपौत्रः बहु-समर-लब्ध-यशः-प्रकाशस[्य] विधि-

५. [वि]हित-सर्व्व-मय्या(र्या)दस्य वसुधातलैकवीरस्य श्री-नरसिंहवर्म्मणः

६. [पौ]त्रः देव-द्विज-गुरु-वृद्धापचायिनो विवृद्ध-विनयस्यानेक-गो-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

७. हिरण्य-भूम्यादि-प्रदानैरहरहरभिवर्द्धमान-धर्म्म-सञ्चयस्य श्री-महे-
८. न्द्रविक्रमवर्म्मण͡ पुत्रः प्रजासंर (रं)जन-परिपालन-नित्य-युक्त͡-
कलियुग-दो[षा]-
९. [व]सन्न-धर्म्मोद्धरण-नित्य-सन्नद्ध͡ परममाहेश्वरः परमब्रह्म-
१०. [ण्य]ः बप्पभट्टारक-पाद-भक्तः श्री-परमेश्वरवर्म्मा पूमिराष्ट्रे [मुल्]-
११. [वु?]व[ड्य]-मार्ग्गे मुसुणनदी-दक्षिण-तटे कुबुणूरु-नाम-ग्राम(मे)
ग्र(ग्रा)मेय-
१२. [क]ानित्थ[मा]ज्ञापयति (।*)अयं ग्रामः सर्व्व-कर-परिहारैः
ब्रह्मदेयी-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१३. [क्र]त्य[अ]यन-निमित्ते उर्प्पुटूरुग्राम-व(वा) स्तव्यस्य मौद्गल्यायन-
गोत्रस्य आपस्त-
१४. वं(म्ब)-चरणस्य वेद-वेदांगेतिहासपुराण-तत्व(त्त्व)विदः स्वामि-
शर्म्मण͡-पौत्राय यम-नियम-
१५. स्वा[ध्या]य-तत्परायणस्य सर्व्व-शास्त्र-तत्व(त्त्व)-विदः
दोणशर्म्मण͡ पुत्राय अभिजन-[विद्या]-
१६. वृत्त-सम्पन्नाय सतत-सत्यव्रत-संयुक्ताय षट्कर्म्म-निरताय देवशर्म्म-
१७. णे अस्मदायुरारोग्याभिवृद्धये मया प्रदत्तः (।*) एवमवगम्य
सर्व्वाधिकरण-[नियु]-
१८. क्ताः राज-वल्लभाश्च सं (स)ञ्चरन्तः सर्व्व-कर-परिहारै͡ परिहरन्तु
परिहारय[न्तु]

तृतीय ताम्रपट्ट

१९. [च] (।*) य इदमस्मच्छाश(स)नमतिक्रमेतस पापश्शारीरन्दण्ड-
मर्हति (।*) भवतो(ऽ*)त्र[श्लोकौ ।
२०. बहु]-
[भिर्व्वसु]धा दत्ता बहुभिश्चानुहा(पा) लिता(।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं(लम् ॥)
[भूमि]-
२१. [दा]ना[त्]प[र]न्दानन्न भूतन्न भविष्यति (*।)
तस्यैव हरणात्पापन्न भूता(त)न्न [भविष्यति] (॥*) [२*]
[न(त?)]-
२२. गीपल्लव-संभूतो नन्दकुर्र् नृपेश्वरः (।*)
आ[ज्ञाप्ति](:*)कुलवर्म्मास्य शासनस्य म-
२३. हाय[शा]ः (॥*) [३*]
प्रवर्द्धमान-विजयराज्य-संवत्सरे एकान्नविंशत्यां पौष्यमासे
२४. [शुक्ल-प]क्ष-त्रयोदश्यां(श्याम्) आदित्य-दिने घनस्कन्धान्वय-प्रसूतेन
विशेष[वि]दि-
२५. [ते]न [लि*]खितमिदं(दम्।।)स्वस्त्यस्तु गो-ब्राह्मणेभ्यः ॥

७०

द्वितीय नरसिंहवर्मा पल्लव (लग० ७००-२५ ई०) का कालहस्ती-दानपत्र

वर्ष १२

प्राप्तिस्थल : अज्ञात ।

भाषा : संस्कृत ।

लिपि : तेलगु-कन्नड़ ।

छन्द : १-४ : अनुष्टुम् (श्लोक) ।

लेख-सार : भारद्वाज गोत्रीय पल्लव वंश में महेन्द्र विक्रमवर्मा (=द्वितीय महेन्द्रवर्मा) का जन्म हुआ । उसका पुत्र प्रथम परमेश्वरवर्मा था । उसके पुत्र और उत्तराधिकारी द्वितीय नरसिंहवर्मा ने काञ्चीपुर से कुरवश्री के निवासी कुमारमण्डशर्मा नामक ब्राह्मण को रेयूरु नामक ग्राम ब्रह्मदेय रूप में दिये जाने का आदेश दिया । दाता स्वयं परमभट्टारक परमब्रह्मण्य राजा था जिसे बप्प भट्टारक पादानुध्यात कहा गया है । राज्य के सभी मन्त्रियों, करणयुक्तों, नियोगिकों तथा राजवल्लभों को आदेश दिया गया है कि वे इस ग्राम से कोई कर, विशेषत: दौरे पर निकलते समय (सञ्चरन्त:) न लें । दूतक के रूप में सोमादित्य के पुत्र ईश्वर का नाम है ।

तिथि : द्वितीय नरसिंहवर्मा के शासन के बारहवें वर्ष के वैशाख मास की पूर्णिमा (जब चन्द्रग्रहण पड़ा) । सम्भवत: यह तिथि ७१२ ई० में पड़ेगी ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : देसाई, पी० बी०, इ० आई०, २६, पृ०, ८६ अ०; प्रभाकरशास्त्री, वी०, जर्नल ऑव वेंकेटेश्वर ओरियण्टल इन्स्टिटट्यूट, त्रिपुटी, ८, पृ० ८२ अ०; ६, पृ० २५ अ०; सरकार, स० इ०, २, पृ० ६०८-११ ।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

१. स्वस्ति(।*) श्रीमत् जितम् भगवताम्(।*) काञ्चीपुराधिष्टा(ष्ठा)-नात्पल्लवानाम् भारद्वाज-

२. सगोत्र(त्रा) स्व-वीर्य्याधिगत-राज्यस्य अभ्यर्च्चित-शक्ति-सिद्धि-सम्पन्नस्य

३. प्रतापोपनत-राजमण्डलस्य मध्यमलोकपालस्य लोकपालानाम्पलि (ञ्च)-

४. मस्य परमब्रह्मा (ह्म)ण्यस्य महाराजस्य श्री-महेन्द्रविक्रमवर्म्मण: पौत्र: बहु-

५. समर-विजय-लब्ध-यश: प्रकाशस्य विधि-विहित-सर्व्वमर्य्यादस्य स्थिति-स्थितस्य

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

६. अमितात्मनो यथावदाभृताश्मेधाद्यनेक-क्रतु-याजिनस्सत्य-व्रतस्य धर्म्मा-

७. त्मनो महिमपि-महेन्द्रस्य परमेश्वरवर्म्मणः पुत्रः भगवद्भक्ति-सद्भाव-सर्म्पि-

८. त-सर्व्वं(:*)प्रजासंरंजन-परिपालनोद्योग-सतत-सत्यव्रता(त)-दीक्षित(:*) क-

९. लियुग-दोषापहृतधर्म्मोद्धरण-नित्यसन्नद्धो अनेकसमर-संघट्टजनित-विक्र-

१०. म-वसुधातलैः(लै)कवीर(रो) राजरिषि(र्जषि)-गुण-सर्व्वसन्दोह-विजिगीषु(:*) परमभ(भा)गवत(:*) प-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

११. रममाहेश्वर(:*)परमब्रह्मण्य(ण्यो) बप्पभट्टारक-पाद-भक्ति(क्तः) श्री-नरसिंहवर्म्म-

१२. णः(वर्म्मा) मेल्मुण्डराष्ट्रे असिधारपुरस्योत्तरे। रेयूरु-नामग्रामम्(मस्य) ग्रामेयका-

१३. नित्थमाज्ञापयति(।*)अयं ग्राम(:*)कुरवश्री-वस्थ(वास्त)व्यस्य राथितर-सगोत्रस्य

१४. आपस्तंभ(ब)सूत्राध्यायिनः द्वे(द्विवे)द-पारगस्य वेद-वेदांगेतिहास-पुराण-तत्व(त्त्व)वि-

१५. द(:*)कूलशर्म्मणस्य(णः*)पौत्राय द्वि (वे*)द-पारगस्य कुमारशर्म्मण-(:*)पौत्राय द्वे(द्विवे)द-पारगाय

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

१६. नित्य-स्वाध्याय-निरताय सोमयाजिने कुमारमण्डशर्म्मणे अस्माक(म्*) आयुर्-

१७. बल-विजयैश्वर्य्याभिवृद्धयेब्रह्मदेहि(यी)कृत्यास्माभिर्द्दत्त(:*)प्रवर्द्धमान-विजय-

१८. राज्य-संवत्सरे द्वादश-वर्षे वैशाख-पौर्ण्णमास्ये(स्यां)सोमग्रहण-निमित्ते दत्त एव-

१९. मवगम्ये(म्य) इमा(म) (म*)मात्या(:*)सर्व्वाः(र्व्वे) करण-युक्ता-(:*)सर्व्व-नियोगकाः राज-वल्लभाश्च सञ्चरन्ताः(न्तः)

२०. सर्व्व-कर-पर्हारः(परिहारैः) परिहरन्तु(।*) (य*:) इमामाज्ञामतिक्रमेत्स पापश्शारीरन्दण्डमर्हति (।*) सोमादित्य-

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२१. सुत(:*)श्रीमान्नन्दकुर्‌र-नृपेश्वरः('*) आज्ञाप्तिश्शासन-स्यास्य राजादित्य(:*)प्रतापवान्(॥*)

२२. यत्रामषतः श्लोकः(काः।)

ब्रह्मस्वम्(स्वं) विषं घोरः (रं) न विषं विषमुच्यते(।*)
विषमेकाकिन(नं) हन्ति ब्रह्म-

२३. स्वम् पुत्र-पौतृ(त्रि)कम्(॥*) [२*]
स्व-दत्ताम् पर-दत्तां वा। यो हरेति(त) वसुन्धराम(।*)
षष्टि-व-

२४. र्ष-सहस्राणि । विष्ठायं(यां) जायते क्रिमिः (॥*) [३*]
बहुभिर्व्वसुधा दत्ता । बहुभि-

२५. श्चानुपालित(ता) ।
यस्य यस्य यथा भूमि । तस्य तस्य तथा फलम् ॥ [४*]

७१

नेडुञ्जडैयन् पाण्ड्य (लग० ७६५-८१५ ई०) का वेलविकुडी (ब्रिटिश-संग्रहालय)-दानपत्र

वर्ष ३

प्राप्तिस्थल : अनिश्चित है। दान दिये ग्राम के नाम पर वेलविकुडी-दानपत्र कहलाता है।

विशेष-चर्चा : यह दानपत्र संस्कृत व तमिल दोनों भाषाओं में है। दोनों अंशों की लिपि भी अलग-अलग है। इसमें कुल दस ताम्रपट्ट हैं जिस पर १५० पंक्तियां लिखी हैं। ३० से लेकर १४१ तक की पंक्तियां, जो तृतीय ताम्रपट्ट के पृष्ठभाग से लेकर नवें ताम्रपट्ट के पुरोभाग तक लिखी हैं, तमिल भाषा में हैं। उनको यहां नहीं दिया जा रहा है। संस्कृत भाग लगभग पूर्णतः छन्दोबद्ध है—केवल प्रारम्भ के मंगल वचन व अन्तिम वाक्य को छोड़कर।

लेख-सार : पाण्ड्य नाम का एक शक्तिशाली नरेश जो, समुद्र के द्वार (=खाड़ी के तट) पर शासन करता था, इस कल्प के आदि में चन्द्रमा के पुत्र बुध के रूप में अवतरित हुआ। उसके पुरोहित अगस्त्य थे। पाण्ड्य का पुत्र पुरूरवा था। उसके वंश में, जिसका लाञ्छन मत्स्य युगल था, मारवर्मा उत्पन्न हुआ। मारवर्मा का पुत्र रणधीर था और रणधीर का द्वितीय मारवर्मा राजसिंह। द्वितीय राजसिंह ने पल्लवमल्ल को हराया। उसका पुत्र जटिल उर्फ परान्तक था। अन्य अभिलेखों में जटिल के नाम जटिलवर्मा, प्रथम वरगुण, नेडुञ्जडैयन् और मारञ्जडैयन् भी दिये गये हैं। प्रशस्ति की रचना सर्वक्रतुयाजी वरोदयभट्ट ने की थी और आज्ञप्ति(=दूतक) वैद्य मंगलराज था जो करविन्दपुर का निवासी था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : एच० कृष्णशास्त्री, इ० आई०, १७, पृ० २९१ अ०; सरकार, २, पृ० ६४१-४४।

मूलपाठ

प्रथम ताम्रपट्ट

स्वस्ति (।।*)
१. श्रियञ्चिरं वशिशिरांशुशंखर-
शिव(:*) श्रितार्त्ति-प्रतिबन्ध-कारणम्(।*)
तनोतु सौवर्ण्ण-कप-
२. र्द्द-सुन्दर ⁑ -
कुदर्प्प-कन्दर्प्प-मद-प्रमर्द्दनः ।। [१*]
विश्वम्भरा-भर-श्रान्त-शेष-विश्रम-कारणम् (।*)
आ-

३. कल्पान्तम्भुवि स्थेयादन्वय‿पाण्ड्य-भूभृताम् ॥ [२*]
अस्तम्भयत्क्षितिधरम्प्रविजृम्भमाण-
मम्भ-

४. स्समस्तमपिवज्जलधेश्च यस्सः (।*)
कुम्भोद्भवो भवति यस्य मुनि‿पुरोधा-
स्स श्रीनिधि-

५. र्ज्जयति पाण्ड्य-नरेन्द्र-वंशः ॥ [३*]
अस्थादप्रतिम-प्रभाव-महित‿पाण्डयाभिधानो निधे-

६. र्व्वाराध्वारि महीपतिस्त्रिभुवने लीने(ऽ*)पि कल्प-क्षयात् (।*)
धात्रा सृष्टवता पुनस्स

७. जगतां रक्षार्त्थमभ्यर्थित-
स्तेजस्वी तनयत्वमेत्य शशिनो नाम्ना बुधाख्यो(ऽ*) भवत् ॥ [४*]

द्वितीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

८. पुत्रस्तस्य पुरूरवा भुजबल-प्रध्वस्त-दैत्य‿प्रभु-
स्तद्वंशे शिखरीन्द्र-मस्तक-शि-

९. ला-विन्यस्त-मत्स्य-द्वये (।*)
शक्रार्द्धासन-हार-भाजि शरणे विश्वस्य विश्वम्भरा-
गेह-

१०. स्वामिनि शाश्वते युधि जिताशेषामरारि-प्रभौ ॥ [५*]
दूतीभूत-दिवोकसि क्षितिधर-क्षु-

११. ब्धाभिसंक्षोभित-
क्षीरोदन्वति कुम्भसम्भव-कर-प्राप्ताभिषेक-क्रिये (।*)
इष्टार्त्थार्प्पण-

१२. तर्प्पितार्त्थि-जनता-पूर्ण्ण-क्षमा-मण्डले
जन्मावाप जग-त्रयार्च्चितगुण(:*)श्री-मारवर्म्मा नृ-

१३. पः ॥ [६*]
धरणी-वलयं समस्तमेत-
न्निज-दोर्द्दण्ड-महोरगेण बिभृत् (।*)
अहरत्स भु-

१४. जंगमाधिभर्तु-
श्चिरकालोद्वहन-क्लमन्धरायाः ॥ [७*]
अधिरुह्य तुलाममित्र-वर्ग
युधि जि-

द्वितीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

त्वा-

१५. मृत-गर्ब्भतो जनित्वा (।*)
सुधियामधिपस्सुवर्ण्णराशिं
विधिवत्स प्रतिपादयाम्बभुव ॥ [८*]
तस्या-

१६. न्मजस्तरुण-भास्कर-तुल्य तेजा
राजा बभूव रणधीर इति प्रतीतः (।*)
यो लीलयैव भुवन-

१७. स्य बभार भारं
हारं यथास्य गुरवस्सुर-नायकस्य ॥ [९*]
पुत्रस्तस्य पुरन्दर-प्रतिकृति-र्मू-

१८. सुन्दरी-वल्लभो
नम्राशेष-नरेन्द्र-वेष्टन-मणि व्रातावृतांघ्रि-द्वयः (।*)
आसीत्सत्य-सख⁀प-

१९. राक्रम-धन⁀पत्मासनाया⁀पति-
र्व्विद्याचार-विभूषण(ः*) श्रुत-[ध]र(ः*) श्री-मारवर्म्माभिधः ॥ [१०*]
स राज-

२०. सिंहस्सरसीरुहाक्षो
भयम् भुवि प्राणभृतामपास्य (।*)
ररक्ष दक्षः क्षपितारि-पक्ष-

२१. ×-
क्षमातलं क्षमापतिरक्षताज्ञः ॥ [११*]
नरो नु रक्षो नु हरो नु पूरष⁀-
परो नु शक्रो नु

तृतीय ताम्रपट्ट : पुरोभाग

२२ सरोषमागतः (।*)
इति[स्म] मत्वा युधि यम्भयार्द्दित⁀-
पलायते [पल्लव]मल्ल-भूप-

२३. तिः ॥ [१२*]
कनकगर्ब्भ-कृत-प्रसव⁀पुन-
स्समधिरुह्य तुलामतुलामपि (।*)
अकिर[ता]-

२४. र्त्थमपाकृत-कल्मषो
द्विज-दरिद्र-सुरायतनेषु यः ॥ [१३*]
माहाकुलीनाम्मलवेन्द्र-[क]-

२५. न्यां
स मारवर्म्मा सद्रशीमुवाह (।*)

अजायतास्यां हर-सूनुकल्पो
जगद्धितार्थञ्जटि-
२६. लाभिधानः ॥ [१४*]
अशिषत्स धरामहीन-सार ✕ -
क्षितिप ✕ क्षालित-कल्मषानुषंगम् (।*)
नत-रा-
२७. जक-मौलिरत्न-रश्मि-
प्रकराभ्यर्च्चित-पाद-पत्म-पीठः ॥ [१५*]
खलये स गुणानदात्कृतस्य
२८. स्व-भुजाभ्यां सुरपादप-स्वभावम् (।*)
अभयं शरणागत-प्रजाभ्य-
स्स दिवं संयति श-

तृतीय ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

२६. त्रु-पार्त्थिवेभ्यः ॥ [१६*]
राजतां स महीपाल-किरीटार्प्पित-शासनः (।*)
राजसिंह-सुतो रा-
जा चिरमुर्व्याम्पराान्तकः ॥॥।- [१७*]

(इसके बाद पंक्ति १४१ तक तमिल में हैं)

नवां ताम्रपट्ट : पृष्ठभाग

१४२. आसीत्म(न्म)ङ्गलराजो मधुरतरः शस्त्रवित्कविर्व्वाग्मी (।*)
आज्ञप्तिरस्य वैद्यः करविन्दपुरा-
१४३. धिवास्तव्यः॥ [१८*]
रत्षा(क्षा)न्नरः परकृतो विदधीत विद्वा-
न्पादा हि धर्म्मयशसः पर-
१४४. मस्य लब्धा(ः ।*)
धात्रैव स्र(सृ)ष्टमखिलम् भुवनन्तथापि
रत्षन्त्रि(क्षन्ति) पुण्य-रतयः प्र(पृ)थिवीन्नरेन्द्रा[ः] [१९*]
१४५. न हि भूमि-प्रदानाद्वै दानमन्यद्विशिष्यते (।*)
न चापि भूमि-हरणात् पाप-
१४६. मन्यद्विधीयते ॥ [२०*]
दाता दशानुग्र(गृ)ह्णाति यो हरेद्दश हन्ति च (।*)
अतीतानागता-
१४७. नीह कुलानि कुल-नन्दन ॥ [२१*]
स्वदत्ताम् परदत्ताम्(त्तां) वा यो हरेत वसुन्धराम् (।*)

१४८. न तस्य नरकात्घो(द्घो)राद्विद्यते निष्कृतिः क्वचित् ।। [२२*]
बहुभिर्वसुधा

दसवां ताम्रपट्ट

१४९. दत्ता भुज्यते हि त(न)राधिपैः (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य त-
१५०. दा फलम् ।। [२३*]
चत्वार इमे वैष्णवे धर्मे श्लोकाः ।।

नामानुक्रमणिका

लेखक-परिचय

डॉ० श्रीराम गोयल जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान), में इतिहास विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हैं। आपने डेढ़ दर्जन से अधिक उच्चस्तरीय ग्रन्थों का प्रणयन किया है और 65 से अधिक शोध-निबन्ध लिखे हैं। इनमें **प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ** (1961), **विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ** (1963, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत), **ए हिस्ट्री ऑव दि इम्पीरियल गुप्तज़** (1967), **गुप्त एवं समकालीन राजवंश** (1969), **प्राचीन नेपाल का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास** (1974), **प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह—प्राक्-गुप्तयुगीन** (1982), **गुप्तकालीन अभिलेख** (1984), **मौखरि-पुष्यभूति-चालुक्य युगीन अभिलेख** (1987), **ए रिलीजस हिस्ट्री ऑव एन्श्येण्ट इण्डिया** (दो खण्डों में, 1984, 1986), **कौटिल्य एण्ड मेगास्थेनिज़** (1985), **हर्ष एण्ड बुद्धिज्म** (1986), **समुद्रगुप्त पराक्रमाङ्क** (1987) तथा **हर्ष शीलादित्य** (1987) इत्यादि सम्मिलित हैं। इन सभी ग्रन्थों की भारतीय इतिहास-जगत् में भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है। आपके शोध-प्रबन्ध **ए हिस्ट्री ऑव दि इम्पीरियल गुप्तज़** को आस्ट्रेलिया के नेशनल प्रोफेसर श्री ए०एल० बैशम ने 'दि बेस्ट एनेलेसिस ऑव दि गुप्त पीरियड' बताया है, प्रोफेसर एलिनोर ज़ेलिओट (मिनेसोटा, अमेरिका) ने 'इमेजिनेटिव', 'वेल-रिटिन' तथा 'ए मॉडल ऑव हिस्टोरियोग्रेफी' कह कर सराहा है तथा प्रोफेसर आर० सी० मजूमदार ने 'अत्यन्त सावधानीपूर्वक अध्ययन करने योग्य' माना है। गुप्त इतिहास के पुनर्निर्माण में प्रोफेसर गोयल के सुझावों का योगदान इन पर देश-विदेश में लिखित पुस्तकों तथा दर्जनों शोध-निबन्धों में प्रायः स्वीकृत किया गया है। प्रोफेसर गोयल के अभिलेखों पर लिखित ग्रन्थों की प्रशंसा प्रोफेसर दि० च० सरकार जैसे अभिलेख-शास्त्री ने भी की है। वस्तुतः प्रोफेसर गोयल के व्यक्तित्व में साहित्य, दर्शन-शास्त्र एवं इतिहास का अद्भुत समन्वय मिलता है।

प्रोफेसर गोयल के इस मत पर कि ब्राह्मी लिपि का आविष्कार प्रारम्भिक मौर्य युग में हुआ था, भारत के लब्ध-प्रतिष्ठ पुरालिपि-शास्त्रियों की टिप्पणियों और प्रतिक्रियाओं को एकत्र संगृहीत एवं सम्पादित करके 'इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर सोसायटी' ने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है (**दि ओरिजिन ऑव ब्राह्मी स्क्रिप्ट**, नई दिल्ली, 1979)। उनके एक सुझाव पर इस प्रकार 'पत्राचार-सेमीनार' का आयोजन और प्रकाशन (जो स्वयं एक विरल बात है) तथा कुछ लिपिशास्त्रियों द्वारा उनके इस सुझाव को 'सर्वाधिक स्वीकार्य' बताया जाना तथा अनेक इतिहासज्ञों द्वारा इसको कुछ संशोधन के साथ स्वी-

...रतीय इतिहास-जगत् में डॉ० गोयल ...

...मान्य स्वीकरण का

'भारत के महान् नरेश' ग्रन्थमाला

चन्द्रगुप्त मौर्य

(एक नवीन राजनीतिक अध्ययन)

डॉ० श्रीराम गोयल
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

चन्द्रगुप्त मौर्य को सामान्यतः भारत का प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् कहा जाता है। लेकिन उस पर राधाकुमुद मुकर्जी के उपरान्त किसी भी इतिहासकार ने स्वतन्त्र प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं लिखा है। मुकर्जी का ग्रन्थ भी, जो कई दशक पूर्व लिखा गया था, मूलतः अंग्रेजी में था। प्रस्तुत ग्रन्थ, जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य पर हुई नवीनतम शोधों को समाविष्ट किया गया है, इस नरेश पर मूलतः हिन्दी भाषा में लिखित प्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ है। लेकिन इसकी कई अन्य विशेषताएँ भी हैं। एक, इसके लेखक प्रोफेसर श्रीराम गोयल, जो मौर्य युग पर की गई अपनी शोधों के लिए विख्यात हैं, यह मानते हैं कि जैन ग्रन्थों में चर्चित चाणक्य चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री था, परन्तु वह 'अर्थशास्त्र' के लेखक कौटिल्य से, जिसे प्रोफेसर गोयल तीसरी शती ई० में रखते हैं, भिन्न था। 'अर्थशास्त्र' को मौर्योत्तर मानने वाले इतिहासकार अनेक हैं परन्तु चन्द्रगुप्त का विवेचन करते समय पाठ्य-पुस्तकों में इस ग्रन्थ को मौर्यकाल में ही रख दिया जाता है। सम्भवतः प्रस्तुत ग्रन्थ प्रथम ग्रन्थ है जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य का अध्ययन बिना 'अर्थशास्त्र' की सहायता लिये किया गया है (यद्यपि एक परिशिष्ट में कौटिलीय प्रशासन की रूपरेखा दे दी गई है जिससे पाठकवृन्द स्वयं यह देख सकें कि कौटिलीय प्रशासन उस युग का चित्र उपस्थित करता है या नहीं जब मेगास्थेनिज भारत आया था)। दूसरे, इस ग्रन्थ में चन्द्रगुप्त के शासन की घटनाओं का अध्ययन उन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में किया गया है जो उस युग में सक्रिय और प्रभावी थीं। उदाहरणार्थ, इसमें दिखाया गया है कि किस प्रकार महापद्मनन्द और सिकन्दर ने चन्द्रगुप्त के पूर्व उत्तर भारत व उत्तरापथ के राजनीतिक मानचित्र का सरलीकरण करके उसके धरणिबन्धन प्रयास को सरलतर कर दिया था। इन विशिष्ट दृष्टिकोणों से चन्द्रगुप्त का भारतीय इतिहास में स्थान-निर्धारण इसके पूर्व किसी ने नहीं किया है। चन्द्रगुप्त मौर्य के धर्म के विषय में जैन परम्पराओं की नवीन व्याख्या भी इस ग्रन्थ की एक विशेषता है।

1987

मूल्य : रु० 120

कुसुमाञ्जलि प्रकाशन
पी० एल० शर्मा रोड, बेगम ब्रिज
मेरठ-250 001